एक साथही हुआ था । कोई भी माता और विमाता का
प्रीतिपात्र एक साथ नहीं हो सकता, विधुभूषण की मा
उसे बहुतही प्यार करती इससे उसकी विमाता उससे सदा
जला करती थी । गुरुजी ने बीच में पड़ के चाहा कि इन
दोनों में मेल हो जाय, पड़ोसियों तथा सम्बन्धियों ने [illegible]
परा देने का यत्न किया परन्तु सब व्यर्थ हो गया कोई
इन्हें प्रसन्न न कर सका । विधु का जी पढ़ने में तनिक भी
न लगता खेल कूद में लगा रहता जितनाही डाटाडपटा
जाता उतनाही खेल कूद बढ़ता जाता, किन्तु विवाह कैसे
रुक सकता था चाहे इधर की पृथ्वी उधर हो जाय चाहे
वर ऐसा बीमार हो कि कलही मर जाय किन्तु हिन्दुओं
का विवाह नहीं रुक सकता; कदाचित् व्याहता के भाग्य
[illegible] वह कन्या हो जाय; विधुभूषण का विवाह २२ वर्ष
की अवस्था में हुआ, बहू घर आई, बधाइयां बजीं, इसी
साल में विमाता का परलोक हो गया ।

विवाह के पीछे उसकी मा पांच वर्ष और जीई,
[illegible] की एक लड़का और एक लड़की [illegible]
[illegible] एक [illegible] हो गया ।

द्वितीय परिच्छेद ।

सौदागर की दूकान ।

कवि लोग सब के मन का हाल जान सकते हैं जहां चाहें वहां जा सकते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो गोपियों का परम गुप्त-प्रेम जिसे देवता लोग भी नहीं जान सकते उसे सूरदासजी आदि महात्मा लोग कैसे जान गये, भारतेन्दु श्री बाबू हरिश्चन्द्रजी ने "वैदिकी हिंसा" में मरने के पीछे राजपुरोहित आदिकों की यमलोक में दुर्दशा कैसे देखी ? इन सभों ने कठिन मुसलमानों के अन्तःपुर में जाकर उसमान और आयशा की बातें दुर्गेशनन्दिनी प्रणेता ने कैसे जानी। इसके सिवाय एक और भी विचित्र शक्ति कवियों में है अर्थात् असम्भव का सम्भव कर देना। यदि यह शक्ति न होती तो मलिक मुहम्मद जायसी सुग्गे की जुबानी पद्मावती की प्रशंसा कराके रतनसेन के वियोग में नागमती को क्यों तड़पाता ? बाबू रामकृष्णवर्म्मा अपने 'अकबर' नामक ग्रन्थ में योगिराज के आश्रम में सिंह का वशीभूत होना क्योंकर लिखते ? बाबू काशीनाथजी शेक्सपीयर के अनुवाद में हिन्दुओं का रहना विलायत में क्योंकर दिखा सकते ? राजतरङ्गिणीकार लिखता है 'कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः। कविं प्राजापतिं त्यक्त्वा काव्यनिर्माणशालिनम्' इसे हे पाठकवर्ग हमलोग जो कहें उसे ध्यान लगाकर

सुनिये और चाहे सम्भव हो या असम्भव बिना आँख देखे उसे मान लीजिये, कविलोगों को आपलोगों से सहस्र गुनो विशेष देखने और सुनने की सामर्थ है, इससे कविलोगों का कहना असम्भव न समझियेगा।

शशि और विधु की मां को मरे चार पांच वर्ष हो गये लड़के लड़की भी छः सात वर्ष के हो गये, वे सब इधर उधर दौड़ा करते और परोसवाले लड़कों के साथ खेल कूद किया करते।

जबतक मां जीती थी तबतक दोनों भाइयों में बड़ा मेल था, किसी प्रकार का मतान्तर नहीं था पर मां के मरने पर शशि की स्त्री ने स्वामी के चित्त में यह बात भली भांति जमा दी कि अब साथ रहना अच्छा नहीं है तथापि शशि ने किसी प्रकार का विद्वेष प्रकाश न किया। लाख हो आखिर तो भाईही न, दोनों एक मां के पेट से जन्मे थे एकही का दूध पिया था चाहे कितनी भी लड़ाई हो पर चित्त का स्नेह कहा जा सकता है? सच है "न भाई ऐसा शत्रु न भाई ऐसा मित्र" किन्तु उनलोगों की स्त्रियों के साथ तो उस लहू मांस का सम्बन्ध था ही नही बीच २ में उनदोनो से आपुस मे लड़ाई झगड़ा होने लगा किन्तु स्वामी का रुख न पाने से अबतक गृहविच्छेद न हुआ।

एक दिन एक सौदागर अपनी दूकान लिये घूमता

इस गॉव में आ निकला, गॉव के लड़के और स्त्रियां टूट पड़ीं, चारोओर से उसे घेर लिया, सब अपने २ मन की वस्तु लेने लगे, जिनके पास पैसा न था वे दाम सुनकरही चलेगये, ये अगूरही खट्टे हैं। दाम बहुत मालूम हुआ, जिन लड़कों को खिलौना मिल गया वे मारे आनन्द के नाचने लगे, जिन्हें न मिला वे देखकर रोने लगे, शशि की स्त्री प्रमदा ने अपने लडकों के लिये खिलौना ले दिया पर विधु के लडके को बात भी न पूछी, विधु की स्त्री सरला भी वहीं थी किन्तु पैसा न रहने से लडके के लिये खिलौना न ले सकी, उसका लडका वहां नहीं था इससे वह वहां से घर फिर चली, किन्तु रास्तेही में गोपाल ने मा २ कह कर आ पकडा—"मा वहा क्या है चल देखें कहकर आँचल पकड खींचने लगा, सरला ने कहा अरे बाबा। वहां भकौआ (हौआ) आया है एक लडके को पकडे है वहा नहीं चलना, नहीं तो तुम्हें भी पकड़ लेगा।"। गोपाल ने कहा 'नहीं हमें ले चलो देखें भकौआ कैसा है'। "नहीं २ पकड के झोली में बन्द कर लेगा बाबा। वहा नहीं चलना" सरला ने चुमकार कर कहा।

प्रमदा ने सरला और उसके लडके को यह दशा देख अपने लडकों से कहा 'क्यो ? यहां क्या कर रहे हो, ओ न गोपाल को अपनी बंसी दिखाओ। कामिनी तुम

मानना पड़ता ? अबतक चारोंओर रुपयाही रुपया न हो जाता।"

प्रमदा और भी बकती पर बिचारी का स्वामीही मूर्ख ठहरा तो वह क्या करे "अपनाही सोना खोटा तो परख-वइया का क्या दोष ? बिचारी ने मारे दुःख के रो दिया।

अड़ोस पड़ोस की स्त्रियां जो प्रमदा की प्रशंसा करके आहा। प्रमदा बड़े घर की लड़की है देखो कैसी शान्त है, बोली कैसी मीठी है, जैसे फूल झरते हैं, मुंह कैसा सुन्दर है जैसे गुलाब का फूल, आँख कैसी सुन्दर है जैसे आम की फाँक, नाक जैसे सुग्गा की ठोंर इत्यादि सच्ची और अपक्ष-पाती बात कहकर आवश्यकतानुसार नोन तेल लकड़ी ले जाती थीं, प्रमदा का दुःख देखकर पिघल गईं। कोई २ तो रोने लगी कोई २ सरला को गालिया देने लगीं। एक मोटी सी विधवा थी उसे सब से बढ़कर बुरा लगा बोल उठी 'सच बात कहने में कोई डर नही, सरला बड़ी जबान चलाक है प्रमदा का मालिक रोजगार करके चार पैसा ले आता है तिसपर प्रमदा के मुंह से आधी बात नहीं निक-लती'—सच है 'बड़े आदमी का साला सब कोई बनना चाहता है गरीब का कोई बहनोई भी नहीं बनता।'

जैसे एक सियार के बोलने से सब सियार एक साथ बोल उठते हैं वैसेही पड़ोसिन की सच्ची बात का अनुमोदन

जितनी विधवा वहां थीं सभों ने किया। सरला की निन्दा चारोंओर से प्रारम्भ हुई। बात में बात निकलती है सरला के साथ गाँव भर की स्त्रियों के चरित्र की समालोचना होने लगी, अन्त में यह निश्चय हुआ कि इस गाँव भर में प्रमदा के सिवाय कोई भी छोकरी अच्छी नहीं है।

मनुष्यों की प्रकृति ध्यान देकर देखने से भलीभांति पाठकवर्ग समझ सकेंगे, बूढे लोग यद्यपि युवकों को छोकरे, कहकर घृणा करते हैं तथापि आप फिर युवा होने का उद्योग करते हैं, लड़के छूरा फ़ेर के मोछदार बनना चाहते हैं बूढ़े लोग खि़जाब से मोछ काली करते हैं पर "बाल के छोकड़े" शब्द को गाली की तरह बरतते हैं, परन्तु वह जी से नहीं चाहते, केवल ऊपरी बातें हैं।

बिचारी सरला सजलनयन चुपचाप खड़ी रही। सौदागर जाने की तैयारी करने लगा, यह देखकर सरला को बड़ा डर लगा। गोपाल भी पास न था कि बंसी फेर देती और न पैसाही है कि दाम दे सकती, क्या करे, यह सोचही रही थी कि सौदागर वहां से चल दिया। मोटी पण्डाइन ने कहा "तुमने अपना पैसा नहीं लिया" सौदागर ने उत्तर दिया, "हम उस बंसी का दाम नहीं चाहते, बहुत सी बेची हैं।' सरला का मुह देखकर जाना कि विना दाम के देना कहना अच्छा नहीं हुआ इससे फिर कहा "हम तो अकसर इस गाँव में आते हैं अबकी जब आवेंगे

तब पैसा ले जायँगी" सरला यह सुनकर बड़ीही प्रसन्न हुई और मन में सौदागर को धन्यवाद देने लगी, प्रमदा बड़ीही दुःखी हुई और सब स्त्रियां एक दूसरे का मुंह देखने लगीं।

तृतीय परिच्छेद ।

सोने के पेड में मोती के फल।

सरला दुःखित होकर घर आई और घर का कामकाज करके अकेले में तीसरेपहर की घटना पर पर्य्यालोचना करने लगी। बिचारी अबलाओं का बल बुद्धि जो कुछ है वह स्वामीही है किन्तु सरला का स्वामी नहीं के बराबर था। विधुभूषण दिनभर इधर उधर घूमा करते केवल खाने के समय घर आते थे, घर का काम कुछ करतेही नहीं, चार पैसा उपार्जन करने का भी शऊर न था। गाने बजाने और ताश खेलने में बादशाह थे, किन्तु भ्रातृवत्सल हद से बढ़ कर थे, बड़े भाई से लड़ना और बाप से लड़ना बराबरही समझते थे जिनलोगों की हिये की आँखें लिखे पढ़े बिना बन्द रहती हैं उन्हें व्यर्थ का क्रोध बहुत आता है, जिसको चार पैसा कमाना नहीं आता वह बात २ पर लड़ाही करता है "कमासुत आवे डरता निखट्टू आवे लड़ता।" विधुभूषण में भी यह दोष था ज़रा ज़रा सी बात पर तो उन्हें क्रोध न आता पर जब क्रोध आता तो फिर शांत होना भी बड़ाही कठिन था।

विधुभूषण में भी यह दोष था ज़रा २ सी बात पर तो उन्हें क्रोध न आता पर जब क्रोध आता तो फिर शान्त होना भी बड़ाही कठिन था।

सरला सोच रही थी कि तीसरे पहर की घटना उनसे कहना चाहिये कि नहीं, कहने से कोई उपकार की तो सम्भावना थी ही नहीं, पर बिना कहे रहा भी नहीं जाता, जी का बोझ नहीं हलका होता— 'कूक करूँ तो जग हँसे चुपके लागे घाव'—यह सब सोच रही थी कि गोपाल आ गया, उसे देखकर सरला ने चट आँसू पोछ लिया, गोपाल ने पूछा—"मा। रोती काहे को हो?"

सरला ने कहा—"कहा। हम तो नहीं रोती।"

गोपाल—'देखो आँसू तो निकले आते है।"

सरला—नहीं पेट में दर्द है। गोपाल ने कहा—'हमारे पेट में दर्द होने से सियामा (श्यामा) जो दवाई देती रही यह दवाई तुम काहे नहीं खाती। हम सियामा को बुलाय देते है उस दवाई से पेट का दर्द अच्छा हो जायगा।"

सरला ने कहा—"नहीं २ श्यामा के बुलाने का कुछ काम नहीं है, पेट में दर्द नहीं है आँख में न जाने क्या पड़ गया है। इससे पानी निकलता है 'तो आओ हम फूंक दें अच्छी हो जाय' कहकर गोपाल पास चला आया। सरला उसे गोद में लेकर उसका मुंह एकटक देखने लगी।

अहा। प्रेम में कैसा चमत्कार गुण है। सरला क्यों रो रही है, गोपाल कुछ भी नहीं जानता था किन्तु मां को रोते देखकर उसकी आँखों में जल भर आया। सरला गोपाल की आँखें डबडबाई हुईं देखकर अपना सब दुःख भूल गई, उसको गोदी लेकर बाहर घूमने लगी। गोपाल मा के कन्धे पर सिर रखकर चुप हो रहा, सरला उसे बुलाने की चेष्टा करने लगी, उसे हँसाने के लिये आप भी हँसने लगी।

सुन्दरी युवती की आंसूभरी आँखों में जिसने एकबेर हँसी देखी है वह भी कभी नहीं सकता, क्या सोने के पेड में मोती के फल से इसकी तुलना नहीं हो सकती?

चतुर्थ परिच्छेद।

चन्द्रहार।

मां बाप के अच्छे गुणों को तो लडके लेते नहीं बुरे गुणो को सूद समेत ले लेते हैं, बाप और बेटे दोनों ही पण्डित हो यह बहुत कम होता है पर बाप बेटा दोनों चोर प्रायः दिखाई देते हैं, इसका उदाहरण प्रमदा थी, उसके पिता का नाम रामदेव था, जिसका घर शशिभूषण के घर के पासही था। द्वेष, कलहप्रियता इत्यादि कईएक रामदेव के खानदानी गुण थे इस घर की लडकी जिस घर मे गई वह लडाई का घर हुआ, प्रमदा ने अपना सौभा-

हिस्सा इन सभों में तो पूरा २ पाया था, किन्तु उसके पिता में सरलता का भी एक गुण था उसका लेश भी इसमें न था। उसके पिता की अवस्था अच्छी नही थी, विवाह हो जाने पर प्रमदा रुपये का मुह देखने लगी, सास के मरने पर जब से घर की बड़ी स्वामिनी हुई तब से तो पृथ्वी पर सब को तृण के समान गिनने लगी।

यद्यपि विधुभूषण कोई काम नहीं करता था पर प्रमदा उसके बदले में सरला से सब चुका लेती थी आप तो पृथ्वी पर पैर न धरती, सरला रसोई इत्यादि घर का सब काम करती, जो कभी कोई प्रमदा से कहता तो कहती कि 'कौन ऐसा बड़ा भारी काम है, जिसके लिये इत्ती इत्ती बात होती है जो हम मादी न होतीं तो एक दम भर में देखते २ आपही कर डालती' हा नहीं तो। "क्या प्रमदा प्रायः अपने को बीमार कहती थी। बीमार थी यह कहना बड़ा कठिन काम है क्योंकि बीमारी के कारण प्रमदा को एक दिन भी उपवास करते किसी ने न देखा और कुछ दुबला होताही न था बरञ्च दिन पर दिन मोटाई और चिकनाई आती जाती थी, हा इतनी बीमारी तो अवश्य थी कि सवेरेही खाने को न मिलने से बीमारी बहुत बढ़ जाती। आपलोग आपही समझ लेंगे कि उसे कौन बीमारी थी।

तीसरे पहर को सौदागर की दूकान पर जो बात हुई

थी तथा घर आकर सरला ने क्या किया यह तो सब लोग जानतेही हैं, अब आगे क्या हुआ सुनिये ।

बडे जोर से पैर पटकती हुई प्रमदा अपने घर में जाकर किवाडी बन्दकर सिकडी लगा सो रही । लोगों ने समझ लिया कि आज एक न एक उपद्रव अवश्यही होगा ।

प्रमदा की बात ऐसी मीठी होती थी कि एकबेर सुनने से फिर सुनने की इच्छा न होती, इससे किसी ने कारण नहीं पूछा ।

विपिन गुरु के यहां से आया, मां के घर का दर्वाजा बन्द देखकर फिर गया, कामिनी मा मां करके रोने लगी, पर प्रमदा न बोली ।

घर की दाई और चाकर सदा स्वामिनी के आधीन रहते हैं पर यहां की यह चाल नहीं थीं, श्यामा प्रमदा की जितनी भक्ति न करती सरला की उससे सौ गुनी विशेष भक्ति करती क्योंकि दोनोंही को एकही सा तिरस्कृत होना पडता था । इसमे दोनों में मित्रता हो गई थी, सरला का तिरस्कार होने से श्यामा की आँख में जल आ जाता था, श्यामा का तिरस्कार देखने से सरला से विना रोये न रहा जाता । श्यामा में एक बडा भारी गुण था कि कोई कैसे भी अकेले में बात करता हो वह सुन लेती ऐसी धीरे २ जाती कि कोई भी न जान सकता बात पूरी होने

ही वहां से आकर सरला से सब कह देती, सरला भी श्यामा से कुछ न छिपाती।

सरला ने सौदागर के दूकान की सब बातें श्यामा से कहीं श्यामा थोड़ी देर चुप रही फिर हँसकर बोली "आज एक गहना बनेगा।"

क्रम से सन्ध्या हुई, शशिभूषण के घर आने का समय हुआ, श्यामा ने बरामदे में धोती, अँगोछा, जल, पीढ़ा, खड़ाऊँ इत्यादि सज दिया, और श्रीठाकुरजी के मन्दिर में सन्ध्या की तैयारी कर दी, सरला का जी काँपने लगा, प्रमदा ने फूं फूं करके जोर से स्वास लेना आरम्भ किया, आँसू बहाने लगी, दोनों लड़के मां मा करके रोने लगे, इतने में शशिभूषण आये।

जैसे नित्य पहिले अपने कमरे में जाते थे वैसे आज भी गये किन्तु दर्वाजा बन्द पाकर किवाड़ खटखटाने लगे पर कोई उत्तर न मिला, पूछने लगे 'घर में कौन है' कुछ उत्तर नहीं, कितना पुकारा पर उत्तर न मिला, अन्त में हारकर श्यामा को पुकार के पूछा 'श्यामा। वह कहां है?,

श्यामा ने कहा 'इसी घर में तो हैं' यह कह जल भरने के बहाने से एक गगरा लेकर वहां से चल दी।

शशिभूषण ने किञ्चित् क्रोध करके कहा "दर्वाजा खोलोगी कि हम चले जायँ?

प्रमदा ने समझा कि विशेष नखरा करने से काम बिगड़ेगा, धीरे २ उठकर किवाड़ खोल दिया, आप फिर जाकर सो रही। शशिभूषण ने उसके लाल नेत्र मलीन वदन और घनी निश्वास लेते देखकर विचारा कि यह क्या माजरा है, क्योंकि प्रमदा का ऐसा करना आज नई बात नहीं है बीच २ में कुछ प्रयोजन होनेही से कोपभवन की तैयारी होती थी। एक नया गहना वा कोई अच्छा कपड़ा लेने की इच्छा हुई कि मान ठाना गया, और शशिभूषण भी उसे देकर मान लेते थे इससे शशि ने पास आकर पूछा 'आज फिर क्या हुआ' कोई उत्तर नहीं। 'बतलाओ तो आज फिर क्या हुआ?' निरुत्तर। जैसे कोई दीवार के साथ बातें कर रहा है। तीसरी बेर पूछने पर भी उत्तर न मिलने से शशिभूषण ने जाना कि आज की बात कोई सामान्य नहीं है श्यामा को पुकार कर पूछें तो जान पड़े कि क्या है इससे श्यामा २ करके पुकारा किन्तु उसका भी उत्तर न पाकर जोर से बोल उठे 'क्या आफत है। क्या कोई हमारी बात का जवाब न देगा?' यह सुनकर प्रमदा करुणास्वर से बोली—'क्या कहा?। शशि ने कहा 'शुक्र है कि इतनी देर पीछे आपको होश तो हुआ, क्या तुम यहां नहीं थीं या बहिरी हो गई थीं कि अब तक हमारी बात न सुनी?''

प्रमदा—"हमें चाहे बहिरी हो चाहे अन्धी लोगों का इसमें क्या नुकसान है, जो हमें कोई देख न सकती होयँ तो वैसा कहैं हम चली जावें उनके सिर के आफत टले।"

शशिभूषण दिन भर परिश्रम करके थके मादे घर आये थे, यह सुनकर कुछ क्रुद्ध होकर बोले रोज यही कहती हो चली जायेगी चली जायँगी अच्छा अब देखें कहां जाती हो जाव। प्रमदा ने कहा 'क्यों? क्या हमें कहीं जाने की जगह नहीं है बाप के घर चली जायँ तो क्या खाने को न देंगे।" 'सूत न कपास जोलहा से मटकौअल" बाप की अवस्था तो 'अधमस्य धनुर्गुणः' नित कुआ खोदना नित पानी पीना। घर पासही होने से प्रमदा को कभी २ दाल, चावल कभी कभी रुपया पैसा भी चुराकर भेजने का काम पड़ता था और उसी के भरोसे रामदेव की गृहस्थी चलती थी।

शशिभूषण यह सब जानबूझकर भी कान में तेल डाले थे, प्रमदा से बाप के घर जाने की बात सुनकर हँसी आ गई कहा—'जाओ २ अभी जाओ पर हम दाल चावल न भेज सकेंगे'—बाप के घर की निन्दा स्त्रियों से सही नहीं जाती, तिसपर प्रमदा तो क्रोध करके बैठीही थी इससे शशिभूषण की बात से कलेजे में चोट लगी और नीचा सिर करके रोने लगी। शशिभूषण ने सोचा कि प्रमदा को हमने बड़ा कष्ट दिया पर इसी समय सान्त्वना करने से वेदना

काम न होगी, वरञ्च और भी बढ़ेगी इससे उस समय वहां से चले गये किन्तु विशेष ठहर न सके, आध घण्टे के बाद भीतरही फिर लौट आये, देखा कि प्रमदा अभीतक वैसीही पड़ी है पास बैठकर पूछा 'कहो तो सही क्या हुआ है' प्रमदा ने उत्तर नहीं दिया फिर पूछा पर फिर भी कुछ उत्तर न मिला।

थोड़ी देर सोचके शशिभूषण कहने लगे जिसके भाग्य में जो लिखा होता है उसे किसकी सामर्थ है कि टाल सके, जिस चन्द्रहार का आज बरसों से तकाजा था उसे आज बनने को दिया, हमने समझा था कि आज हमारा बड़ा आदर होगा, आज हम पर प्रसन्न होंगी सो वह तो एक तरफ रहा, आज मुंह से भी नहीं बोलतीं, विधु ने बहुत मना किया कि पहिले बैठकखाना बन ले तब चन्द्रहार बने पर हमने सोचा कि बैठकखाना आधा बनही गया है अब खाहमखाह पूरा बनेहोगा चन्द्रहार पहिनने का उनका बड़ा मन है चन्द्रहार तो बनही जाना चाहिये, उसका यह हमें इनाम मिलता है। क्या करें हमारे भाग्य में यही लिखा है।'

अब तो प्रमदा से न रहा गया एक तो चन्द्रहार की बात दूसरे विधुभूषण [illegible]तसम्बन्ध हुआ। यह सुनकर भला प्रमदा से रहा जा सकता था? यदि मर गई होती तौभी

चिता पर से उठ बैठती। बोली—वे दोनों जने तो हाथ धोके हमारे पीछे पडे हैं क्या हमारी इतनी खराबी करके भी उनलोगों की छाती ठण्ढी नहीं होती"। शशिभूषण ने घबडाकर पूछा 'वह लोग कौन ? और तुम्हें क्या तकलीफ दी ?'

प्रमदा—पूछते हो कि क्या तकलीफ दी अब बाकी क्या है।'

शशि०—साफ २ न कहने से भला हम क्योंकर जान सके हैं ? कुछ हम अन्तर्यामी ता हैंही नहीं कि किसी के जी की बात जान सकें० खोलकर कहो की वह लोग कौन ? विधुभूषण और ?'—।

प्रमदा—और कौन वही मालिक मालिकनी जो एक जने तो हमारे पीछेही पड़े हैं हमारे लिये कुछ हुआ नहीं कि उन्हें आग लग उठी जैसे अपने गाँठ से देना पड़ता होय और दूसरी जनी इसी फिकिर में रहती हैं कि जिस्में चार आदमियों के बीच में हमारी बेइज्जती होय।"

शशि०—"क्यों विधु ने कुछ यह तो कहाही नहीं कि तुम्हें चन्द्रहार न दिया जाय उसने तो सिर्फ यही कहा था कि जो कोई आ जाता है तो बैठकखाना बिना उस्को बडी तकलीफ़ होती है, इससे बैठक पहिले बन जाय, और तो कुछ कहा नहीं।"

प्रमदा—'इसीसे तो कहा कि तुम बात बहुत कम समझते हो तुम बिचारे सीधेसादे भले आदमी इतना फन्दफरेब कैसे समझो, विधु को बड़ा चालाक समझना। बैठकखाना बनने को वह क्यों इतना जोर देते हैं सो तो तुम जानते हो नहीं। क्या वह इसलिये कहते हैं कि जिसमें तुम्हें सुभीता होय? नहीं। तुम तो हरवख़्त कचहरीये में रहते हो उनका मतलब यह है कि बैठकखाने में तो जुदा होते वख़्त आधा हिस्सा मिलेगा, और गहने में तो साझा न मिलेगा? उन सब के मन की यह बात है।"

प्रमदा शशिभूषण को मूर्ख अनसमझ ठीक कहती थी क्योंकि इस विषय में वास्तविक वह बहुत कम समझते थे उन्हें बिचारे ग़रीब असामियों को पकड़ मँगाकर कष्ट देने की बुद्धि खूब थी पर इन सब बातोंको बहुत कम समझते थे। मन में सोचा "यह तो सच कहती है इसीलिये वह हमेश. कहता है कि बैठकखाना पहिले बनवाओ, औरतो का गहना बनवाना और रुपया जल में फेंकना बराबर है इसका भेद हमें अब खुला, प्रमदा से कहा "तुमने सच कहा हमें जो पहिले से मालूम होता तो एक ईंट तो बन पातेही नहीं।"

प्रमदा—'तुम न हमसे कुछ पूछो न ताछो न हमारी बात

मानो। तुम तो अपने भाई को रामजी के भाई लछमनजी की तरह समझते हो। यह नहीं जानते कि वह रावण का भाई विभीषण है"।

शशि०—"बैठकखाना अब हम न बनवावेंगे देखें तो सही कैसे बनता है। हां और मालिकनी कौन सी बात कहती थी? किसको?"।

प्रमदा—अरे वह तो विधुभूषण को भी जीत लिये है। उससे कौन बोल सके? उसके मन में यही रहता है कि कैसे हम लोगों को हलकई होय"।

शशि०—क्या हमलोगों की हलकई? जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना—सर्वस खाइ भोग करि नाना—हमराही खाय और हमीं को बदनाम करै?।'

प्रमदा—"कहै कौन?"।

शशि०—"क्या कहा है? कहो तो सही"।

प्रमदा—"नहीं क्या कहा है? कहने से तो तुम झूठ मानोगी। आज एक सौदागर दुकान लेकर आया था लड़के किसी तरह मानेही नहीं, तब मोटो पढाइन से दो पैसा लेके दो वंसी मोल ले दिया, छोटो बहू देख तेही आग बबूला हो गई दौड़ के गोपाल को बोलाय ले आई, एक वंसी उसको भी दिया, दाम देने के वखत कहने लगी हमें एक पैसा उधार दो, सूद ले लेना, ह-

मने कहा एक पैसा का सूद तो हम जानते नहीं छोटी बहू बोली महाजनी करते जनम बीता जानती कैसे नहीं। हम सुन के चुप हो रहीं। फिर तो न मालूम क्या २ बकीं जो २ मुंह मे आया सभी कहा। बाकी क्या रक्खा।"

शशि०—"क्या क्या कहा ?।"

प्रमदा—'हमें तो कुछ यादबाद है नहीं, तुम जानतेहो हो हम सोधीसादी आदमी पेंचपांच की बात क्या जानें महल्ले के सभी लोग जानते है जो सुनना चाहते हो तो मोटी पंडाइन को बुला के पूछा लेव, सब मालूम हो जायगा।'

शशि•—हम जरूर सुनेंगे । कल पंडाइन को जरूर बुलवाना।'

प्रमदा—'अच्छा कल की बात कल देखी जायगी, यह तो बताओ कि चन्द्रहार बनने को दे दिया? तुम्हे हमारी कसम सच बताओ।'

शशिभूषण ने मुस्करा कर कहा हां हां दे दिया है।'

प्रमदा—'तुम्हारी बातों से मालूम पड़ता है कि नहीं दिया।'

शशि०—'अच्छा नहीं सही।'

प्रमदा—तो झूठ क्यो बोले ?।'

शशि०—सचमुच आज तो झूठ बोले है पर कल सच हो

जायगा ! कलही सुनार को बुला के दे देवेंगे । हमने सोचा था कि पहिले बैठकख़ाना बनवावें पर तुम्हारी बात सुनकर अब जी नहीं चहता । मेहनत तो हम करें हिस्सा ले दूसरा'

प्रमदा ने फिर कुछ नहीं कहा ।

हम ऊपर कह चुके हैं कि श्यामा को यह रोग था कि कोई कैसे भी गुप्त बातें करता हो वह किसी न किसी तरह सुनही लेती थी। यह सब बातें भी द्वार पर कान लगाकर सुनरही थी। बात पूरी होतेही दौड़कर सरला के पास गई और कहा 'क्यों बहूजी जो हमने कहा था सो सच हुआ न ? ।'

सरला सब बातें सुनने के लिये बड़ी व्यग्र हो रही थी पूछा 'क्यों ? क्या हुआ जल्दी कह ।'

श्यामा —'हमने तो कहाही था कि जिस दिन कोपभवन से गई उसी दिन एक गहना ज़रूर लेती है । आज चन्द्रहार बनने की बात पक्की हो गई !'

श्यामा ने चन्द्रहार से लेकर सब बातें आद्योपान्त कह सुनाईं ।

पञ्चम परिच्छेद ।

सरला की उत्कण्ठा ।

जिस रात को प्रमदा और विधुभूषण से ये सब बातें हुईं

उस रात को विधुभूषण घर नहीं आये थे, क्योंकि उस रात को पडोसही में कहीं रास था वह वहीं रह गये थे। स्त्रियों का सारा बल स्वामी है। सरला अपने स्वामी से यह सब वृत्तान्त कहने के लिये बडीही उत्कण्ठिता हुई, क्या करना चाहिये कुछ स्थिर न कर सकी, बहुत देर तक चिन्ता करती रही, मन में सोचा कि आज सो रहैं कल सब वृत्तान्त कह देंगी। सोई पर नींद न आई, उठ बैठी फिर सोचा थोडी देर चुपचाप पड़ी रहने से नींद आ जायगी। बहुत देर तक चुपचाप आँख बन्द किये पडी रही पर कुछ फल न हुआ, नाना प्रकार की चिन्ता करके अन्त में यही स्थिर किया कि स्वामी को बुलवाकर सब कहना चाहिये, श्यामा को जगाकर कहा 'श्यामा तुम तनिक उन्हें बुला लाओगी" श्यामा—"कहा से बुलावें कोई जानता है कि कहा है"। सरला—'हा हमसे कह गये हैं कि हम रास देखने जायँगे।

रात को नींद से जगाकर किसी से काम को कहो तो उसे बड़ाही बुरा लगता है। नींद बड़े २ लोगों को बसुध कर देती है श्यामा को कौन गिनती ? श्यामा ने आँख मलते २ कहा "हम वहां कैसे जाय और इतने आदमीयो के बीच में जाने कौन देगा ?"।

सरला—"क्या तुम आज नई २ इतने आदमीयोंके बीच मे जाती हो ? क्या और कभी रास में नहीं गई हो"

श्यामा—"बातों में तुम्हें कौन पा सक्ता है ए लो हम जाती है" कुछ बडबडाती हुई श्यामा वहां से चली।

श्यामा को बुलाने के लिये भेजने से सरला के जी का बोझ कुछ हल्का हुआ, थोडी देर उसकी प्रतीक्षा करके सोई, पिछले पहर की ठण्ढी हवा लगने से नींद आ गई।

श्यामा ने इधर उधर चारोंओर विधुभूषण को ढूंढा पर कहीं न पाया। आप लगी रास देखने। रास के समाज में हठात् विधुभूषण को सारंगी बजाते हुए देखकर उसे आश्चर्य्य हुआ। उस्को समझ में न आया कि वह क्यों बजा रहा है। श्यामा, विधुभूषण से चार आँख हो इस आसरे में खडी रही किन्तु विधु ने श्यामा की ओर नहीं देखा, श्यामा फिर रास देखने लगी।

इधर सरला सो रही है। आहा। निद्रा कैसी मनोहर वस्तु है। रोग शोक ज्वाला और यंत्रणा सभी मनुष्य सोने पर भूल जाता है। निद्रा की ऐसी मोहनी शक्ति और किसमें है? दिन में संसार के झंझटों से चित्त में जो उद्वेग हो जाता है रात को सोने से सब दूर हो जाता है, निद्रा के बराबर शान्तिदायिनी और कुछ नहीं है। नींद मन की प्रियतमा सहचरी है। दुःखी और चिन्तित मन को नींद सखी की तरह स्वस्थ करती है, पर विचारे दुखिया को कहीं भी सुख नहीं है। चिरदुःखी को नींद दुःस्वप्नरूपी शत्रु होकर शान्तिसुख नहीं भोगने देती।

सरला लड़के को गोद में लेकर सोई थी, माथे के ऊपर ही आले पर दिया जल रहा था। हवा लगने से दिये की टेम हिल रही थी इससे बीच २ में मुंह भली भांति नहीं दिखलाई देता था। हवा रुकने से फिर दिखलाई देने लगा, माथे का कपड़ा बाईं ओर गिर गया है सिर में पसीने की बूंद मोती के समान शोभा दे रही है। लाल होंठ दोनों थोड़े २ कांपते है मुंह चिन्ताशून्य नहीं बोध होता। क्या सरला नींद में भी चिन्ता कर रही थी?

नींद खुलने पर सरला ने देखा कि सवेरा हो गया है। गोपाल को उठाकर बाहर आई।

षष्ट परिच्छेद।

मोटी पण्डाइन।

पाठकों को स्मरण होगा कि मोटी पंडाइन का नाम ऊपर लिखा गया है। अब आप लोगों को उनका पूरा परिचय करा देना आवश्यक हुआ। शशिभूषण के घर से पश्चिम ओर दस पन्द्रह कदम आगे बढ़कर इनका घर है, उसमें दो आंगन थे एक रहने का दूसरा रसोई पानी का। सामने एक छोटा सा पाईं बाग़ था उसमें दो चार फूल थे, दो चार रेंड़ के और दो चार केले के थे। घर

ऐसा स्वच्छ सुथरा था कि कहीं धूल मिट्टी का नाम नहीं। इस घर में पंडाइन अकेली रहती हैं।

पंडाइन के रूप गुण का परिचय देना सहज नहीं है। उनका रंग कमल के फूल सा नहीं, गुलाब के फूल सा नहीं, बेला के फूलसा नहीं, चमेली के फूलसा नहीं, गुल-बकावली सा नहीं, इन्द्रसभा की सब्जपरी सा नहीं, लैला सा नहीं, फारसी-उर्दू के कवियों की नायिका सा नहीं, दीया के उजेले सा नहीं, मोमबती सा नहीं, चन्द्रमा सा नहीं, सूर्य्य सा नहीं, इन सबों के मिलाने से जो एक रंग होता है वैसा भी नहीं। क्यों पाठक महाशय! अब समझ में आया पंडाइन का रंग कैसा है? जो न समझे हो तो पुस्तक बन्द कर दीजिये, नावेल पढ़ना आपलोगों का काम नहीं है। ग्रन्थकार लोग इससे बढ़ के स्पष्ट कोई विषय नहीं वर्णन करते, यदि करें भी तो उनको क्या हानि है आपही लोगों की बुद्धि मोटी समझी जायगी। इससे यदि आपलोग अपने को अल्पबुद्धि होना स्वीकार करें तो रंग क्या हम पंडाइन की सभी बातें वर्णन कर देंगे।

पंडाइन का रंग किस २ वस्तु सा नहीं है, यह ऊपर वर्णन कर चुके हैं अब कौन २ वस्तु सा है यह वर्णन करते है। काश्मीरी स्याही, पटवारियों के वास्ते रसोईघर के बांस अलकतरा इत्यादि का सा। पंडाइनजी लम्बी चौड़ी मोटी

ताजी हैं सिर में बाल प्रायः नहीं के बराबर, दाँत माघ महीने की मूली के समान, सुरती से सड़कर काले, आँख लाल, पैर दोनों पहाड़ के टुकड़े, पैर की उँगलियां एक यहां तो दूसरी वहां जैसे आपुस में लड़कर अलग होगई है। इनके बाप इन्हें बहुत चाहते थे इससे मर्दानी पोशाक पहिराकर बारह तेरह वर्ष की अवस्था तक अपने साथ सब जगह ले जाते थे। इन्हें न चीन्हनेवाले लोग कोई न थे और न ऐसेही लोग थे, जिन्हें यह न पहचानती हों। इस समय इनकी अवस्था चालीस वर्ष की थी, इन्हें जन्महो से विधवा कहना चाहिये क्योंकि बिवाह होने के पांचही सात दिन पीछे विधवा हो गई थीं। विधवा होने पीछे एकबेर ससुरार गई थीं पर लड़ झगड़ के पांचही छः दिन में फिर बाप के घर लौट आईं बाप कुछ थोड़ा सा धन छोड़ गया था उसी से इनका काम चलता था। पंडाइनजी में यह एक असाधारण गुण था कि उनके घर पर चाहे कोई जाय सब का आदर सत्कार करतीं सब के साथ एकही सा व्यवहार करतीं।

सरला जैसेही गोपाल को लेके बाहर निकली वैसेही सामने पंडाइन को देखकर फिर घर में चली गई। पंडाइन दूसरी ओर प्रमदा के घर में चली गईं। सरला ने फिर बाहर निकलकर देखा कि पंडाइन प्रमदा के घर में गईं

सरला और प्रमदा का घर ठीक आमने सामने था बीच में केवल एक छत पड़ती थी, सरला ने चाहा कि अपने घर में से इन लोगों की बात चीत सुनें पर कुछ सुनाई न पड़ा फिर बाहर आकर घर का कामकाज करने लगी।

प्राय: एक घण्टा तक प्रमदा और पञ्चाइन से परामर्श होता रहा अन्त में पञ्चाइन ने बाहर आकर सरला को पुकार कर कहा "यहां आओ एक बात सुन जाओ" सरला ने डरते हुये पंचाइन के पास आकर पूछा 'क्या'। पञ्चाइनजी ने दिखाने के लिये कृत्रिम दुःख प्रकाश करके कहा 'बात तो यह है – भाई हम क्या करें—हमारा कुछ दोष नहीं हमें तो जो तुम कहो वह प्रमदा से कह देना और जो प्रमदा कहे वह तुमसे कह देना, न करने से भी नहीं बनती; भाई हमें गाली मत देना, हमें तो सीताहरन में मारीच बनना पड़ा"।

सरला भूमिका सुनतेही सूख गई। पञ्चाइनजी की उपमा पूरी न होते २ ही बोल उठी—"यह सब रहने दो तुम्हें जो कहने कहा है सो कहो, तुम्हारी बातों की बन्दिस से तो हमारा प्रान सूखा जाता है"।

पंचाइन—"हां सूखने की तो बातही है अच्छा तो अब कही डालना अच्छा है। प्रमदा ने कहा है कि एक में रहने से रोज़ लड़ाई झगड़ा बढ़ता जाता है इससे इस

रोज़ २ की लड़ाई झगड़े का क्या काम, चलो आज से तुम भी अपना अलग करो धरो खाओ पीओ और वह भी अलग रहैं । हमारा क्या—भाई हमें जो कहा था सो कह दिया"।

यह सुनतेही सरला के सिर पर जैसे वज्र गिड पड़ा, जिस डर से कभी प्रमदा से बराबर बात नहीं की जिस डर से इतना सहती थी हठात् वही विपद् आ पडी । विधुभूषण भी घर नहीं है वह इस झगड़े का विन्दुमात्र भी नहीं जानते । हो न हो वह सब दोष सरलाही का समझैंगे ।

सरला थोडी देर तक चुपचाप सिर नीचा किए रही फिर आँखों में जल भरकर कातरस्वर से कहा—"क्या जेठ जी ने भी यही कहा"।

पडाइनजी ने कृत्रिम ठण्ढी सांस खींच कर कहा—"क्या शिवजी शक्ति को छोड़कर रह सकते है ? "जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति । जो नारी सोई पुरुष, यामें कछू न भक्ति"।

पंड़ाइनजी का यह काव्य व्यङ्ग और शास्त्र की बात सुनकर सरला को इतने दुःख में भी हँसी आ गई, पर हँसी रोककर करुण स्वर से पूछा "अब कौन सा उपाय करना चाहिये ?"।

पंड़ाइन—"भला हम कौन सा उपाय बतावैं. उपाय नहीं जानो । शशिभूषण ने कहा है कि पंड़ाइनजी आज

जो तुम न खिलाओगी तो हमलोगों को भूखे रहना पड़ेगा । उन्हें तो तुम जानतीहो ही कि बीमारी से कोई काम कर नहीं सकतीं। कल से हम अपना दूसरा बन्दोबस्त कर लेंगी । इससे आज रसोंई किये देती हैं । हमें क्या ? हमें तो तुम बुला भेजो तौ भी आना होगा और वह बोलावें तौ भी आना होगा' ।

पंडाइनजी यह कहकर रसोंईघर में गईं, सरला अपने घर में गईं । जाने के समय शशिभूषण पंड़ाइन से कहते गये कि "पंड़ाइनजी । उसको रसोंई भी आज इसी में होने दो, काल से दूसरा बन्दोबस्त कर देंगे ।"

इसके पहिले दिन भोजन करने के पीछे विधुभूषण ने सुना कि आज तिवारीजी के यहां रास है । अब उन्हें कौन पा सकता है ? सुनतेही आप चटपट तिवारीजी के घर जा पहुँचे और रास का प्रबन्ध करने लगे । कभी फ़र्श का तदारुक करते हैं, कभी लोगों के बैठने का प्रबन्ध करते है, कभी इनके कान में कुछ कहते है, कभी उनसे कुछ परामर्श करते हैं, वह उठाओ यह धरो इसको ऐसा करो उसको वैसा करो, जैसे गृहस्वामी यही है । जैसे २ दिन ढलता था विधु का आनन्द बढ़ता जाता था, दौडे २ घर आए कि कुछ खा लें पर कुछ खाने को था नहीं, इससे यह कहते हुए झटपट चल दिये कि 'हमें आज घर से

रास देखने जाना है।” सरला ने इतना अवकाशही न पाया कि सौदागर के दुकान की घटना कहे।

यहा आतेही सुना कि रासवालों के प्रधान सारङ्गिये को बड़े वेग से ज्वर आया है इससे वे कहते हैं कि आज रास नहीं हो सकता। इधर यहां सब तयारी हो चुकी है सब लोगों को नेवता दिया जा चुका है। अब क्या करना चाहिये ? कोई कुछ स्थिर न कर सकता था। बिधु ने कहा “बजानेवाले के लिये कुछ चिन्ता नहीं है न हो हमीं बजा देंगे” सब लोगों ने यह स्वीकार किया। बिधु अत्यन्तही प्रसन्न हुआ।

नियत समय पर रास प्रारम्भ हुआ, रासवालों ने समझा था कि आज कुछ मिलना तो एक ओर रहा बाजे के दोष से उलटे लज्जित होना पड़ेगा पर दो तीन गीत होनेही से उनलोगों ने जाना कि वह डर व्यर्थ था। बिधु उनके समाजियों से हज़ार गुना अच्छा बजाता था। उनलोगों को और भी उत्साह हुआ। और जितना मिलने की आशा थी उससे दश गुना विशेष मिला।

रास हो जाने पर उनलोगों ने बिधु को भी कुछ भाग देना चाहा पर बिधु नें अस्वीकार किया। प्रसन्न होते हुए घर लौटे आते थे कि रास्ते में श्यामा से भेंट हुई। श्यामा ारती होने तक रास देखती रही। बिधु ने पूछा श्यामा कहा गई रही ?।

श्यामा—‘आपको बोलाने आई थी पर आपको भीड़भाड़ में बजाते हुए देखकर पास जाने का साहस नहीं हुआ,।

“डर काहे का था ?”।

“वहां बहुत से लोग थे”।

“क्या लोग तुझको काट लेते ? तू कुछ पक्का आम तो है नहीं कि देख के लोग पकड़ के खा जाते।”।

श्यामा—“आप तो एक एक बात कहते हैं, हमने कब कहा है कि हम पक्का आम है?”।

विधु०—“हां हमारी तो यह बात हुई है। हम तो रोज़ यही कहते है पर तुम जवाब तक तो देतीही नहीं”।

श्यामा—“जाओ हमें तुम्हारी यह सब बात अच्छी नहीं लगती। जो चाहता है उसको जाके देव।”

(दोनों घर के पास आ गये)

“व “वह कौन श्यामा ?”।

के भीतर जाके देखो जिसने हमें नींद से जगा कर तुम्हें बुलाने भेजा था”।

सप्तम परिच्छेद।

न भाई

ऐसा शत्रु न भाई ऐसा मित्र ।

विधुभूषण को वि श्वास नहीं हुआ कि श्यामा सचमुच हमेंही बुलाने आई है, उसने समझा कि यह रास देखने

आई थी रास्ते में इससे भेंट हो गई इसे इसने यह एक बात बना ली। विधु घर में आए। बाहर किसी को नहीं देखा भीतर ज़नाने में गये वहां भी किसी को न पाया। रसोईघर में गए वहां पंड़ाइनजी को रसोई करते देख विधु ने मुस्किरा कर कहा "आज कैसा सुप्रभात है। आज तो स्वयं लक्ष्मीजी विराजमान हैं" विधु पंड़ाइनजी को सदा ऐसाही कहते थे पंड़ाइनजी भी इसे तुष्ट होने के सिवाय रुष्ट न होती थीं।

पंडाइनजी कुछ न बोलीं। विधु ने कहा—"प्यासा चातक वाक्यसुधा की भिक्षा चाहता है उसकी प्यास दूर की जाय।" पंडाइनजी तथापि न बोलीं मुंह फुलाये रहीं, विधु रास में सारङ्गी बजाकर इतने प्रसन्न थे कि उसको लक्ष न कर सके फिर हाथ जोड़ कर कहा—"बिचारे ग-रीब को कष्ट देना बड़े लोगों को उचित नहीं है जो इ[illegible]-कुछ दोष हो तो उसका दण्ड दिया जाय, जो "[illegible] को पराध कुछ दीजे दण्ड बिचारि। भुजनि बाँधि [illegible]ा थो धरि नखक्षत करि सुकुमारि"॥

इतने पर भी उत्तर न पाने से विधु [illegible]न होते हुए [illegible]कुछ भाग हुआ। श्यामा बुलाने गई थी यह स्मर[illegible] हुई। श्यामा श्यामा झूठ नहीं कहती थी। हो न हो[illegible] ने पूछा श्यामा अवश्य है चटपट वहा से अपने घर[illegible]

सब बातें सुनकर दुःख और डरके मारे रो रही थी। सरला को रोते देख विधु कांप उठा मुंह से बोल न निकला। दमभर पहिले हँस रहे थे हँसी जाती रही, सारा शरीर कांपने लगा, दमभर चुप रहकर पूछा 'गोपाल कहां है? अच्छा तो है न?"

सरला ने कहा—"गोपाल गुरु के यहां गया है डरो मत गोपाल अच्छा है।"

विधु०—"विपिन? कामिनी?"

सरला—"विपिन भी गुरु के यहा गया है, कामिनी कहीं खेलती होगी?"

विधु०—"तो तुम रोती क्यों हो?"

सरला—"जेठजी ने हम लोगों को अलग कर दिया है।"

०—"बस इतनीही बात? इतनेही के लिये रोती थीं?"

"घरैया ने क्या कहकर हमलोगों को अलग कर दिया?"

कर तुम्हें इसे असम्भव समझा।

'पहिले पछाइनजी से कहला भेजा पीछे से क- जाने के वखत आप भी कहते गये।"

न भाई ने के वखत हमलोगों के लिये भी आज विधुभूषण को वि पोई करने कह गए और कहा कि कल हमेंही बुलाने आई है, कर देंगे।"

विधुभूषण ने पूछा—"क्यों अलग कर दिया ।"

सरला ने उत्तर दिया "हमें तो कुछ मालूम नहीं जान पड़ता है सौदागर की दुकान पर जो बात हुई थी उसी से नाराज है।" यह कह कर सब वृत्तान्त कह सुनाया। विधु-भूषण ने सुनतेही हँस कर कहा "इसके लिये क्या डर है भैय्या के घर आने पर ते हो जायगा । जान पड़ता है उ-न्होंने पूरा हाल नहीं सुना। सुनते तो ऐसा काम कभी न करते इसके लिये कौन चिन्ता है।"

सरला स्वामी की बात से कुछ शान्त हुई और बोली "भगवान् करें ऐसाही हो, तुम्हारी बात फले, तुम्हारे मुह में घी, चीनी ।"

विधु०—"घी चीनी पीछे पड़ैगा पहिले सिर में तो तेल पानी पड़े, रातभर जागने से थक गए है तेल दो नहाय ।"

विधुभूषण नहाने गए, सरला रसोंईघर में पंडाइन को सहायता के लिये गई । प्रमदा ने सरला को रसोंईघर में जाते देखकर श्यामा को पुकार के ज़ोर से कहा "श्यामा। हमरी रसोंई में सब लोग क्यों घुसे जाते है? हमरी रसोंई में और किसी के जाने का कुछ काम नहीं है।" उस स-मय श्यामा घर में नहीं थी, किन्तु इससे कुछ हानि नहीं हुई प्रमदा जिस पर क्रुद्ध होती उससे कुछ न कहती उसे सुनाकर श्यामा के नाम से कहती चाहे श्यामा हो या न हो।

प्रमदा की बात सुनकर सरला अपने घर लौट आई श्यामा ने घर आकर देखा कि आज पडाइन रसोई कर रही हैं, सरला से आकर पूछा 'क्या आज तुम्हें छुट्टी मिली है ? पडाइनजी को एवजी दिया है क्या ?'

श्यामा सदा हँसा करती थी सरला से भी हँसते २ पूछा सरला ने कहा 'तुझे कुछ समय असमय का भी ज्ञान है जब देखो तभी खिलखिलाया करती है ।'

श्यामा ने कहा—"हँसें न तो क्या तुम्हारी तरह रोया करें ?" "किसके नाम को रोवें ?" यह कहते २ श्यामा का गला भारी हो गया, आँख से एक बूंद पानी भी टपक पड़ा, श्यामा ने लज्जित होकर मुंह फेर लिया ।

सरला ने कहा—'हमलोगों को अलग कर दिया, पडाइनजी उन लोगों के लिये रसोई कर रहीं है । आज हमलोगों का क्या होगा यही सोच रही हैं" ।

श्यामा—"क्या अलग कर दिया ?"

सरला ने 'हां' कहकर सवेरे का सब वृत्तान्त साफ सुनाया । श्यामा ने हँसती हुये कहा 'देखें हम किसके हिस्से में पडती है ? जो कहीं मा जीती होतीं तो उनकी मिट्टी की बड़ी खराबी होती देखें बाप्के की दाई का क्या होता है ?'

सरला ने झिडक कर कहा । "तुम्हारा हँसना हमें जहर लगता है तुम दो घडी बिन हँसे नहीं रह सकती" ।

सरला की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि विपिन और गोपाल गुरु के यहां से घर आये, गोपाल खाने को मां गता हुआ सरला के पास आया, सरला ने अपने अञ्चल से गोपाल के मुंह को खाली पोंछ कर कहा। "तनिक ठहर जाओ, हम खाने को अभी देते है"। प्रमदा ने विपिन को एक लड्डू देकर कहा 'विपिन ! लड्डू यहीं बैठ के खा बिना खाये बाहर मत जाना' विपिन क्यों सुनने लगा था चटपट बाहर आकर गोपाल को पुकारा, गोपाल ने बाहर आकर देखा कि विपिन लड्डू खा रहा है।

गोपाल ने कहा "हमें भी देव"।

विपिन ने कहा 'नहीं भाई, मां मारेगी"।

गोपाल—'मा क्यों मारेगी ? देखो जब हमें कुछ मिलता है तब हम तो तुमें देते है तब तो हमारी मा कुछ नहीं कहती।'

विपिन—'नहीं भाई अभी तो हम नहीं दे सकते बड़ होंगे तब देंगे'।

गोपाल—'क्या हम तब तक छोटेही रहैंगे हम भी तो बड़े हो जायँगे, तब हम तुमसे न लेंगे" यह सब बातें करते हुये दोनों रसोंईघर के पास आये। विपिन चारो ओर यह देखकर कि कोई कहीं से देखता तो नहीं है एक टुकड़ा लड्डू गोपाल को देने लगा। पण्डाइन

ने रसोंई में,से देखकर कहा "रहो रहो विपिन हम सब देख रहो है मां से कह देंगी।'

"तुम क्या कहोगी ? हमने तो लड्डू किसी को दिया नहीं है" यह कहकर विपिन ने वह लड्डू का टुकड़ा अपने मुंह में धर लिया। गोपाल विचारा दुखी हो के घर में लौट आया, श्यामा बाजार से एक लड्डू लाई थी गोपाल के आतेही उसके हाथ में दे दिया, गोपाल लड्डू खाते २ नाचता कूदता विपिन के पास दौड़ गया।

विधु नहाकर आया, शशि कचहरी से आये। अभी थके हुये चले आते हैं इससे विधुभूषण ने शशिभूषण से कुछ कहना उचित न समझा। शशि ने नहा धोकर पूजा पाठ किया रसोंई करके पण्डाइनजी ने शशिभूषण को खाने के लिये बुलाया। और दिन तो शशिभूषण खाने के समय विधु को बुलाकर साथ लेते जाते थे आज अकेले गम्भीर भाव से खाने गए। खा पीकर अपने घर में पान खाकर तमाकू पी रहे थे कि विधुभूषण वहा जाकर बैठ गया। मन में कहा कि पहिले यही कुछ कहै तब हम कहैं, इसी आसरे में बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा, पर शशि कुछ न बोले, तब विधुभूषण ने कहा "क्यो भैय्या क्या आपने इसको अलग होने कहा है"।

शशिभूषण ने कहा—'हा एक में रह के रोज़ का ल-

टाई झगड़ा नहीं बर्दाश्त होता, अलग होने से किसी त
रह झगड़ा कम हो इसीलिये हमने अलग होने कहा है।'

विधु०—"पहिले यह तो देखिये कि किसके दोष से रोज़
लड़ाई होती है"।

शशि०—"क्या हमने बिना देखेही अलग होने कहा है?"

विधु०—"आपने क्या सुना है? क्या हम भी सुन सकते हैं?'

शशि०—क्यों नहीं, कल एक सौदागर दूकान लेके आया
था, उसने पण्डाइनजी से दो पैसा उधार लेके विपिन
और कामिनी को दो वंशी ले दीं इस पर छोटी बहू
ने कहा जेठानीजी एक पैसा उधार दोगी, हम सूद
देंगी' अच्छा हम तुम्ही से पूछते है कि यह मुनासिब
बात थी?"।

विधु०—"पहिले अच्छी—"

शशि०—"चुप रहो, पहिले हमारी बात पूरी हो लेने दो
तब जो चाहना सो कहना। उस बिचारी के पास
पैसा तो थाही नहीं तिसपर भी उसने कहा कि एक
पैसे का सूद क्या? इसका जवाब मिला कि 'क्यों तुम
तो महाजनी करती हो। हम यह कहते हैं—देखो
हम किसी पर लक्ष करके नहीं कहते, हम दोनों जने
को कहते हैं - यह जो कुछ खर्च बर्च होता है क्या
किसी के बाप के घर से आता है।

विधुभूषण को अभी तक मेल की आशा थी किन्तु अब जड़ मूल से जाती रही। विधु ने कहा "आप यह जो कहते हैं कि कोई बाप के घर से नहीं लाता सो ठीक है पर आज का हाल जो आपने सुना है वह ठीक नहीं है।' यह कहकर जो सरला से सुना था कह सुनाया और कहा कि 'यही ठीक है"।

शशि०—"इसका सुबूत?"।

विधु०—"सुबूत क्या, कुछ मुकद्दमा तो है नहीं जो लोग वहां थे, वे सभी जानते है'।

शशि०—"वहां पण्डाइनजी थीं उनसे हमने सब हाल सुना है उनको ज़बानी तो तुम्हारीही बात झूठी जान पड़ती है"।

विधु०—'कौन कहता है?'।'

शशि०—"हमारी बात का जो विश्वास न हो तो—पण्डाइनजी कुछ दिखी कलकत्ता में तो हैं नहीं—रसोईघर में जाकर पूछ लो"।

विधु०—'पूछने का कुछ काम नहीं है, (मुस्किराकर) पण्डाइनजी ने जो कहा है वह तो कभी झूठ होही नहीं सकता'।

यह कहकर विधुभूषण उठकर चला, द्वार तक भी नहीं पहुंचा था कि शशिभूषण ने पुकार कर कहा। "आज तो

एक में रसोई हुई है कल तुम्हें दूसरा रसोईघर दुरुस्त करवा देंगे और पांच पञ्च बिठाकर हिस्सा बँटा कर देंगे"।

विधु०—"पांच आदमी को बुलाने का क्या काम है हमसे आपसे किसी तरह का झगड़ा तो है नहीं, आप अच्छी तरह समझ रक्खें हमें आप जो देंगे हम ले लेंगे हमें कुछ उज्र नहीं है"। विधुभूषण यह कहकर वहां से चला गया"।

इतनी देर तक प्रमदा चुपचाप बैठी रही । विधु के चले जाने पर बोली—"देखा न। यह नहीं कि तुम्हारी बात का मुलायमी से जवाब दे, कसूर माफ़ करावें उलटा एहसान रखता है"।

शशि०—"यह अहङ्कार के दिन? देखना चारही दिन में नाक रकड़ते आवेंगे"—यह कहकर सो रहे।

अष्टम परिच्छेद ।

"सबै दिन नाहिं बराबर जात।"

यदि हमारे पाठकों में से कोई बैशाख की कड़कड़ाती धूप में मध्याह्न के समय काशी आने की सड़क पर आकर देखते तो एक पेड़ के नीचे एक थके हुये पथिक को पाते "हसरत पै उस मुसाफ़िरे बेकस के रोइये। जो थक गया हो बैठ के मञ्ज़िल के सामने"। दूर से देखने से पथिक

बूढा जान पडता था पर पास आने से प्रगट होता था कि वास्तव में वह एक युवा पुरुष है । दो चार बाल पक गये थे पर बुढापे से नहीं, मुंह मलीन और चिन्तित था । स्पष्ट दिखलाई पडता कि चिन्ता ने इसे बूढ़ा बना दिया है पैर में एक पुराना सात आठ जगह सीया हुआ धूल से भरा जूता, उसके ऊपर एक अत्यन्त मैली सात पैवन्द लगी माटापिलाम की धोती, उसके ऊपर एक पुरानी मिर्जई कन्धे पर एक मारकीन का चादरा, सिर पर पगडी । दहि-नी ओर एक लोटा डोरी हुक्का और बाँस की लाठी पड़ी हुई

हाय । "सब दिन बराबर नहीं होते" विधुभूषण सपने में भी नहीं जानता था कि एक दिन उसकी यह दशा होगी । पाठक लोग समझही गयें होगी कि पेड़ के नीचे विधुभूषणही बैठा था, जिसने इसे पहिले कभी देखा होगा वह कभी न कह सकेगा कि यह वही विधुभूषण है । अब विधुभूषण की वह पहिली सी तैयारी नहीं है वैसा शरीर नहीं है वह प्रफुल्लित मुह नही है वह दम २ पर हँसी नहीं है, पहिले का सा अब कुछ भी नहीं है, पर आप लोग विधु को इस दशा में देखकर घृणा न करें, अब भी विधु के पास जो कुछ है वह ऐसी दुर्दशा में पड़ने पर किसी विरले के पास होगा, विधु के जी की सरलता अभी ज्यों की त्यों है अब भी उसके निर्मलचरित्र को मलिनता नहीं छू सकी है ।

विधु बैठा २ सोच रहा था, कहां जायँ? किस्से अपना दुःख कहैं? कौन हमारी बात का विश्वास करेगा? "तुलसी पर घर जाय के दुःख न कहिये रोय। भरम गवावै आपनो बाँटि न लेहै कोय"।

विधु, शशिभूषण से अलग हो के कुछ दिन तो अच्छी तरह रहा, पर जब दुकानदारों ने उधार देना बन्द कर दिया तब भाई बन्धुओ से लेने लगा। थोड़े दिनो में उनलोगों ने भी हाथ खींच लिया। तब आज गहना कल अच्छे २ कपडे, परसो बर्तन बिकने लगे। क्रम से दोनों समय खाने को भी न मिलता, यह नौबत आ गई, घर में आप सरला गोपाल और श्यामा, चार प्राणी थे अलग होने पर श्यामा विधु की ओर चली आई थो, एक बेर आधे पेट खा के भो उसका जी सरला से न हटा। एक दिन कपड़ा अत्यन्त मैला होने के कारण विधु घर से बाहर न निकल सका, श्यामा के हाथ धोबी के यहा कपडा धोने, को भेजा कि धो आवे तो खाने की खोज में जायँ। धोबी ने घर में घुसतेही प्रमदा को खड़े देखा, उसे देखकर खड़ा होगया, प्रमदा ने पूछा—"रामधन। किसका कपड़ा लाये हो?" धोबी का नाम रामधन था।

धोबी नें कहा—"छोटे बाबू का कपडा बडा मैला ·। था इससे घर के बाहर नहीं निकल सकते थे सो

एक धोती और एक डुपट्टा और एक टोपी जल्दी से धो लाये है"।

प्रमदा ने कहा "कपड़ा न रहने से घर के बाहर नहीं निकल सकते, तिस्पर बाबूजी—कहीं और कुछ होता तो न मालूम कौन पदवी पाते"।

धोबी—"यह सब आपलोग जाने आपका काम जानें हम से इससे क्या मतलब"।

प्रमदा—"क्यों रामधन ? महीना क्या मिलता है ?

धोबी—"पांच रुपया साल देने कहा है"।

प्रमदा—"कहे है कि कुछ दिया भी है"।

धोबी—"अभी कहा से मिला, आजकल २ कहते २ तो एक बरस हो गया, आजकल अनाज सस्ता है मिलता तो मे रखते, जाते है फिर मागते है, देखे अब क्या कहते हैं ?"।

प्रमदा—"मागना कैसा जैसे हो रुपया चुकाय ले"।

धोबी—"न दे तो हमारा कौन वस !"।

प्रमदा—"जो हमारी बात मान तो अभी सब मिल जाय"

धोबी—"कहिये करेंगे क्यों नहीं"।

प्रमदा—"तें कपड़ा अपने हाथ में रख के कहना कि आज बिना रुपया पाये कपड़ा न देंगे जो दे दे तो अच्छाही है, नहीं तो कहना कि जो धुलाई का पैसा नहीं दे

सकते तो कपड़ा क्यों धुलाते हो पैसा तो पास नहीं चले बाबू साहेब बनने ।"।

धोबी—"और जो खफा हो जायँ तो?"।

प्रमदा—"उनके खफा होने से तुझे कौन डर है, जो रुपया नहिये दें तो जाते हुए हम से मिलता जाइयो हम तुझे दो रुपया उधार दे देंगे, पीछे देखा जायगा?"

पहिले तो धोबी हिचकिचाया था पर प्रमदा का स हारा मिलने से डर जाता रहा एक तो छोटे लोग तिस पर दो रुपया उधार मिलने की आशा होगई अब वह क्यों ज़मीन पर पैर रखने लगा था। धोबी ने भीतर जाकर देखा कि सरला दालान पर बैठी है, धोबी ने कहा "कपड़ा तो धो लाये हैं पर आज कुछ खर्च न मिलेगा तो काम नहीं चल सकता।"

सरला ने कातर होकर कहा 'आज तुम जाओ वह दर्बार में जाते हैं, आज कुछ ज़रूर मिलेगा, कल आकर खर्च ले जाना"।

धोबी-"आज न मिलेगा तो हमारा काम न चलेगा"।

सरला—आज एक पैसा भी नहीं है, हमलोगों ने अभी तक पानी भी नहीं पिया। होता तो तुम से झूठ क्यों बोलते'।

सरला के हाथ में दो पीतल के कड़े थे, धोबी ने उसे

सोना समझकर कहा "जिसको खाने का ठिकाना नहीं उसके हाथ में सोने का कड़ा कैसे आया ?"।

धोबी की बात सुनकर सरला का मुंह और आंख लाल होगई पर मुसकिरा कर कहा "रामधन भगवान् करै तुम्हारी बात सच्ची हो, हाथ में फिर सोने का कड़ा हो जाय ! । सोना अब कहां धरा है । एक २ करके सब गहना तो बिक गया, यह तो पीतल का कड़ा है"। यह कहते २ सरला आँसू न रोक सकी अञ्चल से आँख पोछने लगी। धोबी ठंढी सास लेकर कपड़ा वहा रख के धीरे २ चला गया। जाने के समय प्रमदा के पास न गया।

धोबी के जातेही श्यामा "छोटी बहूजी क्या कर रही हो" कहती हुई आ पहुची।

सरला ने कहा—श्यामा। तुझे तनिक भी विचार नहीं है, जो गोपाल जाग जाय तो क्या हो ?"

श्यामा ने कहा—"क्यों ? आज दिन को क्यों सोया है?

सरला—"तेरी बुद्धि को रह २ के न जाने क्या होजाता है राम २ करते तो किसी तरह सोया है, जो जाग उठा तो खाने को क्या दिया जायगा ?"

श्यामा—"खाने को हमारे पास बहुत कुछ है" यह कह श्यामा ने पेड़ा और केला पका हुआ निकाल कर आगे रख दिया।

सरला ने पूछा "यह कहां से पाया ?" ।

श्यामा—"इससे तुम्हें क्या" ।

जब घर में कुछ न रहता तब श्यामा परोसियों के यहा कुछ काम काज करके गोपाल के लिये खाने की कोई वस्तु ले आती । इससे गोपाल को कभी भूखा न रहना पडता वरञ्च कभी २ सब के खाने भर को ले आती । जो सयोग से कहीं कुछ न मिलता तो अपने पूर्व सञ्चित धन में से कुछ व्यय करती और किसी को भूखा न रहने देती ।

सरला ने कहा—"श्यामा ! गोपाल को सच्ची मां तो तुम्हीं हो"। श्यामा ने हँस के कहा—"और तुम ? तुम क्या गोपाल की मौसी हो ?"

सरला की आँखें भर आईं मुस्किराकर बोली—"गोपाल पेट से तो हमारे निकला है पर बचाया उसको तुम्हीं ने है" । श्यामा का सरल हृदय द्रव हो गया आँखों मे आँसू भर आये, गोपाल को जगाकर खाने को दिया ।

विधुभूषण कपडा पहिर के जिमींदार की कचहरी में गया । जिन्होने विधुभूषण को सहायता देने कहा था वे खाना खाकर सो रहे थे । नौकरों से खबर करने कहा पर किसी ने बाबू को न जगाया । एक नौकर का नाम रामा था । उसे विधुभूषण ने सभों में अच्छा समझकर कहा "आज भई हमारे पास खाने को भी नहीं है । जो बाबू साहब से हमारी खबर कर दो तो हमें कुछ मिल जाय ।

रामा ने झिड़ककर कहा—"तुमने तो नाकों में दम कर दिया"। विधु ने कहा "भाई। आज हमारे पास खाने को नहीं है"।

रामा ने कहा—"तुम्हारे पास खाने को नहीं है तो हम क्या करें? ऐसे बहुत लोगों के पास खाने को नहीं रहता पर पैसा मिलतेही शराबखाने में जाते हैं"।

विधु ने क्रुद्ध होकर कहा "क्यों रे—तैंने हम में कौन सी बात शराबीपन की देखी?"!

रामा—"हम यह कुछ नहीं जानते। बस अब चुप रहो बहुत बको मत। सौ बेर गरज़ हो तो बैठे रहो, नहीं तो चले जाओ, आँख मत दिखलाना, कोई तुम्हारे बाप का नौकर नहीं है"।

रामा की बात सुनकर विधु को स्मरण हुआ कि अब वह समय दूर गया, आंखें भर आई। क्या करे चुपचाप एक कोने में बैठ गया। रामा इत्यादि सब नौकार सो रहे।

क्रम से सन्ध्या हुई। विधुभूषण का घर यहां से दूर था अँधेरी रात है यह सब सोचकर विधुभूषण घर जाने के लिये उठतेही घर के भीतर से रामा की पुकार हुई। बाबू साहब जागे, इससे विधुभूषण ठहर गये।

रामा सो गया था, पासही दूसरा नौकर जागता था, रामा कि न बोलने से कदाचित् बाबू दूसरे को पुकारें इस

डर के मारे उसने रामा को हिलाकर जगा दिया। रामा "आये सर्कार" कहता और आँख मलता हुआ भीतर चला; विधुभूषण ने कहा "रामा भाई। बाबू साहब से जरा हमारी भी खबर कर देना"। रामा ने विधु को देखकर कहा "तुम अभी तक बैठे हो?"

बाबू ने रामा से कहा "अरे आज सनीचर की भी कुछ खबर है? बाबू श्यामादास, मुंशी साधोसिंह, मीरसाहब इत्यादि सब लोग आवेंगे सब तैयारी कर रक्खी है न?"।

रामा ने मुंह बनाकर कहा "तैयारी काहे को, एक बोतल पोर्ट और एक बोतल शेरी जो था सो रक्खा है"।

बाबू—आय्यू फूल। शेरी एक बोतल कैसी? तीन बोतल न थी?"।

वह दोनों बोतलें तो रामा के पेट में गईं, अब उसका पता कहां?।

रामा—"इसी से हम यह सब बखेडा पास नहीं रखना चाहते। तब तो हजूर मानते नहीं, उस दिन पाच बोतल न खर्च हुआ था? आपको कुछ यादवाद तो रहती नहीं पीछे से हमारा सिर गढा जाता है"।

बाबू—उस दिन पा·· ··च बोतल उठीं?"

रामा—"नहीं तो क्या?"।

।— "इतने पर तो श्यामादास बाप के प्रायश्चित में सिर

मुड़ने के डर से बहुत कम पोते है ?' खिड़की से झाँ-
  कर पूछा "बैठकखाने में वह कौन खड़ा है ?" ।

रामा—"जी, एक ब्राह्मण है उसे आपने कुछ देने कहा था ?
  वही आया है कहता है आज खाने को नहीं है ।"

बाबू—उसे आज जाने कहो हमारा जी अच्छा नहीं है ।
  कल तीसरे पहर को आवे ।

विधुभूषण यह सब सुन रहा था, रामा के बिना कहे वहां से चल दिया ।

बाबू साहब ने आपही विधुभूषण को देने कहा था इसने विधुभूषण पक्की आशा करके गया था कि खाली न फिरेंगे, निराश फिरने से बड़ा दुःखी होगया, घर आकर सरला से सब वृत्तान्त कहा, सरला रोने लगी ।

प्रमदा को यह मालूम हो गया था विधु के यहां आज चूल्हा नहीं जला, इससे सांझ के पीछे बरामदे में खड़ी होकर पूछा "अरे श्यामा—श्यामा । बतलाओ तो आज तुम्हारे यहां क्या खाने को हुआ है ?" ।

श्यामा ने उत्तर दिया 'जो भगवान् ने दिया सो हुआ" ।

प्रमदा—"हमें तो कभी इन्हे हाथ भी नपूछा कि कुछ खाओ"

श्यामा—'हम क्या कहेंगे, भाग में होगा तो भगवान् आपही कहलादेंगे ।"

विधु ने पूछा—"क्या है श्यामा, किससे बात कर रही है ?
श्यामा—जी, 'बड़ी बहू पूछती हैं हमलोगों के यहां खाने को क्या हुआ ?; यह सुनतेही विधु आग बबूला हो गया। सरला से कहा "देखा—आचरण देखा ? ऐसा व्यवहार तो कोई चाण्डाल के साथ भी नहीं करता जाँय देखें भैया कहां है। उनसे कहैं, देखें वह सुनकर क्या कहते हैं।

सरला ने कहा—"नहीं नहीं कहीं जाने का कुछ काम नहीं है, उनका जो मन हो सो कहैं। वह सब बात सुननाही न चाहिये"।

घर में बातें होती सुनकर प्रमदा ने पूछा—"श्यामा! घर में होरा काहे का है क्या किसी को नेवता दिया है ?"
विधु०—(सरला से) "सुनो यह पाजीपने की बात सुना" बैठा था यह कहकर खड़ा हो गया।

सरला ने हाथ पकड़ कर कहा—"छिः—यह क्या कहते हो ? हजार हैं तो भी बड़ी हैं।"
विधु०—"वह काहे को बड़ी काहे को छोटी। जाते हैं भैय्या देखें क्या कहते ?" यह कहकर सरला का हाथ छोड़ा "भैय्या भैय्या" पुकारते हुए विधुभूषण शशिभूषण की तरफ़ चले। प्रमदा कृत्रिम डर से काँपती हुई दौड़, किवाड़ बन्द करके बोली "देखो! तुम्हारा भाई शराब पी के हमें मारने आता है।"

शशिभूषण ने विधुभूषण की आवाज़ सुन के पूछा—"कौन है ?" विधु ने कहा—"हम हैं"। आपको इस बात का विचार करना होगा कि भाभी के मुंह में जो आता है सो बकती हैं"।

प्रमदा—"देखो जो शराब न पिये होता तो ऐसा पागल की तरह क्यों बकता।"।

शशिभूषण ने झिड़क कर कहा—"यह सब पागलपने की बात हमारे यहां नहीं लगती। जाओ सो रहो, जो कुछ कहना हो सो कल आ के कहना"।

विधु०—"पागलपना कैसा ? हम पागल कि तुम ?"।

शशि०—"क्या हमें पागल कहता है ? निकल यहां से बहुत बोलैगा तो जो घर दिया है वह भी छीन लेंगे"।

विधु०—"घर दिया है। हूँ। घर मानो भिक्षा दिया है"।

शशि० मारे क्रोध के काँपने लगा कहा—"तू बकता ही आयगा ? कोई है इस पागल को थाने में ले जाओ।"

विधु०—"कोई क्या करैगा ? तुम्हीं आओ, ले चलो न।"

यह सुनतेही शशिभूषण झपट्टा दहिने २ किवाड़ खोल कर बाहर आये। मारे क्रोध के कपड़ा देह पर से खसका जाता था, प्रमदा जल्दी न बाहर आ कर विधुभूषण का हाथ पकड़ के तुरंत भीतर खींच ले गई, नहीं तो हाथा पाई होने में कुछ बाकी न था।

श्यामा जब विधु को घर मे लाई सरला ने घर का दर्वाजा बन्द कर दिया। विधु थोड़ी देर क्रोध में चुपचाप बैठा रहा, शेष में रोते २ कहा—"सुनती हो । अब इस घर में न रहना चाहिये अब हम यहां तीन रात तो रहेहींगे नहीं"।

सरला ने रोते २ कहा—"भाग में जो लिखा है सो भोगनाही पड़ेगा। जायँगे कहां ? घर में रहने से तो फिर भी मेल होने की आशा है। खैर अब जो होना होगा सो कल होगा इस समय तो रोना छोड़ो, आँख पोंछ डालो, व्यर्थ रोने से क्या होगा।"

विधुभूषण ने सरला से कहा—"हम सच कहते है तुम चाहे मानो या न मानो हमें अपनी कोई चिन्ता नहीं है। हमें जो कुछ चिन्ता है सो तुम्हारी और इस लडके की।। हाय। जो तुम हम अभागे के हाथ न पड़ी होतीं तो काहे को इतना कष्ट सहना पडता"।

यह सुन कर सरला का दुःख हजारगुण बढ़ गया। आँसू का तार बँध गया गला भर आया, बोलने की चेष्टा की पर बोला न गया, अपने अञ्चल से स्वामी का आँसू पोछने लगी।

विधुभूषण ने हाथ पकड कर कहा 'प्रिये। अब और :ख मत दो, तुम जो हमें इतना न चाहती हमारे दुःख

में इतनी दुखी न होतीं, और स्त्रियों के तरह हमसे व्यवहार करतीं तो हमें इतना दुःख न होता। हम यह बात इतने दिनों पर आज मुह से निकालते हैं तुमने जब २ गहना निकाल कर दिया है तब २ हमें ऐसा जान पड़ा है मानो हमारा एक २ अङ्ग निकला जाता है, पर क्या करें न बेंचने से भी काम नहीं चलता इससे लाचार हो कर बेचा । ईश्वर साक्षी कि उस गहने के रुपया का अन्न हमें विष के समान खाने में जान पड़ता है । पर क्या करें हमारे न खाने से तुम्हें और भी कष्ट होता, निश्चय मानो जो तुम हमें इतना न चाहतीं तो हमें इतना दुःख न होता अब तुम हमारी एक बात मानो कि कुछ दिन के लिये अपने मायके (माता के घर) जा कर रहो और श्यामा कहीं और अपनी जीविका खोज ले, वह बिचारी क्यों हम लोगों के साथ पिसै" ।

सरला ने रोते २ कहा—"हमारे नैहर जाने से जो तुम्हारा कष्ट कम हो जाता तो बाप का घर क्या नर्क में भी जो तुम जाने कहते तो मैं खुशी से चली जाती । पर तुम्हें इस दशा में छोड़कर मुझे स्वर्ग में भी सुख न मिलेगा जब यह याद आवेगी कि तुम भूखे होगे, तब अन्न कौने मुंह में धंसेगा मुझ इतने दुःख में भी तुम्हारे साथ स्वर्ग का सा सुख है * - अपना हमें कुछ दुख नहीं है, हां गोपाल

* "टूटटाट घर टपकत खटियो टूट ।
पिय के बाद उसिमवा सुख कै लूट ॥"

के लिये कभी २ नइहर जाने का जी चाहता है, गोपाल भूखा रह गया हो ऐसा अवसर तो अभी तक पड़ाही नहीं है, जब उसे खाने को न रहैगा तब देखा जायगा, पर श्यामा क्यों हमलोगों के साथ दुःख पावै उसको समझा देना चाहिये ।"

विधुभूषण ने श्यामा को पुकारा । श्यामा और दिन एक बेर पुकारने में तीन बेर उत्तर देती, पर आज बिना उत्तर दिये धीरे २ आ कर एक कोने में खड़ी हो गई । श्यामा की आँखे लाल और मुख गम्भीर था ।

विधुभूषण ने कहा—"श्यामा! तुम हमलोगों के साथ रहकर क्यों इतना कष्ट सहती हो! हमलोगो ने खूब सोच विचार कर लिया तुम्हें हमलोगो के साथ कष्ट पाने का कोई काम नहीं है। "गेहूँ के साथ घुन क्यों पिसे" महीना मिलना तो दूर रहा, पेट भर खाने को भी नहीं मिलता इससे तुम और कहीं अपना काम देखो फिर जो ईश्वर दिन फेरैगे तो तुम्हारा घरही है।" विधु का गला भर आया मुंह से बात न निकल सकी । सिर नीचा करके अश्रुपात करने लगे।

श्यामा ने रोते २ कहा—"मैंने क्या महीना मांगा है या मैं महीने का करार करके आई हूं मुझे रुपये का की[illegible]ाम है आपलोग हमें मारकर निकालेंगे तौभी हम गो[illegible]

को छोड़कर न जायँगे आपलोगों पर हम बोझ नहीं डालना चाहतीं हम आपके यहां न खायँगीं और चाहे जहां ले जाय आवेंगी पर गोपाल को छोड़कर न जायँगी"

विधु ने कहा—"श्यामा। रोओ मत, हमारी बात सुनो जरा विचार के देखो हमलोगों के साथ में रहने से उपवास करनाही पड़ेगा। माना कि तुम गोपाल को देखे बिना नहीं रह सकतीं पर तुम जहां जाओगी वहां भी लड़के वाले मिल जायँगे कुछ दिन रहनेही मे उनसे भी वैसाही स्नेह हो जायगा फिर और कहीं जाने का जी न करेगा।"

"लड़के वाले तो बहुत मिलेंगे सही पर अपने उसकी ऐसा कहा पावेंगी" कहकर श्यामा उच्चस्वर से रोने लगी।

विधु ने कहा—"श्यामा! रोओ मत, स्थिर हो—" श्यामा ने कहा "गोपाल के ऐसा हमें भी एक लड़का था उसका नाम भी गोपाल था। गोपाल को देख के हमको ऐसा जान पड़ता है जैसे यह वही गोपाल है। हम अपने गोपाल को छोड़ के कहीं न जायँगी।"

विधुभूषण ने सरला की ओर देखकर कहा—"इसका क्या उपाय है।" सरला सिर नीचा करके रोने लगी।

श्यामा ने कहा—"हमारी जो कुछ थोड़ी सी पूंजी है वह हमने गोपाल को देने का विचार किया था पर हमारी सलाह यह है जो तुम मानो तो (विधु से) कि तुम तो

किसी रास की मण्डली में नौकरी कर लो, हमारी समझ में तुम्हें नौकरी जरूर मिल जायगी, उतने दिन तक इस रुपये से यहां हमलोग अपना निर्वाह करे, जो तुम्हें साव-काश होय तो हमारा रुपया दे देना, देने पर भी वह गोपालही का होगा।

श्यामा की प्रेममय बातें सुनकर विधु और सरला का जी भर आया और श्यामा की बात माननीही पडी।

दूसरे दिन सवेरे श्यामा के रुपया में से दस रुपया राह खर्च लेके विधुभूषण घर से निकलकर कलकत्ते जाकर किसी मण्डली में नौकरी करना स्थिर करके चले। दोपहर को एक आम के पेड के नीचे विश्राम करने के लिये बैठ कर सोचने लगे, गाना बजाना बहुत अच्छी विद्या है पर रासमण्डली में नौकरी करके उसकी रोटी खाना कैसा नीच कर्म है, विधुभूषण सोचने लगे कि और किसी उपाय से जीविकानिर्वाह हो सकती है या नहीं? इसी समय एक और पथिक वहां आकर बैठ गया।

नवम परिच्छेद ।

मित्रलाभ ।

पूर्व अध्याय में जिस पथिक का वर्णन किया गया है उसका शरीर लम्बा और दुबला था। रङ्ग काला, ३२ या

२२ वर्ष की अवस्था थी। बायें हाथ में हुक्के का नारियल चिलम सहित, बायें कन्धे पर एक मैले कपड़े की खोली में एक सारङ्गी लटकती हुई, दहिने हाथ में बांस की छडी पैर में जूता नहीं और एक मैली धोती पहिरे था। कमर से गले तक एक सूत भी नहीं, सिर पर एक मैली चादर पगड़ी की तरह लपेटे और कमर में एक छोटी सी गठरी बँधी थी। विधुभूषण के पास छडी हुक्का रख के बैठा हुआ पथिक ऐसा शोभायमान था मानो इस संसार के मूर्खों के नाम लिखने को रोशनाई की बोतल रक्खी हो। विधुभूषण एकाग्रचित्त होके अपनी अवस्था सोच रहा था। इससे पथिक को बैठते हुए नहीं देखा। यह पथिक जब हुक्का पीने लगा तब विधु उसकी गडगडाहट सुन के चौंक उठा। विधु को ऐसा जान पडा जैसे पेड से कोई भूत अभी उतर के आ बैठा हो। विधु ने पूछा "तुम कौन हो?"

पथिक ने विधुभूषण को डरा हुआ समझ के कहा— "डरते क्या हो? हम आदमी हैं भूत नहीं हैं। रामा की मां सच कहती थी कि रात को तो नदी पार हो और दिन को कौआ की बोली से डर जाय। अकेले परदेश करने निकले और आदमी देख के डरते हो?"

विधुभूषण ने हँस के कहा—"वाह तो ठीक पर हम कब डरे थे यह तो बतलाओ? हमने तो यही पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है?"

पथिक ने उत्तर दिया—"हमारा नाम रामचन्द्र है। सीतापुर में हमारा घर है, बाप का नाम सीताराम था। बाबू दुर्गाप्रसाद की ज़िमींदारी में रहते हैं ।"

रामचन्द्र को बहुत बोलने का रोग था विधु ने नाम पूछा पर उसने नाम गाँव बाप का नाम ज़िमींदार का नाम इत्यादि सब कह दिया। विधु ने उसका स्वभाव जान कर और बहकाने के लिये पूछा बाबू दुर्गाप्रसाद कौन है ?'

रामचन्द्र बड़े आश्चर्य से हँसकर बोला "बाबू दुर्गाप्रसाद कौन हैं ?" उसको विश्वास था कि बाबू दुर्गाप्रसाद ऐसे अमीर को संसार में ऐसा कौन है जो न जानता हो।"

विधुभूषण—हां—बाबू दुर्गाप्रसाद कौन हैं ? हम तो उन्हें नहीं जानते।"

रामचन्द्र—"बाबू दुर्गाप्रसाद के बड़े लोग राजा थे । अब भी बड़े अमीर हैं। उनके बराबर कोई अमीर नहीं है। साहब भी उन्हें ऐसा मानता है कि मजिस्ट्रेट साहेब बनाय दिया है। उनकी बराबर भला कोई है ?"

विधुभूषण—"होगी। कहके चुप हो रहा। रामचन्द्र थोड़ी देर हुक्का पी के विधुभूषण को देने लगा, पूछा "तुम कौन आश्रम हो ?"

विधुभूषण ने हँस के चिलम लेके कहा "हम ब्राह्मण हैं"। थोड़ी देर हुक्का पी के पूछा "तुम कहां जाते हो ?"

रामचन्द्र ने लम्बी साँस लेके कहा "पेट के वास्ते कहां जाना हो। भाई। अपने दुःख की कहानी क्या कहैं? हम तीन भाई हैं। हमसे एक बड़ा है एक छोटा। वह दोनों कुछ करतेही नहीं। हम जो लावें उसी से सब काम चलाते हैं अकेले आदमी कहा तक खिलावें फिर जात बिरादरी का भी नित्त एक खर्च लगाही रहता है हम करैं सो क्या करैं? इससे अब परदेस जाते हैं। कमायेंगे खायेंगे, देखें परदेस में भी रुपया है कि नहीं"।

रामचन्द्र की बात सुन के विधुभूषण को वेतरह हँसी आई। "मागैं भीख पूछैं गाँव को जमा।" पर रामचन्द्र दुःखी हो रहा है हँसने से और भी दुःखी होगा इससे हँसी रोक के पूछा—'परदेस का रुपया तो देखना चाहते हो पर देखने पाओगे कैसे?

रामचन्द्र सारङ्गी कन्धे से उतार के दिखलाकर बोला "गुन। गुन नहीं है तो वैसेही रहते हैं? उस्तादजी ने खाने कमाने लायक बहुत गुन सिखलाया है, पर हम जब बड़े आदमी हों तो बात। नहीं तो खाने का क्या? पेट तो कुत्ता भी भर लेता है'।

विधुभूषण ने कहा—"अच्छा एक बेर बजाओ तो सही

रामचन्द्र झटपट सारङ्गी ले के दो चार बेर कान उमेठ सुमेठ बजाने लगा। फिर ठेका दिखाने लगा कि विधु

भूषण ने समझा कि मृगी रोग है। आंख नाचने लगी। सब शरीर कांपने लगा। विधु ने बड़े कष्ट से हँसी रोक के पूछा—"तुम्हे गाना भी आता है।"

रामचन्द्र ने हाँ! करके सारङ्गी के सुर में सुर मिला के गाना आरम्भ किया। "सुनो भरथ दे कान सुजस हनु मानजी को। गिरसुमेर पर्वत के ऊपर सैन करैं दोउ भाई। घेरे लंगूर वीर बैठे फहराई। चौको कठिन कपीस को जहँ पौनों को गम नाहीं"।

गाना तो एक ओर रहा। रामचन्द्र का हावभावही देख के विधुभूषण हँसी न रोक सका। हँसते २ लोट गया। रामचन्द्र ने बड़े क्रुद्ध हो के गाना बजाना बन्द कर दिया और कहा। सच कहा है कि "भैंस के आगे बीन बजावे भैंस बैठी पगुरावे।" तुम बिचारे यह सब क्या जानो, इस वखत जो कहीं उस्तादजी होते या कालीप्रसाद होते तो कैसे खुश होते। लड़कों की तरह हँस दिया बस हो गया। गोविन्ददास गोसांई हमें दस रुपया महीना देने कहते थे पर हमने नौकरी नहीं किया बड़ी २ खुशामद किया।

रामचन्द्र पहिले सारङ्गी अच्छी बजाता था। गोविन्ददास गोसांई ने समझा था कि कुछ दिन सीखेगा तो रामचन्द्र पक्का सारङ्गिया हो जायगा। इससे पांच रुपये महीने

पर नौकर रखना चाहा था। रामचन्द्र ने समझा कि तब तो हम तानसेन के बराबर हो गये। सब को तृण समझने लगा। जो कुछ सीखा था उसी में अपनी टीका टिपनी लगाने औ सिर हिलाने लगा। रुपये की लालच बढ़ी और कई कारणों से थोड़ेही दिन में सब बिगाड़ के रख दिया। कान फोड़ने लगा। जो गोविन्दजी गोसाईं उसे रखना चाहते थे वे अब उसकी बात भी न पूछते। रामचन्द्र तभी से पढ़ना लिखना तुच्छ समझने लगा। वह कहता, 'लिखना क्या? कलम से अच्चर निकालना और तार से अच्चर निकालना क्या बराबर हो सकता है?' लिखना तो सभी सीख सकता है पर सारङ्गी बजाना तो जो सरस्वतीजी की कृपा हो तभी आ सकता है। तभी से उसने अपना घर का काम छोड़ दिया। पहिले सन्ध्या पीछे थोड़ी देर बजाता अब रात दिन सिवाय सारङ्गी के हाथ में और कुछ दिखलाईही न पड़ता। इसका बड़ा भाई लोगों के घर गाय दूहता, गाय पीछे ।) महीना पाता। जिस दिन महीने का पैसा लाके रखता उसी दिन रामचन्द्र चोरी करके ले जाता और सारङ्गी मोल लेता। और कोई उपाय न देख के बड़े भाई ने इसे घर से निकाल दिया। चलने के समय रामचन्द्र कहता गया कि तुमलोगों ने हमें मूली गाजर समझा पर यह न जाना कि हम कि-

तने बड़े आदमी हैं इसी का हमें बड़ा दुख है। अच्छा—हम तो अब जाते हैं। पर याद रखना कि जब हम खूब कमाधमा के आवेंगे तो तुमलोगों को अपनी ड्योढ़ी के भीतर न घुसने देंगे चाहे कितना भी रोओ गाओ।

विधुभूषण ने रामचन्द्र को शान्त करने के लिये पूछा "तुम्हारा व्याह हुआ है ? ।"

रामचन्द्र अहङ्कार में कोई ऐसा वैसा नहीं था। हंस के बोला कि 'नहीं कहीं ठहरा न दो।'

विधु०—"बिना खोले कैसे हो सकता है ? अब तुम जाते कहां हो ?"।

रामचन्द्र—"कलकता जाते हैं चार पांच बरस हुआ तब गोविन्दजी हमें दस रुपया महीना देने कहते थे तब से अब कितना सीखा है यहां तक कि उस्तादजी को भी हमारे सामने लाज आ जाती है। अब बीस रुपया नहीं तो पन्द्रह तो मिलेहीगा। पाच रुपया खायँगे दस रुपया बटोरेंगे। बरस दिन में व्याह लायक ढेर रुपया हो जायगा।"

विधुभूषण रामचन्द्र को प्रफुल्लता देख के पहिले तो बड़ा प्रसन्न हुआ। सोचा कि मूर्ख को सदाही सुख रहता है। समझदार की मौत है। इसकी अवस्था भी हमारीही सी है भेद यही है कि हम वास्तव में अच्छा बजा सकते

है और यह महा मूर्ख है, तौभी आशा रखता है कि पन्द्रह रुपये की नौकरी सहज में मिल जायगी। हाय! हमारी अवस्था भी इसकी सी चिन्ताशून्य क्यों न हुई? फिर यह सोच के दुःखी हुआ कि रामचन्द्र कभी घर के बाहर नहीं निकला है, नैराश्य क्या है यह स्वप्न में भी नहीं जानता। जब जानेगा कि नौकरी नहीं मिलती तब इसकी क्या दशा होगी? थोड़ी देर सोच विचार के विधुभूषण ने पूछा—"तुम और भी कभी परदेश गये थे?"।

रामचन्द्र ने कहा—"नहीं" विधुभूषण ने पूछा—"तो तुम अकेले कैसे कलकत्ता पहुँच सकोगे, रास्ता कैसे मालूम होगा"।

रामचन्द्र ने कहा—"पूछते॰२ चले जायेंगे।"

विधुभूषण ने सोचा कि हम अकेले हैं इसको भी साथ लें तो अच्छी बात है पर खर्च की तो हमीं को कमी है जो इसे साथ लेंगे तो पहुंचना भी कठिन हो जायगा। थोड़ी देर सोच विचार के पूछा—"क्यो रामचन्द्र कुछ खर्च-वर्च लेके कलकत्ते चले हो कि खाली हाथ?"

रामचन्द्र—हमारा खर्चवर्च यह सारङ्गी है, कुछ सब कोई तो तुम्हारी तरह गाना बजाना सुन के हँसताही नहीं रास्ते में एक गुणी भी मिल जायगा तो दस दिन का खर्च निकल आवैगा, जिस "सुनी भरथ टे कान" का

भजन सुन के - वहां गाय रहती है ।"

दमी प्रेम ।ाय को पेड़ के नीचे बाँध न दो ।"

विधु० - आयें जगतसेठ के नाती । गाय पेड़ के नीचे बाँध न दो । और इन्हें घर में रक्खो । ई बड़े ब्राह्मण के दुम आये, परदेस निकलना जानते है और पेड़ के नीचे नहीं सो सकते ।"

रामचन्द्र बड़ा अभिमानी था इसकी बातों से बड़ा क्रुद्ध हुआ । विधु से कहा "चलो हमलोग गाव में चल के कहीं पड रहे यहा न रहैंगे" । बिधु चलते २ थक गया था कहा "तुम जहां चाहो जाओ हम तो यहीं रहैंगे ।"

रामचन्द्र और भी क्रुद्ध हुआ । "रहो तुम चाहे जहां रहो हम से अब भेंट न होगी, हम बिदा होते है" यह कहकर वहां से चला । विधु ने घर में डेरा किया, रामचन्द्र थोड़ी दूर जाके ठहर गया, उसको विश्वास था कि क्रोध करके चले जाने से विधुभूषण अवश्य पुकारैगा । विधु की इच्छा भी पुकारने की थी पर वह रामचन्द्र का स्वभाव जानता था इससे निश्चिन्त हो बैठा था कि रामचन्द्र आप ही फिर आवेगा । हुआ भी वही, रामचन्द्र थोड़ी देर खड़ा रहकर सोचने लगा, जो न पुकारे तो क्या कहकर चलें । अँधेरी रात थी अकेले उस रास्ते में चलना असम्भव था, गांव के लोग तो बिना दीया चलही न सकते थे । रामचन्द्र

ये दोनो कोट पतलून बूटधारी काला साहब लोग बने थे। आहार व्यवहार में कुछ विशेष भेद पडा था किन्तु बोलचाल में बहुत भेद पड़ गया था, दो शब्द यदि हिन्दी के कहते तो बिना चार शद अंग्रेजी मिलाये कभी न रहते ।

दुकानदार के आतेही, जो महाशय हवा से हिलती हुई दीपक के टेम के तरह एकबेर इधर एकबेर उधर देख रहे थे, एकाग्र होकर अपनी पुस्तक देखने लगे। दुकानदार ने इनलोगों को देखकर अपनी स्त्री से पूछा "ये लोग कौन हैं?" उसने उत्तर दिया "ये लोग ब्राह्मण हैं लखनऊ के कालिजघर में पढते हैं, होरा मत मचाओ वे लोग सबक याद कर रहे हैं।"

इतने में उनमें से एक बाहर पेशाब करने गया। खड़ा होकर मूत्र विसर्जन करने लगा। यह देखकर विस्मित और क्रुद्ध होकर दुकानदार ने पूछा "इन सबों को यहा किसने टिकाया है यह सब ब्राह्मण हैं कौन कहता है? आंख से सूझता नहीं यह साहब क्रस्तान हैं इन सभों को भी कोई जातपॉत है।" उन दोनों से कहा "उठो २ तुम लोग यहा से चले जाओ तुम लोग चाहे ब्राह्मण हो चाहे कोई हो हमारे यहा रसोई करने को जगह नहीं है हम हिन्दू हैं यहा क्रस्तान का कौन काम है, उठो।"

दुकानदार की बात सुनकर दोनों चमक उठे. आँख उठा के देखा तो सामने ६ हाथ का लम्बा मोटा ताज़ा साक्षात् देव सा एक मनुष्य खड़ा क्रोध में भरा उन दोनों को निकल जाने के लिये कह रहा है अँधेरी रात अन-जान स्थान कहां जाए क्या करें।

दोनों दीनभाव से बोले 'हमलोग क्रस्तान हैं' यह तुम से किसीने कहा हम तो हिन्दू ब्राह्मण हैं कालेज में पढ़नेसे ऐसा कपड़ा पहिरना पड़ता है देखो न हम को जनेऊ है।

"तुम्हें चाहे जनेऊ होय चाहे चुंटो होय हमारे यहां तुम्हारा रहना न होगा, चलो यहां से उठो।" दुकानदार ने क्रुद्ध होकर कहा। उनदोनों ने पहिले तो बन्दरघुड़की दिखलाई पर जब दुकान्दार ने लाठी दिखलाई तब सब बहादुरी घुस गई उठतेही बना। जो महाशय उनको लो की ओर देखते थे उन्हें ऐसा ज्ञान पड़ा मानो दुकानदार उन्हीं पर विशेष क्रुद्ध है; जैसे उसकी ओर देखकर कुछ कह रहा है उसकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस न हुआ। दोनों को उठने में देर देखकर उसने—

पहिले उसी का हाथ पकड़ कर खींच के कहा— 'तुमलोग सुनते हो कि नहीं यहां से अभी निकल जाओ नहीं तो लाठी से निकाले जाओगे।" यह कहकर दुका-नदार ने एक कोने में रखी भारी लाठी उनको दिखलाई।

दोनों ब्राह्मण बिचारे दुःखी होकर धीरे २ घर के बाहर निकले।

घर परिष्कार होने पर सहधर्मिणी से दूकानदार ने पूछा "ऐसी धूम मची है जैसे कोई तेरे घर का आया हो। ये लोग कौन थे ? तेरे भाई थे क्या ? घर का कामकाज छोड़कर बिचारे इस ब्राह्मण को छोड़कर उनकी टहल में क्या लगी थी ?"।

दूकानदारिन चुप रही। उसे जान पड़ा कि उससे यह बात कहती समय भी दूकानदार ने लाठी की ओर देखा था।

यह सब तै होने पर दूकानदार तम्बाखू पीने लगा। विधु रसोई का उद्योग करने लगा और रामचन्द्र सिर हिला २ गुनगुना कर—"सुनो भरथ दे कान सुजस हनुमानजी को" गाने लगा। दोनों ब्राह्मण धीरे २ स्थानान्तर चले गये।

दोनों ब्राह्मणों के चले जाने पर रामचन्द्र को भी घर में रहने की जगह हो गई। विधु ने दाल बाटी करके खाई रामचन्द्र ने चबैना लेकर चबाया। यद्यपि दोनोंही ब्राह्मण थे परन्तु यहां तो "आठ कनौजिया नौचूल्हा" दोनों खा पीकर सोये।

विधुभूषण कभी घर के बाहर न निकला था। नये

स्थान और घर की चिन्ता से नींद नहीं आई । रामचन्द्र लेटतेही नाक बजाने लगा। खुली हुई दूकान, सामने बड़े बड़े पेड़, अँधेरी रात चारोंओर सूनसान पेड़ का पत्ता तनिक भी खड़खड़ाता तो विधुभूषण को बहुत डर जान पड़ता। जुगुनू बीच २ में चमक उठते चमगीदड़ें उड़ने लगीं। विधुभूषण को कुछ भय का सञ्चार हुआ। रामचन्द्र २ कहके पुकारने पर रामचन्द्र झुंझलाकर बोला "तुमने तो दिक कर डाला।"

विधुभूषण ने कहा "रामचन्द्र। उठो एक बेर तम्बाखू पिओ, ऐसा घोड़ा बेंचकर सोते हो, परदेस में बहुत नहीं सोना चहिये" सुना नहीं—'बआवे ज़र लिखा है बूफ्ती ने। कि साने से मुसाफ़िर को खतर है"—

रामचन्द्र ने कहा "परदेस में सोने से क्या हर्ज है हमारे पास रक्खाही क्या है जो चोर चुरा लेंगे।"

विधुभूषण ने कहा "नहीं २ हमारा मतलब यह नहीं था, हम भी परदेस निकले हैं तुमको तो एक ऐसा गुण है कि सहज में चार रुपया कमा सकते हो पर हम क्या करेंगे। हमें जो तुम सारङ्गी बजाना सिखा दो तो हम जन्म भर तुम्हारा गुन गावेंगे।"

रामचन्द्र गाने बजाने के नाम से पानी हो जाता। अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला "हां हां जरूर सिखा देंगे।

इसमें कौन सी बड़ी बात है क्या आजही से सीखोगे ।"

"शुभस्य शीघ्रम्" विधुभूषण ने कहा "जो सिखलाना ही है तो आज क्या कल क्या अभी सिखलाओ न ।"

रामचन्द्र ने सारङ्गी खोल दो चार कनेठी देकर कहा "पहिले हम जैसे गाते और बजाते है तुम उसको जी लगा के सुनो फिर वैसेही बजाना । हाथ पर खूब ध्यान रखना" यह कहकर रामचन्द्र ने सुनो भरत टे कान आरम्भ किया विधुभूषण सोने की चेष्टा करने लगा ।

एकादश परिच्छेद ।

हेम और स्वर्णलता ।

फैजाबाद में प्रेमचन्द्र नामक एक धनाढ्य ब्राह्मण थे । इनके पिता के सम्पत्ति बहुत काम थी । सन् १८५७ के बलवे में ये कमसरियट में काम करते थे, इसी काम में इनकी श्रीवृद्धि हुई, नये २ बड़े आदमी होने से प्रायः लोग कञ्जूस होते है किन्तु प्रेमचन्द्र में यह दोष नहीं था । इनका हाथ अच्छे कामों में बड़ा उदार था देवसेवा ब्राह्मणसेवा और अतिथिसेवा में इनका द्रव्य बहुत व्यय होता था । सभी त्यौहार बड़ी धूमधाम से होते । रामनौमी, रामविवाह इत्यादि उत्सवो में बड़ी तैयारी होती । संक्षेप यह कि ये पुराने फैशन के पूरे धार्मिक थे, द्रव्य उपार्जन के समय कर्त्तव्या-

कर्त्तव्य न विचारते। यह रुपया लेना उचित नहीं है इस रुपये के लेने में क्षति नहीं है यह चिन्ता न करते रुपया मिलनेही से ले लेते और विश्वास था कि यह द्रव्य ब्राह्मण-भोजन और देवसेवों में लगानेही से सार्थक होगा। अपनी पत्नी के परलोकवास होने पर काम छोड़कर घरही में रहने लगे। इनके एक लड़का था एक लड़की, लड़के का नाम हेमचन्द्र लड़की का स्वर्णलता। लड़कों से उन्हें जैसा स्नेह था वह कम लोगों में दिखलाई पड़ता है।

जो अयोध्यावासी परदेश में रहते हैं वे श्रीरामनौमी पर प्रायः घर लौट आते हैं, हेमचन्द्र पढने के लिये लखनऊ में रहता था। इस अवसर पर वह भी घर आया था। मां नहीं है इससे किसी बात में कुछ त्रुटि होने से हेम का मन दुःखी न हो इसलिये प्रेम दोनों बेला आहार के समय हेम के पास बैठे रहते, प्रेमचन्द की मा अब तक जीती थी, उससे कहा "तुम्हारे जैसे इस लड़के है वैसाही हेम भी है, उसे किसी बात का कष्ट न हो, जब जो चाहे सो देना।"

एक दिन स्वर्णलता को न देखकर प्रेमचन्द ने मा से पूछा "मां आज स्वर्ण कहां है दिखलाई नहीं पड़ती।"

स्वर्ण पासवाले घर में थी, पिता के मुंह से अपना नाम सुनतेही दौड़कर गोद में आ बैठी, कहा "बाबा मैं बीच के घर में थी।"

प्रेमचन्द । आओ बेटा आओ, हमारी सोने की स्वर्ण यह हाथ में रोशनाई क्यों पोत रक्खी है बेटी ? ।

स्वर्ण — हम भैया से लिखना सीखती हैं, भैया हमें बतलाते थे ।”

प्रेमचन्द—“तुम लिखना सीखती हो ? तुम लिख पढ़ के क्या करोगी ?” ।

हेमचन्द्र भी इस समय वहां आ गया उसने कहा “क्यों बाबा पढ़ने में क्या बुराई है अब तो देखो कितनी लड़किया पढ़ती लिखती है सब जगह स्कूल बन गये है जिनमें लड़कियांही पढ़ती है, देखो बङ्गालिनें कैसी पढ़ २ कर प्रसिद्ध हुई हैं ।”

प्रेमचन्द्र ने कहा “खैर यह सब हम नहीं जानते— तुमलोग जो चाहो करो, तुमलोगों की बुद्धि के आगे हम लोगों की पुरानी बुद्धि किस काम की, पर तुम यहा के दिन रहोगी ? तुम्हारे जाने पर कौन सिखलावैगा ।”

हेम०—“स्वर्ण तब तक आपही पढ़ सकैगी यही दो तीन दिन में इसने सारी बारहखडी सीख ली है, हमारे जाने तक तो यह बहुत कुछ सीख लेगी बाबा कुछ यह कम्बख्त उर्दू थोड़ेही है कि जन्म भर पढते २ आदमी मर जाय शुद्ध पढ़ाही न जाय, यह तो हमलोगों की सकलगुणआगरी नागरी है कि पन्द्रह दिन में मजे में आ सकती है ।”

प्रेमचन्द्र—"हां यह तो ठीक है अब तो हमारी लक्ष्मी सरस्वती भी हो जायगी (स्वर्ण से) क्यों बेटी तुम लक्ष्मी देवी होगी कि सरस्वती ?"

स्वर्ण—"बाबा हम दोनों होंगे।"

प्रेमचन्द्र थोड़ी देर तक स्नेहभरी चितवन से एकटक स्वर्ण का मुह देखता रहा, आँखों से दो चार प्रेमाश्रु गिरे आँख पोंछकर स्वर्ण का मुख चूमकर गोद में से उतार कर कहा 'अच्छा जाओ राजा भैया से लिखना पढ़ना सीखो।"

हेम स्वर्ण का हाथ पकड़ कर जिस घर में सिखलाता था उसी में ले गया, प्रेमचन्द्र बाहर आये।

रामनौमी का उत्सव बड़ी धूम धाम से हुआ, प्रेमचन्द्र के यहां ऐसी भीड़भाड़ रही मानो विवाह हो, किन्तु प्रेमचन्द हेम और स्वर्णलता को एक क्षण भी न भूल सकता। स्कूल की छुट्टी पूरी होने पर हेम फिर लखनऊ गये, स्वर्ण यथार्थ में थोड़ेही दिनों में बहुत सा पढ़ गई, हेम जाती समय कह गया—"स्वर्ण हम लखनऊ जाकर तुम्हारे लिये "वनिताबुद्धिप्रकाशिनी" भेज देंगे, उसे जी लगाकर पढ़ना और जो तुम अपने हाथ से चिट्ठी लिखोगी तो तुम्हारे लिये हम बड़ी बढ़िया कामदानी की धोती अगली छुट्टी में लेते आवेंगे।"

स्वर्ण ने हँसकर कहा— 'अच्छा तो देखो भूलमत जाना।'

हेम "नहीं —न भूलेगी ।"

द्वादश परिच्छेद ।

प्रमदा की गृहस्थी ।

प्रमदा विधुभूषण को अलग करके दो चार दिन तो शान्तभाव से रही पर "कीला होय न ऊजरो सौ मन साबुन लाय"। मूरख को समझाइये ज्ञान गांठ को जाय" ॥ भला गो॰ तुलसीदासजी की बात कभी झूठ हो सकी है? प्रमदा का स्वभाव कभी बदल सक्ता है ? अब प्रमदा से पंडाइन जी से लड़ाई प्रारम्भ हुई, पंडाइन की बात २ में दोष निकालने लगी, पंडाइनजी अन्न घी नोन तेल चुरा लेती है। पंडाइनजी तो काली हैं—पंडाइनजी तो बड़ी गन्दी है। प्रमदा क्या यह सब बात पंडाइनजी के मुंह पर कहती? नहीं—वह जानती थी, कि मुंह पर कहनेही से पंडाइन हँाड़ी बरतन पटक कर चली जायँगी। यह सब बात अ-रोसी परोसियों से कहती और तुरन्तही सब खबर पंडा-इनजी तक पहुचती। पंडाइन ने एक दिन तो मुंह फुलाया दूसरे दिन दो चार बातों में असंतोष प्रकाश किया तीसरे दिन सन्मुख युद्ध का घोषणापत्र प्रकाशित किया। क्यों न करेंगी? वह तो कुछ सरला की तरह पराधीना नहीं थी

दूसरे दिन तीसरे पहर को बड़ा युद्ध प्रारम्भ हुआ, प्रमदा कुछ सहज में चुप होनेवाली नहीं और न पंडाइन जो हो कि एक दूसरे से परास्त हों।

दोनोंही कलहविद्या विशारद थीं। पंडाइन बड़ी देर तक लड़ाई के पीछे दोनों हाथ प्रमदा के मुंह के पास ले-जाकर बोलीं "क्या हम तेरी लौंडी है या रसोइयादारिन! कि जो मुंह में आता है बकती है? ले तैं अपना घर दुआर! हम जाती है। तेरा मन हो अपना मूंह फूंक के खा, तेरा मन हो भूखी मर। हमारी बलाय से—"यह कहकर पंडा-इनजी ने शशिभूषण का घर छोड़ दिया। प्रमदा कभी ब-राबर की योद्धा से लड़ी न थी, इससे परास्त भी नहीं हुई थी। आज पहिलेही पहल सन्मुख युद्ध हारी।

पंडाइन के चले जाने पर प्रमदा अकेले में बैठ कर बहुत देर तक रोई, फिर आंख पोछकर बाहर आई, आज की लड़ाई में अभिमान न चलेगा इससे हाथ से घर का काम काज करने लगी।

शशिभूषण अपने समय पर घर आया। सन्ध्या वन्दन करके पूछा, "पंडाइनजी कहा हैं?"

प्रमदा ने कहा —"पंडाइन को निकाल दिया, पंडा-इन जो अपने मन से चली गई है यह कहने का साहस न हुआ।

शशिभूषण ने पूछा—"पंडाइनजी ने क्या किया था?"

प्रमदा के मन में जो २ आया सो कहा—"विधुभूषण को अलग करने के समय तो पंड़ाइन जी बहुत अच्छी आदमी थीं, पर दिन दस एक भी न बीते थे कि पंडाइन जी ऐसी बुरी हो गईं, सुन कर शशीभूषण ने विरक्त हो कर कहा 'तुम जब जिसको चाहती हो एक दम से स्वर्ग में चढ़ा देती हो, और जब चाहती हो नरक में गिरा देती हो। तुम्हारा अन्त पाना बड़ा कठिन है। अब देखते हैं कि बिना खाये मरना होगा। तुम तो बीमारही हो कुछ कर ही न सकोगी, और हम से हो नहीं सक्ता, अब कौन उपाय करें?"

प्रमदा ने कहा—"इसको तुम्हें कौनसी फिकिर है तुम्हें तो बख़ पर खाने को मिलना चाहिये न कि और कुछ है?"

शशिभूषण—"हमें अपनी फिक्र नहीं है लड़कों की फ़िक्र है, ऐसा न हो कि घर में अन्न रहते लड़कों को भूखं मरना पड़े।„

प्रमदा ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया 'दूसरे से कहीं काम चला है? कल मा को बुला भेजेंगी वह अपना सब कर लेंगी। हमें कष्ट पाती सुन कर जरूर चली आवेगी तब तुमें काहे को फिकिर रहेगी, प्रमदा की बात सुनकर शशि-

भूषण थोडी देर तक जड़वत होकर चुप रह गये। अनायास मुह से निकल आया 'हा। क्यों हमने विधु को अलग कर दिया, क्योंकि शशिभूषण ने पहिले से सोच रखा था कि प्रमदा की मा का लाना कुछ सहज बात नहीं है। आज सवेरे प्रमदा की मा आवेगी, संध्या को भाई आकर उपस्थित होगे। क्योंकि मा घर न रहैंगी तो उन्हें कौन रोटी-करके खिलावेगा। दूसरे दिन सूर्योदय के पहिलेही प्रमदा, की मौसी आ पहुचेगी, क्योंकि उन्हें अकेले घर में रहने से चिढ़ है। यह सब चिन्ता उदय होतेही शशिभूषण के मुंह से निकल आया "हा। हमने क्यों विधु को अलग करदिया"

प्रमदा कुछ रुष्ट होकर बोली "क्यों अलगकर दिया यह तुम्ही जानो, न हमने अलग किया न कुछ जानें।"

शशिभूषण ने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुपचाप मनही मन विचार करने लगे।

प्रमदा शशिभूषण को चिन्तामग्न देख कर कहने लगी विधु को क्यों अलग कर दिया यह बात तो तुम्ही जानो। इसमें हमारा क्या दोष है? हमने तो तभी कह दिया था कि हमें नैहर पहुचा दो और अब भी कहती हैं—चलो हमें अभी मा के पास पहुचा दो। तुम लोग फिर एक में हो जाओ। कितने लोग ऐसा भी तो करते है। कुछ दफा देर अलग होने से ऐसा थोड़ेही है कि फिर जन्म भर एक न होंय।"

प्रमदा की बात सुनकर शशिभूषण को चैतन्य हुआ। समझा कि हमसे अपराध बना 'हमने तो और कुछ कहा नहीं केवल—शशिभूषण पूरी बात भी न कहने पाया था कि प्रमदा कर्कश स्वर से बोली "केवल क्या ? हम तुम्हारी यह सब चतुराई की बात नहीं समझ सक्तीं, जो कुछ कहना होय एकबेर साफ़ कह डालो, हम तो तुम्हरे ही भले के लिये प्राण देती है नहीं तो हमै क्या ? यहा रहैगी तो भी तुम हमें खिलाये विना न खाओगे और वहा जायगी तो भी वे लोग हमें भूखी छोड आप खा न लेंगी।"

प्रमदा बाप के घर की बात भूल गई थी, पर शशिभूषण को स्मरण थी, परन्तु कुछ कहा नहीं, थोडी देर तक दोनों चुप रहे, शशिभूषण ने"पूछा विपिन कहा गया ? कामिनी कहा है ?"

प्रमदा ने कहा—"विपिन मामा के यहा गया है और कामिनी सोई है।"

शशि०—"क्यों ? सोई क्यो है ? क्या रात को कुछ खायगी नहीं ?,, ।

मदा—"धरा क्या है जो खायगी और करवैया कौन बैठा है ?,,

शशि०—"करवैया कोई नहीं है तो हम तो हैं न, सब सामिग्री तो प्रस्तुत है न ?"

प्रमदा –"और सामग्री क्या सवेरे की सब धरीही है, पूरी ताजो करना है।" प्रमदा ने थोड़ी देर पीछे कहा— "आज हमारा जी अच्छा नही है पीडा कुछ विशेष है यह कहकर सो गई, शशिभूषण रसोइयादारी के काम में लगे।"

रसोंई हो जाने पर बहुत कहने सुनने पर प्रमदा ने उठकर ब्यालू किया। शरीर की अस्वस्थता से चाहे कि कुछ कम खाया होय सो नही, नित्य से दो ग्रास विशेषही भोजन हुआ। शशिभूषण ने मन में कहा "इतने पर भी जो प्रसन्न न होय तो कोई क्या करे" थोडी देर पीछे शशि-भूषण ने कहा 'विपिन से कह देना था कि तुम्हारी मा को लिवाये आता।"

प्रमदा नीचा सिर करके चुप हो गई कुछ उत्तर न दे सकी क्योंकि उसने मां को बुलाने के लिये तो भेजाही था।

प्रमदा को निरुत्तर देख शशिभूषण सो रहे, प्रमदा भी सो गई।

प्रमदा ने कहा था कि मा हमें कष्ट होता है सुनकर क्षणभर न ठहर सकेंगी वास्तविक उनको इतने सुनने की भी अपेक्षा न थी जरा सी भी खबर सुनने से जहा होती वहीं से पक्षी की भाति उड़कर पहुचती। विपिन के मुंह जिस समय सुना था उसी समय उठ खड़ी होती पर उस

समय उनका लड़का घर नहीं था इसलिये उस दिन न जा सकीं परन्तु उतनी देर बड़ी कठिनाई से बीती और पुत्र के न रहने के कारण जाने में देर होने से बड़बड़ाती ही रही। सन्ध्या को गदाधर आ पहुँचा। प्रमदा के भाई का नाम गदाधर था ।

गदाधर कृष्णवर्ण लम्बा शरीर किन्तु अन्नाभाव से दुर्बल हो रहा था। क्षुद्रमस्तक आँख पर बाल चले आते थे लम्बी गर्दन बड़े २ हाथी के से पाँव, लिखने पढ़ने के नाम तो काला अक्षर भैंस बराबर। इसके लिये प्रमदा की मा बड़ी दुःखित रहती। कहा करती कि जिनको लिखना पढ़ना सिखाना चाहिये वह तो कभी बात भी नहीं पूछते तो फिर गदाधर बिचारा कैसे पढ़े। उसकी विवेचना में गदाधर को पढ़ाना प्रमदा का मुख्य कर्त्तव्य कर्म्म था। गदाधर में एक बड़ा गुण और था कि वह 'त' का उच्चारण ट करता था।

विपिन को देख कर गदाधर ने पूछा "विपिन टुम कब आये?"

विपिन बोलने न पाया कि मा बोल उठी "इतनी देर तक तुम कहा गये थे गदाधरचन्द्र?" (प्रमदा और उसकी मा इसको गदाधरचन्द्रही कहतीं, किन्तु अरोसी परोसी लोग गधा छोड़कर और कुछ न कहते) विपिन आया है

यह क्या खायगा कहा रहेगा इसकी कुछ फ़िक्र नहीं, लोग क्या कहेंगे बताओ तो।

गदाधर ने उत्तर दिया "हम चाहे जहां गये थे—तुम से कौन मतलब ? अपने काम गये थे ? विपिन के खाने पीने की कौन चिन्ता है यह क्या किसी दूसरे का घर है ? जो हमलोग खाते है सो विपिन भी खायगा ।" "विपिन तमाकू पीओगे ?"

विपिन—'हम तमाखू नहीं पीते"।

गदाधर— हम तो पीते है। भाई मां तमाखू तो भर देव।,

गदाधरचन्द्र मुंहदेखे लड़के है भला अपने हाथ तमाखू भर पीयेंगे ? मां कभी अपने हाथ से न भरने देती। मा तमाखू भरने लगी। गदाधर ने विपिन से पूछा—"विपिन तुम कौन काम के लिये आये हो।"

विपिन—"नानी को बुलाने आये हैं।"

गदाधर ने प्रसन्न होकर कहा—"मां सुना तुम तो उस दिन कहती रहीं कि प्रमदा को कुछ दयामया नही है कभी बुलाती भी नहीं और न कभी कुछ खर्च को भेजें देखो आज तो तुमें बुलाया है।"

विपिन के सामने ऐसी बात कहने से मा गदाधर पर कुछ विरक्त होकर बोली—"गदाधरचन्द्र तुम्हें इस जन्म में कुछ भी अक्किल न आवेगी हमने यह सब कब कहा था।"

गदाधर— 'हमें तो अक्किल नहीं है पर तुम्हे तो है न। तुम्ही

को अकिल चाहिये भी। पर टुमें याड टो रहटा नहीं यही वडो खुराबी है उस डिन टुमने कहा और आज कहटो हो कि नहीं।" इतने में मा ने तमाखू भर कर दिया गदाधरचन्द्र हुक्के के आनन्दसे सब बात भूल गये थोड़ी देर पीछे मा से कहा "बड़ी आपात टली जीजी के यहां जाने पर टमाखू के लिये टुमारी खुशामड न करनी पडेगी।"

मां—"गदाधरचन्द्र तुम क्या पागल हो गये हो?"

गदाधर—"हां हां हम पागल हो गये है।"

मां—"भैया देखो थोडी सी दाल कहीं मिले तो ले आओ विपिन को कुछ खाने को कर दें।"

गदाधर—"क्यों उस डिन जीजी ने जो डाल भेजी थी सो क्या हुई?"

मां बडे क्रोध से गदाधर की ओर देखने लगी कि अब तो यह सब बात न कहै पर गदाधर डरनेवाला मनुष्य नहीं है डपट कर बोला "लाल २ आंख क्या डेखाटी हो जानो हमें कुछ मालुमही नहीं है, क्या उस डिन डाल नहीं आई थी? वही डाल कभी न अब इस वखट हम कहां डाल खोजने जांय।" मां ने अत्यन्त क्रुध होकर कहा—"गदाधरचन्द्र—"

गदाधर—"गडाढरचन्द्र यहीं हैं कहो न। क्या कहटो हो?"

हम भागनेवाले नहीं है ? देखो हमें झट वहुट डिक्री करो नहीं टो हम उस डिन को राव बाट काह देंगे हा ।"

मा ने तरह देनाही अच्छा समझा वहाँ से टल गई गदाधर तमाखू पीते पीते विपिन से बात करने लगा, रसोई होने पर रसोई खाकर दोनों सोये और प्रमदा की मा सब वस्तु ठिकाने रखने लगी और साथ ले जाने के कपड़े और वस्तु अलग कर रक्खा सब ठीक हो जाने पर वह भी सो रही ।

दूसरे दिन बड़े तड़के शशिभूषण ने नींद खुलतेही देखा कि जीजी जीजी करते हुये गदाधरचन्द्र आ पहुँचे हैं और पोछे २ उनकी मा हैं और सब के पोछे विपिन । गदाधर को देखकर शशिभूषण के हृदय में जो भाव उदय हुआ वह अनुभवनीय है । सिर से पैर तक काँप उठा । जैसे कोई व्याघ्र को देखकर काँप उठता है शशिभूषण अपनी अर्धाङ्गिनी के प्रियतम सहोदर को देखकर वैसेही काँप उठा ।

प्रमदा घबड़ाकर उठी और बड़े आदर सत्कार से मा तथा भाई को बैठाकर घर का कुशल मङ्गल पूछने लगी । गदाधरचन्द्र थोड़ी देर चुपचाप बैठकर फिर घर के आगे पीछे घूमने लगे । जिस घर में गदाधरचन्द्र रहें वहां कोई

वस्तु छिपाकर नहीं रह सकी। उनकी दृष्टि उसर पर होगी विशेष करके खाने की चीज़ पर तो पहिले।

शशिभूषण खिन्न होकर कचहरी चला गया और प्रमदा षोडशोपचार से आहार की आयोजना करने लगी। प्रमदा की मां ने यथासमय रसोंई करके खाया और सब लोगों ने भी भोजन किया।

शशिभूषण आज से अपने घर में पराधीन की भांति रहने लगा, गदाधरचन्द्र की माता घर की मालिकिनी हुई गदाधरचन्द्र पढ़ने के लिये स्कूल में भर्ती हुये प्रमदा रात दिन इन्हीं लोगों के आदर में रहने लगी, कदाचित् किसी बात की त्रुटि होयगी तो लोग निन्दा करेंगे।

त्रयोदश परिच्छेद।

सरला का विरह और श्यामा का विस्मय।

विधुभूषण के चले जाने पर सरला को अतीव कष्ट होने लगा। मनही मन सोचने लगी "हाय क्यों जाने दिया? घर में बैठकर हम दोनों उपवासे भी रहते तो इस विरहयंत्रणा से सहस्र गुण अच्छा था। सच है—"टूट-टाट घर टपकत खटियो टूट। पिय के बांह उसिसवा सुख कर लूट"—फिर कहती नहीं २ हम कैसी स्वार्थी है हमारे लिये वह कष्ट उठावें और हमें आच्छ लगे। वह

दुःखि रहते और हमसे देखा जाता। गई। आहा। काला कभी २ का प्रेमसम्भाषण सरला के वियोग ताप सदाही होने लगा। विधुभूषण कभी २ क्रुद्ध होते कलह और दुःख-रते जिसके लिये सरला को दुखी होना पड़ता।
भूल कर भी स्मरण न होतीं। विधुभूषण कभी २ थोड़ेही हुये थे उसको स्मरण करके सरला को बड़ी चिन्ता जब कहीं वैसेही विदेश में न बीमार पड़ैं। वहां कौन सेवा शुश्रूषा करेगा यही सब सोचकर सरला छत पर बैठी बैठी रोने लगी।

विधुभूषण को विदा करके सरला छत पर जा बैठी थी। जहाँ तक दृष्टि पहुँची बराबर एकटक उसे देखती रही। विधुभूषण भी दो चार कदम चले और फिरकर छत की ओर देखने लगे, इसी तरह थोड़ी दूर चलने पर एक बड़े पेड़ ने उनलोगों का सामना रोक दिया, विधुभूषण ने दीर्घनिश्वास लेकर आंख बन्द कर ली। सरला छतही पर बैठी रही। एक बेर इच्छा हुई दौड़कर अभी भी फिरा लावें पर किस सुख के लिये वलुक हम भूखी सरैं तो अच्छा पर उन्हें कष्ट नहीं दे सकी। सरला यही सब सोच रही थी। श्यामा घर का सब काम ठीक करके खाने पीने का आयोजन करने के लिये सरला को बुलाने गईं, पहर दिन चढ़ आया है पर सरला को कुछ होश नहीं। श्यामा

वस्तु छिपाकर नहीं रह चाहे छोटी बहू। क्या और किसी होगी विशेष कामके ? या कोई कभी परदेश नहीं जाता।"

शशिभूषण की बात सुनकर सरला चौंक उठी। आंख रगड़ा पोंछ और पूछा "क्या कहा श्यामा।"

प्रमदा की श्यामा ने कहा—"क्या ? आज रसोई बसोई कुछ न लोगों गो या तुम्हें भूख नहीं ?। इसलिये हम सब लोग भूखे रहेंगे ?"

सरला—'श्यामा आज सचही हमें भूख नहीं है तुम जाओ अपने लिये करके खा लेव।'

श्यामा—"हमारे खा लेनेही से तो गोपाल का पेट न भर जायगा वह गुरू के यहां से आता होगा, आकर क्या खायगा ?"

सरला—"ऐं क्या इतना दिन चढ़ आया ?"

श्यामा—"दिन न चढ़े तो क्या तुम्हारे लिये सूर्य्यनारायण भी बैठे रहेंगे ?।"

सरला ने देखा यथार्थही बहुत दिन आया है झटपट नीचे गई और नित्यकर्म्म में लगी। रसोई हुई गोपाल ने खाया सरला तो नामही मात्र थाली पर बैठी। श्यामा जूठे बर्त्तन मांजने को ले गई।"

वह दिन बीता दूसरा दिन बीता। योंही दिन पर दिन बीतने लगा, सरला की विरहाग्नि क्रमशः बुझती चली,

सर्वथा दूर नहीं गई किन्तु कम हो गई। आहा! काल कैसा चमत्कार चिकित्सक है जो कहीं शोक ताप सदाही समान रहता तो मनुष्य का जीवन कैसा दु:सह और दुःखमय होता?

विधुभूषण और शशिभूषण के अलग होने के थोड़ेही दिन पीछे गदाधरचन्द्र का दल आकर उपस्थित हुआ। जब तक विधुभूषण घर में रहा गदाधर या उसकी मा को कभी भी सरला से कुछ बातचीत करने का साहस न हुआ और न कोई अत्याचारही करने का अवसर मिला, बीच २ में प्रमदा वाक्यबाणवर्षण करती भी तो सरला सुनी अनसुनी कर जाती। पर अब तीनों मिलकर सब सूद समेत अदा कराने में प्रवृत्त हुई एक दिन बरामदे में आकर श्यामा को पुकार कर प्रमदा ने कहा—"क्यों श्यामा कहो आज कल तुमारे सर्कार कहां गये हैं? क्या कपड़ा उधार लाने गये हैं या रुपया? आजकल गाना बजाना नहीं सुन पड़ता।"

श्यामा ने कहा—"जो जीती रहोगी और परमेश्वर की कृपा से आंख कान सलामत रहैंगे तो सब कुछ सुनोगी।"

प्रमदा श्यामा की बात से कुछ चौंककर बोली 'क्या कहा? फिर तो कह?"

श्यामा ने कहा 'कुछ तो नहीं कहो तो पूछा कि आज सप्ताह में कौन सा दिन है?"

प्रमदा—देखो तो हरामजादी की बदमाशी जो यहीं इस वखत घर में होते तो तेरा मुँह जूता से सीधा कर देते।"

सरला ने कहा—"श्यामा तू कुछ मत बोल उनके मुँह में जो आवे सो बकने दे तेरा कुछ घट थोड़ेही जायगा।"

श्यामा ने कहा—"क्यों चुप रहें? ऊ होती है कौन?" फिर प्रमदा से ललकार कर कहा—"बातोंबात जूता मारोगी? अच्छा आओ मारो हमारे भी हाथ है।"

प्रमदा क्रोध के मारे और कुछ न कह सकी बोली—"अच्छा २ ठहर आने दे घर में तुझको मजा देखावेंगे।"

श्यामा—"बड़े बड़े बह गये गदहा कहै केतना पानी। आओ न अभी देखाओ न? ऊ घर पर आय के क्या करेंगे? क्या किसी को खाय जायँगे?"

प्रमदा चुप होकर घर में जा बैठी, मारे क्रोध के मुँह लाल हो गया साँस फूलने लगा। जोर २ से हाथ पटकने लगी। प्रमदा की मा यह देखकर अकबक हो रही, मा सन्मुख समर सहायता करती पर इस समय श्यामा का विक्रम देखकर साहस न हुआ कि बोले, अपनी बेटी के पास बैठकर कहने लगी। "बेटी चुप रहो बिना सिखाये पढ़ाये क्या छोटे लोगों की इतनी हिम्मत हो सकती है? भीतर २ सब सधीबधी बात है सो तो तुम जानती हो,

आज आवें तब सब कह देना देखो क्या कहते हैं। बाप रे बाप। हमसे तो इस घर में दमभर भी न रहा जायगा। कौन जाने कब हमको भी कुछ कह बैठे।"

बात पूरी न होते होतेही गदाधरचन्द्र कहीं से आ पहुँचे, प्रमदा को कुपित देख और मां के मुंह से यह सुनकर पूछा—"जीजी क्या हुआ है?" जीजी ने कुछ उत्तर न दिया। गदाधर ने फिर पूछा—"जीजी क्या हुआ?"

प्रमदा ने कहा—"जा जा अपना काम देख जो तैं किसी लायक होता तो इतना दुःख काहे पाता?"

गदाधरचन्द्र बिचारा सीधासादा था, न समझ सका कि उसको किस बात का दुःख है। क्योंकि जब से प्रमदा के यहां आया है तब से तो भोजन भी उत्तमोत्तम होता है और भी किसी बात का कष्ट नहीं है। बिचारा भकुआ होकर इधर उधर देखने लगा।

गदाधर की मा ने सब वृत्तान्त समझाकर कहा— "गदाधर सुनतेही मारे क्रोध के कांपने लगा और बोला "एस अभी जाकर डेखटे हैं। हरामजाडी का एटना बडा मकडूर!"

यह कहकर उरला के घर की ओर जाकर कहा— "आओ रे आओ—डाइर टो आव, टनिक टेरा और टेरे हिमायटी का जोर टो डेखें!"

प्रमदा और उसकी मा कुछ भी न बोली, सोचा जो दो चार जड दे तो अच्छीही बात है ।

सरला दौडकर द्वार बन्द करने गई पर श्यामा ने वन्द न करने दिया और तरकारी बनाने का हँसुआ लेकर बाहर निकल कर बोली—"आओ आओ, जो आज तेरा नाक कान काटे बिना पानी पिया तो हमारा नाम श्यामा नहीं ।"

हँसुये की तीक्ष्ण धार देखकर गदाधर को आगे बढ़ने का साहस न हुआ, वहीं से बोला—"है हमारा नाक कान काटेगी ? अच्छा २ ठहर हम अभी ठाने से नायब साहब को ले आते हैं ।"

श्यामा—"जा ला जो मन में आवे सो कर लेना ।"

उसी गांव में थाना था । एक कांष्टेब्ल के साथ गदाधर की जान पहिचान थी, उसने सोचा थाने से और कोई आवे चाहे न आवे वह कांष्टेब्ल तो मुझे देखतेही चला आवेगा, और उसके आनेही से सब काम हो जायगा । दौड़कर थाने में गया वहा देखा कि दारोगा साहब जो कुछ कहते जाते हैं उसको उनका आलापी चपरासी लिखता जाता है । गदाधर ने घबड़ाकर कहा—"दरोगा साहब । दरोगा साहब । श्यामा हमारा नाक कान काटने कहती है ।"

दारोगा—"तुम कौन हो ? और श्यामा कौन है ?"

गदाधर—"हम बाबू शशिभूषण के साले हैं न !"

दारोगा—"तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?"

गदाधर—"हमारे बाप को आप नहीं जानते ? श्यामा म-जूरनी जो है न वही हमसे लड़ती है और और नाक कान काटने कहती है ।"

दारोगा ने कांस्टेबल की ओर देखकर कहा—"महेश ! तुम इसको पहिचानते हो ?"

महेश ने गदाधर के कुल शील विद्या बुद्धि का परिचय दिया । दारोगा ने सब सुनकर कहा "अच्छा ठहरो हम तदारुक करते हैं । ऐसा अन्धेर कि तुम्हारा नाक कान काटना चाहती है ।"

गदाधर—"अंधेर क्या महाअंधेर । आपही इसका तनिक इन्साफ कीजिये ।"

दारोगा—"हां अवश्य करेंगे किन्तु नाक कान काटा तो नहीं है, काटने कहती है ।"

गदाधर ने कान टटोला । दारोगा ने कहा "हां अच्छी तरह देख लेव । दावा दुरुस्त करना होगा ।"

गदाधर—"काटा तो नहीं है पर कहा है कि काटेंगे ।"

दारोगा—"छिः छिः । एक स्त्री ने कहा कि नाक कान काट लेंगी और तुम दौड़कर यहां चले आये तुम्हें लाज भी न आई ।'

गदाधर—"भरे वह दस्टी काहे को हैं यह टो स्ट्रियों की डाडी है। जो चोखा हँसुआ उठाया रहा कि उस्को डेखटे टो टुम भी वाप २ पुकाराटे भागटे।"

दारोगा—"सचमुच। तो तो उसको गिरफ्तार करना चाहिये! अच्छा तो एक काम करो। फिर उसके पास जाओ और उससे लडाई करो जब वह नाक कान काट ले तब फिर हमारे पास आओ, विना नाक काटे त मुकद्दमा कायमही नहीं हो सकता।"

गदाधर—"जो पहिलेही वह नाक काट लेगी टो फिर हम कौन चीज़ की नालिश करैंगे।"

दारोगा—"क्यों? कान लेकर।"

गदाधर ने समझा कि दारोगा हँसी करते हैं, रुष्ट हो कर कहा "अच्छा टुम हमारी वाट नहीं सुनटे टो हम शहर में जाकर साहेब से फड़ियाड करेंग।"

दारोगा ने कहा "यह तो बहुत अच्छी बात है। ये सब बडे मुकद्दमें यहां हो भी नहीं सकते।"

गदाधर—"उठकर चला।" दारोगा ने कान्स्टिबिल से कहा "एक तमाशा करैं, देखोगे।"

कानष्टेबुल ने पूछा "क्या?"

दारोगा ने एक दूसरे कान्ष्टेबुल से कहा—"हरीसिंह इस्को गारद में करो क्योंकि इसने दारोगहत्की किया है।"

हरीसिंह—"तुरन्त पकड़कर गारद में ले चलो।" गदाधरने क्रुद्ध होकर कहा। टुमलोग जानटे नहीं कि हम कौन है हम बाबू शशिभूषण के माना है, हम को गारड में डेना सहज नही है । टनिक उनको खबर होने डेव, टब मजा डेखना।"

हरीसिंह ने कहा—"भैया तुम से जो करते बने सो करो हमें क्या? हम को तो दारोगा साहेब ने जो हुक्म दिया सो करते हैं, देखो हम से बहुत बक २ मत करो क्योंकि उनका हुक्म है जो बकवाद करे तो हथकड़ी बेड़ी डाल देना।"

यह सुनकर तो गदाधरचन्द्र के होश उड़ गये, लगे कान्हेबू के हाथ जोड़ने, भाई हरीसिंह टुमारे पाव पड़टे हैं हमको छोड़ डेव।"

हरीसिंह ने कहा—"भाई हम कैसे छोड़ सक्ते हैं?"

गदाधर—"अच्छा टो ज़रा महेश बाबू को टो बुलाय डेव?"

कान्हेबू थोड़ा घूमकर फिर आया और बोला—"वि वह नहीं आ सकते?"

गदाधर—"हमने उनके लिये इटना किया और वह टनिक हमसे मिलटे भी नहीं।" इसी प्रकार गदाधर कभी खुशामद करता कभी बन्दरघुड़की देता इसने में रस्ता पूरे सब [illegible] आया । दारोगा ने

गारद में जाकर पूछा "क्यों ! फिर ऐसा झूठा मुकद्दमा लाओगे ?"

गदाधर—"नहीं दयावतार, कभी नहीं।"

दारोगा—"स्त्रियों के साथ फिर झगड़ा करोगे ?"।

गदाधर—"कभी नहीं ।"

दारोगा—"अच्छा कान उमेठो तो जाने पाओगे ।"

गदाधर ने ऐसाही किया, तब गारद से निकाला गया।

गदाधर के थाने में जाने के थोड़ी देर पीछे शशिभूषण घर आये, कचहरी और दिनों की अपेक्षा शीघ्रही बन्द हुई थी, घर आकर प्रमदा को कुपित देखकर कारण पूछा— "प्रमदा ने सब वृत्तान्त कह सुनाया पर पहिले उसी ने ताना मारा था इतना उड़ा दिया। सुनतेही पहिले तो शशिभूषण बड़े क्रोधान्वित हुये और सुयोग पाकर प्रमदा की मा ने भी दो, चार टिप्पणी किया किन्तु क्रोधही करके श्यामा का क्या करेंगे ? न तो उसको मारही सकते हैं और न इसका मुकद्दमाही कर सकते हैं यही सब सात पांच विचार कर चुप हो बैठे ।"

चतुर्दश परिच्छेद ।

हिसाब पास ।

यह तो पहिलेही कहा गया है कि शशिभूषण को

बुद्धि विलक्षण प्रखर थी इसी बुद्धि की प्रखरता से उत्तरो-
त्तर उनकी वृद्धि होती जाती थी पांच रुपया मासिक से
प्रारम्भ करके इस समय पचीस रुपया मासिक हो गया है,
अब इनके ऊपर केवल दीवानजी हैं। लोग कहते हैं कि
दीवानजी भी बहुत दिन नहीं रहने के, शशिभूषण की बुद्धि
देखकर बाबू साहब अत्यन्तही सन्तुष्ट हैं। मन में विचार
होता है कि इन्हीं को दिवानी का काम दे दिया जाय तो
फिर हमको कुछ भी न देखना सुनना पड़े, अहा। हिसाब
किताब का देखना बड़े झंझट का काम है। बाबू साहेब
बिचारे को दम मारने का भी अवकाश नहीं मिलता आ-
मोद प्रमोद तो दूर गया, यद्यपि इनके बाप दादे न जाने
कैसे इन सब कामों के लिये बहुत अवकाश पाते थे उस
समय तो एक छोड़ बहुत से कारिन्दे भी न थे बाबू साहब
ने विचार किया था कि वह लोग भी बुद्धि के मनुष्य थे
उनसे हो सकता था जिनकी बुद्धि सूक्ष्म होती है। उनसे
अधिक परिश्रम बहुत नहीं हो सकता उनसे तो यह सब
कुछ काम नहीं हो सकता।

आश्चर्य का विषय तो यह है कि लोग आपस में ऐ-
श्वर्य में तो द्वेष करते हैं परन्तु विद्या बुद्धि में द्वेष नहीं
करते यह भी बहुत लोग कहते हैं कि जिम्मेदारी बहुत है
[illegible] है इनके पास कुछ [illegible] है पर यह कहना कोई नहीं

दिखलाई पड़ता कि हमारी अपेक्षा उनमें विद्या विशेष है बुद्धि विशेष है जिस्से रुपया ज़िमींदारी सभी कुछ हो सक्ती है। बुद्धि बढ़ाने का उद्योग नहीं हो सकता।

बाबू साहब के बाप दादे एक समय मोटा अन्न खाकर अत्यन्त दुर्बल होने पर भी जो काम करते थे वह काम बाबू साहब दिन भर में तीन बेर घी दूध मद्य मांस तथा पौष्टिक औषधि खाकर भी नहीं कर सकते; क्या उन लोगों में बुद्धि कम थी? कभी नहीं, उनलोगों में सहिष्णुता बहुत थी बाबूसाहब में न उतनी सहिष्णुताही है न शारीरिक बलही है।

शशिभूषण को बुद्धिबल सहिष्णुता और मीठी २ बात करके प्रसन्नकर देना आता है वह क्रमशः उच्चपदाभिषिक्त होता इसमें आश्चर्य्य क्या है?।

शशिभूषण के आधीन इस समय सात आठ अमले हैं ये सब विश्वासपात्र हैं सभों के ऊपर शशिभूषण तो परम विश्वासपात्र है। यह जो हिसाब दुरुस्त कर देंगे फिर उस में क्या भूल रह सकती है? सब खर्च उन्हीं के हाथ है।

शशिभूषण कई एक हिसाब के काग़ज़पत्र लेकर बाबू साहब के पास गये और कहा "हुजूर शिवालय और शिव स्थापन का हिसाब सब ठीक हो गया है एक बेर देख लें तो जमाखर्च हो जाय।"

बाबू—(बन्धुगन परिवेष्ठित) "तुमने अच्छी तरह देख लिया है? कोई भूल चूक तो नहीं है?"।

शशिभूषण—"जी, हमारे देखने में तो कहीं एक पैसे को भी भूल नहीं जान पड़ती, पर बिना हुजूर के देखे हम कुछ नहीं कह सकते।"

बाबू साहब बड़े प्रसन्न हुये शशिभूषण को अपेक्षा हम विशेष समझते हैं यह बात शशिभूषण अपने मुह से स्वीकार करते हैं फिर अब रहा क्या? बोले—"तुमने देखही लिया है तो फिर अब हम क्या देखें।"

शशिभूषण अपने अधीनस्थ एक कारिन्दे को साथ लेकर हिसाब पास करने गया था बाबू साहब को बात सुन कर एकबेर आपस में देखादेखी किया वह ज़रा सा मुस्किराया किन्तु वह मुस्किराहट शशिभूषण के शिवाय और कोई न समझ सका था शशिभूषण ने आँख के इ' से अप्रसन्नता प्रगट कियो कि यह मुस्किराहट इसदा को बहुत अनुचित हुई वह लज्जित होकर नीचे देखनेभूषण को

बाबू साहब के एक मित्र ने कहा "अब तोन मोल लेने गया न इनलोगों को बिदा करो न?"। आ कि किसको

बाबू साहब ने पूछा—"और कोई ट तो होही नहीं

शशिभूषण—जी नहीं, इस समय तो अग नालिश करके ले है (हाथ के कागज़ों को उल नही हो सका। यही

रंध्रद्वार होकर बाहर निकल गया ब्राह्मण उस सर्प के पीछे पीछे चला । सवेरा होते २ उस सांप ने बाघ का रूप धर कर एक कृषक को मार डाला और थोड़ीही देर पीछे वृष का रूप धर कर एक बालक का प्राण लिया । अभी भी ब्राह्मण पीछे २ चला जाता है थोड़ी देर पीछे उस वृष ने एक बूढ़े मनुष्य का रूप धारण किया तब तो ब्राह्मण ने उसके पैर पर गिरकर उसका परिचय पूछा । बूढ़े ने पहिले तो परिचय देने से अस्वीकार किया पर ब्राह्मण के अत्यन्त आग्रह करने से कहा –"हम कर्म्मसूत्र हैं जिसके भाग्य में जैसे मरना लिखा है हम वही रूप धर कर उसको मारते है"। ब्राह्मण ने पूछा "महाराज कृपा करके बतलाइये तो हम कैसे मरेंगे"। बूढ़े ने कहा "पागल कहीं का भला यह बात भी बतलाई जाती है ?" पर ब्राह्मण किसी तरह पैरही न छोड़े तब बूढ़े ने कहा "तुम्हें गंगाजी में कुम्भीर मारेगा।"

ब्राह्मण यह सुनतेही पूर्वाभिमुख चला जहां गंगाजी नहीं है घर लौटकर नहीं गया कई दिन तक चलने के पीछे एक राज्य छोड़कर दूसरे के राज्य में पहुंचा वहां एक घर भाड़ा ले कर रहने लगा ।

ब्राह्मण जिस राज्य में बसा उस राजा को कोई सन्तान न होती थी ब्राह्मण ने यह सुनकर राजा के पास जाकर निवेदन किया महाराज हम एक अनुष्ठान जानते है जिस

के करने से अवश्य सन्तान होती है। राजा ने तुरन्त उसको अनुष्ठान करने का अनुरोध किया ब्राह्मण के अनुष्ठान से बरस के भीतर राजा को एक पुत्र हुआ।

राजा ने ब्राह्मण को बड़े आ र से अपने घर में रखा और राजपुत्र के बड़े होने पर उस्को शिक्षा के लिये ब्राह्मण को नियुक्त किया। राजकुमार ने यथासमय सब कुछ पढ़ लिखकर देशभ्रमण करना चाहा राजा ने ब्राह्मण को साथ जाने कहा, ब्राह्मण ने कहा "हम सब स्थान में जायेंगे पर गङ्गातट न जायेंगे" राजा के कारण पूछने पर ब्राह्मण ने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने हँसकर कहा— "अच्छा तुम्हें गङ्गा तीर न जाना पड़ेगा," राजपुत्र ने ब्राह्मण के साथ नाना स्थान पर्य्यटन करने पर गङ्गातीर जाने की इच्छा की, ब्राह्मण ने साथ जाना अस्वीकार किया किन्तु राजकुँवर ने कहा "कुछ रास्ते में तो आपको कुम्भीर पकड़ ही न ले जायगा, आप डरते क्यों हैं" लाचार ब्राह्मण को जानाही पड़ा; योग के समय राजकुंवर गङ्गा स्नान करने चले।

ब्राह्मण को भी साथ चलने को इच्छा से कहा कि आ तीर पर बैठ कर मंत्र मौन दीजियेगा इसमें क्या डर है ब्राह्मण को अनिच्छापूर्वक भी राजकुमार के साथ पड़ा, गङ्गाजी में हजारों लोगों को नहाते देखकर कुछ साहस हुआ। राजपुत्र नहाने के लिये जल में ए: हैं।"

रामचन्द्र—"अच्छा वहां के दिन पीछे हाट लगती है?"

विधुभूषण—"हाट क्या? वहां कहीं हाट लगती है? वहां तो जिस दिन जो चाहो सो मोल ले सक्ते हो, कई सौ दुकानें हैं नित कई सौ जगह बाज़ार लगती है।"

रामचन्द्र—"अच्छा रोज़ बाज़ार लगती है और इतनी दुकान है तो सब मोल कौन लेता है? हमलोगों की हाट भी तो बडी भारी हाट है पर वह भी रोज नहीं लगती और एक दिन जिन्स ले लेने से फिर तीन दिन की छुट्टी हो जाती है।"

विधुभूषण—"खरीदार कहां से आते हैं यह थोडी देर में आपही देख लोगे, हम अभी से कहां तक कहें?"

थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप चले फिर रामचन्द्र ने पूछा" अच्छा भाईसाहब अब बतलाओ, खरीदार कहा से आते हैं?"

विधुभूषण ने चिढ़कर कहा—"कह तो दिया कि अभी नहीं बतला सक्ते फिर भी पूछेही जाते हो ऐसा करोगे तो हम फिर कोई बात न बतलावेंगे।"

फिर बड़ी देर तक दोनों चुपचाप चले गये, कलकत्ता के जितनाही पास पहुँचने लगे उतनाही लोगों का समारोह विशेष देखकर रामचन्द्र ने पूछा "क्यों भाईसाहब? इतने आदमी कहां जाते हैं? मालूम होता है कहीं मेला है।"

विधु०—"हां हां मेला नहीं तुम्हारा सिर है सूझता नहीं कि कलकत्ते पहुंच गये अब यहां भी आदमी न होंगे?"

रामच०—"क्या इतने सब आदमी कलकत्तेही जाते हैं?"

विधु०—"हां।"

रामचन्द्र फिर थोड़ी देर तक चुप रहा, दोनों श्यामबाज़ार के निकट पहुंचे, एक घोड़ा की गाड़ी आते हुये देखकर रामचन्द्र बोल उठा "भाईसाहब! देखो २ यह क्या है?"

विधुभूषण ने हँसकर कहा—"रामचन्द्र! तुमने और कभी गाड़ी नहीं देखा है क्या?"

रामचन्द्र—"देखा काहे नहीं है रहीमनियां की गाड़ी देखी है और भी कितने आदमियों की गाड़ी देखी है।"

विधु०—"वह तो बैलगाड़ी है कभी घोड़ागाड़ी का नाम सुना है?"

रामचन्द्र'—इसी का नाम घोड़ागाड़ी है?।"

बिधुभूषण ने कहा "हां,—क्या तुम कभी गोरखपुर नहीं गये? वहां बहुत सी घोड़ागाड़ी हैं?"

रामचन्द्र—"हम सोचते थे कि घोड़ागाड़ी और बैलगाड़ी एकही सी होती है इसमें बैल जोतते हैं उसमें घोड़ा जोतते हैं यह तो देखो पालकी की तरह है तो फिर हम कैसे जानें?"

यह बातचीत करते हुये दोनों श्यामबाज़ार की पुल पार हुये। रामचन्द्र ने पुल पार होने पीछे बहुत सी घोड़ा गाड़ी देखकर अत्यन्त आह्लादित होकर कहा "भाईसाहब इधर देखो २ यहां तो बहुतसी घोड़ागाड़ी हैं। बाप रे बाप।"

रामचन्द्र की आँख रास्ते की ओर पड़तीही नहीं इधर उधर चकपकाकर देखता चला जाता था, इतने में एक गाड़ी उसके इतने पास पहुंच गई कि दबने में तनिक ही सा अन्तर रह गया। गाड़ीवान ने "हटता नहीं अंधा" कह कर एक चाबुक जड़ा। रामचन्द्र ने फिरकर देखा कि गाड़ी के नीचे दबने से तनिक ही बचा है—'बाप रे बाप चिल्लाता हुआ दाहिनी ओर भागा।

बिधुभूषण ने कहा—"रामचन्द्र यह तुम्हारा गांव नहीं है और न यहां वैसी हाट है? यहां जो रास्ता देखकर न चलोगे तो दबकर मर जाओगे, ले अभी मर चुके थे।"

रामचन्द्र—"भाईसाहब, अब हम तुम्हारा हाथ पकड़कर चलेंगे यह कहकर बिधुभूषण का हाथ पकड़ लिया।"

बिधुभूषण ने कहा "हमारा हाथ पकड़ने से यही एक लाभ होगा कि तुम भी मरोगे और साथ में हमको भी मारोगे हाथ छोड़कर तुम हमारे पीछे २ चले आओ बीच २ में इधर उधर भी देख लिया करना पागल की तरह एकही ओर मत देखते रहो।"

विधुभूषण यद्यपि कभी कलकत्ते नहीं गया था परन्तु गोरखपुर प्रायः जाना आना होता और वह रामचन्द्र का निरा मूर्ख भी नहीं था इससे उसको कलकत्ता कुछ ऐसा नया नहीं ज्ञान पड़ा रामचन्द्र को पुकारकर कहा "रामचन्द्र कलकत्ता के भीतर रहने में तो बड़ा कष्ट है चलो कालीघाट चलें गङ्गाजी भी नहायेंगे कालीमाई का दर्शन भी करेंगे और सुना है कि उधर कुछ निराला भी है।"

रामचन्द्र को कलकत्ता देखने की जितनी उत्कण्ठा थी देखकर उतनी श्रद्धा का उद्रेक न हुआ चाबुक की चोट अभी तक बनी थी इससे कालीघाट में निराला है सुनकर वहां जाने पर प्रस्तुत हो गया, किन्तु पूछा 'क्यों भाईसाहब! यहां लोग कौन सुख के लिये रहते हैं? चारोंओर से तो एक तरह की दुर्गन्ध सी निकलती है और रास्ते में निकलने से या तो चाबुक खाय या दबकर मरे।"

विधुभूषण ने हंसकर कहा "यहां का यही सुख है।"

रामचन्द्र—हमें ऐसा सुख न चाहिये चलो कालीघाट चलें पर जो वहां तक पहुंचने पावें क्योंकि घोड़ागाड़ी की तो भीड़ लगी है।

विधुभूषण—"कालीघाट तो चलोगे पर रास्ता तो देखाही नहीं हं सुना है दक्षिण की ओर है अच्छा चलो दक्षिण की ओर चलो पूछ लेंगे।"

अष्टदश परिच्छेद ।

सुहृच्छेद ।

कालीघाट जाने की इच्छा से विधुभूषण और रामचन्द्र दक्षिण ओर चले भवानीपुर की बाज़ार में पहुंचकर विधु-भूषण ने कहा—"रामचन्द्र यहीं तो कालीघाट जान पड़ता है, किसी से पूछो तो कालीजी का मन्दिर कहां है ?"

रामचन्द्र ने एक राह चलते से पूछा—"कालीजी का मन्दिर कहा है ?"

जिससे पूछा था वह एक बड़ा टेंटी बनिया था, एक बात का उत्तर बिना चार बात पूछे न देता था उसने राम-चन्द्र से पूछा—"तू कहां के रहवैया हौ हौ ?"

रामचन्द्र ने कहा—"सीतापुर के ।"

बनिया—"कबहिन कलकत्ता नहीं आये हौ का ।"

रामचन्द्र—"आये होते तो पूछते क्यों ?"

बनिया—"कहां जाओगे ?"

विधुभूषण कुढ़ गया, एक तो धूप के मारे सिर घूमने लगा दूसरे भूख के मारे व्याकुल; बनिया की बात से कुढ़ कर कहा "चूल्हे में जायेंगे ।"

बनिया ने विधुभूषण की बात सुनकर चिड़चिड़ाकर कहा "यह मिजाज् । जानो धन्नासेठ के नातिये तो हैं—जाव जाव हम नहीं बताते ।"

विधुभूषण—"तुम्हारे न बताने से तो आँटाही गीला हुआ जाता, है चलो रामचन्द्र हमलोग खोज लेंगे।"

थोड़ी दूर आगे चलकर विधुभूषण ने सोचा एक राह चलते के ऊपर रुष्ट होकर व्यर्थ कष्ट उठाना कौन बुद्धिमत्ता है? इतने में एक ब्राह्मण को सिंदूर का तिलक लगाये कन्धे पर अँगौछा रक्खे हाथ में फूल की माला लिये हुये सामने आता देखकर विधुभूषण ने पूछा—"क्यों भाई कालीजी के मन्दिर को किधर जायँ?"

ब्राह्मण ने चिरपरिचित की तरह हाथ पकड़कर कहा "इसके लिये क्या चिन्ता है? चलिये हम ले चलते हैं न? विधुभूषण और रामचन्द्र उसके पीछे २ चले।"

ब्राह्मण कालीजी का पण्डा था, वह शिकार के खोज में निकला था सो अनायास हाथ आया, मिष्टालाप करता हुआ मन्दिर में लिवा गया।

विधुभूषण और रामचन्द्र वहां अपराह्न समय पहुंचे, दोनों पहिले गङ्गा स्नान करने गये, रामचन्द्र को गङ्गाजी के देखने से अश्रद्धा सी हुई कहा—"भाईसाहब यही क्या-कालीघाट की गङ्गाजी है इन्हीं का इतना बड़ा नाम है इनसे तो अपने यहां की नदी अच्छी - उसका पानी कैसा स्वच्छ है यह तो मैला है।" विधुभूषण ने कहा "इन्हीं गङ्गाजी में नहाकर कितने लोगों ने उद्धार पाया है हमारी

तुम्हारी क्या गिनती है" योंही बातचीत करते हुये दोनों गङ्गा धोकर कालीजी के मन्दिर में गये। पण्डाजी संगही संग रास्ता दिखलाकर ले जाते हैं, मन्दिर देखकर भी रामचन्द्र प्रसन्न न हुआ और कालीजी का दर्शन करके तो नाक भौंह चढ़ाकर कहा—"भाईसाहब दूर के ढोल सुहावने।" इससे अच्छे तो हमारे गांव में ठाकुर हैं।"

विधुभूषण ने कहा "भला भला हैं तो रहने दो, चलो जो काम है सो देखो।"

दोनों कालीजी को दण्डवत् करके चले द्वार पर एक काली का परिचारक खड़ा था उसने कहा 'प्रणामी देते जाओ" विधुभूषण ने पूछा "क्या प्रणामी देनी होती है?"

परिचारक ने कहा "जो अपनी सरधा हो पर आठ आने से तो कम होता नहीं बढ़ती जो बन जाय।"

विधुभूषण ने कमर से निकालकर चार आना पैसा दिया रामचन्द्र ने कुछ न दिया परिचारक ने कहा—"तुमने पैसा नहीं दिया?"

रामचन्द्र ने कहा "हम तो बाबू के नौकर हैं हम कहां से लावें।"

दोनों मन्दिर के बाहर आये तब पण्डा ने कहा—"लाओ हमें क्या देते हौ।"

विधुभूषण ने कहा—'अब तुमको क्या देंगे एकबेर तो दे चुके"

पण्डा ने कहा—"इससे कौन मतलब ? वह तो प्र णामी दिया, प्रणाम लाख रुपया क्यों न दे दो हमें क्या मिलना है। हम इतनी दूर से लिवा आये हमें तो जो बख्शीश देंगे सो मिलेगा, देखो हमने प्रसादी माला दिया सेंदुर दिया उसकी भी दच्छिना नहीं मिली।"

विधुभूषण ने टेंट से निकालकर चार आना उसको भी दिया किन्तु कालीघाट के मनुष्य जो पता पावें कि इसको कमर में पैसा है तो फिर वह कहां जाता है। विधुभूषण के पास पैसा देखकर पचासों स्त्री पुरुषों ने घेर लिया कोई माला देता है कोई सेंदुर लगाता है। अब कहीं से हिल नहीं सकते आगे बढते हैं तो पीछे से दो चार मिल-कर कपड़ा खींचते हैं पीछे हटते हैं तो आगे से खींचते है। इतना कोलाहल मचाने लगे कि जो कोई वहां नहीं गया वह कभी अनुमान नहीं कर सकता और न कहने से वि-श्वास कर सकता है, विधुभूषण ने विरक्त होकर चाहा कि सभों को कुछ देकर विदा करें परन्तु दुःख और आश्चर्य की बात है कि कमर में * हेमियानीही नहीं है रामचन्द्र से पुकार कर कहा "रामचन्द्र हमारी हेमियानी क्या हुई ?"

* हेमियानी—एक प्रकार की जालीदार सूत के डोरी की बिनी लम्बी थैली है सफ़र में लोग पैसा रुपया रखकर कमर में बांध लेते हैं।

रामचन्द्र ने कहा "हम अपना सिर तो बचाही नहीं स कते तुम्हारी हेमियानी क्या जानें ?"

वास्तव में रामचन्द्र को सिर बचाना भी कठिन हो गया था जो जिधर से आता है सिर में सेंदुर लगाये देता है, सब के सब सिरही में नहीं लगाते, जिसका जहां हाथ पड़ गया वह वहीं लगाता है कोई सिर में कोई गाल में कोई नाक में एक ने आंखही में उंगली घुसा दीं, माला इतनी पहिरा दीं कि मारे बोझ के दबा जाता था राम-चन्द्र बराबर चिल्ला २ कर कहता जाता कि अरे भाई ह मारे पास कुछ नहीं है हमको क्यों नाहक दिक करते हो!

बड़े कष्ट से विधुभूषण और रामचन्द्र भीड़ से निकले, बाहर निकलकर देखा कि एक दूसरे को सभों ने वैसेही पकड़ा है। रामचन्द्र पल भर भी वहां न खड़ा हुआ, "भाईसाहब यह देखो फिर सब इधरही आते हैं। हम तो भागते हैं कौन साला यहां पलभर भी ठहरे" यह कहता हुआ रामचन्द्र भागा, विधुभूषण धीरे २ चला दौड़कर च लना कलकत्ता में सहज नहीं है। रामचन्द्र के पीछे २ धड़ाधड़ लोग दौड़ पड़े, ज्यों २ रामचन्द्र भागता जाता है त्यों २ लोगों की संख्या बढ़ती जाती है, थोड़ी दूर दौड़ने पर रामचन्द्र थक गया, एक तो तीन दिन का थका मादा दूसरे दिन भर का भूखा, एक मोड़ पर घूमने के समय

चित्त होकर गिर पड़ा। लोगों ने चारोंओर से घेर लिया, किन्तु इसके पीछे क्यों दौड़कर आये हैं यह कोई नहीं जानता। जैसे लोग आसन्नकाल में संसार की दयामाया छोड़ देते हैं वैसाही रामचन्द्र का भी जी हो गया, कहा "लाओ कितनी माला है देओ जितना सेंदुर हो सब पोत देव एक आँख तो लेही चुके अब दूसरी भी ले लेव।" रामचन्द्र की बात सुनकर लोगों ने समझा कि पागल है सब लोग हँसकर चले गये, रामचन्द्र को दर्द के मारे आँख से जल बहने लगा, रास्ते के किनारे बैठकर शरीर की धूल झारकर विधुभूषण के पास चला। किन्तु रामचन्द्र रास्ता न पहिचान सका घूमते २ सन्ध्या हो गई पर विधुभूषण से भेंट न हुई। क्षुधा के मारे शरीर सामर्थहीन होगया कंकड़ की सड़क पर गिरने से कहीं २ छिल भी गया रामचन्द्र एक घर के द्वार पर बैठ गया। विदेस में अकेला कहां जाय किसके घर में रहे यह सोचकर रामचन्द्र रोनेलगा।

जिस घर के द्वार पर रामचन्द्र बैठा रोता था उसका स्वामी सन्ध्या को कचहरी से लौटकर घर आया. रामचन्द्र को इस अवस्था में देखकर कहा—"तुम कौन हो?"

रामचन्द्र ने रोते २ कहा –"हम रामचन्द्र हैं।"

गृहस्वामी ने पूछा— 'यहां बैठकर क्यों रोते हो?'

रामचन्द्र ने कहा—"हम खो गये हैं।'

ऊनविंश परिच्छेद ।

प्रेमचन्द्र की वसीयत ।

हेम ने स्वर्णलता के पढ़ने के विषय में जो कहा था यथार्थ में वही हुआ, विना किसी की सहायता के उसने बहुत शीघ्र चिट्ठी लिखना सीख लिया, प्रतिज्ञानुसार हेम को पत्र लिखा। पत्र पढ़कर हेम को अत्यन्तही आह्लाद हुआ, छुट्टीमें घर लौटने के समय एक बहुत अच्छी कामदानी की धोती मोल लेता आया घर में आतेही पहिले स्वर्णलता के पास दौडा गया और कहा—"स्वर्ण देखो यह तुम्हारी चिट्ठी का जवाब हम ले आये हैं"। स्वर्णलता हेम का स्वर पहिचानते ही दौडकर उसका हाथ पकड़कर ले गई। हेम ने साडी स्वर्णलता को देकर कहा—"स्वर्ण। अपनी धोती लो देखो हमने जो कहा था सो भूले तो नहीं न?" स्वर्ण ने बहुत प्रसन्न होकर साड़ी लेकर पहिर लिया।

जिस समय हेम घर पहुंचा था उस समय प्रेमचन्द्र कहीं बाहर गये थे, थोडी देर पीछे आ गये जब से हेम की अवाई सुनी थी तब से प्रेमचन्द्र कहीं न जाते और जो कदाचित् कहीं जाते भी तो बहुत शीघ्रही लौट आते। बाहरही से हेम का स्वर सुनकर झटपट घर में आये। स्वर्णलता पिता को देखतेही दौड़कर लिपट गई, प्रेमचन्द्र

ने गोद उठा लिया स्वर्णलता ने कहा 'बाबा । यह देखो भैया हमारे लिये धोती लाये हैं ।"

प्रेमचन्द घर में आकर न तो कुछ बोल सके और न स्वर्णलता की बात का उत्तरही दे सके प्रेमाश्रु से नेत्रयुगल भर आये । कण्ठ गद्गद हो गया । यह देखकर स्वर्णलता को आखों में भी मुक्ताफल फल आये । हेम ने मुह फेर कर आख पोंछ लिया । जिस घर में कभी २ यह मुक्ताफल फलता है वही गृहस्थ यथार्थ सुखी है और जो इससे वंचित है वही परम दीन दु:खी है ।

थोड़ी देर योंही कहते पीछे प्रेमचन्द ने हेम से बहुत सी बातें पूछी । खानाहार का समय होने से सभी ने खानाहार किया ।

स्वर्णलता पूर्ववत् हेम से विद्याभ्यास करने लगी । दिनोंदिन उसकी उन्नति देखकर हेम को बड़ा आश्चर्य होता । कभी २ प्रेमचन्द पलंग पर लेटे २ दोनों का पढ़ना सुनते उस समय प्रेमचन्द के आनन्द की सीमा न रहती ।

देखते २ हेम के छुट्टी के दिन पूरे हो गये । छुट्टी के दिन योंही बात की बात में बीतते हैं । हेम लखनऊ जाने को प्रस्तुत होने लगा ।

प्रेमचन्द ने एक दिन कहा "हेम । अबकी बेर हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे ।"

हेम ने कहा—"क्यों ?"

प्रेमचन्द्र ने कहा "देखो अब दिन पर दिन हमारी वयस बढ़तीही जाती है कुछ घटती तो है नहीं, इस समय कुछ लिख पढ़ देना उचित है। जो बिना लिखे पढ़े मर जायँगे तो जो कुछ है सो कोई तुम लोगों से ठग लेगा तो क्या करोगे ?"

हेमचन्द्र पिता के साथ जाने की बात सुनकर पहिले तो प्रसन्न हुआ पर कारण सुनकर मुहूर्त्तकाल में मुखम्लान हो गया।

प्रेमचन्द्र ने हेम के मन का भाव समझकर मुस्किराकर कहा 'वसीयतनामा लिखने में डर कौन बात का है ? कुछ वसीयतनामा लिखने से कोई मर थोड़ेही जाता है।"

हेम के आँख से आँसू की धारा बहने लगी, प्रेमचन्द्र ने हेम की आँख पोंछकर कहा " छि: यह क्या करते हो? शान्त हो। कितने लोग लड़कपनही में वसीयतनामा लिखते है एकबेर लिखकर कई बेर अदलाबदला जाता है।" हेम चुप हुआ नियमित दिन दोनों ने लखनऊ की यात्रा की।

फ़ैज़ाबादही के विनयकृष्ण बाबू लखनऊ जुडीशल कोर्ट में वकालत करते थे, प्रेमचन्द्र दो तीन दिन हेम के डेरे पर रहकर हुसेनाबाद में विनय बाबू के पास गये।

विनयबाबू ने प्रेमचन्द्र को देखतेही बड़े आदर सत्कार

से बिठलाया और सब बातों के पीछे विनय बाबू ने उनके यहां आने का कारण पूछा, प्रेमचन्द्र ने कहा "भाईसाहब! अब हमलोग हुये बूढ़े अब मौत आ खड़ी हो इसका ठिकाना नहीं इससे हमने सोचा कि वसीयतनामा न लिखेंगे तो पीछे लोग धोखा देकर न जाने क्या २ करें।"

विनय बाबू ने कहा—"यह तो बहुत अच्छी बात है वसीयतनामा लिखना कौन बड़ा काम है जब कहियेगा लिख देंगे पर इतना बतला दीजिये कि किसको २ क्या २ देने का विचार है।

प्रेमचन्द्र—"हमारे पास जो कुछ है सब हेम और स्वर्ण का बराबर बांट देने का विचार है और किसी को कुछ नहीं देना है।"

विनय बाबू ने कहा "ऐसा करने से हेम को नुक़सान होगा, भला बताइये तो स्वर्ण का विवाह होने पर हेम को उसकी ससुरार का मिलेगा?"

प्रेमचन्द्र ने कहा—"हां यह बात तो ठीक है पर इस बातका क्या निश्चय है कि स्वर्ण का विवाह अच्छे धनवानों में होगा? और फिर हेम तो मर्द बच्चा है हाथ पांव सलामत रहे बहुत कुछ पैदा कर लेगा देखो हमारे बाप तो कुछ भी नहीं छोड़ गये थे।"

विनय बाबू—"अच्छा जो आपकी इच्छा, सब मिलाकर कितना रुपया है?"

पुराने लोग सब बातों में तो बहुत स्पष्ट होते हैं परन्तु अपना धन कभी किसी से प्रकाश करना नहीं चाहते।

प्रेमचन्द्र ने हँसकर कहा—"अरे यही थोड़ा सा रुपया है सो तुम से थोड़ेही छिपा रह सकता है। जिस दिन लिखोगे उसी दिन सब बतला देंगे।"

उस दिन इतनीही बातचीत हुई। प्रेमचन्द्र के डेरे पर यथा समय वसीयतनामा लिखा गया, प्रेमचन्द्र के पास तीस हज़ार का कम्पनी कागज़ था उसमें से पन्द्रह हज़ार हेम को और पन्द्रह हज़ार स्वर्णा को दिया। यह रुपया हेम के बालिग़ होने और स्वर्णा के विवाह होने पर बाँटा जायगा।

विंश परिच्छेद।

गदाधर और श्यामा।

थाने में जो दुर्गति हुई थी उसको गदाधर ने किसी से भी न कहा—अब श्यामा और सरला को कैसे परास्त करे रात दिन मन में यही विचार किया करता। प्रमदा ने भी यही प्रतिज्ञा की थी उसने सोचा था कि स्वामी घर आने पर श्यामा को विधिपूर्वक दण्ड देंगे पर वह तो कुछ भी न कर सके तब दृढ़ सङ्कल्प किया कि किसी से कुछ

भी न कहकर जो कुछ बनेगा सो हमीं करेंगे किन्तु श्यामा से बोलने का किसी को साहस न होता।

एक दिन रात को श्यामा और सरला आहार करके सोईं थीं घर का दर्वाज़ा खुला था प्रमदा दबे पांव अपने पुराने घर में जाकर दर्वाजे के पास चुपचाप खड़ी होकर सुनने लगी कि श्यामा और सरला आपस में क्या बातचीत कर रही हैं। सरला ने कहा "श्यामा। तीन महीने हो गया उन की कोई चिट्ठी तक नहीं आई, कहां गये क्या हुआ कुछ भी न मालूम हुआ हमारा जी तो रात दिन मारे चिन्ता के सूखा जाता है।"

श्यामा ने उत्तर दिया "इसमें चिन्ता की कौन बात है? अब चिट्ठी आती होगी पहिले पहिल अकेले परदेश गये हैं जितने दिन तो देखते भी सुनते जायगे जब कहीं ठिकाने से बैठेंगे तब चिट्ठी पत्री लिखेंगे।

सरला—"हां सो तो ठीक है पर तीन महीने भी तो [illegible] नहीं होते।"

श्यामा—"यदि आई तीन महीने से एकही जगह होंगे [illegible] ठिकाना है न जाने कहां २ घूमते फिरते [illegible] २ [illegible] निश्चिन्त [illegible] [illegible]"

सरला—"[illegible] के पास [illegible] तो [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]?"

श्यामा—"इसको कौन चिन्ता है? अब भी जितना है उतने में २ महीना मजे में चल जायगा।

सरला—"श्यामा, तुम इस टूटी सन्दूक में रुपया पैसा रखती हो यह अच्छी बात नहीं है जो किसी को पता लग जायगा तो फिर एकही दिन में सब जाता रहैगा।"

श्यामा—"सन्दूक टूटी है यह कौन जानता है, हां तुम चोरी करो तो जा सक्ता है या हम चोरी करें तो जा सक्ता है और कौन चोरा सक्ता है?"

प्रमदा इतनी बात सुनकर वहां से चली गई, उसको बड़ाही आह्लाद हुआ। एकबेर तो विचारा कि आजही रात को रुपया चुरा लें, पर स्वयं जाने से कहीं पकड़ न जायँ इस भय से उस दिन चुपचाप रही दूसरे दिन सवेरे शशि-भूषण के कचहरी चले जाने पर गदाधर और मां को बुला कर परामर्श किया, गदाधर मारे हर्ष के फूलकर कुप्पा हो गया बोला—"जिजिया टुम को कुछ न करना होगा हम अकेलेही सब कर लेंगे पर जो डरवज्जा खुला मिलेगा टो।"

गदाधर की मां ने कहा "अरे दरवज्जा तो रोजही खुला पड़ा रहता है पर गदाधरचन्द्र खूब होशियार रहना, श्यामा जो जागती रहै तो मत जाना।"

गदाधर ने कहा "अह उसका कौन डर है? अरे हम टेन पीट कर न जायँगे कि जो ढर भी ले टो एक सटका मे निकल आवेंगे।"

प्रमदा द्वार पर खड़ी थी, दूर से श्यामा को आते हुये देखकर धीरे से कहा "गदाधरचन्द्र चुपचुप" गदाधर चुप हो गया। फिर प्रमदा ने उच्चस्वर से कहा "क्यों भैया गदाधरचन्द्र आज तुम घर जाने कहते थे सो जाओगे न?"

गदाधर ने कहा "इस वखट टो धूप बरी करी है उस वखट वेला ढले जायँगे"। सन्ध्या के कुछ पहिले गदाधर कपड़ा इत्यादि का गठरी लेकर घर जाने के लिये बाहर निकला। प्रमदा ने किवाड़ खुला रक्खा था इससे गदाधर फिर चुपचाप घर में आ गया। गर्मी का दिन; सरला और श्यामा दर्वाज़ा खोलकर सोई हैं—दोनो के बीच में गोपाल सोया है० किसी को आहट नहीं मिलती• गदाधर सुयोग पाकर रुपया निकालकर रातही रात घर चला गया। दूसर दिन सात आठ बजे गदाधर घर से फिर आया, रास्ते भर नाना प्रकार की चिन्ता करता आता था पर घर में आने पर कुछ भी गड़बड़ सुनने में न आई गांव गवई में अक्सर का तरह नित्य तो रुपये का काम पड़ता नहीं उस दिन न तो सरला को कुछ रुपये का काम पड़ा और न श्यामा ने सन्दूक खोला, इससे उस दिन कुछ न हुआ।

दूसरे दिन भोजन करके गुरु के यहां जाने के समय गोपाल ने कहा "मा आज महीना देना होगा। गुरुजी ने तकाज़ा कहा था पर हम भूल गये जो आज न ले जाऊंगा तो मार खाऊंगा" सरला को उस समय कुछ न था

इससे श्यामा को पुकार कर कहा "श्यामा गुरुजी का महीना गोपाल को दे देव ।"

श्यामा ने सन्दूक खोलकर देखा तो उसमें रुपया नदारद उसने समझा कि सरला ने हँसी से उसको तङ्ग करने के लिये और कहीं रख दिया है, श्यामा ने कहा—"क्यों बहूजी हमीं से चलाकी ?" ।

सरला ने कहा "यह क्या कहती हो श्यामा ।"

श्यामा "हां हां तुम विचारी भला क्या जानो" सरला ने कहा "श्यामा सचमुच हमें कुछ नहीं मालूम—क्या हुआ क्या ?"

श्यामा ने सरला का मुंह देखकर समझा कि सरला सच कहती है, तब कहा "तुमने रुपया निकालकर कहीं दूसरी जगह तो नहीं रक्खा ?'

सरला ने कहा—"हम तो दो तीन दिन से सन्दूक के पास भी नहीं गई ।"

श्यामा ने कहा—"रुपया तो चोर ले गया" दोनों घबड़ाकर सन्दूक में रुपया खोजने लगीं पर कहीं न मिला, सरला का मुंह सूख गया हवाई उड़ने लगी, कातरस्वर से बोली—"श्यामा अब क्या होगा ?"

श्यामा ने कहा—"कुछ नहीं यह काम उसी कलमुंहे बाम्हन का है, गदाधर के सिवाय और किसी का काम

नहीं, इतने दिन तक तो नहीं एकबारगी परसों घर काहे गया—अब हमें जान पड़ा उस दिन वह लोग फुस २ करके सलाह करते थे जब हम उधर गये तो चिल्ला २ कर बात करने लगे, अच्छा देखो अभी हम थाने में जाती हूँ देखें तो सही यह कैसा बाम्हन है।"

यह कहकर श्यामा बाहर निकली "प्रमदा गदाधर और उसकी मां दो दिन से बराबर चौकी दे रहे थे कि कब पता लगता है और क्या करती है, आपाततः कोलाहल सुनकर तीनों के तीनों बड़े प्रसन्न होकर हँसने लगे।

श्यामा ने बाहर निकलकर कहा "हमें पता लग गया कि किसने रुपया लिया है, यह सब गदाधर का काम है उस दिन घर गया था । मानो कोई जानता थोड़ेही है। अभी से कहते हैं भला चाहो तो रुपया हमारा दे देव नहीं तो मैं जाती हूँ थाने में, फिर हम किसी को भी न छोड़ेंगे सब का नाम लिखा देंगे।"

गदाधर ने बाहर निकलकर कहा "हैं क्या बक २ करती है? टेरा रुपया किसने लिया है डेख जो सब हम को चोर कहैगी टो हमी ठाने में जाके टुझको ढँढवा डेंगे हां।"

श्यामा—"तुमको हमारे लिये थाने में न जाना पड़ेगा। उस दिन तो थाने में गये थे न फिर क्या कर लिया।"

गदाधर ने सोचा श्यामा हमको पहिचान गई है अब विशेष बोलने का काम नहीं है, इससे झगड़ा करेंगे तो हमारी सब कलई खोल देगी । इसी भय के मारे चुप चुपाता घर में घुस गया श्यामा ने कहा "लेव हम जाती हैं थाने में हम किसी को भी न छोड़ेंगी सब का नाम लिखावेंगी और घर में खानातलाशी करावेंगी तभी मानोगे।" श्यामा यह कहती हुई बाहर निकली इतने में शशिभूषण भी कचहरी से आ गया । पुलिस और खानातलाशी का नाम सुनकर कहा "अब आज और क्या हुआ ?" ।

श्यामा ने कहा—"गदाधर ने हमारा रुपया चोराय लिया है जो भला चाहै तो धीरे से हमारा रुपया निकाल दे नहीं तो अब हम थाने पर जाती है फिर एको करम न छोड़ेंगी ।"

शशिभूषण ने कहा "तुम हमारे साथ चलो पहिले कुछ अनुसन्धान कर लें फिर तुम थाने में जाना ।" श्यामा शशिभूषण की बात पर फिर आई ।

शशिभूषण ने कपड़े उतारे—श्यामा ने गदाधर का घर जाना और उनलोगों का परामर्श करना और उसके पीछे रुपये का जाना सब शशिभूषण को कह सुनाया । शशिभूषण ने यह सब सुनकर इस विषय में स्वेतक्ष्या कुछ न कहकर श्यामा से कहा "श्यामा यह रुपया लो, गोपाल की मा गुहना के यहां भेज दो हम भोजन करने के पीछे

इसका विचार करेंगे । श्यामा ने ऐसाही किया, शशिभूषण ने भोजनोपरान्त प्रमदा से कुछ न कहा । कचहरी जाने के समय श्यामा को पुकार कर कहते गये कि "श्यामा रुपये का तो कुछ पता लगा नहीं पर पुलिस में जाकर बखेड़ा करने का कुछ काम नहीं है, तुम्हारा जितना रुपया गया है हम कचहरी से आकर सब दे देंगे" । कचहरी से आकर शशिभूषण ने फिर श्यामा को बुलाकर रुपया गिन दिया ।

एकविंश परिच्छेद ।

गोपाल के दो मा ।

शशिभूषण के घर से थोड़ीही दूर पर बाबू रामचन्द्र का मन्दिर था, वहीं गुरुजी पढ़ाते थे । पचास साठ लड़के पढ़ते थे, गोपाल भी वहीं जाता था लड़के लोग दोनों ओर श्रेणीबद्ध बैठे पटिया पर लिखते पढ़ते हैं और गुरुजी बीच में एक चौकी पर बैठे हैं । एक हाथ में बेंत दूसरे में हुक्के की नली है बीच २ में चौकी पर बेंत पटककर 'लिखे जा लिखे जा, कहकर सिंहनादपूर्वक शोभा बढ़ा रहे हैं ।

लड़के लोग चिल्ला चिल्लाकर अपने ज़ोर भर गला फाड़ फाड़ कर पटिया पर लिखकर पढ़ते और मिटाते हैं ।

कोई एकाड़े एक दुकड़े दो तिकड़े तीन * करके कोलाहल करता है कोई सवैया डेउढ़ा ढैया पौना इत्यादि

---

* एक का पहाड़ा ।

घोख रहा है। कोई जोड़ती कोई बाकी कोई गुणा और कोई भाग के भवँरजाल में गोते लगा रहा है, किसी लड़के को गुरुजी ने किसी दूसरे लड़के की परीक्षा लेने की आज्ञा दे दी है वा किसी को कुछ याद करा देने कहा है वह अपने को सिद्ध समझकर उस पर रोब जमा रहा है।

कोई ककहरा बड़े रंग से इस भांति रट रहा है "करे, चिकन्ने का, कन्नून का, रेसो कि, दिर्घों की, तारे कु बाजन कू एकमद के, दोले वी, कनमद को दुमीतो की मस्ते कं दु-वांसी का:" † कोई इनसे बढ़कर है, वे नाम लिख रहे हैं और जिनकी विद्या सीमा तक पहुंच गई है वे तो दाता कर्णजी बन गये हैं किसी को लाखों रुपये कर्ज दे रहे हैं किसी को गाव के गाव का माफी पट्टा लिख रहे हैं किसी के जिम्मे पाच लाख पचपन हजार पाच सौ पचास रुपये पाच आना बाकी गिरा रहे हैं किसी पर लाखों रुपये को

---

† प्राचीन रीति ककहरा पढ़ाने की यही है परन्तु इन सांकेतिक शब्दों का अर्थ ठीक नहीं प्रतीत होता जहां तक समझ में आया लिखा जाता है, चिकन्ने=बिना कन्ना के कन्नून=कन्ना लगा—रेसो=ह्रस्व, दिर्घों=दीर्घ—तारे= [illegible]—पा [illegible] एकमद=एकमद लगाने से—दोले=दो [illegible] कनमद=कन्ना और मद लगाने से—दुमीतो=दो [illegible]—मस्ते=मस्तक पर लगाने से—दुवांसी=दो अर्ध

नालिश हो रही है किसी को डिगरी और किसी को जायदाद पर कुर्की हो रही है।

इतने में निधिराम ने बगल में पटिया दाबे दहिने हाथ में बोरका (खड़िया पीसकर स्याही बनाई हुई दावात) लटकाये दर्शन दिया। गुरुजी देर हो जाने के कारण आग बबूला हो गये औ बड़े आदर से कहा "बचा। जरा इधर तो आना" यह हुक्म पास करके गुरुजी लगे बेत कँपाने।

निधिराम के प्राण उड़ गये मुंह सूख गया पर गुरुजी का हुक्म टालने की सामर्थ्य किसको? बिचारा, धीरे २ काँपता हुआ इजलास के पास बढ़ा।

गुरुजी ने बेंत फटकार कर कहा—"क्यों बे! आज एतनी देर क्यों की?"

निधिराम के शरीर में मानो प्राण हई नहीं, बहुत धीमे स्वर से कहा—"गुरुजी तमाकू मिली नहीं ओकी खोज में इतनी देर भई।"

एकही बात में गुरुजी का क्रोध शान्त हो गया नारियल निधिराम के हाथ में देकर कहा—अच्छा अपनी तमाखू एक चिलम भर ला, जो तमाखू अच्छी होगी तौ तो ठीक है नहीं तो बचा आज तुम्हारा हाड़ मास अलग कर देंगे।"

निधिराम के तो प्राण आये, पटिया बोरका फेंकफांक नारियल लेकर तमाकू भरने चला।

आड में आकर तमाकू भर दो चार दम लगाकर गुरु जी के पास ले चला । निधिराम को अत्यन्त कडुई तमाकू पीने का अभ्यास था उसने समझा सब को यही अच्छी लगती है । नारियल गुरुजी के हाथ मे देकर हृष्ट चित्त से अपने स्थान पर बैठने चला ।

गुरुजी ने दोही तीन दम खींचकर निधिराम को पुकारा । बिचारे का प्राण फिर सूख गया, मनही मन बिचारने लगा—आज कौन चण्डाल का मुंह देख के सबेरे उठे ? किन्तु सोच विचार से क्या होना है धीरे २ कॉपता हुआ हुजूर में हाजिर हुआ ।

गुरुजी ने कहा—"क्यों रे पाजी । यह तमाकू हमारे लायक है ?"

निधिराम—"हम का करैं गुरुजी, कल हाट से यही तमाकू तो बाबू ले आये हैं ।"

गुरु—"अच्छा देख तेरे बाबू कैसी तमाकू लाते हैं सो हम अभी तुझको दिखाते हैं ।"

बात पूरी न करते करतेही गुरुजी ने सड़ासड़ कई एक हाथ जमाही तो दिये ।

गुरुजी ने निधि को मारकर वीरभाव धारण किया सब से पुकार कर कहा—"जिसने २ तेहवारी का पैसा न दिया होय वह अभी दाखिल करे ।"

साल में जितने तिहवार हैं सब पर गुरुजी तेहवारी का पैसा सब लड़कों से वसूल करते हैं. जो बाप मां नहीं देते तो गुरुजी लडकों से चोरी करके लाने का उपदेश देते हैं जो पैसा न मिले तो कोई वस्तुही सही लडकों को गुरुजी को प्रसन्न रखना और परमेश्वर को प्रसन्न रखना समान है।

होली को तिहवारी गोपाल ने नहीं दी थी, गोपाल से गुरुजी ने कहा –"क्या गोपाल तुम्हारा पैसा कहां है?"

गोपाल ने कातरस्वर से कहा—"गुरुजी कल ले आवेंगे—मार के डर से कल देने को तो कह दिया पर कल कहा से देंगे।" इसका कुछ ठीक नहीं, गुरुजी ने कहा—"देखो तीन दिन से तुम टालटूल रहे हो जो कल न लाओगे तो निधिराम की ऐसी तुम्हारी भी दशा होगी।"

गोपाल ने खडे होकर कहा—'गुरुजी कल जरूर लावेंगे।

छुट्टी होने पर घर जाने के समय गोपाल ने भुवन नामक एक लडके से कहा—'भुवन भैया। जो तुम्हारे पास एक पैसा हो तो हमको उधार देव, नही तो कल हमारी पीठ की खाल न बचने पावेगी।"

भुवन ने कहा—"अपनी मा से लेके क्यों नहीं देते?"

गोपाल—"मा के पास पैसा होता तो तुमसे क्यों मागते?"

भुवन—"तो अपना जलपान का पैसा दे देव एक दिन जलपान न करना।"

गोपाल—"हमको जलपान का पैसा नहीं मिलता जो मिलता होता तो तुम से न मागते।"

भुवन—"तो फिर जलपान काहे से करते हो? आज घर जाकर क्या खाओगे?"

गोपाल—"यह तो हमें नहीं मालूम, जो कुछ होगा सो मां देगी, जो न होगा तो कुछ न खायँगे।"

भुवन—"तो घर जाके खाने को मागते हो कि नहीं?

गोपाल—"नहीं।"

भुवन—"क्यों?"

गोपाल—"जो मागते है और घर में कुछ नहीं रहता तो मां रोने लगती है, मां का रोना देखकर हमसे नहीं रहा जाता, हमें भी रोलाई आने लगती है, इसी से नहीं मागते, एक दिन हम और बिपिन एक साथ घर गये, बिपिन मिठाई लेकर खाने लगा, मां हमको कुछ न दे सकी इसलिये रोने लगी, तभी से एक साथ घर नहीं जाते जब समझते हैं कि बिपिन खा पीकर खेलता होता तब घर जाकर हम भी खेलने लगते हैं जो कुछ होता है तो मा पुकार कर खिला देती है जो नहीं होता तो नहीं खाते।" यह कहते २ गोपाल की आंख से आंसू बहने लगा।

गोपाल को रोते देख भुवन का सरल चित्त द्रव हो गया। भुवन ने कहा "क्या विपिन अपनी मिठाई में से तुमको नहीं देता ?"

गोपाल ने कहा—"वह तो देना चाहता है पर बड़ी मा नहीं देने देतीं, विपिन को अपने सामने बैठाकर खिलाती हैं जिसमें कहीं हमको न दे दे।"

भुवन—"अच्छा चलो हमारे घर चलो हम तुम दोनों जने बाँटचोट कर खायँगे और मा से तुमको पैसा भी दिला देंगे।"

गोपाल "तुम्हारी मां से मागेंगे तो वह न देगी, जो तुम को देना हो तो चलो हम चलें।"

भुवन—"अच्छा चलो हम्हीं देंगे।"

दोनों अत्यन्त उदासचित्त घर गये गोपाल बाहरही ठहर गया और भुवन ने भीतर मां के पास जाकर गोपाल से जो सुना था सब कह सुनाया। उसने गोपाल को भीतर बुलाने कहा। भुवन तुरन्त गोपाल को बुलाकर भीतर ले गया।

भुवन की माता गोपाल को उदासीनमुख और डबडबाई आँखें देखकर अत्यन्त दुःखित हुई, दोनों हाथ पकड़कर कहा—'गोपाल तुम दोनों एकहे गुरु के यहां से आये फिर तुम बाहर क्यों ठहर गये थे ?"

गोपाल ने कुछ उत्तर न दिया।

भुवन की मा ने दोनों को खाने के लिये दिया और दो गिलास में जल दिया । गोपाल ने जल पीकर एक गिलास जल और मागा ।

भुवन की मां ने हँसते २ कहा "किससे जल मागते हो ?"

गोपाल ने नीचा सिर किये लज्जित होकर कहा— "आपसे ।" भुवन की मा ने कहा—"हम कौन हैं यह बताये बिना हम पानी न देंगी"— गोपाल और भी लज्जित हुआ एवं आरक्तिम मुख नीचाही रहा । भुवन की मा ने पूर्ववत् मुस्कराते हुए कहा—"जब तक यह न कहोगे कि 'मा थोड़ा सा पानी देव' तबतक हम जल न देंगी ।"

गोपाल ने गम्भीरस्वर से कहा—"मा थोड़ा सा पानी देव ।"

भुवन की मा ने गोपाल को तुरन्त गोद में लेकर मुंह चूमकर एक गिलास जल और दिया ।

गोपाल थोड़ी देर तक आँख के जल के मारे कुछ देख न सका । भुवन की मां के कन्धे पर सिर रक्खे हुए आँख बन्द किये रहा, भुवन की मा की आँख से अश्रुधारा गोपाल की बाँह पर गिरने लगी ।

गदाधर । एक तुम्हरी भी मा है । प्रमदा । तुम्हारे भी सन्तान है ।

भुवन की मां ने गोपाल को गोद से उतारकर पूर्ववत् दोनों हाथ पकड़कर कहा—"गोपाल सच २ कहो कि हम रोज गुरु के यहां छुट्टी होने पर यहां से होकर घर जाया करेंगे तौ तो हम तुम्हें जाने देंगी नहीं ता न जाने पाश्रोगे।"

गोपाल ने कहा—"हा हम रोज आवेंगे।"

भुवन की मां ने गोपाल को एक रुपया देकर कहा "जाओ दोनों जने खेलो, घर जाने लगना तब हमसे मिल कर जाना।"

द्वाविंश परिच्छेद।

यात्रावालों के दल में रामचन्द्र।

रामचन्द्र कालीघाट पर बाबू के घर खाता पीता और कामकाज करता था। बाबू ने एक अच्छा बेहा मोल ले दिया था। सब के कचहरी चले जाने पर रामचन्द्र उसको बजाता, उसको देखकर जो कोई पूछता कि यह कौन है तो बाबू के बोलने के पहिलेही रामचन्द्र कहता 'हम गवैया हैं बाबू को गाना बजाना सुनाते हैं और यही बाबू के यहा रहते हैं।' वस्तुतः रामचन्द्र एक नौकर का काम करता था इसलिये बाबू भी कुछ न कहते हँसकर चुप रह जाते थे।

सड़क पर कोई फेरीवाला निकलता तो रामचन्द्र च-

वश्य उसको पुकारता, पास आने पर पूछता, "आज कहीं याचा है ? बता सकते हो ?"*

जो फेरीवाला एकबेर रामचन्द्र के पास आता वह फिर कभी न आता। रामचन्द्र भी सिवाय फेरीवालों के और किसी से न पूछता उसको विश्वास था कि फेरीवाले सभी जगह जाते हैं और इनको सब जगह की ख़बर मालूम रहती है।

क्रमश: एक महीना बीता दो महीना बीता रामचन्द्र को कहीं यात्रा की खबर न लगी। रामचन्द्र को रात को नींद न आवे दिन भर दो घडी भी स्थिर होकर न बैठे और न कहीं पता लगाने जाने का साहस होय। घर के बाहर जाने से भूल न जायँ यह चिन्ता रात दिन रामचन्द्र के मन में जागरूप रहती कहां याचा होगी वहां कैसे जायँगे इसका भी पता लगाये बिना काम नहीं चलता।

एक दिन रामचन्द्र सबेरे बैठा तमाकू पी रहा था और कहां यात्रा होगी इसकी चिन्ता कर रहा था कि बाबू ने बाहर के मकान पर पुकारा "रामचन्द्र रामचन्द्र" रामचन्द्र

---

* जैसे इस देश में रामलीला होती है वैसेही बङ्गाल प्रान्त में यात्रा होता है, यह एक नाटकाभास है। इसमें [illegible] तथा सामाजिक बहुतसी नक़लें होती हैं, नाना प्रकार के [illegible] बनते हैं।

एकाग्रचित्त होकर चिन्ता कर रहा था इसलिये बाबू की पुकार न सुनी बाबू ने पास आकर पुकारा रामचन्द्र ने पीछे फिर कर बाबू को देखा बाबू को धोती दुपट्टा पहिरे और हाथ में छड़ी लिये देखकर रामचन्द्र ने पूछा "आप कहां जायँगे? हमको क्यों पुकारते थे?"

बाबू ने कहा—"हां चलो यात्रा देखने चलें तुम यात्रा देखने को बड़े व्याकुल थे न?"

रामचन्द्र ने कहा—"जी हां जी हमको भी ले चलिये तो बड़ा अच्छा होय।"

बाबू ने कहा—"हां हां इसीलिये तो हमने तुमको पुकारा था जल्दी चलो वहां से आकर अभी कचहरी जाना है।"

रामचन्द्र को देर क्यों होने लगी थी झट हुका रख दुपट्टा कन्धे पर डाल बाबू के पीछे हो लिया। बाबू काली जी के मन्दिर के रास्ते से चले—रामचन्द्र ने कहा "यात्रा होती कहां है?"

बाबू—"कालीजी के मन्दिर पास।"

रामचन्द्र—'ठीक कालीजी के मन्दिर पास?"

बाबू—"हां।"

रामचन्द्र—"तो आप जाइये हम कभी न जायँगे।"

बाबू—"क्यों?"

रामचन्द्र—"जिसको आँख पत्थर को होय सो दोड़जाय के कालीजी के मन्दिर मे जाय, हमारे तो बाबा चमड़े की आँख है हम तो नहीं जाते ।"

बाबू—"क्यों क्यो ?"

रामचन्द्र ने कहा –"साहब हम पहिले पहिल जिस दिन यहा आये उस दिन यहा के लोग हमारे पीछे लग गये और हमको गिरा दिया,—काम क्या था कि सेंदुर लगाना । हम क्या कहैं हमारी आँख टूटते २ बच गई जो थोड़ी देर और ठहरें तो कभी न बचें, हमने तो उस दिन से वहा जाने की कसम खाई ।"

बाबू ने हँसकर कहा—"तुम हमारे संग आओ तुम से कोई न बोलेगा ।"

रामचन्द्र—"ऐसे तो बिधु भैया ने भी कहा था पर विपत्त पड़े पर तो ठहर सके नहीं, छोड़कर चल दिये जो कहीं हमारा देश होता तो हम मजा दिखाय देते ।"

बाबू—"तुम्हारे भाई भी तो तुम्हारेही ऐसे होंगे वह भला क्या बचाते तुम हमारे साथ आओ डरो मत ।"

रामचन्द्र—हमारे भैया ऐसे वैसे नहीं हैं, उन्होंने बहुत गाड़ी घोड़ा देखा है ।"

बाबू—"क्या गाड़ी घोड़ा देखनेही से ग़ज़रदार होता है अच्छा अब तुम्हें चलना हो तो चलो नहीं तो हम जाते हैं ।"

रामचन्द्र को यात्रा देखने की भी बड़ी इच्छा और डर के मारे पैर भी न बढ़े, थोड़ी देर चुपचाप खड़ा हो उसने सोच विचार कर पूछा—"बाबू सच २ बताओ कोई डर तो नहीं है।"

बाबू ने उत्तर दिया "कै बेर कहना होगा?"

रामचन्द्र बाबू की बात पर भरोसा करके पीछे २ हो लिया, यात्रा जहां थी वहां रामचन्द्र एकबेर झाड़ फ़ानूस की सजावट देखे, एकबेर यात्रावालों की ओर देखे और एकबेर दर्शकमण्डली को देखे और एक २ बात का प्रश्न बाबू से करने लगा। थोड़ेही देर में बाबू को विरक्त कर दिया इसलिये बाबू ने रामचन्द्र से कहा "चलो अब घर चलें।"

रामचन्द्र ने कहा—"भाई अब यहां आकर यात्रा पूरी देखे बिना तो नहीं चलते।"

रामचन्द्र की बात सुनकर बाबू ने प्रस्थान किया। जाने के समय कहा—"क्यों रामचन्द्र रास्ता तो चीन्हते हो न?"

रामचन्द्र ने उत्तर दिया न चीन्हेंगे तो इतने आदमी हैं किसी से पूछ लेंगे।

बाबू -"क्या पूछोगे।"

रामचन्द्र "बाबू का घर।"

बाबू "कौन बाबू का?"

रामचन्द्र—"जो बाबू कचहरी में काम करते हैं।"

बाबू नें हँसकर कहा—"बस इतना कहनेही से तुम हमारे घर पहुंच जाओगे?"

रामचन्द्र ने कहा—"काहे हँसे क्यों? क्या और भी कोई यहां कचहरी मे काम करता है? यहा के कचहरी हैं? हमारे गाव में तो एक कचहरी है।"

बाबू ने कहा—"अब इसका हिसाब तो हम इस समय नहीं दे सकते। खुलासा बात यह है कि तुम रामेश्वर बाबू का घर पूछ लेना।"

रामचन्द्र "रामेश्वर बाबू, रामेश्वर बाबू" रटने लगा। रामेश्वर बाबू का नाम मुखस्थ करने पर रामचन्द्र का एक दूसरा उद्देश्य यह था कि यह यात्रा किसकी होती है। निकटस्थ एक मनुष्य से दो बेर पूछा उसने कुछ उत्तर न दिया तब उसको चुटकी से दबाया, चुटकी भी ऐसी वैसी नहीं उस मनुष्य ने 'उह। कौन है रे?' कहकर रामचन्द्र की ओर देखा।

रामचन्द्र ने उसके कान में झुककर कहा "यह यात्रा किसकी है?" उसने कहा "क्या चुटकी काटे बिना यह नहीं पूछ सकते छ?"

रामचन्द्र ने कहा—"इतना खफ़ा काहे होते हो भाई? जो तुम्हें दरद होता होय तो तुम भी हमें काट लेव।"

एक दूसरे मनुष्य ने पुकारकर कहा—"गुल मत करो गुल मत करो।"

रामचन्द्र को और किसी से पूछने का साहस न हुआ इतने में दो मनुष्य उठकर रामचन्द्र के पास हो चले, उन में से एक ने कहा "गोविन्द अधिकारी का अब वह वखत नहीं है" रामचन्द्र ने तो मानो आकाश का चन्द्रमा हाथ में पाया। रामचन्द्र सोचने लगा कि गोविन्द अधिकारी से तो हमसे जान पहिचान है एकबर चारचश्म होनेही से काम सिद्ध होगा, हमको देखतेही पास बुला लेगा इस साले की देह में हाथ लगाने से यह खफ़ा हो गया जो कहीं पास जाय बैठें तो यह जाने कि हम कौन है? यह सोच कर रामचन्द्र एकबेर दहिने ओर और एकबेर बायें ओर देखने लगा पर आँखे चार होतीहो नहीं॰ आगे बढ़ने का भी ठिकाना नहीं रामचन्द्र एक स्थान पर खडा इधर उधर देख रहा था, इतने में यात्रा समाप्त हुई लोग बाहर जाने लगे भीडभाड कम हो गई। रामचन्द्र का अभीष्ट सिद्ध हुआ आगे बढ़कर जा बैठा।

त्रयोविंश परिच्छेद।

आशा मरीचिका।

विधुभूषण भी कुछ दिन कालीघाट में रहकर यात्रा-वालों की खोज में लगा किन्तु जहां जाता वहीं सुनता कि यात्रा तो उनके यहां आरंभिये की आवश्यकताही नहीं

पंडा—"काहो पाँचाली * सुनोगे ? हमारे देश का एक पाँचालीवाला आया है, आज उसकी लीला होगी, चलो सुन आवैं।"

विधुभूषण सदा प्रस्तुत था। सुनतेही चल खड़ा हुआ कुछ दूर जाकर पंडे ने कहा "तुम कहते थे कि यात्रा वालों के दल में नौकरी करेंगे सो एक नौकरी खाली है करो न ?"

विधुभूषण ने पूछा "वह नौकरी कहा है ?"

पंडा ने कहा—"जहा आज पाँचाली सुनने चलते हैं, वहीं है। कालह दलके अधिकारी से हमसे भेंट हुई थी; उस का घर हमारे गाव में है। उसके यहा जो सारंगिया है एक तो वह अच्छा बजाता नहीं दूसरे शराबी है। नया दल ठहरा, विना एक अच्छे गुनी के नाम नहीं हो सकता, इसीलिये हमसे कहा है कि "तुम्हारे जान में कोई हो तो लिवाते आना" पर एक शर्त है कि वह अभी महीना नहीं दे सकते जो आमदनी होगी उसमें हिस्सा देंगे। विधुभूषण ने सोचा इस समय कुछ तो ठिकाना होय न महीना हिस्साही सही। बात पूरी न होते होतेही पाँचाली दल में जा उपस्थित हुये। अभी लीला आरम्भ होने में दो घण्टे

* जैसे इस देश में रास और रासलीला के दल होते हैं वैसेही बङ्गदेश में यात्रा और पाँचाली के दल होते हैं।

की देर थी० पंडे ने दल के अधिकारी से कहा "यह लेव जिसको तुमने कहा था ले आये है ।"

विधुभूषण का वेषभूषा देखकर अधिकारी के मन में अश्रद्धा सी हुई पर उसको गोपन करके कहा "अच्छा ज़रा आप बजाइये तो सही" यह कहकर एक सारंगी दिया, विधुभूषण ने बजाया। यात्रावाला धूर्तशिरोमणि था, मनही मन परम प्रसन्न हुआ पर प्रकाश में मुंह टेढ़ा करके कहा "हा किसी तरह काम चल सकता है" पंडा की ओर फिर कर "सब बात कह दिया है ?"

पंडा ने कहा – "हा ।"

अधिकारी० -- "तो इन्हें मंजूर है ?" (विधु की ओर देख कर) "तो कब से आइयगा ?"

विधु०—"जब से कहिये ।"

अधिकारी०—"तो आजही से ।"

विधु०—"बहुत अच्छा ।"

जब से विधुभूषण इस दल में आया उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगा, देश देशान्तरों में प्रसिद्धि हो गई, चार पैसे की अच्छी आय होने लगी, रुपया हाथ में आतेही विधु का चेहरा बदल गया, धीरे धीरे प्रफुल्लता के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे, यद्यपि बहुत कुछ परिवर्तन हुआ परन्तु पूर्व के अनुसार न होते थे, संसार में [illegible] कोई बूढ़ा नहीं होता

खेल कूद आनन्द में मग्न रहता है हठात् कोई विपत्ति आ पड़ी घर का बोझ सिर पर आ पड़ा, मन चिन्ताकुल हुआ; अवस्था परिवर्तन हो चली, उसी दिन से मनुष्य दूसरा हो जाता है, विधुभूषण को भी वह दशा हुई।

सारा बोझ सिर पर आ पड़ा अब न वह हँसी है, न वह प्रफुल्लता है, न वह क्रीडा कौतुक मे आसक्ति है, एक बारगी सब परिवर्तन हो गता, एकही रात में बूढ़ा होगया विधुभूषण अलग होने के दिनही से बूढ़ा होने लगा।

रुपया पातेही सरला को पत्र लिखकर विधुभूषण ने कुछ खर्च के लिये भेजा। लिखने का अभ्यास न होने के कारण एक पत्र के लिखने में कितनाही कागज नष्ट किया एकबेर लिखा, उसका अक्षर अच्छा नहीं बना, दूसरी बेर लिखा उसका आशय ठीक नहीं हुआ तीसरी बेर लिखा उसपर स्याही गिर गई, अन्त का पत्र ठीक हुआ। बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उसको आद्योपान्त पढ़ा, सरला यह पत्र पाकर कैसी आह्लादित होगी यह सोचकर विधुभूषण के आनन्द की सीमा न रही। आँखों में मुक्ताफल उठ आये, मारे आह्लाद के अश्रुपात किये बिना न रह सका।

चिट्ठी को डाकघर मे रजिष्ट्री कराके भेज दिया।

दूसरे इतवार मे चिट्ठी का उत्तर आवेगा। विधुभूषण के लिये इतवार तीर्थस्थान हो गया, किन्तु सरला तो

लिखना जानती नहीं चिट्ठी किससे लिखवावेगी, इतने दिन में गोपाल ने लिखना सीख लिया होगा, वही चिट्ठी लिखेगा, बैठा बैठा यही सब सोच विचार किया करता।

नित्य यही सोचकर जाता कि आज पत्र आवेगा पर वहां से निराश फिरता।

आशा! धन्य तुम्हारी छलना, धन्य तुम्हारी कुहकिनी शक्ति। तुम क्या नहीं कर सकती? तुम्हारी नाईं और कौन प्रबोध दे सकता है? तुम मुमूर्षु को बल दे सकती हो, अन्धे को उठार कर सकती हो पंगु से पहाड़ लँघा सकती हो और असम्भव को सम्भव कर सकती हो, किन्तु तुम सी विश्वासघातनी भी कोई न होगी, तुम्हारा रूप देखकर लोग भूल जाते हैं पर तुम्हारा पार किसी ने नहीं पाया, जिसको बारम्बार तुम प्रवचना करती हो वह भी तुम्हारे मायाजाल से मुक्त नहीं हो सकता।

विधुभूषण डाकघर में जाते २ थक गया पर पत्र न पाया, नित्य आशा लगाकर जाता नित्य निराश हो लौटता। एक दिन पोस्टमाष्टर ने कहा "आपकी चिट्ठी वहां पहुंच गई रसीद आ गई है।'

विधुभूषण ने आग्रहपूर्वक पूछा कहां है ज़रा दिखा तो दीजिये' पोस्टमाष्टर ने रसीद दिखा दी, ऊपर लिखा था "नामालूम है" विधुभूषण बहुत देर तक एकदृष्टि से उस नाम की ओर देखता रहा।

थोड़ी देर पीछे पोष्टमाष्टर से विधुभूषण ने कहा—"आप यह रसीद हमको दे सकते है ?"

पोष्टमाष्टर ने कहा—"नहीं, यह तो हमारी रसीद है इसको किसी को देने का हुक्म नहीं है ।"

विधुभूषण क्षणकाल और सतृष्ण नेत्र से उस नाम को देखकर आर्द्रआँखें वस्त्र से पोछता डॉकघर से चला आया।

विधुभूषण का मन और दिनों की अपेक्षा आज अच्छा है ।

चतुर्विंश परिच्छेद ।

रामचन्द्र और विधुभूषण का फिर मिलन ।

हुगली ज़िले के अन्तर्गत देवीपुर गॉव मे वारयारी पूजा पर नाटकयात्रा इत्यादि होने की धूम मची । सन्ध्या से बारह बजे रात तक नाटक हुआ, नाटक देखकर सब लोग परम प्रसन्न हुये गाने की अपेक्षा बजाने की प्रशंसा अधिक हुई इसी दल में विधुभूषण वाद्यकर था ।

आधीरात पीछे यात्रा आरम्भ हुई। सब लोग यात्रा देखने गये विधुभूषण भी गया, यात्रावाले सब आकर उपस्थित हुये, बाजा बजने लगा अत्यन्त क्षपकाय छींट का चपकान पहिरे बड़ी २ ज़ुल्फें रक्खे सिर पर विलक्षण मुकुट पहिरे रामजी आकर "हनुमान, भैया हनुमान।" कहके पु

कारने लगे। दो तीन बेर पुकारकर चुप हो गये फिर वही 'हनुमान भैया, हनुमान भैया।' पुकार मचाई। रामजी इतने कृश और दुर्बल थे कि एकबेर हनुमान पुकारने से सिर से पैर तक कांप उठता, मुंह लाल हो जाता किन्तु हनुमान को दया न आती कोई उत्तरही न मिलता, लक्ष्मणजी बैठे ऊंघ रहे हैं रामजी गला फाड रहे हैं किन्तु हनुमान आतेही नहीं। समाजिकों में से एक तानपूरा फेंक हनुमान को बुलाने दौडा। पाठकगण चलिये देखें हनुमान क्या कर रहे हैं।

रामचन्द्र के गोविन्द अधिकारी के दल में मिलने का वर्णन पहिले हो चुका है, किन्तु रामचन्द्र की विद्या बुद्धि देखकर गोविन्द अधिकारी ने अपने दल में न रखकर उस की सिफारिश एक दूसरे यात्रा के दल में कर दी। रामचन्द्र चार रुपया महीना पाता, कहीं तमाकू भर देता कहीं मजीरे से ताल देता, कभी २ सारङ्गी भी बजा देता बिचारा विदेश में क्या करता? किसी प्रकार अपना पेट पालता था।

अब तक भी कोई पात्र बनने का अवसर नहीं पड़ा, आज दूसरे किसी के न रहने से अधिकारी ने रामचन्द्र से हनुमान बनने को कहा। रामचन्द्र यह सुनकर बड़ा रुष्ट हुआ आँखें लाल करके कहा "हमसे [illegible] बनने का करार नहीं है और जो कोई राजा बनना होय तो बनें सो, [illegible] हनुमान [illegible]।"

अधिकारी ने कहा "इसमें बुराई क्या है? यात्रा के दल में तो सभी को स्वरूप बनना पड़ता है और जब बने तो फिर जैसा हनुमान वैसाही राजा ।"

रामचन्द्र ने कहा 'बाबा हम हनुमान बन के मुंह में स्याही चूना पोतकर उछलते कूदते इतने आदमियों के बीच में न जायँगे तुम्हे रखना होय रक्खो न रखना हो नहीं सही ।

अधिकारी बिचारा बड़ी विपत्ति में पड़ा, इसलिये कहा 'अच्छा जो तुम हनुमान बनो तो आज से तुमको पाच रुपया महीना मिलेगा ।"

रामचन्द्र सम्मत तो हुआ पर लाज के मारे पैर आगे न बढता, दो तीन समाजिक जाकर हनुमानरूपी राम-चन्द्र को खींचकर बाहर लाये।

रामचन्द्र ने कहा—"क्यों भैया इतनी देर क्यों लगाया?"

रामचन्द्र—"हा हमाराज आते तो थे" इतना कहते २ उस्की दृष्टि विधुभूषण पर जा पड़ी, रास्ते मे सामने सर्प देख कर पथिक जैसे चौंक उठते है वैसेही रामचन्द्र चौक उठा। रामचन्द ने सोचा विधुभूषण को सब खबर लग गई। गोविन्द अधिकारी के यहा नौकरी नहीं हुई यहां क्या वेतन मिलता है यह सब विधुभूषण को विदित हो गया ।

रामचन्द्र ने एक मुहूर्त्त मात्र में यह सब सोच विचार

कर रामजी की बातों का उत्तर न देकर सभास्थित लोगों की ओर हाथ जोड़कर कहा—"हमें ज़बर्दस्ती हनुमान बनाया है।"

हनुमान की बात सुनकर सब लोग हँस पड़े, रामचन्द्र पूर्ववत् हाथ जोड़ उच्च स्वर से कहने लगा, "हम सौगन्ध खाकर कहते हैं कि हम हनुमान नहीं हैं हमारा नाम रामचन्द्र है गोरखपुर के ज़िले में हमारा घर है हम को ज़बर्दस्ती सभों ने पकड़कर हनुमान बना दिया है।"

सब लोग और भी ज़ोर से हँसने लगे, रामचन्द्र लजा कर चुप हो गया।

रामजी ने पुकारा—"वत्स हनुमान।"

रामचन्द्र—"कौन है तुम्हारा हनुमान? देखो हमें हनुमान हनुमान मत कहना, नहीं तो अच्छा न होगा।"

रामजी—(अधिकारी के सिखाने से) "भैया इस विपत्ति में सहायक हो, यह लड़ाई तुम्हारे बिना न होगी।"

फिर हनुमान ने कहा "तुम्हारी लड़ाई होय या न हो [illegible] [illegible]।"

[illegible] खुशामदों से रामचन्द्र ने युद्ध में नाम मात्र सहायता किया। ज्यों त्यों [illegible] संग्राम पूरा या [illegible] बन्द हुई रामचन्द्र हनुमान का [illegible] [illegible] बैठ गया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—"रामचन्द्र तुम यहाँ कहाँ से आ [illegible]

रामचन्द्र—चलो चलो तुमको हमसे कौन मतलब है, भला उनलोगों ने तो हमको पहिचाना नहीं हँस दिया, तुम जानबूझ कर काहे हँसे ? तुम्हें और लोगों से हमारा हाल कहना उचित था कि हँसना ?

बिधुभूषण ने कहा—"भाई हम यह समझकर कि तुम रामचन्द्र हो नहीं हँसे, बाकी तुम्हारी बात सुनकर हँसी आ गई।"

रामचन्द्र—"हमारी बात पर हँसी का सबब क्या है ? हम क्या पागल हैं ?"

बिधुभूषण—"हम कब पागल कहते है।"

रामचन्द्र ने कहा—"हम अब इस दल में कभी न रहेंगे।"

बिधुभूषण ने कहा—"रामचन्द्र, तुम चलो हमलोगों के समाज में रहना वहा कुछ बनना न पड़ेगा, यहां महीना क्या मिलता है ?"

रामचन्द्र ने कहा—"छ रुपया"—रामचन्द्र ने दो रुपाया महीना अपनी ओर से बढ़ाकर कहा ऐसा प्रायः बहुत लोग कहते है कुछ रामचन्द्र ने नई बात नहीं की।

बिधुभूषण इस समय उस समाज के प्रधानों में हो गया था उसने कहा "अच्छा अपना कपड़ा लत्ता ले आओ और जो कुछ पावना हो वह भी लेते आओ, हमलोग तुम्हें

छः रुपया महीना देंगे' यह कहकर विधुभूषण अपने डेरे में चला गया।

रामचन्द्र ने सोचा—"हमने बड़ा गदहापन किया जो हम दो रुपया और बढ़ा के कहते तो आठ रुपया महीना मिलता, हाय! हाय! बड़ी भूल हुई।"

रामचन्द्र पछताता पछताता डेरे पर गया अधिकारी से कहा "हमारा हिसाब चुका देव अब हम तुमलोगों के साथ न रहेंगे।" अधिकारी भी बहुतही चिढ़ा था तुरन्त हिसाब का रुपया आगे धरा। रामचन्द्र ने अपनी सारङ्गी ले विधुभूषण के डेरे पर आ उसे पुकार कर कहा—"भाई साहब हम अब जाते हैं।"

विधुभूषण—"कहां जाते हो?"

रामचन्द्र—"जहां जगह मिले।"

विधुभूषण—"इसके क्या माने?"

रामचन्द्र ने मुंह फुलाकर कहा—"हम को अब जी कर क्या करना है? घर में रहने न पाये परदेश में आये तो यहां भी सुख न मिला, अब जाते हैं जहां कोई जान पहिचानवाला न होगा वहीं रहेंगे।"

विधुभूषण—"अभी अभी आये तो कहते थे कि हमारे स- [illegible] अब से सब सुनकर ठीकठाक कर दिया अब ऐसा क्यों कहते हो?"

जब लङ्का विजय करके अयोध्या आये हैं उस समय अपने भाई भरतजी से हनुमानजी की वीरता का वर्णन करते हैं इस गीत में वही वर्णन है ।"

रामचन्द्र ने विस्मित होकर कहा—"सच कहो ?"

विधुभूषण ने कहा—"हां—हम सब ठीक कर आये, कोई न कहेगा पर यह गीत कभी मत गाना नहीं तो फिर लोगों को याद आ जायगी तो हम नहीं जानते ।"

रामचन्द्र ने कहा—"अच्छा आज से फिर कभी इसको न गावेंगे ।"

पञ्चविंश परिच्छेद ।

श्यामा ने किसका क्या किया है ?

विधुभूषण को घर से गये चार बरस हो गये, ज्यों २ दिन बीतते हैं त्यों २ सरला की उत्कण्ठा बढ़ती है एक महीना दो महीना चार महीना योंही करते २ चार बरस बीत गये, विधुभूषण का कोई पत्र भी न आया, ऐसा कोई देवी देवता नहीं जिसकी आराधना सरलाने न की हो वा ऐसी कोई मान मनौती नहीं जिसे न माना हो, चिन्ता के मारे शरीर शीर्ण हो चला, एक स्थान पर बैठी तो फिर उठना नहीं, कोई बोले नहीं तो कुछ बोलना नहीं अन्न पर रुचि नहीं रात में नींद नहीं जाड़े के दिनो में रात को

पसीने से बिछौना भींग जाता। उसका शरीर ज्यों २ शीर्ण होने लगा मुखश्री त्यों २ बढने लगी तीसरे पहर को आखें कुछ लाल हो जायँ शरीर कुछ गर्म हो जाय। सरला के शरीर में यक्ष्मा का सूत्रपात हुआ।

अब तक श्यामा के रुपये से काम चला, अब वह बल भी असफल चला; सरला की चिन्ता भी बढने लगी पति विदेश में उसकी कुछ खबर नहीं यहां घर में अन्न भी नहीं; सरला का रोग बढ़ने लगा ऐसी क्षीण हो गई कि बैठे तो सहज में उठा भी न जाय। अब श्यामा दोनों की माता स्वरूप हुई बड़े सबेरे उठकर सरला और गोपाल की सेवा शुश्रूषा कर बाहर निकले, किसी के यहां कुछ काम धन्धा करके अपने खाने को जो कुछ पाती वह लाकर गोपाल और सरला को खिलाती तब आप कहीं दूसरी जगह जा कर खा आती. घर में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसको बचकर दो दिन का भी काम चला सकें। इस समय श्यामाही इस परिवार की जीवन स्वरूप है।

मानभूषण सपरिवार नये घर में आ बसे, गोपाल के आने जाने से अब सरला को घर में अकेले रहना पड़ता है। पहिले तो अकेला रहने में सरला कभी न डरती पर ज्यों २ [illegible] होने लगा त्यों २ डर लगने लगा। सरला को भान पड़ता मानों कोई आया है पर किसी को न देखता [illegible] पत्ता [illegible] से चौंक उठती, गोपाल को अब

कुछ समझ आ गई है। दुःख में पड़ने से छोटी अवस्था में बुद्धि परिपक्व हो जाती है । गोपाल चुपचाप सरला के सिरहाने बैठा रहता।

सरला एकबारगी चौंक उठी, गोपाल ने पूछा—"मां! ऐसा क्यों करती हो ?"

सरला ने कहा—"नहीं तो कुछ तो नहो, बच्चा तुम क्या यहीं बैठे हो ?"

गोपाल ने कहा—"हां मां तुमको अकेली छोड़ के कहां जायँ।"

सरला ने कहा—कितनी देर से बैठे हो ? क्या खेलने नहीं गये ?"

गोपाल—"अब हम खेलने कूदने नहीं जाते।"

सरला क्षण २ में पहिले की बात भूलने लगी, गोपाल के साथ बात करके सो गई क्षणकाल पीछे आंख खोल चकरिया कर चारोंओर देखने लगी। गोपाल ने पूछा—"मां क्या देखती हो ?"

सरला—"नहीं बच्चा कुछ तो नहीं तुम यहीं बैठे हो ?"

गोपाल—"हां हम तो तुम्हारा बिछौना छोड़कर कहीं जाते नहीं।"

सरला—"हां हां हम भूल गये, क्यों बच्चा तुमने अभी कुछ खाया कि नहीं।"

गोपाल—"अम्मा आती होगी तब खाने को लेंगे ।"

सरला—"श्यामा अभी तक नहीं आई आहा। हमारा बच्चा कैसा क्लेश पाता है । सवेरा छोड़कर दोपहर भी हो गई अब खिलाकर फिर जायगी तो संझा का कामका करके फिरैगी, गोपाल तुम हमसे सौगन्ध तो खाओ।"

गोपाल—"क्या सौगन्ध मां ?"

सरला—"यही सौगन्ध खाओ कि जो हम मर जायँ तो तुम श्यामा को भक्ति करना तुम जितना हमको चाहते हो उतनाही उसको भी चाहना।"

गोपाल—"इसके लिये सौगन्ध का क्या काम है, क्या हम नहीं जानते कि जैसी तुम हमारी मा हो वैसेही श्यामा भी हमारी मा है।"

सरला के आँखों में मुक्ता की नाईं अश्रुबिन्दु दिखाई दिये आंख बन्द कर ली गोपाल ने अपनी धोती से सरला के आंसू पोंछ दिये, सरला ने थोड़ी देर पीछे कहा—बाबा तकिये पर तकिया रखकर तनिक ऊँचा कर देव तो थोड़ी देर उसके सहारे बैठें।'

गोपाल ने तकिये पर तकिया रखकर ऊँचा कर दिया—सरला पलङ्ग की पाटी पकड़कर बड़ी कठिनता से तकिये के सहारे उठ बैठी—उठने के परिश्रम से साँस

फूलने लगा—भ्रान्ति दूर होने पर सरला ने कहा "बाबा जरा हमारी गोदी में तो आ बैठो अभी तक तुम्हें गोदी लेने का बल हमको है चार दिन मे यह भी न रहेगा—आओ एकबेर प्यार तो कर लें।"

गोपाल सरला की ओर से मुँह फेरकर चुप हो रहा गोपाल को बोलने का अवसर नहीं था क्योंकि आँखों से झरझर आँसू बहने लगा।

सरला समझ गई—गोपाल का हाथ पकडकर अपने बाएँ ओर बिठा लिया गोपाल सरला की गोद में सिर रखकर चुपचाप अश्रुवर्षण करने लगा।

सरला ने हाथ से गोपाल का मुंह उठाकर अपने आँचल से आसू पोछकर हँसते हुए कहा—"हां डरते क्यो हो? क्या हम तुमको छोडकर कहीं जा सकते हैं? अब हम चार दिन मे अच्छे हो जाते हैं।"

गोपाल पूर्वापेचा गुरुतर वग मे अश्रुपात करने लगा सरला दोनो हाथ से गोपाल का सिर पकडकर सस्नेह बारम्बार चूमने लगी।

थोडा देर पीछे श्यामा आई, बहुत दिन पीछे सरला के मुख पर हंसी का चिन्ह देखकर उसके आनन्द की सीमा न रही श्यामा ने बिछौने के पास आकर पूछा—'बहनी! आज कैसा जी है? जो इसी तरह रोज गोपाल की गोद

में लेकर कुछ बतियाओ तो पन्द्रह बीस दिन में जी अच्छा हो जाय।"

सरला ने कहा—"श्यामा आज हम बहुत अच्छे हैं तुम्हारी ऐसी बेटी और गोपाल के ऐसा बेटा पास रहते भी जो आभागिन अच्छी न रहै वह स्वर्ग में भी अच्छी नहीं रह सकती।

श्यामा की आँखों में आँसू भरे आते थे। उसने मुंह बनाकर कहा "फिर श्यामा ऐसी बेटी! श्यामा ऐसी बेटी। कहने लगी न? भला श्यामा ने किसका क्या किया है?"

सरला ने सजल नेत्र हँसकर कहा—"सगी मां ने जितना न किया होगा उससे बढ़ के श्यामा ने किया—क्या पृथ्वी में कोई इससे बढ़ के कर सकता है?"

सरला की बात पूरी भी न हुई थी कि श्यामा वहां से रसोईंघर में चली गई। श्यामा आत्मप्रशंसा न सुन सकती। समाजसंशोधकों की भांति अपना कर्म समाचारपत्रों में छपवाती नहीं फिरती। श्यामा का दान सत्कर्म कोई देखने भी नहीं पाता और न कोई जानने पाता है। किसी पत्र में छपता भी नहीं किसी सभा की वक्तृता में उसकी प्रशंसा भी नहीं होती। कागजों में छपे सत्कर्म उसी कागज़ के साथ मिट्टी में मिल जाते हैं परन्तु श्यामा। तुम्हारी अक्षयकीर्ति वह अक्षय पुरुष अपने अक्षय कागज़ पर लिखते जाते हैं।

षड्विंश परिच्छेद।

शशिभूषण का नया घर।

शशिभूषण के नये घर में गदाधरचन्द्र का एक अलग बैठकखाना बना० एक छोटे से कमरे में एक शतरञ्जी बिछी उसपर एक गलीचा उसपर जाज़िम उसपर एक बड़ा तकिया रक्खा गया। एक कोने में चाँदी की फ़र्शी का हुक्का रक्खा० खूंटियों पर दो चार स्वच्छ धोती कुरते चादर लटकते हैं। एक कोने में दो जोड़े जूते शोभा पा रहे हैं• एक बेंत की छड़ी दीवार से लगी खड़ी है० तकिये के पास काठ का एक बक्स रक्खा है० आज गदाधरचन्द्र अभी तक बैठक मे क्यों हैं? इतनी देर तक तो गदाधरचन्द्र कभी घर में न रहते थे? उधर सूर्य्यनारायण अस्त हुये इधर गदाधर की आँखें खुलीं।

उसे निशाचर कहना चाहिये; किन्तु आज गदाधर का मुख कुछ सूखा सा क्यों है? एकबेर बैठता है एकबेर उठता है एक भाव से पांच मिनट भी नहीं रहता, बीच २ में खिडकी झाँककर रास्ते की ओर देखता है आज गदाधर किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहा है क्या? पर अभी तक तो कोई आया नहीं। गदाधरचन्द्र "अपनी ऐसी की टैसी में जाओ" कहकर उठा और खूंटी से एक धोती और कुरता लेकर पहिरा जनेऊ में लटकती ताली से बक्स खोल

कर एक बोतल और एक काँच का गिलास निकाला। दहिने हाथ से बांये हाथ के गिलास में थोड़ा सा अर्क ढालकर उसमें थोड़ा पानी मिलाकर पी गया पान करके मुंह बिगाड़कर धीरे से कहा "रामढनवां साले ने आज भी न डे के रम डे दिया है" रम होने से चाहे कि बोतल रख दें सो नहीं तीन चार बेर उसी भांति ढालकर पानी मिलाकर पिया जब देखा कि नाव की भरपूर बोझाई हो गई तब बोतल को दीपक के सामने उठाकर देखकर धीरे से कहा—"अभी डस आना से भी वेसी है" यह कहकर बोतल का काक बन्द करके सन्दूक में रख ताली बन्दकर दिया, टोपी डुपट्टा पहिर हाथ में छड़ी लेकर बाहर चला।

गदाधर की बेठक से बाहर निकलकर शशिभूषण का बेठकखाना पड़ता। क़ाजीजी के घर के चूहे भी बड़े होते हैं। दो चार उम्मेदवारों ने गदाधर को घेरा। उनलोगों से कुछ कहकर आगे बढा दो चार क़दम आगे बढ़ा होगा कि रमेश नामक कानष्टबल दिखाई पड़ा। रमेश गदाधरचन्द्र से मिलने आता था गदाधरचन्द्र ने रमेश को देखकर कहा "रमेश बाबू हैं क्या? बडा काम भया हमटो जाना कि टुम भूल गये।"

रमेश ने कहा "जब आने को कहा तो क्या हम भूल सकते हैं? हमलोग पुलिसवाले हैं जो कहते हैं वही करते हैं।"

दोनों धीरे २ गदाधर के बैठकखाने में लौट आये गदाधर ने सन्दूक खोलकर थोड़े से अर्क में पानी मिला कर रमेश को दिया।

रमेश ने गिलास हाथ में लेकर कहा "क्या है ?

गदाधर—"रम"

रमेश—"पानी मिलाया है ?"

गदाधर—"हां।"

रमेश—"अच्छा तो इसको तुम्ही पी जाओ हमलोग पुलिस
के आदमी हैं हमलोगों का बिना कड़ी मात्रा के काम
नहीं चलता।

गदाधर वह गिलास भी चढ़ा गया ? रमेश दूसरा गिलास अपने हाथ से ढालकर बिना जल मिलाये पी गया। गदाधर ने बोतल लेकर संदूक में रख रमेश से पूछा—"बस क्या छुट्टी हो गई क्या ?"

गदाधर ने कहा "नहीं नहीं खुला रक्खें कहीं कोई आय जाय इससे ढका रहना अच्छी बात है।" रमेश ने कहा "अच्छा हम एक गिलास और पी लें तब रखना।" रमेश की इच्छा पूर्ण होने पर गदाधर ने बोतल संदूक में रख कर कहा "तो अब काम की बात करना चाहिये।"

रमेश ने कहा—"काम की बात तो हमने कह दिया हमलोग पुलिस बहुत बात नहीं कहते।"

गदाधर ने किञ्चित् क्षुब्ध होकर कहा "डेखो टो भाई यह टुमारी सरासर जासटी है, काम सब टो हमने किया सारी भौकी टो हमारे सिर है फिर टुम एटना मांगोगे टो कैसे काम चलेगा।'

'रमेश ने कहा—"हमने क्या ज्यादे मांगा है भरे आज कल उनलोगों की जो दशा हो रही है हम जो उन्हीं से कह दें तो तीन हिस्सा तो वही राज़ी खुशी दे सकते हैं।"

गदाधर—"डेखो भाई हमको कीटना काम करना पडटा है? भाज भी डांक का हरकारा आया ठा सो चिट्ठी डे-कर पूछा "आप उनके कौन लगटे है?" हमने कहा "हम उनके भाई है डेखो टो भाई एटना झूठ बोल के जाल बनाय के टो हमने रुपया पाया उसमें से टीन भाग टुम मांगटे हो ऐसा होने से हमारे ऊपर बडा जुलुम होगा।"

रमेश—"तुम झूठ बोले जाल बनाया यह सब सच है पर तुमको यह सब सिखाया किसने? तुम तो चिट्ठी लेके उनलोगों को देने न जाते थे? जो हम न समझाते तो तुमको तो एक पैसा भी न मिलता न?

गदाधर—"टुमने टो कुछ बटाया नहीं ठा यह बाट टो हमको जिजिये ने बटाया ठा टुमको जो डेना पड़टा है यह टो हमारी बकूफोही से न डेना पडटा है? जो टुम से न कहटे टो टुमको क्या खबर होटी?"

रमेश—"जो हमको न बतलाया होता तो अब तक पुलिस में पकड गये होते हमी ने तुमसे कहा था कि रसीद पर अपना नाम न लिखकर गोपाल का नाम लिखो तो कोई बखेडा न होगा, क्यो यह हमी ने न बताया था ?"

गदाधर—"हां यह टो टुमने कहा ठा पर एटने के बडले टुम कैसा अन्याय चाहटे हो ? जो सौ रुपये में से चार सौ टो टुमने लिया टब बचा क्या ? और फिर उसमें से जोजो को क्या डेगे ?"

रमेश ने कृत्रिम विरक्ति प्रदर्शनपूर्वक कहा—"हम कुछ नहीं चाहते जिसका रुपया है उसी को मिले हम यही चाहते हैं चलो हमारे पास जो रुपया है सो और तुम्हारे पास जो रुपया है सब मिलाकर गोपाल और उसकी मा को दे आवें, हम ऐसा रुपया नहीं चाहते। नहीं तुम्हारा मन होय तुम सभी ले लेव हमारे मन में आवेगा सो हम करेंगे" यह कहकर रमेश उठने को उद्यत हुआ।

गदाधर ने मुस्किराकर कहा—"रमेश भाई खफा हो गये क्या ? हमने टो कोई ऐसी बाट कहा नहीं। अच्छा जिसका रुपया है उसी को डिया जायगा, बैठो टो यही बोटल भी टो खाली होना चाहिये।"

रमेश बैठ गया।

पाठकगण! आपलोगों ने समझ लिया होगा कि विधुभूषण की रजिस्टरी चिट्ठी किसके हाथ पड़ी।

विधुभूषण ने प्रतिज्ञा किया था कि बिना कुछ रुपया कमाये देश न आवैंगे, बीच में घर के खर्चवर्च के लिये थोड़ा रुपया भेजता, चिट्ठी का कोई उत्तर न मिलता पर गोपाल की स्वाक्षरित रसीद देखकर विचारता कि रुपया सरला को मिल गया। गोपाल अभी बालक है भली भांति लिख नहीं सकता इससे चिट्ठी नहीं लिखता।

विधुभूषण की पहिली चिट्ठी गदाधर के हाथ पड़ी उसने खोलकर देखा तो उनमें नोट था, गदाधर दौड़ा २ प्रमदा के पास गया प्रमदा ने चिट्ठी लेकर रसीद पर दस्तख़ करदेने का परामर्श दिया० नोट पाकर गदाधर के आनन्द की सीमा न रही, प्रसन्नचित्त होकर अपने नाम से रसीद लिखने का विचार करता हुआ बाहर आया० बाहर आकर देखा कि उसका परम बन्धु रमेश आया है, उससे सब वृत्तान्त कहकर चिट्ठी दिखलाया, उसने रसीद पर अपना नाम न लिखकर गोपाल का नाम लिखने का परामर्श दिया गदाधर ने ऐसाही किया, विधुभूषण ने कभी गोपाल का हस्ताक्षर नहीं देखा था, गोपाल का नाम देखकर समझा कि यह उसी का लिखा है।

इसी घटना से गदाधर और रमेश का प्रणय और भी

घनिष्ट हो चला, इसी प्रणय के भरोसे श्यामा पर नालिश करने गया था रमेश यथार्थ में पुलिसवाला है, दूसरा कोई उपस्थित होता तो कभी ऐसी बाते न करता कि कहीं से झलकने पावे कि इसमे मिलता है।

जितनी रजिष्टरी चिट्ठिया आतीं गदाधरचन्द्र सब को हस्तगत करता॰ इनलोगो के नये घर मे आने पीछे रमेश ने हरकारे को यह नया घर दिखाकर कह दिया कि स-रला अब इसी घर में रहती है डांक मुंशी और कानीहौस Kine-house मुंशी एकही था वह थानेही में रहता था इसे ज्योंही रजिष्टरीपत्र आता रमेश को पता लग जाता

अब तक रमेश और गदाधर समान भाग लेते थे किन्तु इस पिछली चिट्ठी में विधुभूषण ने शीघ्रही लौटने के लिये लिखा था॰ चिट्ठी पढतेही गदाधर का तो मुंह सूख गया शरीर रक्तहीन हो गया हाथ कॉपने लगा यह भाव देख कर हरकारे ने समझा कोई विपद सम्वाद इसमे है। हर कारे ने पूछा "गोपाल बाबू यह किसकी चिट्ठी है?" हर कारा गदाधरही को गोपाल जानता था॰ गदाधर ने उ त्तर दिया। हमारे भाई की। हरकारे ने कहा "सब कुशल तो है न?" गदाधर ने कहा "हा सब कुशल है।"

उस पत्र को गदाधर ने तुरन्त रमेश को जाकर दि-खाया। रमेश प्रायः कहा करता कि हमलोग पुलिसवाले हैं

सो यथार्थ में रमेश पूरा पुलिसवाला था। पत्र देखकर रमेश ने गदाधर का भय और भी दस गुना बढा दिया। इस समय बन्धुता दूर छोडकर कहा "हमें दो सौ रुपया देव नहीं तो हम सब बात खोल देंगे।"

गदाधर ने कहा—"टुमको डो सौ रुपया कौन बाट का डे। टुम क्या इसमें नहीं हो? जो आफ़त हम पर है सोई टुम पर भी है।"

रमेश ने कहा -"हमनें क्या रुपया लिया है कि हम पर आफत आवेगी?"

गदाधर ने आश्चर्य में होकर कहा—"यह क्या रमेश बाबू? टुम यह कैसे कहटे हो कि हमने रुपया नहीं लिया।"

रमेश "हमको रुपया लेते किसने देखा है?"

गदाधर—"हमने डेखा है।"

रमेश—"तुम तो मुजरिम हो तुम तो सभी को फँसाया चाहो पर तुम्हारी मानता कौन है?"

गदाधर पतन जल में गिरा, घोर विपद उपस्थित है. अब क्या उपाय करें. सब मिलाकर छः सौ रुपया चोराया उसमें आधा रमेश ने ले लिया तिसपर अब दो सौ और मांगता है। बहुत हाथ पांव जोडने पर रमेश एक सौ रुपया घटा।

गदाधर एक सौ रुपया देने पर राज़ी हो गया। जाने के समय कह आया था कि "संझा पीछे एकबेर हमारे घर की तरफ ज़रूर होते जाना"। रमेश ने गदाधर को कुदाँव फँसा देख कहा "देखो जो छुट्टी मिल जायगी तो आवेंगे, भाई हमलोग ठहरे पुलिस के आदमी हमलोगों को बहुत काम रहता है।"

गदाधर ने घर आकर घण्टे २ पर रमेश के पास नौकर भेजा। रमेश आते २ सन्ध्या को आया। गदाधर ने रमेश को प्रसन्न करने के लिये एक बोतल रामधनसाही की दुकान से ला रक्खा था० मगाया तो था ब्राण्डी पर गाव गंवई की दुकान पर सब समय उत्तम वस्तु उपस्थित नहीं रहती इससे ब्राण्डी न मिली।

गदाधर ने कहा—"रमेश बाबू बैठो टो सही बोटल भी टो खाली होना चहिये।"

रमेश बैठा तो किन्तु कहा—"आज हमारा जी कुछ अच्छा नहीं और आज हमको काम बहुत है अब और पीने से काम न कर सकेंगे। जो कुछ काम की बात कहना हो तो कहो हम नहीं बैठ सकते।"

गदाधर ने रमेश के दोनों हाथ पकड़कर कहा—"रमेश बाबू हमको इस आफट से बचाओ। टुमको एक सौ रुपया डेना पड़ेगा टो हमारा प्राण भी न बचेगा। जो

हमारे हाठ में रुपया होटा टो टुम जो कहटे हम वही डेटे पर हमारे पास एक पैसा भी नहीं है।" यह कहकर गदाधर रमेश का हाथ छोड़ पैर पर गिर पड़ा। श्रावण की वर्षा धारा की भांति अश्रुधारा बहने लगी।

गदाधर के रोने पर रमेश का हृदय तनिक भी न पिघला। उसने कहा—"छिः। छिः। यह क्या करते हो? रोने गाने से क्या होता है काम की बात करो। हमलोग पुलिस के आदमी हैं हमारा पैर न जाने कितने ही पकड़ा करते हैं, इससे क्या होता है।"

गदाधर पैर पकड़े ही रहा, रमेश किसी भांति न छुड़ा सका। थोड़ी देर चुपचाप रोने पर फिर कहा—"रमेश बाबू टुमको टनिक भी डया नहीं आटी। हमारा टन मन टन सब टुमारेही हाठ में है जो टुम न बचाओगे टो हम कैसे बचेंगे?"

रमेश ने (गदाधरजी के स्वर से ठट्ठा मारकर) कहा—"हमारा टन मन टन टुमारेही हाठ में है, टुम न बचाओगे टो हमारा क्या टाकट है कि बचावें?"

गदाधर—"रमेश बाबू काटे पर नोन मट छिड़को।"

रमेश चुप ही रहा गदाधर ने सोचा रमेश को दया आई है, फिर रोकर पूछा—"टो फिर क्या कहटे हो रमेश बाबू?"

रमेश—"नक़द एक सौ मिका चेहरेशाही ।"

गदाधर—"टो फिर हमको मारही न डालो ।"

रमेश—"हम क्यों मारें जो मारनेवाला है वह आपही मारेगा ।"

गदाधर ने देखा यह किसी तरह एक सौ से कम नहीं होता, रमेश को बैठाकर आप घर के भीतर आया ।

रमेश अकेला बैठा २ सोचने लगा, "बचा जो इतनेही में फूल गये। अभी हुआ क्या है ? पहिले तो चलें जेल खाने में चैन करें फिर देखा जायगा । बहनोई के धन पर अमीरी करने का तो फल पावें। यह सब टेढ़ी मांग बाग घुस जायगी ।"

लगभग आधा घण्टा के पीछे गदाधरचन्द्र मौन मुख किये लौटा देखा कि रमेश जहां बैठा था वहीं बैठा है। गदाधर को देखकर रमेश ने पूछा—"क्या हुआ" ?

गदाधर "होना क्या हे ? हम टो टुमसे पहिलेही कह चुके है कि हमारे पास एक पैसा नहीं हे जोजो के हाठ से रुपया निकालना क्या सहज बाट है ।"

रमेश ने गदाधर की बात पूरी न होते २ ही कहा— "यह सब फुजूल बात रहने देव। असल बात बताओ। हमको इतनी छुट्टी नहीं है । तुम तो जानते हो भाई हम लोग पुलिस के आदमी दो घडी भी एक जगह नहीं रह

सकते साफ़ २ जवाब मिलनेही से चले जायँ, दूसरे के काम में वृथा अपना हरज करैं। रमेश धर्मशास्त्री भी अच्छा था।

गदाधर ने कहा—"भाई बड़े रोने धोने पर जीजी ने देने कहा है, पहिले तो कुछ नहीं फिर पचास कहा फिर बहुत रोने पर और मा के बहुत समझाने पर एक सौ एक रुपया देने कहा है, उसमें से एक सौ तुम्हारे लिये है और एक रुपया इस ब्राह्मणों का दाम।"

रमेश—"तो फिर रुपया ले आओ।"

गदाधर—"आजै ?

रमेश—"अरे अभी।"

गदाधर—"यह नहीं हो सकता।"

रमेश "यह न होने से कैसे बनेगा ? तुमसे कहने में तो कोई हर्ज है नहीं क्योंकि तुम्हारी बात तो कुछ सनद न ली जायगी सबेरे से इस चिट्ठी को देखकर हमारा भी कलेजा कांपता है फौजदारी की आंच न जानैं कहां की पहुंच जा लगै। हम सोचते हैं हम पहिले से इस बात को जान लें तो हम साफ़ बच जायँ अब तक तो हम कह [illegible] होने पर तुम्हारे कहने सुनने से अब तक छिपाये हैं और कोई होता तो हम कभी न मानते पर तुम्हारी बात दूसरी है। तुमसे इतनी मुहब्बत है इसी से नहीं कहा था और किसी पर यह आफत आई होती तो क्या हम

पाच सौ रुपया से थोडी कम लेते ? पर तुम तो घर के आदमी हो इसलिये एक सौ रुपया से मान लिया पर जो नगद मिलेगा तो पेट खाय आँख लजाय, नगद न मिलेगा तो भाई फिर हम कुछ कह नहीं सकते।"

रमेश की बात सुनकर गदाधर फिर उदासीनता से घर के भीतर गया और घण्टा भर पीछे एक सौ रुपया लाकर गिन दिया, रमेश रुपया लेकर थाने में गया।

सप्तविंश परिच्छेद।

विधुभूषण का देश में लौटकर आना।

भादों का महीना, सन्ध्या आगत, प्राय: टिपटिप करके दृष्टि हो रही है सात दिन तक अनवरत जल बरसा है। रास्ता कर्दममय यहा तक कि गाडी के पहियों से कटकर रास्ते में छोटी नदी जल से पूर्ण बन गई है। असावधानता से उसमें पैर पडतेही पिचकारी की भांति पंकिल सलिल उडकर सारे वस्त्रादि को भिगो देता है सड़क के पेडों के नीचे सूखे पत्ते जो गिरे हैं वह सडकर दुर्गन्धि विस्तीर्ण कर रहे है। गांव के प्रत्येक घरों से धुआं निकल रहा है। गृहस्थगण दिन रहतेंहि बाहर के काम समाधा करके घर का द्वार बन्द कर दीया बाल रहे हैं, झिल्लीगण के कर्कश स्वर से कान के पर्दे फटे जाते है, गाय भैंस बकरी इत्यादि

कोई भी ग्रामपशु घर के बाहर नहीं दिखाई पड़ते, मनुष्यों का आना जाना बहुत देर हुआ कि बन्द हो गया।

ऐसे समय में दो पथिक गोरखपुर की ओर जा रहे हैं। दोनों पथिकों के गले में एक २ छोटा बेग पड़ा है और दोनों के बगल में एक २ गठरी कपड़े की दबी है। धोती कुरता पहिरे सिर में दुपट्टे का मुरैठा बाँधे हैं। जो पथिक आगे चलता था उसको देखने से तो विशेष थका हुआ न प्रतीत होता परन्तु पीछेवाले के देखने और उसके पाद-प्रक्षेप से बोध होता मानो इसको बड़ा कष्ट हो रहा है। इधर संध्या हुई उधर पथिकद्वय एक गाँव में घुसे अबतक तो दोनों चुप थे गाँव में घुसतेही पीछेवाले ने आगेवाले से कहा -"भाईसाहब! अब आज आगे मत चलो इसी गाँव में टिक रहो" यह बात उसने ऐसे धीरे कहा कि जो कोई सुनता तो समझता कि यह अवश्य कुछ न कुछ डर गया है। पाठकवर्ग! आप लोग तो समझही गये होंगे कि यही रामचन्द्र है और उसने जिसको सम्बोधन करके कहा वह विधुभूषण है।

[illegible] कोई उत्तर न मिलने से उसने फिर इसी प्रकार से कहा "भाईसाहब आज की रात [illegible] बहुत चलने [illegible] कहीं टिक रहें सबेर फिर [illegible]"

विधुभूषण ने हँसकर कहा—"क्यों रामचन्द्र तुम अब डरने क्यों लगे आगे तो तुम कभी चोर से नहीं डरते थे।"

रामचन्द्र ने कहा—"भाई पहिले कुछ था नहीं अब कुछ पास में हो गया है। अच्छा तो फिर उस बात का क्या किया ?"

विधुभूषण ने कहा—इस गांव के आगे दूसरे गांव में तो अपना घर है, योहीं थोडी देर के लिये यहा रहकर क्यों कष्ट उठावें ? तुम जो डरते हो सो यहा किसी बात का डर नहीं है शहर के पास के गांव हैं यहां राह चलते कोई लूट नहीं सकता।

"अच्छा चलो, पर हमारी बात मानते तो यहीं टिकना अच्छा रहा।"

विधुभूषण रामचन्द्र की बात पर कान न देकर आगे बढ़ताही गया। रामचन्द्र भी (अत्यन्त अनिच्छापूर्वक) उसका अनुसरण करता रहा, चुपचाप थोडी दूर आगे चलकर विधुभूषण ने उँगली दिखाकर कहा "रामचन्द्र देखो यह वही पेड है।" रामचन्द्र ने हँसकर कहा "भाई साहब एक दिन वह था और एक दिन यह है।"

थोडी दूर और बढ़कर उस पेड के पास पहुचकर विधुभूषण ने कहा "रामचन्द्र चलो फिर एकबेर इस पेड के नीचे बैठकर तमाखू पीएँ।"

रामचन्द्र ने उत्तर दिया "भाईसाहब यह तो तुमने हमारे मन की बात कही।"

दोनों पेड़ के नीचे जा बैठे, रामचन्द्र ने उँगली से दिखाकर कहा "भाईसाहब तुम जहां बैठे हो ठीक वहीं बैठे थे और हम भी ठीक इसी ठिकाने पर बैठे थे और तुम हमको देखकर डर गये थे।"

विधुभूषण ने चारोंओर देखकर दीर्घनिश्वास निक्षेप किया, हाय। हमलोगों का जो दिन बीत जाता है वह फिर नहीं आता स्कूल से निकलने पीछे किसने कितने दिन तक सुख भोग किया है? किसका चित्त नवयौवन की भांति सौन्दर्य वा प्रणयरस से अभिषिक्त हुआ है? स्वाभाविक शोभा देखकर किसके अन्तःकरण में फिर वैसी प्रीति का संचार हुआ है? संसार तुम धन्य हो। तुम में प्रवेश करना और विस्तृत हृदय में अवगाहन करना समान है। विद्यालय में रहने के समय जिस सुहृद को देखकर भावना चिन्ता दूर हो जाती जिसके मुख पर हँसी देखकर हृदयाकाश में शरच्चन्द्र की ज्योति की नाईं प्रभा विकसित होती जिसका विरह मृत्यु से भी अधिक क्लेशकर बोध होता सुख दुःख सम्पद विपद सब में जिसके चिर सहचर होने की इच्छा होती अब वह सुहृदय कहां है? [illegible] में [illegible] होकर अपना २ चिन्ता

में लगी है। मुंह उठाकर अपने आगे पीछे कौन है इसके देखने का भी अवकाश नहीं मिलता।

चार बरस पहिले विधुभूषण का चित्त औरही था आज औरही है, अर्थोपार्जन की प्रवृत्ति के साथही प्रकृति ने सुखसे बिदाई लिया, नवयौवन के सुख के साथ संसार की ज्वाला यन्त्रना तुलना करने से किसके हृदय मे शोका- नल नहीं जल उठाता कौन बिना दीर्घनिश्वास लिये रह सकता है?

रामचन्द्र ने दियासलाई से आग जलाया तमाखू पी कर दोनो फिर आगे चले

बहुत दिन पीछे बिदेश से घर आने के समय मन में जैसे २ भाव उदय होते है यह कहने से पूरा नहीं हो सकता। पाठकगण स्वय अनुभव कर सकते हैं कभी कभी आनन्द से हृदय उच्छलित होने लगता है जिनको घर छोड़ गये थे उन सब लोगो को सुखी देखैंगे यह सोच कर मन में कैसा आह्लाद होता है किन्तु सब को सुखी पावैंगे इसका कौन भरोसा है? यह चिन्ता हृदय को शोकसागर मे डुबा देती है। विधुभूषण योंहीं भली बुरी चिन्ता करता हुआ घर के द्वार पर जा पहुंचा। विदेश जाने के समय घर भरापुरा देख गये थे उस समय शशि भूषण का नया घर नहीं बना था। शशिभूषण उसकी स्त्री

लड़के गदाधरचन्द्र उसकी मा नौकर चाकर सब रहते थे रात दिन कोलाहल मचा रहता था अब जो घर के पास आकर देखते हैं तो सन्नाटा छाया है। मारे भय के शरीर कांपने लगा, विधुभूषण ने रामचन्द्र से कहा—"रामचन्द्र तुम पुकारो कि घर में कौन है ?" विधुभूषण को स्वयं पुकारने की सामर्थ्य न रही। रामचन्द्र ने 'घर मे कौन है' पुकार कर दो तीन बार पुकारा पर कोई उत्तर न मिला। विधुभूषण ने घबड़ाकर कहा -"यह क्या अनर्थ हुआ।" रामचन्द्र ने फिर चिल्लाकर पुकारा। अबकी बेर श्यामा ने आकर पूछा—"इतनी रात के वखत तुमलोग कौन हो? आये हो ?"

रामचन्द्र—"बाहर आकर देखो।"

श्यामा ने किवाड़ खोल बाहर आकर दो मनुष्य देखे पहचाना। एक निकट बैठा है दूसरा खड़ा है। श्यामा ने फिर पूछा - 'तुमलोग कौन हो ?"

विधुभूषण ने पूछा— श्यामा तुम सब अच्छी तरह तो हो न" श्यामा विधुभूषण का स्वर पहिचान कर क- [illegible]

[illegible]

[illegible]

विधुभूषण ने श्यामा को बात सुनकर रामजी कहके दीर्घनिश्वास लेकर पूछा "तुम कहां से आते हो-यह क्यों पूछती हो ? क्या हमारी चिट्ठी नहीं पहुंची ।"

श्यामा ने कहा "जब से बाबूजी तुम गये तब से चिट्ठी कौन कहै, कोई के मुंह से भी कुछ नहीं मालूम भया यही चिन्ता करते २ तो बहूजी अब तब हो रही हैं ।"

विधु०—"और गोपाल कैसा है ?"

श्यामा—"वह तो अच्छा है ।"

विधु०—"अच्छा तो चलो भीतर चलें ।"

श्यामा ने कहा "अभी ठहर जाओ, एकबारगी चलोगे तो बहूजी को मूर्छा आ जायगी तुम लोग यहीं बैठो हम पहिले कह लें तब तुम चलना ।"

विधुभूषण ने कहा "श्यामा क्या वह इतनी सुस्त हो गई है कि हमारे आने की खबर सुनकर मूर्छित हो जायगी।"

श्यामा—बड़ी सुस्त हो गई है ?

विधुभूषण श्यामा के मुंह से सरला की अवस्था सुनकर जैसा कि चाहिये वैसा सुस्त नहीं हुआ । उसके मन में यह विचार उदय होने से कि उसपर इतना प्रेम रखती है एक प्रकार का अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ । जैसे अन्धकारमय रजनी में बिजुली चमक गई हो ।

लिवा गई, विधुभूषण सरला जिस घर में थी उसके द्वार तक प्राय: हंसता हुआ गया किन्तु घर में घुसतेही मानो गिर पडा। सरला। सरला ऐसी कृश हो गई है कि चीन्ह ही नहीं पडती किन्तु विधुभूषण का नाम सुनकर बिछौने पर उठ बैठी है। विधुभूषण को देखकर माश्रुनयन हंसते हंसते कहा "इतने दिन पीछे इस दुःखिनी की याद तो भाई।"

विधुभूषण ने रोते २ कहा—"प्रिये ? हम इतने दिन तक तुम्हारा नाम जप कर जीये हैं पर यह कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि तुमको इस अवस्था मे देखेंगे।"

सरला ने हँसकर उत्तर दिया अब हम अच्छे हो जा-यँगे, घबडाओ मत अब हम से बैठा नहीं जाता शरीर गिरा जाता है यह कहकर सरला लेट गई श्यामा ने सरला के बाल एकत्र करके बाध दिये।

सवेरा होने पर सरला स्वयं पलंग से उठकर बाहर भाई यह देखकर श्यामा के आनन्द की सीमा न रही श्यामा ने सोचा कि चिन्ता के मारे सरला की यह दशा हो गई थी श्यामा ने सरला से कहा "बहूजी देखो हमने न कहा था कि बाबूजीघर आनेही से तुम्हारा जी अच्छा हो जायगा।"

सरला ने कहा—"श्यामा तुम तो साक्षात लक्ष्मी की मूर्त्ति हो तुम्हारी बात न सच्ची होगी तो किसकी होगी?"

सरला की बात सुनतेही श्यामा वहां से चल दी। श्यामा में यही तो बडा दोष था कि वह अपनी प्रशंसा न सुन सक्ती। भला! परलोक में श्यामा की क्या व्यवस्था होगी? पृथ्वी संशोधिनी सभा में जो श्यामा दो एक दिन भी जाती तो उसकी यह दुष्प्रवृत्ति अवश्य जाती रहती।

चिन्ता के मारे रात भर विधुभूषण को नींद न आई पिछली रात कुछ आँख लग गई इससे बड़े सवेरे न उठ सका। उठने में देर हो गई। श्यामा रसोई पानी का सब सामान जुटा चुकी थी सरला को घूमते फिरते देखकर विधुभूषण के आनन्द की सीमा न रही। सरला अत्यन्त दुर्बल हो रही थी किन्तु ऐसे भाव से चल फिर रही थी और ऐसी प्रफुल्लता से बातचीत करती थी कि देखकर सब का चित्त अत्यन्तही आह्लादित हुआ। सरला स्वयं रसोई करने चली किन्तु श्यामा ने किसी प्रकार से न करने दिया तब सरला ने पूछा "अच्छा बताओ हम रसोई न करेंगी तो कौन आकर कर जायगा?"

श्यामा ने कहा—'हम मोटी पडाइन को बुला लाती हैं'।

सरला ने कहा —"अरे पंडाइनजी भला आवेंगी?।"

श्यामा ने कहा—"अ:। पैसा होने से सब दौडा आता है अब हमलोगों को कौन रोना है?" अन्तत: श्यामा ने जो कहा था वही हुआ पडाइनजी ने ज्योंही सुना कि वि-

धुभूषण बड़ा रुपया कमा कर लौटा है कि उसी क्षण एक बात भी पूछे बिना उठ खड़ी हुई सरला को देखकर पंडाइन ने कहा "हाय २ बहू तू इतनी सुस्त हो गई है? अरे मुझ को कुछ खबर भी न दिया?" सरला हँसकर चुप हो गई कुछ उत्तर न दिया।

विधुभूषण बड़ा रुपया कमाकर घर आया है यह बात बात की बात में सर्वत्र प्रचारित हो गई, सभी मिलने को आतुर हुये और यहां तक कि स्वयं गदाधरचन्द्र भी मिलने आये पहिले जो लोग बात करने में भी घृणा करते थे वे अब मानो चिरसुहृद की भांति हो रहे है,। चांदी की भी क्या ही महिमा है।

लोगों से मिलते जुलते विधुभूषण का प्राय: सब दिन बीत गया, घर में आकर दो घड़ी श्यामा के पास बैठने का भी अवकाश न मिला, संध्या समय जब सब लोग अपने घर चले गये तब विधुभूषण भी घर में आया।

श्यामा ने पहिलेही से भोजन की सामग्री बड़े उत्साह से सिद्धकर रक्खी थी। विधुभूषण ने आज बहुत दिन के पीछे यह सुखमय अवसर पाया। सरला को यद्यपि सभों ने बहुत कुछ रोका परन्तु उसने न माना। अपने हाथ से परोसा। एक छोटा सा पङ्खा लेकर हांकने लगी। विधुभूषण ने आग्रहपूर्वक पङ्खा उससे छीन लिया। गोपाल का अपनेही

वहां से थोड़ी दूर पर एक अच्छे सद्वैद्य रहते थे विधु-भूषण सवेरे उन्हें बुला लाया। सरला धीरे २ आरोग्य होने लगी। विधुभूषण के आनन्द की सीमा न रही।

अष्टविंश परिच्छेद।

नाना विधि।

शशिभूषण की उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि होते २ इस समय बाबू के यहां सर्वस्समय हर्त्ता कर्त्ता हो गये इसके ऊपर बाबू का अतीव विश्वास है शशिभूषण जो चाहें करें। बाबू को उत्तम वेशभूषा और मद्य का खर्च मिलनेही से काम।

पृथ्वी में अवच्छिन्न सुख किसी को नहीं होता, शशि-भूषण को पूर्ण सुख हुआ सही पर वह निष्कण्टक नहीं है, पहिले जो सब अमलावर्ग शशिभूषण की उन्नति के उद्योगी थे अब वही सब इस चेष्टा में हुये कि कैसे यह गिरें, पुराने दीवान के समय में रिश्वत नहीं लेने पाते थे और न अपनी इच्छानुसार जब चाहते तब कामकाज बन्द करके घर जाने पाते इससे सभों ने सोचा शशिभूषण हमलोगों के साथी है उसके दीवान होने से हमलोग अपनी इच्छानुसार काम कर सकेंगे, किन्तु शशिभूषण के दीवान होने पर देखा कि कुछ भी उनकी अवस्था का परिवर्तन नहीं हुआ, जैसे आगे दीवान से डरकर चलना पड़ता था वैसेही अब भी चलना

डता है, इसलिये अब सब एकमत होकर इस उद्योग में लगी कि कैसे ग्राबभूषण कर्म्मच्युत हो।

एक दिन मुहर्रिर, खज़ाञ्ची रोकडिया प्रभृति सब अमलावर्ग यह विचार करने बैठे कि इस अभीष्ट सिद्धि के लिये क्या उद्योग करना चाहिये। किसी ने कुछ कहा किसी ने कुछ परन्तु सर्वसम्मत कोई बात न ठहरी, अन्त में हेड मुहर्रिर लाला रामकुमारलाल ने कहा—"सर्कार को तो शराब पीने से छुट्टीही नहीं मिलती और कुछ कामकाज देखते नहीं सारा कारखाना बर्बाद हुआ जाता है, इस मज़मून की एक दर्ख्वास्त साहब कलेक्टर बहादुर के यहाँ बहूजी साहबा की तरफ से दिला दी जाय तो यक़ीन है सर्कार की तरफ़ से एक मनेजर मुक़र्रर हो जायगा और ग्राबभूषण बाबू की सब क़लई खुल जायगी।"

लाला साहब की बात सभों के मन भाई, किन्तु खजाञ्ची ने कहा—"भाई बात तो यह ठीक है पर हमारे मन मे एक बात आती है, जब चार आदमी इकट्ठे हुये तो मन में जो आवे सो कह देना चाहिये, हम समझते है कि इसमें और भी 'बन्धक से बूडा होगा' मनेजर के आगे एक न चलेगी, अभी जो दो चार पैसा मिल भी जाता है तब वह भी न मिलेगा।"

यह बात सुनकर सब लोग चिन्तित हुये, लाला राम

कुमार ने कहा—'यह आप लोगों की गलती है, मनेजर मुकर्रर होने मे सिवाय सुभीते के तकलीफ न होगी, अब शशिभूषण बाबू जैसी बात बात की खोज करते है कुछ वैसी तो मनेजर करेगा नहीं, उसको तो कागज पत्र साफ रहने और तहवील ठीक रखने से मतलब है, और इसकी सिवाय अब जिस काम में पाच रुपया खर्च होता है तब उसी मे पन्द्रह खर्च होगा उसको पूछनेवाला कोई भी नहीं है कागज़पत्र साफ करना चाहिये" लाला साहब की बात सभी ने स्वीकार की। सभा भङ्ग हुई सब लोग अपने २ घर गये।

सरला उत्तरोत्तर आरोग्यलाभ करने लगी।

एक दिन बातही बात में विधुभूषण ने श्यामा सेपूछा "क्यों श्यामा? क्या हमारी कोई चिट्ठी तुमलोगों को नहीं मिली?" श्यामा ने कहा "नहीं तो।"

विधुभूषण ने कहा "तो फिर रजिष्टरी चिट्ठी पर गोपाल के नाम से कौन रसीद देता था?"

श्यामा ने कहा—"न तो कभी गोपाल के नाम कोई चिट्ठी आई न उनने कभी रसीद दी, हा गदाधर के नाम रजिष्टरी चिट्ठी आती थी और वह रसीद वसीद देता था।"

विधुभूषण ने विस्मित होकर पूछा—"गदाधर के यहां किसकी रजिष्टरी चिट्ठी आती थीं?"

विधुभूषण ने कहा "और जो आज रातही को बात खुल जाय और असामी भाग जाय तो क्या होगा?"

दारोगा ने कहा "हम अभी पुलिस तैनात किये देते हैं रात भर शशिभूषण बाबू के मकान के चारोतरफ पहरा बैठा रहैगा सवेरे कार्रवाई की जायगी।" यह कहकर दारोगा ने रमेश को बुलाकर आज्ञा दी कि चार कान्ष्टबूलों की तैनाती कर दी जाय, और कहीं से यह बात प्रकाश न होने पावे।

रमेश ने—"बहुत खूब" कहकर रोज़नामचे, में चार कानष्टबूलों का नाम लिखकर पहरे पर तैनात कर दिया। रमेश मनही मन विचार करने लगा "यह ख़बर गदाधर को देना चाहिये कि नहीं?" बहुत सोच विचार कर यही निश्चय किया कि "इतनी चक्षुलज्जा रहै तो फिर पुलिस में नौकरी क्यों करैं।"

गदाधर निश्चिन्त सोया है विधुभूषण के घर लौटने पर पांच छः दिन तक बड़ी घबड़ाहट थी किन्तु जब देखा कि कुछ बखेड़ा न उठा और मामला ठण्ढा हो गया तो फिर निश्चिन्त हो गया, गदाधर अपनी निर्दोषताही प्रमाण करने के लिये विधुभूषण से मिलने गया था।

रात भर शशिभूषण के घर पुलिस का पहरा रहा परन्तु शशिभूषण वा और किसी को इसका पता न लगा,

जब दूसरे दिन सबेरे शशिभूषण कपड़ा पहिरकर बाहर निकला तो कान्ष्टेबलों को देखकर कहा—"तुमलोग यहां क्यों बैठे हो ?"

एक कान्ष्टेबल ने कहा "आप अभी थोड़ी देर ठहरकर कहीं जाइयेगा, दारोगा साहब आते होंगे, आपके घर में हमारा असामी है।"

शशिभूषण ने विस्मित होकर पूछा—"हमारे घर में किसका असामी है ?।"

कान्ष्टेबल ने कहा—"गदाधरचन्द्र ने दूसरे के नाम की रजिष्टरी चिट्ठी अपनी बतलाकर ले ली है सो यह बात खुल गई है, हमलोग गदाधर को गिरफ़ार करने आये हैं।"

शशिभूषण को स्मरण हुआ कि गदाधर के पास एक रजिस्टरी चिट्ठी आई थी, उस समय कोई सन्देह न होने के कारण गदाधर के इस कहने पर कि उसके मामा ने इस आशङ्का से कि वैसी चिट्ठी कदाचित् न पहुँचे रजिष्टरी चिट्ठी भेजी है विश्वास कर लिया था पर कान्ष्टेबल से यह सब सुनकर बड़ा क्रोध आया, गदाधर को बुलाकर कहा "वह जो तेरे मामा की रजिष्टरी चिट्ठी आई थी ले आव देखें तो सही" शशिभूषण का क्रुद्धभाव तथा कान्ष्टेबलों को देखतेही गदाधर का तो प्राण सूख गया, दौड़कर भीतर गया। प्रमदा से भेंट हुई, उसने पूछा "क्यों गदाधरचन्द्र

ऐसा घबडाये क्यों हो ?" गदाधर कुछ उत्तर न देकर पिछवाडे की खिडकी की ओर भागा चला गया, प्रमदा और उस्की मा भी उसके पीछे २ कारण जानने के लिये चली गईं, खिडकी खोलकर गदाधर यह देखतेही कि उधर भी कान्‌ष्टेबल हैं "अरे बापरे" कहकर फिर भीतर लौट आया. गदाधर की मां ने पूछा "क्या भया गदाधरचन्द्र!"

गदाधर ने रोकर कहा "क्या बटावें गडाढरचण्ड्र। गडाढरचण्ड्र अब मरे।"

प्रमदा और उसकी मा ने घबडाकर पूछा "क्या भया ? क्या ?"

गदाधर ने कहा "अरे वही रजिष्टरी चिट्ठी"—

इतने में शशिभूषण ने भीतर आकर क्रोधपूर्वक पूछा "कहा गया हरामज़ादा ?"

गदाधर भूमि पर पडा रो रहा है। प्रमदा और उस्की मां परस्पर मुखावलोकन कर रही हैं शशिभूषण ने कहा "क्यो ? यही तेरे मामा की रजिस्टरी चिट्ठी है न ? तैं आप तो गयाही पर हमारा भी मुंह काला कर चला।"

शशिभूषण की बात सुनकर प्रमदा और उस्की मा का मिज़ाज बहुतही बिगडा। गदाधर ने जो अपराध किया है वह तो कोई अपराधही नहीं है किन्तु शशिभूषण का कर्कशस्वर उनलोगों की समझ में बहुतही न्यायविरुद्ध

हुआ, प्रमदा की मां ने करुणस्वर से कहा "देखो बीबी रानी। इसी से हम कहते थे कि प्रमदा हमलोगों को मत ले चलो नहीं अन्त में बदनामी के साथ घर लौटना पड़ेगा, देखो वही बात आगे आई, तब तुमने भी कहा कि वह हमारा घर हमारा दुआर है वहां कौन तुम को कुछ कह सकता है।"

प्रमदा ने कहा "अरे ऐसी से बात से कौन मतलब ? जो भाग में लिखा होता है वही होता है।"

शशिभूषण ने कहा "अब भाग को तो उठा के रक्खो, जो गदाधर को बचाना हो तो उसको धोती चद्दर पहिरा रक्खो जो कोई पूछे तो अपनी बहिन बतला देना हम बाहर फाटक पर जाते हैं दारोगा आ गये।"

शशिभूषण के बाहर आने पर दारोगा ने कहा "आप के घर में हमारा असामी है, या तो उसको दे दीजिये नहीं तो हम खानातलाशी करेंगे।"

शशिभूषण—"देखिये साहब समझबूझकर मुंह से बात निकालिये, यह ऐसे वैसे घर की बात नहीं है। जो असामी न निकला तो उसका जवाबदेह कौन होगा?"

दारोगा ने विधुभूषण की ओर देखा, विधुभूषण ने कहा "साहब इसी घर में असामी है"

शशिभूषण ने लाल लाल आंखें करके विधुभूषण को

ओर देखा । विधुभूषण कुछ न बोला, सब लोग घर के भीतर घुसे, परन्तु कहीं गदाधर न मिला, विधुभूषण ने कहा "जरा रसोईघर तो देख लीजिये।" दारोगा ने कहा "हां ठीक बात है" शशिभूषण से कहा "आप औरतों से कह दीजिये कि एक २ करके सामने से निकल जायँ।" शशिभूषण ने पहिले तो बहुत कुछ कहा सुना पर जब देखा कि दारोगा किसी तरह नहीं मानते तो औरतों की ओर लक्ष करके कहा तुमलोग एक २ करके चली जाओ।

सब के आगे प्रमदा उसके पीछे स्त्रीरूपी गदाधर सब के पीछे उसकी मा निकली । विधुभूषण से गदाधर को उंगली से दिखला दिया, दारोगा ने कहा "बीच में कौन है उन्हें ठहरने कहिये।"

शशिभूषण के उत्तर देने से पहिलेही गदाधर की मा बोल उठी 'यह हमारी बड़ी बेटी गदाधरचन्द्र है'।"

दारोगा ने यह सुनतेही एक काष्टेबल को आज्ञा दी "इसको पकड़ो।'

गदाधर— 'हाय मरे, जीजी बचाओ" कहकर भीतर की ओर दौड़ा, काष्टेबल ने दौड़कर पकड़ा।

गदाधर को यथाक्रम थाना फौजदारी से होते सेशन जज के इजलास में मुकद्दमा होकर १४ वर्ष की सजा हुई।

गदाधर की शान्ति तो हुई पर विधुभूषण की अब उस

गाँव में रहने से भी घृणा होने लगी । वहां जो सब कष्ट पाये थे फिर २ वे सब स्मरण होते और फिर से उन सभों के सहन करने का अनुभव होता, जो सुख थोड़ा बहुत मिला था वह भी भूलने लगा । जो कुछ रुपया कमा लाया था वह भी क्रमश: घट चला, इससे विधुभूषण गोपाल और श्यामा को गोपाल को शिक्षा देने के अभिप्राय से लेकर लखनऊ आया, सरला को अपने साथ विदेश ले जाना उचित न जानकर वहां से पांच कोस पर एक गाँव में उस की दूर के सम्बन्ध की एक बूढ़ी रहती थी उसे उसके पास पहुंचाकर और कुछ द्रव्य उसे देकर कहा "हम अब दूर न जायँगे लखनऊ जाकर कुछ काम धन्धा देखेंगे, तुम्हें बराबर पत्र भेजेंगे बीच २ में आया करेंगे । गोपाल को अपने साथ पढ़ाने के लिये ले जाते हैं अवसर पानेही से तुमको भी सब प्रबन्ध ठीक करके वहीं ले चलेंगे ।" सरला ने रोते रोते विधु को विदा किया । विधु अपने लिये चिन्ता करने लगा कि क्या करें, नाटक कम्पनी करने अथवा रासमण्डली में नौकरी करने में रुपया तो अवश्य मिलता है परन्तु काम अत्यन्त नीच है । यह सोचकर एक डिप्टी साहब के यहां नौकरी कर ली, डिप्टी साहब की बदली कहीं बाहर हो गई, विधुभूषण को भी उनके साथ जाना पड़ा । वहां जाकर किसी रईस के यहां रसोइयादारी की नौकरी पर गो-

पाल को यह कहकर रख दिया, कि यहीं रहेगा रसोई करेगा और स्कूल में पढ़ेगा । गोपाल को वहीं छोड दिया।

एकोनविंश परिच्छेद ।

रामचन्द्र ।

रामचन्द्र विधुभूषण के साथ उसके घर आया रात भर वहां रहा, सवेरे सब के उठने के पहिलेही उठकर चल दिया । शहर में जाकर एक धोती चादर मोल ली, शहर के बाहर निकल उसको पहिन कर फिर चलना आरम्भ किया । रामचन्द्र की बहुत काल की आशा पूरी हुई थोड़ी दूर चलता और अपने नये धोती चादर की ओर देखकर फूले अङ्गो न समाता, योंही चलते २ दोपहर के समय अपने घर पहुंचा ।

रामचन्द्र का स्वर सुनतेही उसकी मां और दोनों भाई दौड़कर उसे घेर कर खड़े हो गये, दोनों भाइयों की आंख से अश्रु बहने लगा रामचन्द्र घर से रूठ कर गया था पर दोनों भाई और माता को चार बरस पीछे देखकर आंसू न रोक सका ।

रामचन्द्र घर लौटने पर नव्वाबबहादुर बन गया, दस बजे भीतर रसोई न मिले तो कामही न चले, दोनों भाई मारे डर के कुछ बोल न सकते, 'दुधार गाय को दो

लात भी सही जाती है’ भोजन करने के पीछे रामचन्द्र बैठकर परोसी परोसियों से यात्रा के गान तथा और बहुत सी बातें करता, किन्तु सुख कभी चिरस्थाई नहीं होता रामचन्द्र के सुख के दिन भी देखते २ पूरे हो चले।

एक दिन रामचन्द्र बैठा अपनी बड़ाई हाँक रहा था, पल्लीस्थ सब लोग बैठे सुन रहे थे इतने में एक मनुष्य ने पूछा ‘क्यों रामचन्द्र तुम यात्रा के दल में क्या बनते थे?” यह सुनकर रामचन्द्र का चेहरा कुछ उतर गया यह देख कर और भी एक मनुष्य ने यही प्रश्न किया, अब तो रामचन्द्र को क्रोध आ गया परन्तु क्रोध रोककर बोला “हम तो कुछ भी नहीं बनते थे हमसे बनने से वास्ता?”

प्रथम प्रश्नकारी ने कहा “भला यह भी कोई बात है? वहां बिना कुछ बने काम चलता है?”

अब तो रामचन्द्र क्रोध न रोक सका, चिढ़कर कहा अच्छा फिर इससे तुमलोगों को क्या? तुम सब के सब "शैतानही हो।”

रामचन्द्र को रोषित देखकर कौतुकार्थ एक मनुष्य बोल उठा ‘रामचन्द्र तमाकू भरता था।”

रामचन्द्र यह सुनकर हँसा समझा आफत कटी, किन्तु दूसरा बोल उठा ‘नहीं २ रामचन्द्र हनुमान बनता था।”

यह सुनतेही रामचन्द्र ने चिड़चिड़ाकर पूछा “तुमसे

कौन कहता था कि हम हनुमान बनते थे ?" यह कहता हुआ वहां से उठकर चला, उसको गमनोन्मुख देखकर और भी पांच चार मनुष्य 'हनुमान हनुमान' करने लगे। रामचन्द्र मारे क्रोध के एक को मारने दौडा, इधर से और भी आठ सात मनुष्य "भैय्या हनुमान, भैय्या हनुमान" की धुनि करके रामचन्द्र के कान में मधुसिञ्चन करने लगे।

रामचन्द्र जिसको मारने दौडा था उसको न पकड़ सका, इससे खिसियाना होकर घर की ओर चला, दस बारह जने 'भैया हनुमान भैया हनुमान" करके उसके पीछे लग गये, रामचन्द्र जिधर जाता वे लोग भी उधरही जाते, एवं रास्ते में ज्यों २ आगे बढ़ते त्यों २ उनलोगों की सख्या बढ़तीही जाती थी ।

अत्यन्त विरक्त होकर रामचन्द्र घर आया पर लड़के उसके कान में अमृतसिञ्चन करतेही रहे, रामचन्द्र मारे क्रोध के बीच २ में पागल की भांति रोने लगता यह देख कर उसकी मां ने कहा 'तुम क्यों चिढ़ते हो कुछ उनलोगों के कहनेही से तो हनुमान हो न जाओगे ?"

रामचन्द्र ने कहा "वह लोग तो पीछे कहेंगे पहिले तो तूही कहने लगी ? हमारे भाग में देश में रहना बदा नहीं है" यह कहकर अपने कपड़े इत्यादि लेकर बाहर निकला, उसकी मा ने उसे रोकने के लिये बहुत कुछ यत्न किया पर वह किसी प्रकार न रुका ।

आगे आगे रामचन्द्र पीछे २ लड़के चले, उस गाँव की सीमा तक वे सब लड़के चिढ़ाते हुये गये जब वह दूसरे गाँव में घुसा तो उस गाँव के लड़कों ने इनको देखादेखी चिढ़ाना आरम्भ किया।

उसके दोनो भाइयों ने घर आकर सब वृत्तान्त सुना उसको ढूंढने गये, कहीं पता न लगा, दूसरे दिन फिर गये पांच छः कोस पर जाकर सुना कि एक मनुष्य आया था। जो 'हनुमान" के नाम से चिढ़ता थां पर पता नहीं कि कहां गया।

विंश परिच्छेद ।

गोपाल और हेमचन्द्र ।

लखनऊ में हेमचन्द्र के डेरे से थोड़ो दूर दक्षिण गोपाल रहता था। स्कूल जाने आने के समय नित्यही हेमचन्द्र गोपाल को देखता, गोपाल हेम का बड़ोस्वरूप था ज्योंहो गोपाल को स्कूल जाते देखता त्योंहो हेमचन्द्र भी कपड़ा पहिरने लगता।

एक दिन गोपाल स्कूल से लौटा आता था, टिप टिप करके पानी बरस रहा था, गोपाल के पास छाता नहीं था सिलेट के नीचे पुस्तक रखकर उसको सिर पर रक्खे चला आता था। हेमचन्द्र के डेरे के पास पहुंचते २ बड़े वेग का

जल आ गया, गोपाल दौड़कर हेम के दर्वाजे में आ खड़ा हुआ ।

हेमचन्द्र पहिलेही से घर पहुंच गया था, गोपाल को आते जाते देखकर नित्य उससे बातचीत करने को जी चाहता था पर अबतक कोई सुयोग नहीं लगा था। आज गोपाल को दर्वाजे के भीतर खड़े देखकर हेमचन्द्र ने बिछौने पर बैठने को कहा ।

गोपाल ने कहा 'जी नहीं हुजूर, हम मजे में खडे हैं वहां आकर क्या करेंगे ।"

हेमचन्द्र ने दर्वाजे के पास आकर कहा "अभी तो पानी थमता दिखाई नहीं पड़ता कबतक खड़े रहियेगा आइये जरा सा बैठ जाइये ।

हेमचन्द्र की बात सुनकर गोपाल बैठक में आया और जमीन में पैर लटका कर तख़्त पर बैठ गया, हेमचन्द्र ने कहा "जरा खसक कर अच्छी तरह बैठो ।"

गोपाल ने अपने पैर की ओर देखकर कहा "जी नहीं हम अच्छी तरह हैं ।"

हेमचन्द्र ने कहा "नहीं नहीं कितनी देर ऐसे बैठियेगा।" गोपाल ने लज्जितभाव से कहा "जी नहीं—हमारे पैर मे जूता नहीं है इसमें कीचड़ लग रहा है बिछौना मैला हो जायगा ।"

हेमचन्द्र ने एक नौकर को पानी लाकर गोपाल का पैर धोने कहा। गोपाल अनिच्छापूर्वक पैर धोकर तख़ पर खसक बैठा हेमचन्द्र ने उसका हाथ पकड़ खींचकर तकिये के पास बिठाया, इतने में एक नौकर एक छोटी रकाबी में कुछ जलपान को ले आया हेमचन्द्र ने उसको लेकर गोपाल को दिया और खाने के लिये कहा।

हेमचन्द्र का आदर सत्कार देखकर गोपाल बहुत लज्जित होकर बोला "हमको इस बेला कुछ खाने का अभ्यास नहीं है इससे हमें क्षमा कीजिये।"

हेमचन्द्र के बहुत आग्रह से गोपाल ने अनिच्छापूर्वक कुछ खाया, वृष्टि क्रमशः बढ़ने लगी, चारोंओर अन्धेरा हो गया, रास्ता जलपूर्ण हो गया, लोगों का आवागमन बन्द हो गया। यह देखकर गोपाल ने कहा "पानी तो अभी ठहरता नहीं और सांझ हो चली अब हम जाते हैं।"

हेमचन्द्र ने कहा "यह आप क्या कहते है क्या ऐसे बरसते में जाइयेगा?"

गोपाल ने कहा "हमको घर जाकर बड़ा काम है अब न जायगे तो ठीक न होगा" हेमचन्द्र ने कहा 'ऐसा कौन बड़ा काम है।"

गोपाल ने प्रकृत बात न कहकर कहा "कपड़ा वपड़ा भीग गया है जो न बदलेंगे तो सर्दी हो जायगी।"

हेमचन्द्र ने उत्तरदिया "यहां "क्या आप के लिय

धोती नहीं है ?" यह कहकर नौकर से एक धोती लाने कहा ।

गोपाल ने लज्जित होकर कहा "जी नहीं कुछ कपड़ा बदलने को ऐसी जल्दी नहीं है और भी कई काम है, अब जाने दीजिये ।"

हेमचन्द्र ने गोपाल की धोती छूकर देखा कि सब तर हो रही है । आश्चर्यपूर्वक कहा "इतना भींगने पर भी अभी कपड़ा बदलने की जल्दी नहीं है ?"

गोपाल ने कहा "जी नहीं हम अभी कपड़ा न बदलेंगे हम घर जाने दीजिये" यह कहकर उठने लगा, हेमचन्द्र ने हाथ पकड़कर कहा "जी ऐसे समय में तो हम आपको न जाने देंगे ।"

गोपाल ने लज्जित मुख से कहा "आपसे मिलने की इच्छा तो हमको बहुत दिन से थी, हम पढ़ने की पुस्तकें मोल नहीं ले सकते इससे हमारे मन में था कि आपसे दो एक मंगनी ले जाया करेंगे सो आज दैवयोग से आपसे भेंट हो जाने से हमको बड़ा आह्लाद हुआ हमारा भी मन अभी जाने को नहीं करता पर क्या करें बड़ा जरूरी काम है न जाँयगे तो ठीक न होगा ।"

हेम०—"आपको ऐसा कौन सा जरूरी काम है ?"

पर हेम बाबू से कोई बात छिपाना बड़ा पाप है

हम एक ठिकाने रसोईदारी करते हैं और उसके बदले में वहीं खाते पीते और रहते हैं" यह कहकर गोपाल नीचे देखने लगा।

हेमचन्द्र गोपाल के कातर वचन सुनकर बड़ा दुःखित हुआ बात बहलाने के लिये पूछा "जो आपका मन हम से मिलने को था तो इतने दिन से क्यों न मिले ?"

गोपाल ने कहा "आपलोग ठहरे बड़े आदमी कहीं हम आवें और आप हमसे न बोलें इसी मारे नहीं आये, आज क्या करें पानी आ गया ।"

हेमचन्द्र ने हंसकर कहा "हम बड़े आदमी कहां से हैं ? बहुत होंगे तो आपसे एक इञ्च लम्बे होंगे ।"

गोपाल ने हँसकर कहा "जी इस बड़ाई की बात नहीं है ।"

हेमचन्द्र ने कहा "अच्छा अब आप यह धोती तो पहिरिये ।"

गोपाल क्या करे, धोती पहिरा, अपनी धोती हाथ में उठाने लगा, हेमचन्द्र ने उठाने न दिया कहा "किताब और धोती कल स्कूल जाने के समय लेते जाइयेगा' यह कहकर एक छाता देकर एक नौकर को लालटैन लेकर साथ कर दिया ।

जिनके घर में गोपाल रहता था उनके बड़े लड़के का

नाम कन्हैया था, वह गोपाल का समवयस्क था, उसने गोपाल को देखकर कहा "भला आपके दर्शन तो भये, यही गनीमत है। अखूखाह। अब तो बिना लालटेन के बाबू साहब चलही नहीं सकते।"

गोपाल ने दीनभाव से कहा "भैय्याजी। हमसे क़सूर हो गया, मारे पानी के रास्ता बन्द हो गया था, ज़रा धी चुप रहिये कहीं सर्कार न सुन लें।"

कन्हैया—"क्या सर्कार और हम दो है? उनको तो पहिले ही खबर हो चुकी है।'

कन्हैया के कोलाहल से बाबू ने गोपाल का आगमन जानकर कहा "करने तो चले नौकरी और यह नव्वाबी मिज़ाज! क्या मेह बरसता है इसलिये खाना पीना न होगा? भई। हमे इस तरह का नौकर न चाहिये हज रत! आप कल्ह से अपना दूसरा ठिकाना ढूंढिये" गोपाल कुछ न बोला चुपचाप भीतर चला गया, जाकर देखा कि श्यामा सब तैयारी करके बैठा है, श्यामा ने गोपाल को देखकर कहा "आज कहा रहे? देखो तो कैसा २ बक रहे है।"

श्यामा की आँखो से अश्रुधारा बह रही थी, गोपाल ने कहा "जीजी। जिस बाबू की बात हम नित्य कहते थे कि उनके पास बहुत सी किताबें हैं आज उन्हीं के घर के

पास बड़े जोर का पानी आ गया, इसी मारे नहीं आ सके, वहीं खडे हो गये उन्होंने आकर हमको पकड़ा अपने पास बैठाया, जल पान कराया, और यह धोती पहिराया, कोई तरह आनेही नहीं देते थे बहुत कहते सुनते छोड़ा है साथ में लालटैन कर दिया था। आहा! जैसे देखने में सुन्दर हैं वैसेही चित के भी हैं।

श्यामा ने गोपाल की बातें सुनकर हर्षोत्फुल्ल नेत्र से कहा "परमेश्वर उन्हें मार्कण्डे की आयुस दे, हमारे सिर में जितने बाल हैं उतने बरस उमर बढ़े।

गोपाल—"जाजी उनका नाम क्या है तुम्हें मालूम है?"

श्यामा ने पूछा "क्या नाम है?"

गोपाल ने उत्तर दिया "उनका नाम जानने को हम को बड़ी इच्छा थी पर एक तो वडे आदमी दूसरे उमर में भी हमसे बड़े इसी सकोच से पूछ न सके, फिर एक किताब खोल के देखा पर इस सन्देह से कि कहीं यह किताब और किसी का न हो दो तीन किताबों पर देखा, सब पर एकही नाम लिखा था। 'हेमचन्द्र'—जीजी नाम तो बड़ा सुन्दर है।"

श्यामा—"हां यह नाम तो सुन्दर हई है पर गुन रहने से खराब नाम भी सुन्दर हो जाता है।"

गोपाल—"तुम जब देखोगी तब जानोगी कि कैसे अच्छे

आदमी हैं हमसे तो कहा है कि जब जिस पोथी का काम हो ले जाया करना ।"

श्यामा—"एक दिन हमें भी दिखलाय देव, जरा उन्हे पहिचान तो लें, उनके पलवार (परिवार) में कोई है ?"

गोपाल—"कोई नहीं ।"

थोड़ी देर पीछे पाक करते २ गोपाल ने कहा "जीजी थोड़ा सा तेल और तो देव ।"

श्यामा ने कहा—"तेल तो अब नहीं है ।"

गोपाल—"हमारे तेल में से दे देव ।"

श्यामा—"उसमें तो तनिकही सा है जो दे देंगे तो फिर तुम कैसे पढ़ोगे ?"

गोपाल—"एक तो आज हमको देरी हो गई है दूसरे जो कहेंगे कि तेल नहीं है तो बड़ा बकेंगे, लाओ हमारा तेल दे देव हम आज न पढ़ेंगे ।',

गोपाल को पढ़ने के लिये श्यामा अपने वेतन में से तेल ले आती थी, उस तेल में से भी प्राय: घूस देना पडता है जो ऐसा न करें तो मालकिनी कहती कि 'सब चोराय लिया ।"

गोपाल पाक सिद्ध करके घर के सब लोगों को व्यालू अलग २ थालो में लगाकर सब के सामने रखकर, श्यामा को खाने को अलग करके स्वयं खाने के लिये बैठनाही चाहता था कि कन्हैया ने कुछ मांगा, गोपाल ने पास जा कर पूछा "आपने कुछ मागा है ?"

गृहपति बाबू साहब ने क्रोधपूर्वक कहा "आप तो दिन पर दिन नव्वाब बहादुरही हुये जाते हैं, गोया खुद हजरतसलामतही हैं! थाली परोसकर जरी भी खड़ा नहीं रहा जाता ऐसा करने से हमारे यहा न निभेगा।"

कन्हैया बाबू के हँसी का तो क्याही पूछना है, गोपाल सिर नीचा करके चुपचाप खड़ा रहा।

कन्हैया बाबू ने कहा "क्यों हजरतसलामत? थोड़ी तरकारी और है?"

उस दिन गोपाल बाबू लोगों की प्रसन्नता के लिये सब अच्छे पदार्थ परोस लाया था अपने लिये कुछ भी न रक्खा था इससे कहा "तरकारी तो अब नहीं है?"

गृहस्वामी ने कहा "ऐं। चार पैसे की भाजी सब हो गई।"

गोपाल—"सब परोस लाये हैं।"

कन्हैया बाबू ने कहा—"अच्छा तरकारी का बर्तन तो देखाओ?"

गोपाल ने अपने और श्यामा के खाने की पत्तल तथा तरकारी के बर्त्तन लाकर दिखलाये, कन्हैया ने कहा "इन पर आंखें हैं तुम मोचे रख आये हो?"

गोपाल ने दुःखित होकर कहा "अच्छा हम यहीं रहते हैं आपलोग भोजन कर लीजिये तब चलकर देख लीजियेगा।"

कन्हैया बाबू ने चिढ़कर कहा—"देखो तो छोटा मुंह बड़ी बात" गोपाल कुछ न बोला, सब के आहारादि होने पर गोपाल नीचे आया, श्यामा ने कहा "जाओ तुम भोजन कर लेव आज हम न खायँगी भूख नहीं है।"

श्यामा ने कहा—"काहे भूख क्यों नहीं है?"

आज की बातों से गोपाल को बड़ा दुःख हुआ था पर उसको छिपाकर गोपाल ने कहा "आज हेमचन्द्र के यहां कुछ जलपान कर लिया था इससे भूख नहीं है।"

गोपाल ने आज क्यों नहीं खाया यह श्यामा समझ गई इसी से आप भी बिना कुछ भोजन किये सो रही।

एकविंश परिच्छेद।

श्यामा से भी पूछ लें।

हेमचन्द्र ने गोपाल को बिदा करके रामकुमार नामक नौकर को बुलाया, रामकुमार हेमचन्द्र के यहां का बहुत पुराना नौकर था, हेम का जन्म इसके सामने हुआ था, तथा हेम को पालपोस कर इसी ने इतना बड़ा किया था। हेम से पुत्रवत् स्नेह करता तथा स्वामिपुत्र होने से स्वामि-वत् भक्ति करता लखनऊ में रामकुमार हेमचन्द्र के पास अभिभावक स्वरूप रहत कुछ नौकरी की भांति न रहता।

प्राय: लड़के लोग घर के पुराने नौकरों से असन्तुष्ट

रहती है क्योंकि वे प्रायः लड़कों को पुत्रवत समझते हैं प्रभुवत नहीं समझते, उनपर प्रायः 'उनकी हुकूमत' नहीं चलती जब उनलोगों की इच्छा होती है तभी कुछ काम करते हैं परन्तु रामकुमार बहुत वृद्ध था इससे कोई किसी काम के लिये न कहता इसलिये उसपर किसी के असन्तोष का कारण नहीं था।

हेमचन्द्र के पुकारतेही रामकुमार आकर बैठ गया हेम ने पूछा "यह जो लडका आया था इसको देखा?" रामकुमार—"हां आजही तो देखा है, हेम ने पूछा—"यह कैसा है?"

रामकुमार ने कहा—"देखे में तो बडा शान्त, बहुत धीरा है पर पेट का गुन औगुन कौन जाने।"

हेम ने हसकर कहा—"रामकुमार तुम तो जल्दी किसी को भी अच्छा नहीं कहते।"

रामकुमार ने उत्तर दिया "जब तुम्हारी भी हमारे बराबर उमर होगी तब तुम भी जल्दी किसी को अच्छा न कहना चाहोगे। पर हमने कुछ निन्दा भी तो नहीं किया लड़के का नाम क्या है"?

हेम बाबू ने कहा 'नाम तो पूछा नहीं पर लिखने पढ़ने में बड़ा तेज है। बोली कैसी मीठी है, नम्रता कैसी है।' रामकुमार का क्या अभिप्राय है यह जानने के लिये वह उसकी ओर देखने लगा।

रामकुमार ने कुछ न कहा केवल सिर हिला दिया।

हेम बाबू ने कहा "रामकुमार यह बिचारा बड़े कष्ट में है, एक जगह रसोईदारी करता है और स्कूल में पढ़ने जाता है। देखने से गरीब आदमी का लड़का नहीं जान पड़ता, हाथ कैसे नरम हैं, जान पड़ता है किसी दैवघटना से यह दरिद्र हुआ है।"

रामकुमार ने मुख भारी करके कहा "हां होगा।"

रामकुमार का उत्तर हेमको अच्छा नहीं लगा, गोपाल से वार्त्तालाप जब से हुई तब से हेम को इच्छा हुई कि इसको अपने साथ रक्खें किन्तु इच्छा थी कि यह प्रस्ताव पहिले रामकुमार ही करें तो ठीक है इसी से रामकुमार के कुछ न कहने से किञ्चित दुःखित हुआ, फिर कुछ देर ठहरकर कहा "भला क्यों जी, जो कभी हमलोग गरीब हो जायँ तो क्या हो?"

रामकुजार ने गम्भीर भाव से कहा "ग़रीब हो तुमारे दुश्मन, तुमारे ऊपर सदा लक्ष्मी माई की कृपा रहेगी और जो अच्छी विद्या सीख लेवोगे तो फिर तुमको कौन बात की कमी रहेगी?"

इतने पर भी रामकुमार ठिकाने न आया।

हेमचन्द्र ने फिर कहा—"अच्छा जो विद्या सीखने से पहिलेही गरीब हो जायँ तो क्या हो?"

रामकुमार ने कहा—"ऐसी बात मुह से भी नहीं निकालना, ऐसा कभी न होगा।"

इतने में रसोइयांदार ने भोजन करने को बुलाया। हेमचन्द्र उदासीन भाव से भोजन करने गया, आहारोपान्त सोने के लिये ऊपर गया, थोड़ी देर पीछे रामकुमार भी भोजन करके ऊपर गया, रामकुमार हेमजी के पास सोता था।

हेमचन्द्र ने पान खाते २ कहा "अहा। हमलोग खा पीकर सोये भी पर वह लड़का बिचारा अभी तक चूल्हे ही के सामने बैठा होगा।"

रामकुमार ने उत्तर दिया "सब का भाग क्या एक समान होता है? जो ऐसा होय तो पिरथी का काम न चले ऐसा होता तो सभी न मालिक बन जाता नौकरी कौन करता?"

रामकुमार की बात सुनकर हेमचन्द्र कुछ देर चुप रह कर फिर बोला 'रामकुमार। इस लड़के को देखकर हम को बड़ा दुःख होता है, हमारा जी चाहता है कि उसको अपने पास रक्खें, यहाँ रहेगा तो उसको इतना दुःख न होगा, जैसा पर चार दाना अन्न अनायास मिला करेगा।"

बचपन से हेमचन्द्र की जब जो इच्छा हुई वह तत्पश्चात् सम्पादित हुई। विशेष करके अब से उसकी मा का

परलोक हुआ, तब वे तो कोई कड़ी बात भी नहीं कह सकता। रामकुमार ने हेम की बात सुनकर कहा "तुम्हारी इच्छा हो तो बुला के रख लो।"

हेम ने कहा—"बाबा तो न दिक होंगे?"

रामकुमार ने उत्तर दिया" उन्होंने कभी तुमको कुछ कहा है कि आजही कहेंगे? या आध सेर अन्न वह नहीं दे सकते? परमेश्वर की कृपा से हजारों मनुष्य उनके यहां पलते हैं क्या एक जीव के खिलाते वह दिक होंगे?"

हेम०—"तो उनको भी चिट्ठी लिख दें उस लड़के को बुला लें।"

रामकुमार—"चिट्ठी लिखो तो वैसा न लिखो तो वैसा।"

हेम रामकुमार के आश्वास वाक्य से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, प्रफुल्लचित्त होकर सोने का उद्योग करने लगा पर निद्रा न आने से उठ बैठा और लम्प बालकर पत्र लिखने लगा।

सवेरा होने पर हेमचन्द्र उठकर बैठकखाने में जा बैठा, दो चार पुस्तकों को उलट पुलट-कर हीरा नौकर को बुलाकर गोपाल को बुलाने भेजा, गोपाल सवेरे रसोई में व्यस्त होने के कारण न जा सका पर कहला भेजा कि स्कूल जाते हुये मिलते जायँगे।

और दिनों की अपेक्षा आज शीघ्रही रसोई करके

गोपाल ने सब लोगों को भोजन कराया, और जल्दी २ चार दाना अपने मुंह में देकर स्कूल चला। हेमचन्द्र की धोती बड़े यत्न के साथ तह करके एक कागज में लपेट कर हेम के घर चला, हेम के घर के पास पहुंचकर कलेजा कांपने लगा, जरा सा ठहरकर फिर चला. हेम सड़क के किनारे की खिड़की मे बैठा था। गोपाल को देखतेही दौड़कर दर्वाजे से हाथ पकड़कर ले गया, गोपाल ने धोती को निकालकर रख दिया, हेम ने पूछा "आप इस को क्यों ले आये?"

गोपाल ने कहा "जब आपका नौकर गया था तब सूखी नहीं थी इससे नहीं भेजा था।"

हेम ने कहा "हमने धोती के लिये नौकर नहीं भेजा था हमने आपको बुलाया था।"

गोपाल कुछ न बोला।

हेम ने फिर कहा "कल्ह रात को हमने एक बात सोचा है पर आपसे कहते सङ्कोच लगता है।"

गोपाल ने हंसकर कहा "हमसे आप कोई बात कहें तब आपको क्या है इसमें सङ्कोच क्या?"

हेमचन्द्र ने कहा "जो आगा पीछा करता हूं तो आप कोई दूसरी बात न समझिये तो कहें।"

गोपाल ने कहा "हम दूसरी कौन बात समझेंगे? पर

इतनीही बिनती है, कि आप हमको आप आप मत कहा कीजिये।"

हेम हँस दिया गोपाल ने भी हँसकर कहा "हम गरीब रसोंईदार हमको 'आप' कहते हैं तो बड़ी लज्जा आती है; और जो कोई सुनेगा तो वह भी क्या कहेगा।"

हेम ने हँसकर पूछा "तो क्या कहा करें?"

गोपाल ने उत्तर दिया "हमारा नाम लेकर कहा कीजिये।"

हेम०—"तो आपको भी हमारी एक बात मानना होगा।"

गोपाल—"कौन बात?"

हेम कहता कहता फिर रुक गया, सोचने लगा कैसे प्रस्ताव उठावें, इतने में नौकर पान दे गया, हेम पान खाते खाते सोचने लगा, कि कैसे कहें, गोपाल की दृष्टि को अल्मारी की ओर देखकर हेम ने सुअवसर जान कहा "आपने कहा था कि हम पुस्तक ले जाया करेंगे, पर सम्भव है कि एकही समय हमको और आपको एकही पुस्तक का काम पड़े तब क्या होगा?"

गोपाल ने कहा "जिस पुस्तक का आपको काम पड़े वह हमको मत दीजियेगा। जिन पुस्तकों का आपको काम नहीं पड़ता उन्हीं में से कोई कोई हमको दिया कीजियेगा तो हमारा बड़ा उपकार होगा।"

हेम ने कहा "हमारा यह अभिप्राय नहीं था हमारा अभिप्राय यह है कि हमलोग दोनों आदमी एकही ठिकाने रहैं।"

गोपाल ने हेम के मुंह की ओर देखकर कहा "आप के यहां तो एक ब्राह्मण है न?"

हेम ने कहा 'आपको क्या हम रसोईयांदार बनाकर रखने चाहते हैं? जैसे हम रहते हैं वैसेही आप भी रहियेगा।"

गोपाल कुछ न बोला सिर नीचा करके भूमि की ओर देखता रहा, हेम भी थोडी देर तक चुप रहकर बोला "तो आप क्या चाहते हैं?

गोपाल ने गम्भीर स्वर से कहा "हम अकेले नहीं हैं हमारे साथ हमारी एक बहिन और भी है।"

हेम ने पूछा 'कैसी बहिन?"

गोपाल ने [illegible] कहा "हमारी सदा से यही दशा नहीं थी, हमारे [illegible] पास श्यामा नाम की एक दासी [illegible] प्रतिपालन किया है अपना चा[illegible] जिसकी [illegible] नहीं है उसके [illegible] जिस समय हमलोगों को [illegible] इस समय श्यामा [illegible] लता का

थी, मां ने चलने के समय उसी को हमारा हाथ पकड़ा दिया था, तभी से हमलोग जहां जाते हैं एक साथही रहते हैं। वह तो बिना हमारे तीनही दिन में मर जायगी।"

गोपाल की बात सुनकर हेम की आँखें भर आईं इतने में रामकुमार भी आ गया, हेम ने कहा "रामकुमार हमने जो बात कहा था वही बात निकली।

रामकुमार ने पूछा "क्यों भैया, कब से अपना डेरा लाओगे?"

हेम ने श्यामा का सब वृत्तान्त कहा, रामकुमार ने कहा "अच्छी बात तो है, तुम तो एक दाई रखने कहते ही थे, जो श्यामाही दो चार जरूरी काम कर देगी तो फिर दूसरी दाई रखने का कौन काम है?

गोपाल ने कहा 'पर हम वहां से क्या कहकर छोड़ें?'

हेम ने पूछा 'क्या वह लोग तुमको इतना चाहते हैं?'

गोपाल चुप हो रहा हेम ने फिर वही प्रश्न किया, गोपाल ने कहा "नौकर को कौन चाहता है? कल आपके यहां से जाने में थोड़ी देर हो गई इसपर वह लोग कितना नाराज हुये हैं और—" इतना कह कर रुक गया, हेम ने थोड़ी देर अपेक्षा करके पूछा "और क्या?"

गोपाल ने कहा "जो कुछ नहीं जिसका अन्न खाया है उसकी निन्दा न करेंगे।"

हेम ने कहा "अच्छा यह बात जाने दीजिये, यहां आने का क्या विचार है?"

गोपाल ने कहा "बिना जीजी से पूछे हम क्या कहैं?"

हेम—"अच्छा तो कब कहियेगा?"

गोपाल ने कहा "आज संझा को स्कूल से आकर तब कहैंगे।"

गोपाल ने स्कूल से आने पर नाक चढ़ाकर श्यामा से आनुपूर्विक सब बृत्तान्त कहा, जिसको सुनकर श्यामा को आँखसे अश्रुधारा बहने लगी और बोली "हेम बाबू के घर जाने में कोई चिन्ता नहीं है, पर उनके यहा के और लोग कैसे हैं? वह लोग जो कहीं पोछे पड जायँगे तो क्या होगा? यहा तो छिपे छिपाये हुये पडे हैं कोई बात नहीं है वहा तो तुमने सब हाल खोल दिया वहा के नौकर चाकर की बात तो बर्दाश्त होगी नहीं?"

गोपाल ने कहा "जोजो वह ऐसो चाल से पूछने लगी कि हम छिपा न सके।"

श्यामा "हम उसके लिये तुम्हें कुछ दोष नहीं देते।"

थोड़ी देर तक सोच विचार कर श्यामा ने पूछा "तुम्हारा क्या मन है?"

गोपाल ने कहा "हमारा मन तो वहा जाने को करता है, पर जो तुम न कहोगी तो हम कभी न जायँगे, हम तो कभी तुम्हारी आज्ञा के विरुद्ध काम नहीं करते।"

श्यामा ने कहा "हमारी भी यही इच्छा है, पर इन लोगों से तो पहिले से कह देना चाहिये, कल्ह सवेरे एका एकी हम लोग चले जायँगे तो यह बिचारे क्या करेंगे?"

श्यामा का मन जानकर गोपाल को अत्यन्त हर्ष हुआ। रन्धनादि कार्य्य से छुट्टी पाने पर दौड़कर हेम बाबू से सब वृत्तान्त कह आया, हेमचन्द्र भी सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुआ।

बत्तीसवां परिच्छेद ।

भाग्योदय ।

एक साथ रहने के कारण हेम और गोपाल में अत्यन्त सौहार्द्र हो गया। गोपाल हेम को "भैयाजी" कहते और हेम भी गोपाल से सहोदर की भांति स्नेह करता।

क्रमशः आश्विन मास विजयादशमी नवरात्र आया। एक महीने की छुट्टी हुई नौकरिये अपने २ घरके लिये प्रस्तुत होने लगी, विरहिनी नाना आशाओं से फूले अंगी न समाने लगीं, बालकगण अपने माता पिता के दर्शन को उत्कण्ठित होने लगे, सारे भारतवर्ष में आनन्द उथलने लगा। भगवान मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र की दिव्य उपदेशमीय लीला सुषुप्त भारतवासियों को उनकी लुप्त गौरव का स्मरण दिलाने लगी।

हेमचन्द्र ने गोपाल से पूछा "गोपाल तुम अपने घर जाओगे ? जो न जाओ तो अबकी हमारे घर चलो।"

गोपाल ने कहा "हम अपने घर कहां जायेंगे ? आप अपने घर ले चलियेगा तो फिर के बल चलेंगे।"

हेम और गोपाल हेम के घर आये, स्वर्णलता गोपाल को बहुतही चाहने लगी, गोपाल न पढावें तो स्वर्ण का पढ़नाही नहीं होता, कोई बात पूछना होता तो गोपाल के पास जाती, मानो गोपाल के साथ स्वर्ण का बडा पुराना सम्बन्ध है।

हेम ने स्वर्ण से पूछा "स्वर्ण आज कई दिन से तुमने नहीं पढा ?"

स्वर्ण ने हँसकर कहा "पढ़ा क्यों नहीं ? हम तो रोज ही पढ़ते हैं।"

हेम—"अच्छा पोथी लाओ, इम्तिहान तो लें।"

स्वर्ण हंसते हंसते 'वामामनरञ्जनी' ले आई, हेम ने पूछा "कहां तक पढा है' स्वर्णलता ने कहा 'सीता तक।'

हेम वहीं निकालकर पढने लगा और एक२ परिच्छेद समझाकर, स्वर्णसे पूछा "समझा ?" स्वर्ण ने थोड़ी देर ध्यानपूर्वक सुनकर कहा 'भैयाजी। तुम बडी जल्दी २ पढाते हो, हम तुमसे न पढ़ेंगे गोपाल से पढेंगे।"

हेम—"अच्छा गोपाल बाबू को बुलाओ तो।"

स्वर्ण आज्ञा पातेही बाहर बैठकखाने में गोपाल को बुलाने के लिये दौडकर गई और गोपाल का हाथ पकड़ खींच कर कहा "चलो तुम को भैयाजी बुलाते हैं।"

गोपाल ने पूछा "क्यों ?"

स्वर्ण—"आओ तो सब मालूम हो जायगा।"

स्वर्ण हाथ पकड गोपाल को ले चली, गोपाल पीछे पीछे हंसता हुआ चला, स्वर्ण गोपाल को जहां हेम बैठा था ले गई, गोपाल ने पूछा "भैयाजी आपने हम को क्यों बुलाया है ?"

हेम ने कहा "गोपाल तुम पराये घर की तरह बाहर बाहर क्यों रहते हो ? क्या तुम इसको पराया घर समझते हो ?"

गोपाल ने लज्जित होकर कहा "बैठक में सब लोग बैठे थे इससे हम भी वहीं बैठ गये।"

हेम—स्वर्ण तो हमसे अब पढ़ेहीगी नहीं—हमारा पढ़ाना तो उसके मनोमत होताही नहीं।"

गोपाल ने पढ़ाना आरम्भ किया, एक एक कथा पढ उसका दूसरा प्रतिशब्द समझा कर स्वर्णलता को पढाने लगा स्वर्ण की दृष्टि पुस्तक पर न थी वह एक दृष्टि गोपाल की ओर देख रही थी, गोपाल ने एक कथा पूरी कर के स्वर्णलता के मुंह की ओर देख कर पूछा "आप ने समझा?'

स्वर्ण से चार आँखें होतेही गोपाल का मुखमडल आरक्तिम होगया। स्वर्ण ने मधुर हास्यपूर्वक कहा "तुम हमको आज आप क्यों कहते हो?"

गोपाल का मुख कर्ण पर्यन्त लोहितवर्ण होगया। पहिले गोपाल स्वर्ण को तुम कहता था।

हेमचन्द्र बिछौने पर लेटे २ गोपाल का पढ़ाना सुन रहे थे, थोडी देर पीछे वहां से उठ कर बाहर जाने लगे, गोपाल ने कहा "भैयाजी कहा जाते हो? जरा सा ठहर जाओ थोडा सा और बाकी है यह पढा कर हम भी चलते हैं।"

हेमचन्द्र ने कहा "तुम पढाओ हम अभी आते हैं" यह कह कर हेमचन्द्र बाहर चले गये।

गोपाल नीचा सिर किये स्वर्ण को पढ़ाने लगा, स्वर्ण ने पूछा "क्यों जी आज तुम्हे क्या हुआ है? तुम जमीनही की ओर क्यों देख रहे हो?"

गोपाल ने उत्तर दिया "कुछ तो नहीं, आप पढ़िए।"

गोपाल ने एक बेर स्वर्ण के मुख की ओर देख कर फिर नीची दृष्टि कर के कहा "स्वर्ण, हम बड़े गरीब आदमी हैं, एक बाबू के यहां रसोईदारी करते थे, हम को पदज के माफिक बोलना चाहिये।'

यह कह कर गोपाल ने फिर स्वर्ण के मुख की ओर

देखा। स्वर्ण ने देखा गोपाल की आंखें जलपूर्ण हैं तब गोपाल का मन फेरने के लिये पूछा "क्यों जी, तुम्हारे यहां नवरात्र की पूजा होती है कि नहीं ?"

गोपाल ने कहा "हमलोग ग़रीब आदमी हैं हमारे यहां क्या नवरात्रि और क्या शिवरात्रि" गोपालकी आँखों में जो जल भरा था वह झरझर बहने लगा, गोपाल पृथ्वी की ओर देखने लगा, दोनों थोड़ी देर चुप रहे, स्वर्ण ने पूछा "तुम्हारी दादी कहां है ?"

गोपाल ने उत्तर दिया "हमारी दादी नहीं है।"

स्वर्ण—'और मां ?"

गोपाल—"मा देश में है"।

स्वर्णलता का मुंह कुछ उदास होगया, कातरस्वर से पूछा "भला तुम हमारी मा का कुछ हाल जानते हो ?"

गोपाल—"क्या ?"

स्वर्ण—"हमारे महल्ले की जितनी लड़की हैं जिनके साथ हम खेलते हैं सब की मा हैं एक हमारी मां नहीं है, दादी से पूछते हैं तो वह कहती है सब की मां नहीं होतीं, बाबा से पूछते हैं तो वह रो उठते हैं, भैया जी से पूछते हैं तो वह कुछ बोलतेही नहीं, तुम बताओ हमारी मा का कुछ हाल जानते हो ?"

गोपाल ने कहा "तुम्हारी मा मर गई।"

स्वर्ण—"तो क्या तुम्हारी दादी भी मर गई हैं ?"

गोपाल—"हां वह भी मर गई हैं।"

स्वर्ण—तो हम दोनों एक तरह बराबरही हैं।"

स्वर्णलता की बात से गोपाल का शोकवेग द्विगुणित हो गया, मुंह नीचा करके निःशब्द रोदन करने लगा। स्वर्णलता थोड़ी देर तक चुपचाप रही फिर हँसकर पूछने लगी "तुम रोते क्यों हो ? देखो हमारी मा भी तो नहीं हैं फिर हम तो नहीं रोते ?" गोपाल कुछ न बोला।

स्वर्णलता ने गोपाल का हाथ खींचकर कहा "चलो ठाकुरजी का दर्शन कर आवें, तुम्हारे यहां ऐसे ठाकुरजी हैं ?" गोपाल चुप—स्वर्णलता ने फिर कहा "तनिक जल्दी चलो, तुमसे तो चला भी नहीं जाता।"

थोड़ी दूर चलते २ गोपाल की आंखों का जल सूख गया, हँसकर बोला 'स्वर्ण हमारे रोने की बात भैयाजी से मत कहना।"

स्वर्ण ने कहा "अच्छा तो तुम भी हमने जो मा का हाल तुमसे पूछा था किसी के सामने मत कहना" गोपाल ने कहा "नहीं हम न कहेंगे" स्वर्ण ने कहा "तो हम भी न कहेंगी।"

तैंतीसवां परिच्छेद।

नये नये भाव।

इसी दिन से स्वर्णलता के साथ गोपाल का एक गोपनीय सम्बन्ध स्थापित हुआ, गोपाल स्वभावतः लजालू था परन्तु इस घटना से उसकी लज्जा सहस्रगुण अधिक बढ़ गई, अब गोपाल जनाने में कभी न जाता सर्वदा बाहर रहता, पहिले बातचीत करना अच्छा लगता किन्तु अब बोलने को जी ही नहीं चाहता, जहां बहुत से लोग बैठे होते धीरे २ वहा से हटकर दूसरी जगह जा बैठता। हेमचन्द्र एक वर्ष पीछे घर आये हैं, इनके यहा उनके यहां जानेहो में सात दिन व्यतीत हो जाता, जब गोपाल से भेंट होती और गोपाल को उदास देखते, तो सोचते कि गोपाल घर की चिन्ता से उदास है दो एक दिन हठात् अनजानते गोपाल के पास जाकर देखा कि गोपाल की आँखें भरी हैं, दो एक दिन गोपाल के सामने खडे रहे पर गोपाल ने न देखा, पुकारने पर चौंककर पूछ उठा "कौन है?"

एक दिन हेम ने पूछा "गोपाल तुम ऐसे क्यों हो रहे हो? क्या तुम्हें कोई कष्ट है?" गोपाल ने उत्तर दिया— "बहुत दिन से बाबा का कोई हाल नहीं मिला न मालूम उनका शरीर कैसा है?"

हेमचन्द्र ने गोपाल के पास बैठकर कहा "चिन्ता क्या है? वे अच्छे ही होंगे, तुमने कोई पत्र लिखा था ?"

गोपाल ने उत्तर दिया "नहीं।"

हेमचन्द्र ने कहा 'तो एक पत्र तो लिख देना चाहिये न' यह कहकर हेमचन्द्र क़लम दवात कागज़ लेकर पत्र लिखने लगा, थोड़ा सा लिखकर कहा, "इससे अच्छा नहीं बनता और तुम्हारे हाथ का लिखा न होने से उनको चिन्ता होगी कि कदाचित कुछ अस्वस्थ है इससे आप न लिख सका किसी दूसरे से लिखा दिया है।" गोपाल ने पत्र लिखा।

पत्रोत्तर आ गया, विधुभूषण ने लिखा "हम अच्छे हैं हमारे लिये चिन्ता मत करना, हेम बाबू का और अपना कुशल समाचार लिखना"। पहिले 'हेम बाबू का' और पीछे 'अपना कुशलसमाचार' लिखा देखकर हेमचन्द्र को अत्यन्त हर्ष हुआ, गोपाल का चित्त भी आगे की अपेक्षा हलका हुआ।

जिस दिन गोपाल और स्वर्णलता से पूर्व प्रकाशित बातचीत हुई थी उसी दिन से स्वर्णलता के हृदय में एक अभूतपूर्व भाव उदय हुआ। यह कौन भाव ? स्वर्णलता कह नहीं सकती कि कौन भाव ? गोपाल को देखने की इच्छा होती पर जब गोपाल के पास आया न जाता, यह प-

हिले की तरह हाथ पकड़कर खींचने की क्षमता न रही, पहिले हेम के साथ जो गोपाल जनाने में न आता तो स्वर्णलता पूछ उठती "भैयाजी गोपाल कहां हैं?" परन्तु अब पूछने का साहस न होता, हेम को आते देखते ही हृदय काँपने लगता, उसके पीछे और कोई आता है कि नहीं कनखियों से देखने लगती, जो किसी को न देखती तो दीर्घनिश्वास लेकर कार्य्यान्तर वा स्थानान्तर में चली जाती, गोपाल जब हेम के साथ आता तो स्वर्णलता उस ओर दृष्टि न कर सकती, संयोग से दोनों की चार आँख हो जाती तो दोनोंही दूसरी ओर देखने लगते, किन्तु दूसरी ओर भी अधिक क्षण न देख सकते, अहा! कविकुलमुकुटमणि श्रीबिहारीलाल ने क्याही सुन्दर लिखा है "इन अँखिया दुखियानि को सुख सिरजोई नाहिं। देखन बनै न देखते अनदेखे अकुलाहिं॥" स्वर्णलता अब गोपाल को गोपाल कहकर न पुकारती, नामोल्लेख तो दूर रहे यदि कोई तीसरा व्यक्ति न हो तो गोपाल के पास अकेली न ठहरती हठात् अकेली गोपाल के सामने आ जाती तो आँख और मुख से मानो अग्निस्फुलिङ्ग निकलने लगती, पढ़ना लिखना बन्द हो गया। पुस्तक में मन नहीं लगता, अब गोपाल पढ़ाने के लिये नहीं बुलाये जाते, गोपाल को बिना देखे चित्त अत्यन्तही चञ्चल होता परन्तु गोपाल की ओर देखने का साहस भी न होता।

स्वर्णलता मानो हठात् बाल्यावस्था अतिक्रम करके यौवनाधिरूढा हो गई, पहिले निज आमोद प्रमोद और खेलों में जो लगता अब उनका नाम भी न भाता वरञ्च हंसी आती, दादी की कहानी अब तनिक न सुहाती, चिन्ताही मानो अब उसके जीवन का प्रधान उद्देश्य है।

एक दिन गोपाल और हेम एकत्र बैठे थे कि प्रेमचन्द्र भी वहां आ गये, पिता को देखकर दोनों चुप हो गये। प्रेमचन्द्र ने हेम से पूछा 'यात्रा का दिन स्थिर हो गया ?"

हेम ने उत्तर दिया "जी, आप जो दिन स्थिरकर देंगे उसी दिन जायेंगे।"

प्रेमचन्द्र ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा "अब तो स्वर्ण का विवाह किये बिना काम नहीं चलता, क्यों तुम क्या कहते हो ?"

हेम—"इसमें भला हम क्या कहेंगे ? जो आपका अभिप्राय हो वही ठीक है।'

गोपाल को प्रतीत होने लगा मानो उसके मुख से अग्निस्फुलिङ्ग निकल रहे हैं, वहां न [illegible] जाने के लिये उठा।

प्रेमचन्द्र ने कहा "कहां जाते हो भैया ? बैठो तुम्हारे उठने का कोई काम नहीं है।"

हेम ने कहा "नहीं, इन को थोड़ी देर घूमने फिरने दीजिये, इन [illegible] अच्छा नहीं है।"

गोपाल कुछ चुप होकर चला गया।

प्रेमचन्द्र ने कहा "तीन चार जगह से बातचीत आई है परन्तु हमारे मनोमत कोई नहीं है, अयोध्याजी में एक वर है, न देखने में सुन्दर न कुछ लिखा पढ़ा, परन्तु गुरुजी महाराज (यह कहकर गुरु को प्रणाम किया) वहीं सम्बन्ध स्थिर करने का आग्रह करते है।"

हेम ने उत्तर दिया "जो वह पात्र मूर्ख और कुरूप है तो कदापि वहां यह शुभ काम न होना चाहिये।"

प्रेमचन्द्र ने कहा "हम भी तो यही कहते हैं इसीलिये तो हमने अभी कुछ जवाब नहीं दिया, कह दिया है कि तुम्हारे साथ सलाह किये बिना कुछ नहीं कह सकते।"

हेम ने पूछा "और कहां से बात आई है?"

प्रेमचन्द्र—"और भी दो तीन जगह से बात आई थी पर हमने सब को उत्तर दे दिया, कोई पात्र अच्छा नहीं जान पड़ता।"

हेमचन्द्र ने कुछ सोचकर कहा "गोपाल के साथ विवाह करने मे कोई हर्ज है?'

प्रेमचन्द्र—"कौन गोपाल?"

हेम—"यही हमलोगों का गोपाल; अभी जो उठकर गया है।"

प्रेमचन्द्र ने कुछ देर तक सोच विचारकर कहा "तुम कहते न थे कि यह बड़ाही गरीब है, पात्र तो बहुतही

प-छा है जैसा देखने में सुन्दर वैसाही पढने लिखने में चतुर है पर बड़ाही गरीब है।" यह कहकर प्रेमचन्द ने कुछ मुंह बना लिया।

हेमचन्द्र ने उत्तर दिया "आपने जो रुपया स्वर्ण को वसीयतनामे में दिया है उसके मिलने पर स्वर्ण को किस बात की चिन्ता है? इसी को ठिकाने से रखकर खायेंगी तो के पुत्र बड़े आदमी की तरह चलेगा और फिर रूप गुण और धन तीनों इकट्ठे मिलना भी तो बड़ा कठिन है।'

प्रेमचन्द्र ने फिर थोड़ा देर तक विचार कर कहा— 'यह बात भी ठीक है, गोपाल कुल में बहुत श्रेष्ठ है, आज कल ऐसा कुलीन भी मिलना बहुत कठिन है" यह कह कर फिर कुछ देर चुप रहकर बोले 'तुम्हारी बात बहुत ठीक है, हमने बहुत सोचा विचारा जो कहीं कुछ थोड़ी भी पूंजी होती तो अच्छाही था पर तुम्हारा यह कहना भी ठीक है कि तीनों एक जगह मिलना कठिन है। यह कहकर प्रेमचन्द्र मन में तर्क वितर्क करते हुये वहां से चले गये, हेम भी गोपाल के अनुसन्धान में चले।

चौतीसवां परिच्छेद।

प्रणयराज।

गोपाल, प्रेमचन्द्र और हेमचन्द्र के पास से उठकर बैठ-

कखाना की ओर आया घर में घुसतेही दीन नयन से किसको देखा ? स्वर्णलता को, ऐ । स्वर्णलता यहा क्यों आई थी ?

सवेरे दूरही से हेम और गोपाल को दालान में देख कर स्वर्णलता अनुसन्धान करने लगी कि प्रेमचन्द्र कहा हैं थोडी देर पीछे उनको भी वहीं देखकर स्वर्णलता ने मन मे सोचा कि ये लोग अभी कुछ देर यहीं ठहरेंगे, धीरे २ बैठकखाने की किवाड फांफरो करके झांका वहा कोई नहीं है, कम्पितहृदय बैठकखाने में गई। मन में सोचा कि तनिक भी शब्द न होने पावे परन्तु आज जितनी वस्तु हैं मानो सभी उसकी प्रतिज्ञा भङ्ग करने की प्रतिज्ञा करके उसके सामने पडती हैं। एक कुर्सी के पास होकर चली वह गिरते २ बची, उसको थामते थामते मेज़ से एक पुस्तक गिर पडी पुस्तक उठाकर उसके पहिलेही पत्र पर "श्रीगोपालचन्द्र" लिखा देखा, कुर्सी पर बैठकर थोडी देर तक सादरनयन उसको देखा, उसे धीरे धीरे मेज़ पर रखकर बैठक में कपडा रखने की खूंटी के पास गई, खूंटी पर गोपाल की धोती और डुपट्टा रक्खा है, यह धोती डुपट्टा स्वर्ण के पिता ने दशमी पर गोपाल को दिया था, गोपाल उसी को पहिरकर मेला देखने गया था, स्वर्णलता यह जानती थी, किन्तु हेमचन्द्र कौन कपडा पहिरकर गये थे यह स्वर्ण को स्मरण नहीं, गोपाल के डुपट्टे का एक छोर

भूमि में लटकता था, बड़े यत्न से उसको उठाकर टाँग दिया तुरन्तही फिर उसको उतार कर आप ओढ़ लिया, आठकर अस्फुट स्वर से बोली ऐसेही तो ओढ़कर गये थे।

ज्योंही स्वर्णलता के मुंह से यह शब्द निकला त्योंही बैठक के द्वार पर पदध्वनि सुनाई पड़ी, चौंक कर देखा, गोपाल। स्वर्णलता का मुंह लाल हो गया, घबड़ाकर दुपट्टा फेंक ज़नाने में भागी, दुपट्टे को खूंटी पर रखने का अवकाश न मिला, गोपाल ने पूछा 'क्या है स्वर्णलता?" स्वर्णलता अब क्या कहती, गोपाल ने दुपट्टा उठाकर खूंटी पर रक्खा और पलंग पर सो गया।

पेट के बल सोकर तकिये पर मुंह रखकर गोपाल सोचने लगा, दम घुटने लगा, मनही मन कहने लगा "वामन होकर चन्द्रमा पर तू क्यों हाथ बढ़ाता है? दुराशा अच्छी बात नहीं है, दुराशा करके कभी किसी का भला नहीं हुआ है किसी के मारने मुंह से निकलने का भी ठीक नहीं, सुनतेही लोग पागल कहेंगे, (दीर्घनिश्वास) बिना रुपया के जानाही व्यर्थ है, आज जो हमारे पास रुपया होता तो हम क्या चिन्ता था? (दीर्घनिश्वास) कवि लोग कहते हैं विद्या अनर्घ का धन है पर क्या लोग पुस्तक लिख लिखकर क्या जान देते हैं? विद्या न होने से [illegible] क्या करता है? [illegible] संसार में परिपूर्ण है यही आह

तुमने सुनाही नहीं (गोपाल का हाथ पकड़कर) चलो उठो स्नान करो ।"

गोपाल ने पूछा 'लखनऊ जाने का दिन कब स्थिर हुआ?'

हेम०—'अभी तक तो स्थिर नहीं हुआ, बाबा साइत दिखला लें तब ठीक होगा।"

गोपाल—"स्वर" कहकर चुप होगया स्वर्णलता के विवाह के विषय में क्या हुआ पूछने को था पर "स्वर" कह कर आगे कुछ न कह सका भाग्यवश हेम का मन दूसरी ओर था गोपाल की बात उसके कान में न गई। दोनों स्नान भोजन करके बैठकखाने में बिस्तर पर आकर सोये।

पैंतीसवां परिच्छेद ।

रामचन्द्र विधुभूषण और शशिभूषण ।

गोपाल को लखनऊ में रखकर विधुभूषण एक डिप्टी कलेक्टर के साथ विदेश गया था यह तो पहिले कहचुके हैं, डिप्टी साहब बड़ेही गानवाद्यप्रिय थे, विधुभूषण को एक मोहर्रिरी अदालत में दिला दी, वह दिन भर अदालत का काम करता रात को डिप्टी साहब के यहां गाना बजाना होता, डिप्टी साहब भी कुछ सीखते, अपना

काम हो जाने पर जो आमदनी में से कुछ बचता सो वि धुभूषण गोपाल को भेज देता।

एक दिन विधुभूषण एक दुकान में कपड़ा ले रहा था कि रास्ते में कोलाहल सुनाई पड़ा, सब लोग उसको देखने बाहर आये विधुभूषण भी आया, देखा क्या कि आगे २ एक कृष्णवर्ण दीर्घाकार पुरुष है और उसके पीछे २ बहुत से लड़के "हनुमानजी हनुमानजी" करके ताली पीटते और रास्ते की धूल उसके ऊपर फेंक रहे हैं, देखतेही विधुभूषण ने रामचन्द्र को पहिचान लिया, रामचन्द्र का अब न वह शरीर है न वह मुख उसके लम्बे लम्बे बाल लटक रहे हैं दाढ़ी नाभी तक पहुंची है, आँख रक्तवर्ण हो रही हैं और शरीर सूखकर काँटा होगया है, आगे २ रामचन्द्र आ रहा है पीछे २ लड़के कोलाहल कर रहे हैं जब उस से बर्दाश्त नहीं हो सकता तब लड़कों को मारने दौड़ता है, लड़के भाग जाते हैं पर तुरन्तही फिर सब एकत्र हो "हनुमानजी हनुमानजी" करते आ जमते हैं।

विधुभूषण रामचन्द्र को पहिचानतेही उसके पासगया रामचन्द्र विधुभूषण को न पहिचानकर उसे भी मारने दौड़ा; किन्तु मुख देखतेही बोला 'भाईसाहब हमने पहिचाना नहीं, हमको ऐसा तंग कर रक्खा है कि बुद्धि ठिकाने नहीं है, अब तो मरें तो जान बचे।"

विधुभूषण ने कहा "क्यों ? क्या हुआ ? तुम यहां कब आये ?"

पीछे से बराबर "हनुमानजी हनुमानजी" की झड़ बँधी है, रामचन्द्र का कान उसी ओर लगा है विधुभूषण ने क्या कहा कुछ न सुना, तनिक ठहरकर कहा "भाई साहब पहिले हमारी रक्षा करो पीछे सब सुनेंगे"।

विधुभूषण बालकों को भगाने की चेष्टा करने लगा पर एक ओर से भगाता दूसरी ओर जा जमते, अन्त में विरक्त होकर रामचन्द्र का हाथ पकड़ दूकान के भीतर ले गया, जब लड़के दूकान में न घुस सके तब आपही चले गये।

रामचन्द्र को लेकर विधुभूषण एक किनारे जा बैठा, रामचन्द्र ने कुछ देर सुस्ताने के पीछे पूछा "भाईसाहब आप यहां कहां से आ गये ?"

विधुभूषण ने कहा "पहिले तुम बतलाओ कि तुम यहां कैसे आये ? तुम्हें तो बहुत अच्छा काम लग गया था उसे छोड़ क्यों दिया ?"

रामचन्द्र ने कहा 'भाईसाहब भाग में न रहने से कैसा भी सुख हो पर नहीं भोग सकता तुम्हारे घर से विदा हो हम अपने घर गये बस वहीं से फिर यह उपद्रव उठा, जिधर जांय उधर यही शोर, जब से तुमने मना किया तब से वह गीत भी नहीं गाते, तिसपर भी लोग

नहीं छोड़ते ।" विधुभूषण समझ गया कि रामचन्द्र "सुनहु भरथ है कान "के विषय में कहता है उसने कुछ उत्तर न दिया चुप रहा।

रामचन्द्र ने कहा 'भाईसाहब बताओ अब कहां जायँ कि जान बचे ?"

विधुभूषण ने कहा "रामचन्द्र तुम चिढ़ते क्यों हो ? इसी से तो लोग चिढ़ाते हैं।"

रामचन्द्र—"यह्वो तो हम भी समझते हैं कि हम चिढ़ते क्यों हैं पर क्या करें यह बात सुनतेही हमारी अक्किल जाती रहती है, पागल हो जाते हैं। "यह बात बहुत ठीक थी, विधुभूषण उसका मुख देखतेही जान गया था सन्ध्या तक दोनों उसी दूकान में बैठे बातें करते रहे सन्ध्या को विधुभूषण ने कहा 'रामचन्द्र चलो हमारे डेरे पर रहो वहीं भोजन करना वहीं सो रहना।"

रामचन्द्र—"भाईसाहब, अब हमें आहार निद्रा कहां ?"

विधुभूषण—"यह क्यों ?

रामचन्द्र—"आज तीन दिन से मुह में न एक दाना अन्न गया न एक बूंद जल तिसपर भूख नहीं।"

विधुभूषण रामचन्द्र की बात सुन दुःखित हो बोला "अच्छा तुम यहां ठहरो हम अभी तुम्हारे खाने को ले आते हैं।"

रामचन्द्र ने कहा "नहीं नहीं।'

चन्द्रमा के प्रकाश में विधूभूषण ने देखा कि रामचन्द्र की आँखे भयङ्कर रूप धारण किये है, बहुत सा समझा बुझा ढाढ़स दे अपने डेरे में लाया, उसको बाहर बिठाकर आप कुछ खाने को लाने भीतर गया, लौटकर देखा कि गृह शून्य है वहा रामचन्द्र नहीं है इधर उधर बहुत ढूंढा पर कहो पता न लगा ।

डिप्टी साहब के साथ विधुभूषण जैसे सुख में है वैसे सुख में आजन्म कभी न था, अब शशिभूषण ऐश्वर्यशाली होकर बडे २ महलों में कैसे सुख से है देखना चाहिये।

बाबू रामसुन्दर के षड्यन्त्र का फल फलित हुआ, बहू जी ने दर्ख्वास्त दी, तहकीक़ात के लिये स्वयं साहब मजिष्ट्रेट आये ।

बैठकखाने में प्रवेश करके साहब ने देखा कि बाबू साहब ज़मीन में बिछौना बिछवाकर बैठे हैं, उनके बाईं ओर बनात से मढ़ा एक टेबिल रक्खा है उसपर कुछ हाथी दाँत पीतल तथा चीन के खिलौने सजे हैं आगे एक कुर्सी रक्खी है, सामने बैठे अमला लोग काम कर रहे हैं, आज साहब की अवाई सुनकर बाबू साहब स्वयं काम करने बैठे हैं। आंख रक्तवर्ण नासिकाग्र भाग किञ्चित् स्फीत और जवा के फूल को भाति लाल, बात मुह से बराबर नहीं निकलती, बराबर पङ्खा हाँकने पर भी मुंह से मक्खी नहीं उड़ती ।

बाबू की सूरत देखतेही मजिष्ट्रेट साहब की अश्रद्धा हो गई, दो तीन प्रश्न किया, बाबू स्वयं एक का भी उत्तर न दे सके जो जो शशिभूषण सिखाते गये कहते गये। साहब मजिष्ट्रेट ने स्पष्ट समझ लिया कि शशिभूषणही कर्त्ता धर्ता है, यह देखकर साहब ने हुक्म दिया कि जब तक सर्कार से कोई मनेजर मुकर्रर न हो तब तक दफ्तर का काम बन्द रहे, और शशिभूषण अपने समय का हिसाब समझावें।

शशिभूषण के शिर पर बज्राघात हुआ अब आगे काम इनके जिम्मे रहेगा या नहीं इसकी तनिक भी चिन्ता इन को न थी, पिछला हिसाब समझाना पड़ेगा यही उनके मुख्य भय का कारण था, यदि उन्हें कर्म्मच्युत कर दिया होता तो यह इससे सहस्रगुण अधिक सुखी होते।

शशिभूषण विषणवदन घर आया, पहिले सब लोग आने के समय उठकर उसको सलाम करते, आज उठने को कौन कहै किसी ने सलाम तक न किया, सब मुह फिर कर अपने २ काम में लगे रहे, रास्ते में दोनों पट्टी के दूकानदार और दिन सलाम करते थे, आज किसी ने इनको ओर देखा भी नहीं, शशिभूषण को सिर उठाकर इधर उधर देखने का भी साहस न हुआ सिर नीचा किये घर आकर पलंग पर लेट गया।

प्रमदा ने पूछा "साहब ने आकर आज क्या किया ?"

शशिभूषण ने कहा "और क्या किया ? हमारा सत्या नाश कर गया ?"

प्रमदा ने घबड़ाकर बूछा " क्या क्या ?"

शशिभूषण ने उत्तर दिया "हमे हिसाब समझाना पड़ेगा और जब तक इसकी सफाई न हो ले किसी काम में हाथ नहीं लगा सकते ।"

प्रमदा न यह सुनकर फिर कुछ न पूछा ।

तीसरे पहर शशिभूषण बैठकख़ाने में जा बैठा, आज अमलावर्ग में से कोई भी न आया, द्वार पर तनिक भी खटका होता कि शशिभूषण उत्साह पूर्वक उधरही देखता परन्तु क्या देखता ? या तो बजाज या बनिया प्रभृति दूकानदार अपना २ रुपया मागने आये है, आठ बजे रात तक आशा देखकर अमला लोगों के घर पर बुलाने को मनुष्य भेज दिया ।

पहिले जो लोग उसके घर से टलते नहीं थे आज उन सभों को "कुट्टी नहीं है" कोई भी नहीं आ सकता, नौ बजे रात को शशिभूषण रामसुन्दर बाबू के घर गया, वहा सब को इकट्ठा जमे हुए पाया, और दिनो की भांति आज किसी ने भी उठकर अभ्यर्थना न किया, रामसुन्दर कभी शशिभूषण के सामने तमाकू न पीता आज जान पड़ता है

वहां चाटा पुजाने को बराबर सटक गड़गड़ा रहा है, और शशिभूषण भी तमाकू पीता है यह तो आज सभी भूल गये हैं।

शशिभूषण आकर बैठा है, कोई भी उससे नहीं बोलता थोड़ी देर पीछे सब के सब उठकर जाने लगे तब शशिभूषण ने कहा हम आपही लोगों के पास आये हैं।"

खजाञ्ची ने व्यङ्गपूर्वक कहा "इतनी कृपा ? क्या हम से आपको कुछ काम है ?"

ए॥ मुहर्रिर ने खजाञ्ची से कहा "चलिये बड़ी रात गई।"

शशिभूषण ने कहा "कृपा करके तनिक बैठ जाइये, हम आप सब लोगों के पास आये हैं।"

सब लोग बैठ गये थोड़ी देर ठहरकर शशिभूषण ने कहा "अब आपलोग जो रक्षा नहीं करते तो हमारा प्राण नहीं बचता, इसी लिये आप लोगों की शरण आये हैं।"

रामसुन्दर ने कहा "भला हमारे बढ़ाने में क्या है और हमारी क्षमता क्या है ? हमलोग तो बाबा मुहर्रिर मुंशी आदमी हमारे हाथ में कौन बात है।"

शशिभूषण ने कहा "यह सब ठीक है पर इस विपत्ति में आप न हाथ पकड़ेंगे तो हम न बचेंगे।"

सब लोग यह सुनकर उठ खड़े हुये और जाने के

लिये उद्यत होकर बोले "तो हम लोग जाते हैं हम लोगों से तो कुछ काम हुई नहीं?"

शशिभूषण ने कहा "आप सब साहबों से हमारा काम है" यह कह गले में अँगोछा डालकर दोनों हाथ जोड़ एक किनारे खड़ा हो गया, शशिभूषण की आँख से अश्रु धारा प्रवाहित हुई, शशिभूषण की यह दशा देख खज़ाञ्ची प्रभृति सब नर्म हो गये, बहुत सी हुज्जत हिकायत के पीछे यह स्थिर हुआ कि शशिभूषण चार हज़ार रुपया देंगे और वह लोग उसके अपराधों को ढांक देंगे परन्तु निरपराधी प्रमाणित होने पर शशिभूषण को इस काम से इस्तीफ़ा देना होगा। और कोई उपाय न देखकर शशिभूषण इसी पर सम्मत हुआ।

छत्तीसवां परिच्छेद।

"गोपाल कहां है?"

विपत्ति कभी एक एक करके नहीं आती, जब आने लगती है तब एकबारगी दलबद्ध होकर चारोंओर से आ घेरती है, हेमचन्द्र के पिता की मृत्यु हुई, इस दुःख को घरवाले भूलने भी न पाये थे कि हेमचन्द्र को भयानक शीतला निकल आई, उस साल लखनऊ में शीतलाजी का भयानक उपद्रव उठा था बहुत लोगों को दोबारा निक-

थीं, एक सुविज्ञ डाक्टर ने वायुपरीक्षा करके निश्चय किया था कि उसमें शीतला का विष मिला हुआ है।

हेमचन्द्र को तीन दिन पहिले बड़े वेग से ज्वर आकर शीतला के दाने निकल आये, हेमचन्द्र ने गोपाल को बुलाकर पूछा "तुमने शीतला छपवाया है?" गोपाल ने उत्तर दिया "हां छपा है" हेम ने कहा "हमें शीतला निकल आई है तुम लोग सावधान रहना।"

गोपाल ने हेम के शरीर की ओर देखा, तो देखा कि सारे शरीर में लाल लाल घुमची के दाने ऐसे दाने भरे हैं, गोपाल का कलेजा कांप उठा परन्तु हेम से कुछ न कहा, झट दुपट्टा उठा डाक्टर को बुलाने गया, डाक्टर साहब ने परीक्षा करके कहा "हां शीतला ही है।"

दो तीन दिन में भयङ्कर वेग सब शरीर में व्याप गया, गले की वेदना के मारे न बोल सका न जल नीचे उतरता सारा दिन निर्जल अनाहार चुपचाप सोया रहता।

गोपाल को अब न भूख है न नींद, रात दिन हेम के बिछौने के पास बैठा रहता, खाने के समय घड़ी भर कुछ खा आता किसी दिन थोड़ा बहुत खा लेता किसी दिन उपास का उपास पड़ा रहता एक दिन बड़े कष्ट से हेम ने कहा 'भाई गोपाल तुम रात दिन यहां मत बैठ रहा करो, कहीं तुमको भी न निकल आवे।' गोपाल ने कुछ उत्तर न दिया।

थोड़ी देर पीछे हेम ने पूछा "गोपाल, हमारी बीमारी का हाल घर पर किसी को कुछ लिखा है?"

गोपाल ने उत्तर दिया "नहीं अभी तो किसी को नहीं लिखा।"

हेम ने कहा "तो अब किसी को मत लिखना।"

गोपाल ने कुछ ठहर कर कहा "भैय्याजी, घर से दो चिट्ठी आई हैं पढ़ोगे?"

हेम ने उत्तर दिया "तुम्हीं खोलकर पढ़ो और जो जवाब हो लिख दो पर हमारी बीमारी का हाल मत लिखना।"

गोपाल ने चिट्ठी पढ़कर जवाब लिख दिया "सब लोग अच्छे हैं।"

इसके दो तीन दिन और पीछे हेम को सुधि भी न रही, केवल प्रलाप बकता, उसमें केवल स्वर्ण और गोपाल ही का नाम प्राय: लिया करता, गोपाल सिरहाने बैठा अश्रुविसर्जन किया करता।

श्यामा घर के कामकाज करने पीछे दिन रात हेम के पास बैठी रहती, एक दिन अश्रुपूर्ण नैन हो गोपाल ने श्यामा से पूछा "क्यो जीजी? इस दशा पर पहुंचकर भी कोई बचा है?"

श्यामा ने कहा "घबडाते क्यो हो? इनको साधारण

शीतलाजी का कोप है हमने तो इनसे बहुत बढ़कर रोगियों को बचते देखा है।"

गोपाल ने कहा "हमारे सिर की कसम खाओ—यह बचेंगे कि नहीं?" श्यामा ने कहा "हम क्या झूठ कहते हैं? इससे कहीं बढकर रोगी अच्छे हो जाते हैं?"

गोपाल कुछ देर चुपचाप बैठा था कि बाहर गाड़ीका शब्द हुआ और वह उसीके द्वार पर आकर रुक गया गोपाल ने श्यामा से कहा "देखो डाक्टर साहब घाये हैं क्या?"

श्यामा ने द्वार खोलकर देखा तो डाक्टर साहबही हैं, डाक्टर साहब ने खूब विचार पूर्वक रोगी का शरीर देखकर नाड़ी देख मुंह बिगाड़कर पूछा "ऐसी अज्ञानता कब से हुई है?"

गोपाल ने कहा "आज सवेरे से एक बात भी नहीं कहा है।"

डाक्टर साहब मुंह बनाकर चुप ही रहे।

गोपाल ने डाक्टर साहब से पूछा 'रोग कठिन हो गया क्या?"

डाक्टर साहबने कहा 'कठिन क्या असाध्य हो गया है।'

गोपाल के अश्रुधारा बह निकली, डाक्टर साहब ने कहा "इसका जो होना सो होगा खूब सावधानी से सेवा शुश्रूषा करो अब तो मैं जाने की आज्ञा है।"

गोपाल कुछ आश्वासित हुआ, डाक्टर ने जो २ करने कहा वह सब लिख लिया और ठीक वैसाही करने लगा।

डाक्टर साहब के चले जाने पर गोपाल ने श्यामा से कहा "जीजी अब तक तो घर पर हमने कुछ नहीं लिखा पर अब बिना लिखे रहना ठीक नहीं, तुम्हारी क्या राय है?"

श्यामा ने कहा "खबर भेजनाही चाहिये, जो कोई बात यहां भली बुरी हो जायगी तो वह लोग सोचेंगे कि पराये लोगों से कुछ सेवा टहल नहीं बनी दवादर्पन नहीं हुआ, बिना सेवा टहल दवादर्पन के मुफ़्त जान गई।"

गोपाल ने स्वर्णलता को एक पत्र लिखा—

"स्वर्ण,

हेम भैय्या को बड़े वेग से शीतलाजी निकली हैं, इतने दिन तक तो तुम लोगोंको कुछ लिखने नहीं दिया पर आज सवेरे अचेतन हैं, डाक्टर साहब कहते हैं अभी भी जीने की आशा है, तुमलोगों की इच्छा हो तो आओ, हम और श्यामा जहां तक बनता है सेवा टहल में कोई बात उठा नहीं रखते।

गोपालचन्द्र"

पत्र लिखकर गोपाल के चित्त का चाञ्चल्य कुछ कम हुआ. पीछे कोई यह न कहै कि बिना यत्न वा बिना चिकित्सा के प्राण गया इसी चिन्ता के मारे गोपाल बेकल हो रहा था।

गोपाल रात दिन हेम के बिछौने के पास बैठा रहता उसे न भूख न नींद, दूसरे किसी को बैठाकर उसका जी न भरता, हेम के ओठ हिलातेही गोपाल समझ जाता कि कुछ मांगते हैं, और कोई न समझ सकता।

गोपाल का पत्र पातेही स्वर्णलता और उसकी दादी अत्यन्त चिन्तित हुईं उसी समय पालकी मँगा रेलवे ष्टेशन पर चलीं परन्तु हेम लखनऊ मे कहा किस महल्ले में रहता है यह उन लोगों को नहीं विदित था, श्रीअयोध्याजी मे इनलोगों का गुरुघराना था, स्वर्ण की दादी ने कहा "स्वर्ण चलो पहिले श्रीअयोध्याजी गुरुजी महाराज के यहां चलें उनका घर हमारा देखा है वहां से कोई जानकार आदमी लेकर तब लखनऊ चलेंगी।'

स्वर्ण सम्मत हो गई, दोनों टिकट लेकर रेल पर सवार हो श्रीअयोध्याजी पहुंचीं।

गुरुजी का नाम अखण्डानन्द था, स्वर्णलता और उसकी दादी का नाम सुनतेही वह बाहर दौड़कर आये, स्वर्ण की दादी ने साष्टांग दण्डवत् करके कहा "महाराज हेम को बड़े रंग की मोतीझारा निकली हैं, उनके बचने में सन्देह है हमलोग वहां जाना चाहते हैं पर उनका डेरा देखा नहीं है आप कोई जानकार आदमी साथ कर दीजिये तो जायं। गुरुजी ने कहा "आदमी क्या मैं ही चलता हूं हम आप

तुम्हारे साथ चलेंगे, पर इसके लिये कुछ देवाराधन भी होता तो अच्छा होता ।"

स्वर्णलता की दादी ने कहा "आप जिसमें भला समझो सो करो, खर्चबर्च के लिये कुछ चिन्ता नहीं ।" यह कह वार अञ्चल से खोलकर पचास रुपये का नोट दिया ।

गुरुजी ने पीपल के पास जाकर देखा पचास रुपये का नोट है, आनन्द का ठिकाना न रहा किन्तु मनोगत भाव को छिपाकर बोले "अच्छा—इस समय इतनेही से काम चल जायगा पर इतनेही में सब अनुष्ठान का पूरा होना तो कठिन है ।"

स्वर्ण की दादी ने कहा "आप इस वखत इतने से काम चलाइये फिर जो लगेगा हम देंगे ।"

गुरुजी ने कहा "हां, सो तो हो जायगा, पर आज रातको लखनऊ कैसे जाना हो सकता है ?"

स्वर्ण की दादी ने पूछा "क्यों अब कोई गाड़ी नहीं जाती ?"

गुरुजी ने उत्तर दिया "नहीं ।"

स्वर्णलता और उसकी दादी को रात के समय वहीं रहना पड़ा, सवेरे सूर्योदय के पहिलेही दोनों उठकर चलने को प्रस्तुत हुईं, परन्तु गुरुजी बहुत अबेर करके उठे । घर पर शिष्य आये हैं इसलिये बिना नहायेही गुरुजी

तिलक मुद्रा कर आ डटे गुरुजी महाराजका दर्शन करते ही दोनों ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया, गुरुजी ने 'दीर्घायुरस्तु' कहकर दोनों को चलने के लिये प्रस्तुत देख पूछा "स्वर्ण को माता छप चुकी है?"

स्वर्ण की दादी ने कहा "हम लोगों के यहा परम्परा से छापा नहीं होता, स्वर्ण को भी नहीं छपा है।"

गुरुजी ने कहा "तब तो स्वर्ण का वहां जाना हमारी समझ में किसी तरह उचित नहीं है।"

स्वर्ण की दादी ने कहा "आप जो आज्ञा देंगे हमलोग वही करेंगे।"

गुरुजी ने कहा "स्वर्ण को यहीं रहने देव तुम अकेली लखनऊ चलो, नहीं वहा जाने से स्वर्ण को भी शीतलाजी निकल आवेंगी"

स्वर्ण की दादी सम्मत हो गई परन्तु स्वर्णलता ने कहा "हम लखनऊ अवश्य चलेंगी चाहे माता निकलें चाहे कुछ हो।"

स्वर्ण की दादी ने कहा "बेटी तुम्हारा चलना कोई तरह नहीं हो सकता, एक तो तुम्हें टीका नहीं हुआ दूसरे गुरुजी मना करते हैं भला ऐसी दशा में कैसे तुमको ले चलें?"

गुरुजी ने कहा "यह भी तुम्हारा घर है यहीं रहो

तुम्हें नित्य हेम को खबर मालूम हो जाया करेगी, तुम्हारा जाना उचित नहीं ।"

स्वर्णलता को गुरुजी के घर रहना स्वीकार करना पड़ा, गुरुजी स्वर्ण को दादी को लेकर लखनऊ पहुंचे।

आज तीन दिन से हेम अचेत है, डाक्टर साहब सबेरे नियमित समय पर आये, उसके चेहरे पर किञ्चित परिवर्तन देखकर परम प्रफुल्लित हुये, घडी देखकर नाडी देखा, बोले "अब कुछ चिन्ता नहीं आपको तो प्राण बच गया ।"

यह सुनकर गोपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ, इतनेही में स्वर्ण की दादी और गुरुजी आ पहुंचे ।

हेम ने आंख खोलकर गोपाल को न देखकर पुकारा " गोपाल ।"

उसकी दादी 'बोली बेटा । हम आ गये हैं, कहो क्या चाहिये ?" कहकर उसके पलंग के पास जा बैठीं ।

हेम ने कहा "गोपाल कहा है ।"

सैतीसवा परिच्छेद ।

"ठठेरे ठठेरे बदलौअल ।"

गुरुजी स्वर्णकी दादी को लखनऊ पहुंचा अयोध्याजी लौट आये, स्वर्णलता ने पूछा "भैय्या कैसे हैं ?"

गुरुजी ने कहा "कुछ चिन्ता की बात नहीं है, रोग तो बहुत बढ़ा हुआ था पर अब अच्छे हो जायगी ।"

गुरुजी की बात सुनकर स्वर्णलता को बहुत सन्तोष हुआ और पूछा कि "हमको वहां कब तक जाना होगा?"

गुरुजी ने कहा "अच्छी तरह अच्छे हुये बिना तुम्हारा वहां जाना उचित नहीं क्या जानें तुम्हें भी कहीं निकल आवें तो बड़ा कठिन हो; पर तुम ऐसी घबड़ाई क्यों जाती हो क्या तम्हें यहां किसी बात की तकलीफ है?"

स्वर्णलता ने आग्रहपूर्वक कहा "नहीं २ हमें तकलीफ काहे की है, भैय्या की सेवाटहल होती है कि नहीं इसी लिये जो घबड़ाता है।"

गुरुजी ने कहा "इसके लिये तुम कुछ भी चिन्ता मत करो वहां गोपाल नाम का जो लड़का है उसके रहते तुम्हारे भाई को किसी बात की तकलीफ़ न होगी। स्वर्ण गोपाल जैसी सेवाटहल तुम्हारे भाई को करता है वैसी क्या कोई करेगा।"

अखण्डानन्द के मुह से गोपाल की बड़ाई सुनकर स्वर्ण को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ, फिर कुछ न बोली, गुरुजी भी वहां से उठकर चले गये।

बाहर आकर अखण्डानन्द ने नौकर भेजकर हरीदास नामक अपने पड़ौसी को बुलवाया, हरीदास ने आकर नमस्कार करके पूछा "कहिये हमें क्या आज्ञा है?"

अखण्डानन्द—"एक बड़ीही गुप्त बात कहना है।"

हरीदास—"यहीं कहियेगा या और कहीं चलना होगा?"
अखण्डानन्द—"चलो एकान्त में चलें।"

दोनों वहां से उठकर सरजूजी के किनारे आये, सूर्य्यदेव अस्ताचल गये, पूर्णिमा की चन्द्रकला पूर्व दिशा से अपनी रमणीय किरणजाल विस्तृत कर रही है, वसन्त समीरन के हिल्लोल से शरीर को अनिर्वचनीय उत्साह अनुभूत होता है मन्दकलरव से कानों को शीतल करती हुई सरजूजी प्रवाहित हो रही है, निकटवर्त्ती उद्यान से नाना विधि के फूलों की सुगन्ध दसोदिशा को आमोदित करती है, ऐसे मनोहर समय में कितने लोग ईश्वर के ध्यान में विमुग्ध होकर आत्मसमर्पण कर रहे हैं, किन्तु अखण्डानन्द बाबाजी और हरीदास क्या परामर्श कर रहे हैं?

दोनो सरयू तट पर घास पर जा बैठे, हरीदास ने पूछा "क्या कहते थे जल्दी कहो, रात होती है अभी सन्ध्या करनी है।"

अखण्डानन्द ने कहा "ऐसी जल्दी में यह सब काम नहीं होता।"

हरीदास—"काम का कुछ नाम जान पड़े तो कहैं कि जल्दी का काम है या देरी का? ऐसे क्या जानैं?"
अखण्डानन्द—"अच्छा सुनो इतने दिनों तक जिस बात की सलाह होती रही आज परमेश्वर की कृपा से

उसका ढङ्ग जम गया, वह फैज़ाबादवाली लड़की जिससे साथ तुम्हारे बेटे की विवाह की बात होती थी वह अपने हाथ में आ गई है"।

हरीदास ने आग्रहपूर्वक पूछा "यह कैसे?" अखण्डानन्द ने उत्तर दिया "प्रेमचन्द के जीतेही यह बात उठाई गई थी सो तो तुम जानतेही हो और शायद उनका मन भी हो गया था वह हमारी बात कभी टाल नहीं सकते थे; पर उनके लड़कीहो के मारे वह काम न हो सका, उन्होंने दशहरे को छुट्टी के पहिले हमसे कहा था कि आप की बात हम किसी तरह टाल नहीं सकते पर अब लड़का स्याना हुआ उससे भी सलाह कर लेना उचित है।"

हरीदास न कहा 'यह सब तो कई बेर सुन चुके हैं अब जो कोई ताज़ी नई बात हो तो कहो।"

अखण्डानन्द—"इतनी जल्दी तो करो मत, यह सब जल्दी की बात नहीं है, हम जो कहें मन लगाकर सुनो, छुट्टी के पीछे जब हम गये तब प्रेमचन्द ने कहा "महाराज, हमारा कोई अपराध नहीं है अब बराबर के लड़के की बात न मानना भी उचित नहीं, हम को किसी तरह इच्छा नहीं है कि यह विवाह हो"

हरीदास—"तब?"

अखण्डानन्द—"फिर तो तुम जानतेही हो कितने जगहों

से बात आई और गई, प्रेमचन्द्र की इच्छा थी कि और कोई गुन हो चाहे न हो पर धनी हो और दो चार बात अंग्रेजी भी बोल सकता हो, आजकल तो अंग्रेजी बिना कुछ गिनतीही नहीं।"

हरीदास – हमारा लड़का तो अंग्रेजी भी जानता है और धन की भी कमी नहीं फिर व्याह क्यों नहीं हुआ?"

अखण्ड—"हां तुमने कहा सो ठीक है हमने तो पहिलेही कह दिया है इस में प्रेमचन्द्र का तो मन था ही पर वह अपने लड़के को ऐसा चाहता था कि उसकी बात टाल न सका, उसका कहना यह कि स्वर्ण को रुपये की तो कमी हैही नहीं, बाप के मरने पर जितना धन उसको मिलेगा वही बहुत है पर लड़का खूब पढ़ा लिखा हो और देखने में सुन्दर हो।"

हरीदास –"इसमें भी तो हमारा लड़का बुरा नहीं है, अंग्रेजी में बी० ए० पास किये है, देखने सुनने में भी सैकड़ों में एक है।"

अखण्डानन्द ने हँसकर कहा "तुम्हारी आँख में। जो कहीं सब लोग तुम्हारीही आँख से देखने लगें तो फिर चिन्ताही क्या रह जाय?"

हरीदास ने चिड़चिड़ाकर कहा 'क्यों क्यों हमारेही आँख में क्यो?"

अखण्डानन्द ने कहा "चिढ़ो मत, चिढ़ने का कोई काम नहीं है, हमलोग जो काम करने बैठे हैं वह जलदबाज़ी से और चिढ़ने से नहीं हो सकता, तुम्हारा लड़का बुरा है यह तो हम कहते नहीं और सौ में एक है यह भी झूठ नहीं है, पृथ्वी पर न जाने कितने कुरूप लड़के हैं उनमें छोड़ दें तो सौ में क्या हजार में एक होगा।" इतना कहते कहते हरीदास की आँखें गर्म देखकर अखण्डानन्द ने कहा बिगड़ो मत, बिगड़ने का काम नहीं है, जो हम कहते हैं जी लगाकर सुनो।"

हरीदास ने कहा "अच्छा कहे जाव।"

अखण्डानन्द ने कहा "हेम का मन जिसके साथ व्याह करने का है उसके आगे तुम्हारा लड़का बन्दर है।"

हरीदास ने क्रुद्ध होकर कहा "देखो मुंह सम्भाल कर बोलो।"

अखण्डानन्द ने कहा 'हम झूठी बात नहीं कहते तुमने उस लड़के को देखा नहीं है इससे ऐसी बात कहते हो, हमने उसको देखा है, मानो मूर्त्तिमान् कामदेव है, लिखने पढ़ने में भी बड़ा चतुर है, उसी लड़के के साथ स्वर्ण को व्याहने को हेम की इच्छा थी, समझा न? इच्छा थी पर अब उसका कोई फल नहीं, क्योंकि जिसको इच्छा थी वह मौतक्या के वेग में अब तक सो रहा है उस दर से

पास जो कहीं धन होता तो अब तक कभी का व्याह हो गया होता पर जहां यह नहीं है वहां होना असम्भव ही समझो।"

हरीदास ने आग्रहपूर्वक पूछा "यह कैसे जाना कि होना असम्भव है?"

अखण्डानन्द ने कहा "इसीलिये तो कहते हैं कि जो हेम मर जाय तो उसकी दादी यह काम कभी न करेगी, वह केवल रुपया देखती है, जिसके पास विशेष धन होगा उसी के साथ व्याह देगी, और हमारी बात भी न टालेगी, अब तुम्हारी आशा भरोसा हेम के मरने पर है। जो कहीं हेम मर जाय तो हम निश्चय तुम्हारेही लड़के के साथ व्याह करावेंगे।"

हरीदास ने कहा "कौन कितने दिन जीयेगा इसका कौन ठिकाना है? कितने लोग चिता पर जाकर जी जाते हैं, हमारा ऐसा भाग कहां कि—"

गुरुजी महाराज अपने शिष्यवर्ग के मङ्गलकाङ्क्षी हैं कि नहीं इसीलिये परलोक सुधारने के लिये हेम की मृत्यु की मना रहे हैं, हरीदास का मनोगतभाव तो पाठकों ने समझही लिया पर प्रकाश में ऐसी अशुभ बात कहने का साहस न हुआ।

अखण्डानन्द ने थोड़ी देर सोचकर कहा "जो बात

हमने कहा है वह जो होगई तब तो कुछ बातही नहीं है, पर वह न होने पर भी एक उपाय है तुम उसमें राजी हो कि नहीं?"

हरीदास नें कहा "सब लोगों की जान बची रहै और यह शुभ काम हो जाय ऐसा कोई उपाय होय तो वही करना चाहिये, इसमें कुछ तरद्दुद या रुपया बेशी लगे तौ भी हम उसके लिये नहीं हटते।"

अखण्डानन्द ने कहा "हेम का रोग असाध्य हो रहा है, दो तीन दिन में जो होनहार होगा हो जायगा, जो कहीं मर गया तब तो कोई बातही नहीं है दो चार बूंद आँसू गिरा देने और बड़ा दुःख दिखला देनेही से काम सिद्ध हो जायगा और जो धीरे २ अच्छा होने लगे तो हमारी समझ में गुपचुप व्याह कर लेना चाहिये।"

हरीदास ने कहा "गुपचुप व्याह कैसे हो सकता है? बड़े आदमी की लड़की को उठा लाना क्या सहज है? यह भी क्या चमारू चमारू की बेटी है? आज कई दिन हुये हमने अपने एक असामी का व्याह ऐसेही करा दिया। लड़की अपने बाप के पास सोई थी, निरा बालक था पांच छ बरस का धागों, दर्वाज़ा तोड़कर तीन चार आदमियों ने बाप को पकड़ रक्खा और लड़की को मिठाई खिलाके देकर व्याह कर दिया, यहां तो ऐसा हो नहीं सकता, लड़की कैसे हाथ लगैगा?"

अखण्डानन्द ने कहा "लड़की का लाना हमारे ज़िम्मे रहा, रुपये से सिंहनी का दूध आ सकता है, जो तुम से रुपया न खर्चते बने तो हमारा दोष नहीं तुम्हें रुपया और हिम्मत चाहिये हमें चालाकी और मेहनत।"

हरीदास ने कहा "हां यह सब ठीक है पर पहिले यह बतलाओ कि तुम कौन चालाकी से लड़की लाओगे तब हम कहैं।"

अखण्डानन्द—"हमारी बात पर क्या तुमको विश्वास नहीं है? हमने तो कह न दिया कि लड़की लाने का ज़िम्मा हमारा, तुम रुपये की बात कहो।"

हरीदास—'हम पहिले लड़की देखना चाहते हैं या जिस उपाय से आसकता है सो जाना चाहते हैं जो हमारे जी में बात जचेगी तो हम इस काम में प्रवृत्त होंगे।"

हरीदास अखण्डानन्द का परोसी था, उसके चरित्र को भलीभांति जानता था लोगों से ठगकर रुपया पुजाना यह उसका नित्यकर्म्म है इसीलिये ऐसी सतर्कता के साथ उस से वार्त्तालाप करता था।

अखण्डानन्द ने कहा 'हम तो कह रहे हैं न कि लड़की का लाना हमारा काम है तुम रुपये की बात कहो पर तुम तो कुछ सुनतेही नहीं, कुछ रुपये की बात होनेही से थोड़ेही हमको रुपया मिल जायगा। अरे बाबा, जब लड़की को अपनी आंख से देख लेना तब रुपया देना।"

हरीदास ने कहा "हां यह बात माना, अच्छा तुम्हीं कहो कितना रुपया लोगे ? जो तुम समझ करके कह देव वही हम देंगे।"

अखण्डानन्द—'यह कुछ बाजार का सौदा थोड़ेही है जो थोड़ा बहुत दे दोगे उसी में हम राजी हो जायँगे।"

हरीदास अखण्डानन्द की बातों में भूलनेवाला आदमी नहीं था, जो वह इनके चरित्र से परिचित न होता तो अवश्य सोचता कि अखण्डानन्द थोड़े बहुत में राजी हो जायँगे परन्तु गुरुजी महाराज के चरित्र से परिचित होने के कारण हर्षित न हुआ, केवल यही कहा 'हां सो तो ठीकही है।"

अखण्डानन्द—"ठीकही है, कहके चुप क्यों होगये ? काम की बात तो करो।"

हरीदास ने सोच विचार कर कहा "काम हो जाने पर एक हजार रुपया दे सकते हैं।" यह कहकर गुरुजी के मुख की ओर देखा।

अखण्डानन्द ने हँसकर कहा "बस ! सपना देख रहे हो क्या ?'

हरीदास ने पूछा "क्यों क्यों ?"

अखण्डानन्द—"वसीयतनामे में कितना रुपया लिखा है कुछ मालूम है ?"

हरीदास—"वसीयतनामे के रुपये का अभी कौन भरोसा? जब तक हाथ में न आवे तब तक उसको कोई गिन्ती नहीं, और तुमने क्या सोचा है कि उसी रुपये की लालच से हम यह व्याह करना चाहते हैं?"

अखण्डानन्द – "नहीं भैय्या ऐसी भी कोई बात है? अरे लड़की में हजारों दोष हैं, उसको कहीं वर नहीं जुडता, कोई उससे व्याह करना मंजूर नहीं करता, तब तो तुम कृपा करके यह व्याह करते हो।"

चातुरी में हरीदास भी कम नहीं, और अखण्डानन्द जी तो महामहोपाध्यायही है, 'ठठेरे ठठेरे बदलौअल।"

हरीदास न हँसकर कहा "नहीं नहीं हमारा यह मतलब नहीं है।"

अखण्डानन्द— 'नहीं नहीं यही तो बानही है, लड़की बिचारी को कहीं वर तो जुडताही नहीं तुम कृपा करके नुकसान उठाकर अपने लड़के से व्याह करते हो और हम लड़की का भला करते है इसलिये हम को एक हजार रुपया इनाम देते हो, आप बड़े दया के सागर संसार के उपकारी है कि नहीं?"

हरीदास ने कहा—नहीं२ वह तो हमने हँसी किया था'

अखण्डानन्द— 'अच्छा अब सच्ची बात कहो"

हरीदास—"आपको पांच हजार रुपया देंगे।"

अखण्डानन्द—अभी भी हँसी नहीं छूटी न?"

हरीदास—"नहीं अब हँसी नहीं है, आपही सोचो कि वसीयतनामे में पन्द्रह हजार रुपये से बढ़ती नहीं है, फिर पहिले तो हम चोरी से व्याह कर लेने पर मुक़द्दमा चलेगा दूसरे कहीं वसीयतनामे में कुछ गड़बड़ निकल आया—कुछ क्या ? निकलेहीगा, हम सहज में पन्द्रह हज़ार रुपया नहीं छोड़ने का इसमें कितने मामला मुक़द्दमा होंगे उसके सिवाय और भी बहुतेरे खर्च हैं, सोचो तो वह सब बाद देकर हमें क्या बचेगा आगा पीछा सब न देखना चाहिये ?"

घपड़ानन्द—"तुम पर मुक़द्दमा होगा और हम बच जायँगे ? हम अंग्रेज़ी आदमी हैं वह गुरु पुरोहित एक भी न गिनेगा, उसके तो सामने जाते डर लगता है कभी प्रणाम न करें तो हुई गुरुबई वह हमको भी मसान में न छोड़ेगा, हां 'जो पेट खाय तो पीठ सहाय' हम एक बात कह देते हैं अगर आधा बांट देव तब तो हम बीच में पड़ें नहीं तो नहीं।"

हरीदास—"इतना तो नहीं हो सकता।"

घपड़ानन्द—"तो अब इस बारे में और बात करने से क्या फल ? अच्छा अब चलो।" यह कहकर गुरुजी उठे, हरीदास ने हाथ पकड़कर बैठाया "अच्छा कुछ बात तो सोचकर तब हम आप तुमको जवाब देंगे—यह तो बताओ लड़की कैसे आवेगी ?"

शैलविद्ध होने लगा, डाकू लोग किसी घर को लूटनेके समय बालकों को नहीं छेड़ते, मलाह लोग मछली पक ड़ने के समय छोटे २ मछलियों के बच्चों को फिर जल में डाल देते हैं अखण्डानन्द का अन्तःकरण अत्यन्त निठुर होने पर भी सरलहृदया स्वर्णलता की बातों से दहल उठा, आत्मग्लानि भी उदय हुई, स्वर्ण अश्रुबिन्दु मानो गलाये हुये उत्तप्त लोहबिन्दु की भांति उसके हृदय को जलानेलगी, किन्तु ऊसर मरुभूमि में सिंचित जल कितनी देर ठहर सकता है? स्वर्णलता के वहां से हटतेही जो अखण्डा नन्द थे वही अखण्डानन्द हो गये, रुपये की मोहिनीशक्ति के वशीभूत होकर हरीदास के घर पहुचे, देखा हरीदास बैठा कुछ लिख रहा है।

हरीदास ने कहा—"कहिये कहिये क्या बूढ़ा तोता राम राम।"

हरीदास ने कहा "आओ आओ, हम जमाखर्च लिख रहे थे।"

अखण्डानन्द ने कहा "शुभस्य शीघ्रम्" अब देरी करने का मौक़ा नहीं, जो पाच छ दिन की और देर होगी तो फिर एक काम भी न होगा।"

हरीदास ने कहा "हमारी कुछ देर नहीं है पर तुम्हारी ज़िद के आगे हमारा वश नहीं चलता, वसीयतनामे का आधा रुपया हमसे न दिया जायगा।"

अखण्डानन्द ने देखा अब देर करने से कुछ भी न मिलेगा चलो जो हाथ चढ़ जाय वही सही, यह सोचकर बोला "तो तुम क्या देना चाहते हो?"

हरीदास—हम छ हज़ार तक दे सकते हैं।"

अखण्डानन्द राजी हो गया, बोला "अच्छा यही सही अब तुम तेल चढ़ाने की फ़िक्र करो, परसों लगन अच्छी है, परसों कन्यादान होगा।"

जैसे विहङ्गम व्याध के फैलाये जाल में निःशंक नृत्य करता है वैसेही स्वर्णलता अखण्डानन्द के घर में प्रफुल्लित रहती थी, हम अच्छे हो रहे हैं, उनके सेवाटहल में कोई त्रुटि नहीं होती, अब स्वर्ण को किस बात की भावना है? सबेरे से उठकर गुरुकन्या और परोसी लड़कियों के साथ खेल कूद में लग जाती, हृष्टचित्त से आहार निद्रा करती, रात को गाढ़ी नींद सोती। वह इस समय "मझधार" में पड़ी है इसका स्वप्न में भी ध्यान न था।

सांझ हुई, अखण्डानन्द सन्ध्यावन्दन करने सरयू तट गए अखण्डानन्द का एक छोटा लड़का रोने लगा। स्वर्ण-लता बिना न वह खाता न सोता अखण्डानन्द की स्त्री ने बहुत चाहा कि फुसलावें पर वह एक न मानता तब स्वर्ण को पुकारा, स्वर्ण ने आकर पूछा 'माजी! आप ने हम को क्यों पुकारा?' गुरुपत्नी होने के कारण स्वर्ण उसको "मा" कहके पुकारती।

अखण्डानन्द की स्त्री ने कहा "बेटा, देखो इसको सोलाओ, तुम्हारे बिना तो यह किसी तरह सोताही नहीं" स्वर्णलता के पास जातेही वह चुपचाप सो गया, स्वर्णलता भी उसी बिछौने पर सो गई। झरझर करकी बसन्त समीर लगन लगी 'स्वर्ण को भो नींद आ गई।

अखण्डानन्द नियमित समय घर आया, स्त्री से पूछा "बच्चे के पास कौन सोया है?"

उसकी स्त्री ने उत्तर दिया "स्वर्ण।"

अखण्डानन्द 'जागती है कि सो गई?"

अखंडानन्द के घर में आतेही स्वर्ण जाग गई थी, पर आपस में उनको फुसफुस बात करते देखकर सोने का बहाना किए रही, उसकी स्त्री ने स्वर्ण के मुंह के पास आकर देखकर कहा 'सो गई है।'

अखण्डानन्द (धीरे धीरे) 'तुम तनिक इधर तो आओ।'

अखंडानन्द की स्त्री पास आई, अखण्डानन्द ने दो ताली दिखलाकर कहा "यह दोनों ताली देखो। एक सदर दरवाजे की है दूसरी भीतर की, इस दोनो ओर के दरवाजे को बन्द कर देते है जिसमें कोई घर के बाहर न भागने पावे।"

उसकी स्त्री ने कहा "क्यों? घर के बाहर क्यों न जाय?"।

अखण्डानन्द ने कहा 'इस से तुमको कौन मतलब ?'

स्त्री ने कहा "इस से तुमको कौन मतलब ?' 'क्यों नहीं मतलब है ? जो हमें न बतलाओगे तो हम अभी सब बात खोल देंगी।'

अखंडानन्द ने सब अवस्था कह सुनाई, सुन कर उस की स्त्री कांप उठी। स्वर्णलता को हृत्कंप होने लगा, अखण्डानन्द ने अपनी स्त्री को ठंढी सांस लेते देख कर कहा 'देखो तुम हमको जानती हो, जो यह भेद तुमने खोला और हमारा यह काम न हुआ तो फिर—" इसके आगे धीरे धीरे कुछ और कहकर अखण्डानन्द बाहर चला गया।

स्वर्ण का दम घुटने लगा किन्तु एकाएकी कैसे जागे यह सोचकर [illegible] बालक को एक चुटकी काट लिया, [illegible] रो उठा, स्वर्ण भी आंख मलती हुई उठ बैठा। अखण्डानन्द की स्त्री ने दीर्घ श्वास लेकर पूछा 'बेटा तुम [illegible] स्वर्ण ?" कहकर वहां से बाहर चली गई। [illegible] दरवाजे पर आकर देखा ताला बन्द, दौड़ [illegible] और भई उधर बाहर से ताला बन्द [illegible] हो गई। इतने दिनों [illegible] हुआ, आज यही घर [illegible] लगने लगा, इस दशा

में प्राण बचना कठिन हुआ, दौड़कर जिस घर में पहिले थी उसी में फिर आई। अखंडानन्द की स्त्री देखतेही डर उठी, स्वर्ण के रूप में इतनीही देर में बड़ा परिवर्तन हो गया पागली की भांति घबड़ाकर एक चौकी पर बैठ गई। अखंडानन्द की स्त्री ने दुःखित होकर पूछा "क्या हुआ बेटी ?"

स्वर्ण मन के भाव को न छिपा सकी रोकर बोली 'हमने सब सुन लिया है, हमें तुम लोग मार डालो, ज़हर पिला देव।

स्वर्ण की बात सुनकर अखंडानन्द की स्त्री का अन्तःकरण द्रव होगया, वास्तव में वह अखंडानन्द की भांति निर्दय नहीं थी, पलंग से उठकर स्वर्णलता के पास आ बैठी, स्वर्ण को सान्त्वना देकर बोली "तुम रोओ मत बेटी, हम तुम्हारे बचाव का उपाय कर देते हैं"

उसकी यह बात सुनतेही स्वर्ण उसके पैरों पर गिर पड़ी, उसने सादर स्वर्ण को उठाकर आंख पोंछ कर कहा 'तुम लिखना पढ़ना तो जानती हो न ?"

स्वर्ण ने कहा 'हां कुछ थोड़ा सा जानते हैं।'

चिट्ठी तो लिख सकोगी न ?'

'हां हां, पर किसको लिखें, भैया जो बिछौने से तो उठही नहीं सकते, उनको तो लिखना जैसा न लिखना भी वसाहा।'

'क्या और ऐसा आदमी नहीं है जो तुम्हें आकर ले जाय ?'

यह सुनकर स्वर्ण का मुख ईषत् आरक्तिम, होगया नीची दृष्टि करके बोली और किसको लिखें ?'

"काहे तुम्हारे भैया के पास और भी तो कोई रहता है ? उसका भला सा नाम है, शायद गोपाल है, उसी को लिखो न ?'

स्वर्ण का मुख और भी लाल हो गया, बोली 'नहीं भैया को लिखते हैं वह भी पढ़ही लेंगे ।'

'भैया को लिखने से क्या फ़ायदा ? वह तो बिछौने से उठ भी नहीं सकते ?'

स्वर्णलता ने भूमि की ओर दृष्टि करके कहा 'भैया को लिखने से गोपाल भी देख लेगी ।'

अखंडानन्द की स्त्री कलम दावात कागज़ ले आई । स्वर्ण ने पत्र लिखा, सवेरे मजदूरिन जब बाज़ार गई चोरी से पत्र को लेकर डाक में छोड़ आई ।

उनतालीसवां परिच्छेद ।

गोपाल को कारावास ।

पोट आफिस का सनातन नियम है कि पहिले डाकवी

की चीठी बटती है पीछे हिन्दुस्तानियों को, सो भी यदि महानुभाव डाँकिया जी महाराज थके न हों, और जो कहो डाकिया जी थके हुये और कहीं दूर की एकही दो चीठी हो तब तो सुविवेचक डाकिया जी उस चीठी को बेगही में रहने देंगे जब दो चार दिन में उधर की दस पाच चिट्ठियां इकट्ठी हो जायगी तब 'मत्त गजराज की सी चाल से 'उसको बांटने चलेंगे। स्वर्णलता का पत्र साधारण नियमानुसार उसी दिन सवेरे मिलना चाहिये था परन्तु उक्त सनातन विषय के किसी "विशेष दफा" के अनुसार वह पत्र तीसरे पहर को मिला। चीठी का सिरनामा हेम के नाम था, गोपाल ने पहिले कभी स्वर्ण की हस्तलिपि नहीं देखी थी क्योंकि घर से जो पत्र आते वह मुहर्रिर गुमाश्तेही लिखते थे। यह किसी दूसरे का पत्र है सोच कर उसको नहीं खोला और हेम सो गया था उसको जगाया भी नहीं।

कुछ देर पीछे हेम के जागने पर गोपाल ने पत्र दिया हेम ने सिरनामा देखतेही कहा "यह तो स्वर्ण की चीठी है, पढ़ो गोपाल ने कंपित कर से पत्र को खोल कर मन ही मन पढ़ा किन्तु हेम से कुछ न कहा, हेम ने पूछा 'क्या लिखा है ?"

गोपाल ने बहाना करके चीठी को पलंग के नीचे फेंक कर कहा 'और क्या लिखेगी ? तुम कैसे हो यही पूछा है।

हेम सन्तुष्ट होकर करवट फिर कर सो रहा। जो उस समय गोपाल के मुख की ओर देखता तो देखता कि उसका मुख जवा पुष्प की भांति लाल हो रहा था और पसीना चुहचुहा रहा था, गोपाल पत्र उठाकर नीचे हेम की दादी के पास आया और श्यामा को हेम के पास भेज दिया, पत्र हेम को दादी को पढ़ सुनाया। वह सुनतेही मारे क्रोध के गुरु जी महाराज को गालियां देने लगी।

गोपाल ने कहा "आप होरा मत कीजिये, भैया जो सुनेंगे तो उन्हे बड़ा कष्ट होगा। हम अभी जाते हैं, चार बज गया है आज रातही को व्याह है अभी न जाने से गाड़ी न मिलैगी।' यह कहकर कुरता टोपी पहिर चल खड़ा हुआ, हेम की दादी से कहा 'आप यह हाल किसी से मत कहियेगा, और अभी ऊपर भी मत जाइये नहीं तो सब बात बक डालियेगा। भैया जो हमको पूछैं तो कह दीजियेगा किसी ज़रूरी काम से हुसेनाबाद गया है आज न आवेंगे" यह कहकर चला गया, कुछ दूर से फिर लौट आया और कहा "कुछ रुपया खर्च के लिये दे दीजिये।"

दादी ने बाक्स खोल एक नोट निकालकर दिया गोपाल उसे जेब में रख वहां से बाहर गया। सौभाग्य स बाहर आतेही एक खाली गाड़ी मिली, गोपाल ने गाड़ी-वान से कहा "रेल खुलने के पहिले जो टेशन पहुंचाय दोगे तो तुम्हें खुश कर देंगे।'

गाड़ीवान ने गाड़ी रोकी, गोपाल सवार हुआ, गाड़ीवान घोड़ों को पीटता हुआ वेग के साथ गाड़ी ले चला। स्टेशन पर पहुंचतेही नोट निकाल कर देखा बीस रुपये का है, गाड़ीवान से पूछा 'तुम्हारे पास रुपया है' उसने कहा 'नहीं'।

पासही एक सर्राफ पैसा बेच रहा था, उससे कहा 'भाई पन्द्रह रुपया हमको दे दो और बाकी इसको'। रुपया लेकर स्टेशन के भीतर पैर धरा कि रेल सीटी देकर चली, गोपाल दौड़कर रेल पर चढ़ने चला पर एक सिपाही ने पकड़ लिया, गोपाल उसको धक्का दे साहस पर निर्भर कर पटरी पर जा चढ़ा, फिर दर्वाजा खोल भीतर गया, टिकट न ले सका।

गाड़ी में सवार होने पर उसका सिर घूमने लगा, शरीर अवश हो गया, एक तो जब से हेम बीमार हुआ था तब से भर नींद कभी न सो सका। दूसरे इस समय रेल तक पहुचने में महान कष्ट हुआ। मूर्छित होने का उपक्रम देखकर गोपाल लेट गया, मन्द मन्द हवा लगने से गोपाल को नींद आने लगी, गोपाल सो गया।

कहा की अयोध्या, कहां की स्वर्णलता, गोपाल तो इस समय सो रहा है, कितने नये मुसाफ़िर आये कितने गये, कितने टेशनों पर गाड़ी थमी, गोपाल को कुछ भी

खबर नहीं। अयोध्याजी से और भी आगे बढ़कर नींद खुली, देखें तो अयोध्याजी पीछे छूट गईं सिर घूम उठा अब क्या करें? रेल से उतरे, एक रेलवे कर्म्मचारी ने टिकट मांगा। गोपाल ने कहा 'हमारे पास टिकट नहीं है दाम ले लो" उसने कहा "चलो साहब के पास" वह कर्म्मचारी उसका हाथ पकड़कर साहब के पास ले चला। साहब उस समय इष्टेशन में नहीं थे, बाबू ने हुक्म दिया 'इस वख़्त इसको गारद में रक्खो।"

उस रात्रि का गोपाल का कष्ट वर्णनातीत है, पहिले सोचा "जनम भर के लिये स्वर्णलता से वञ्चित हुये" अभी स्पष्ट किसी ने नहीं कहा था पर गोपाल के हृदय में यह आशा छिपी थी कि स्वर्णलता से हमारा विवाह होगा, अब तो यह आशा निर्मूल हो गई, फिर सोचा "हमने भैय्याजी को चिट्ठी क्यों न सुना दिया अपने मन से क्यों इस बड़े भारी काम में कूद पड़े? कदाचित् भैय्याजी और किसी उपाय से स्वर्ण का उद्धार करते, जो कूदेही थे तो क्यों नहीं प्राणपण से इसका उद्योग किया? हाय! क्यों सो गये? अब कौन मुंह लेकर भैय्याजी के पास जायँगे? भैय्याजी हमारा पूरा विश्वास करते थे पर हमने कैसा कृतघ्नों का सा काम किया? बिचारी स्वर्णलता को हमी ने चिरदु:खिनी किया। जो उसकी चिट्ठी हमने उनको सुनाई होती तो कभी ऐसा न होने पाता इस विवाह के होने से निश्चय

स्वर्णलता आत्महत्या करैगी, और हमको भी ऐसाही करना चाहिये, इस पाप का और कोः प्रायश्चित नहीं है, हाय! स्वर्णलता इस समय भैय्याजी की निन्दा कर रही होगी पर उसको नहीं मालुम कि इस दुर्दशा के मूल हमीं हे।

इसी तरह विलाप करते हुये रजनीप्रभात की किन्तु आप कारागार में हैं इसको तनिक भी चिन्ता न किया, सोचा 'सवेरा होतेही हम तो छूटही जायँगे पर स्वर्णलता इस जन्म में नहीं छूट सकती।"

चालीसवां परिच्छेद।

नाव डूबा चाहती है।

आज स्वर्ण का विवाह है, वर के घर बडी धूमधाम मची है, बारात की धूमधाम है, पडोसी लडको और तमशाइयो के मारे घर से बाहर तक भीड लगी है, एक तो वर आपही देखने में सुश्री नहीं है घोर कृष्णवर्ण उसपर लाल पीताम्बर धारन करके साक्षात् शुम्भनिशुम्भ युद्ध में रक्तबीज का अवतार बन गया, उसके सहपाठी समवयस्क भी निमन्त्रित हुये थे, उन्हीं लोगों के समीप वर बैठा था।

विवाह के दिन वर कन्या का कैसा आदर होता है? अत्यन्त दीन दरिद्र का भी लोग आदर करते हैं अत्यन्त कुरूप होने पर भी लोग उसको देखने आते हैं, जो लोग

रात दिन उसको देखा करते हैं वे भी आज वर को देखने आते हैं, बीच बीच में रीत रसम के लिये वर को बुलाहट होती है वह अपने साथियों में से अत्यन्त अनिच्छापूर्वक उठकर जाता है, परन्तु यह अनिच्छा "मन भावे मूड़ी डुलावे।"

अखण्डानन्द ने सवेरे स्वर्ण को बुलाकर कहा "स्वर्ण आज तुम कुछ खाना मत।"

स्वर्ण ने मानो कुछ जानतीही नहीं इस भाव से पूछा "क्यों?"

अखण्डानन्द ने विकटहास्य करके कहा "आज तुम्हारा व्याह है।"

अखण्डानन्द के विकटहास्य से स्वर्ण का हृदय काँप उठा, और दिन अखण्डानन्द का मुख स्वर्ण को जैसा दिखलाई देता था आज वैसा नहीं प्रतीत होता, उसने पुस्तकों में जिन सब दैत्य राक्षसों की कथा पढ़ी थी, यह उन्हीं में से एक विदित होने लगा, अखण्डानन्द ने फिर कहा "स्वर्ण आज तुम्हारा व्याह है" यह कहकर फिर उससे भी भीषणतर विकटहास्य किया।

अखण्डानन्द का भाव और मूर्ति देखकर स्वर्णलता की लज्जा भाग गई, मारे क्रोध के काँपते हुये पूछा "हमारा व्याह कौन करेगा? कहां होगा?"

अखण्डानन्द ने पूर्ववत् हंसकर कहा "जो तुम्हारे बाप जीते होते तो वही करते, नहीं तो अब हम करेंगे. जश होगा सो तो तुमको मालुमही है उस दिन रात को सब सुनही चुकी हो ।"

स्वर्ण का सर्वाङ्ग भय और क्रोध से कांपने लगा, वह बहाना करके सोई थी यह अखण्डानन्द ने कैसे जानलिया? क्या किसी विद्याबल से वह सब बात जान लेता है? स्वर्ण ने कहा "तुम तो बड़े उपकारी गुरुदेव जान पडते हो!"

अखण्डानन्द ने कहा 'दूसरे का उपकार नहीं कर सकते पर अपना उपकार तो करते है।" फिर कुछ रुक-कर कहा 'दूसरे का हित भी क्यों नहीं किया? जो सम्बन्ध हमने ठहराया है इसमें तुम्हारे बाप का भी मन था।"

स्वर्ण ने क्रोधपूर्वक कहा "कभी नहीं।"

अखण्डानन्द ने फिर विकटहास्य करके कहा "अच्छा, उनका मन नहीं था तो क्या हुआ हमारा तो मन है।"

स्वर्ण ने कहा "तुम्हारा मन होगो तो क्या न हो तो क्या? जिसका व्याह होता है उसका मन तो नहीं है।"

अखण्डानन्द ने कहा "उसका मन भी है, लड़की का मन सब से बढ़कर है।"

स्वर्ण ने कहा "लडके का मन होने से हमको क्या? हमारा तो मन नहीं है?"

"यही तो तुमलोगों में बड़ा दोष है" अखण्डानन्द ने आरम्भ किया "बस दो एक पोथी पढ़ ली और चौपट हुआ, मारे उसके घमण्ड के शर्म लज्जा सब धो बहाई, भले बुरे का ज्ञान नहीं, देखो तुम्हारे भले के लिये कहते हैं, शोर धूम मत करो, शुभ काम में विघ्न डालना अच्छी बात नहीं" यह कहकर अखण्डानन्द वहां से बाहर जाने लगा।

स्वर्ण ने कहा 'अब तुम जाते कहां हो? दो दिन से हमको कैद कर रक्खा है हमको छोड़ दो हम अभी लखनऊ जायँगे।"

अखण्डानन्द ने कहा 'आज नहीं, ब्याह हो जाय तब लखनऊ जाना।"

स्वर्ण दर्वाजे की ओर बढ़ कर बोली "हम यहां मारा रे मारा रे करके चिल्लाते हैं अभी तो बाहर के लोग किवाड़ा तोड़कर हमको छुड़ा देंगे।" यह कहकर स्वर्ण आगे बढ़ना चाहा अखण्डानन्द ने हाथ पकड़कर खींचा, स्वर्ण ने अपनी ओर बहुत खींचा पर उसका सब कहा कि अखण्डानन्द को पाती, अखण्डानन्द ने कोठरी में स्वर्ण को खींच बाहर से ताला चढ़ा दिया, स्वर्ण चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी। अखण्डानन्द "अब जितना जी चाहे चिल्ला" कहता और विकट हास्य करता बाहर चला गया।

पर के घर से बाजेवालों को अखण्डानन्द ने बुला

स्वर्णलता रात होतेही जन्म भर के लिये दुःखसागर में पतित होने के भय से फूट फूटकर रो रही है। यह सब देखकर भी क्या दिनकर भगवान को दया का सञ्चार नहीं होता? क्या ये पिता पुत्र दोनोंही समान हैं? हाय! जिस समय तुम्हारा पुत्र अन्तर्जली में था उसी समय कितने स्थानों में विवाह का धूम मची, कितनेही लोगों को राज्यलाभ धनलाभ हाता।

भला सूर्य्यदेव के पक्षपात करने से काम कैसे चल सकता है? जयद्रथ के लिये एक दण्ड भी आगे अस्ताचल न गये, सूर्य्यदेव के वंश में कभी भी पक्षपातित्व नहीं है, ये बाप बेटे दोनोंही समान हैं।

ज्यों ज्यों सन्ध्या होने लगी स्वर्णलता की उत्कण्ठा बढ़ने लगी, इस समय एक दूसरीही चिन्ता उदित हो गई, स्वर्णलता सोचने लगी कहीं भैय्याजी का रोग और भी बढ़ न गया हो—अथवा सोचते कलेजा काँपता है—कहीं और भी अशुभघटना न हो गई हो, आज कई दिन से अखण्डानन्द वहा नहीं गया, स्वर्ण अपना दुःख भूल गई, हेम का कुशल जानने के लिये उसका चित्त अत्यन्त चञ्चल हुआ, कोई भी नहीं है जिससे खबर मँगावे, अखण्डानन्द अत्यन्त व्यग्र है आज उसे स्वर्ण के पास आने तक का अव-काश नहीं है, अखण्डानन्द ने अपनी स्त्री और कन्या को आज सबेरेही से भीतर बन्द कर रक्खा है।

सन्ध्या हुई, आकाश में कहीं २ मेघ खण्ड दिखलाई पड़े, बसन्त की मन्द वायु बहने लगी, माला मौर इत्यादि से सज्जित विलक्षण मूर्तिधारण किये, अंग्रेजी बाजा बजता वर मण्डप में उपस्थित हुआ, लड़के वर को घेरकर हँसी दिल्लगी करने लगे, मोहितजी आये, अखण्डानन्द एक किनारे जाकर हरीदास से रुपया गिनवाने लगा।

स्वर्णलता अपने कारागार में बैठी रोने लगी, जो कुछ थोड़ी बहुत आशा थी वह भी सन्ध्या होने से जाती रही, "हाय! क्या हमारे भाग में यही लिखा था?" कह कहकर आर्तनाद करने लगी पर सुनता कौन था? सभी आमोद प्रमोद में मत्त हो रहे थे।

रुपया सहेज, ठिकाने धर अखण्डानन्द और हरीदास दोनों मण्डप में आये, देखा कि सब ठीक है केवल कन्या के आने की देर है, अखण्डानन्द कन्या को लाने चले।

द्वार खोलतेही स्वर्णलता दौड़कर अखण्डानन्द के पांव पर आ गिरी, रोती रोती बोली "पहिले यह बताओ कि भैयाजी कैसे हैं तब दूसरी बात करो।"

अखण्डानन्द ने कहा 'तुम्हारे भैयाजी अच्छी तरह हैं।'

स्वर्ण ने कहा "तुम्हें हमारी कसम तुमको अपने लड़के की कसम सच बताओ।" स्वर्ण उस समय बाह्यज्ञानशून्य हो रही थी उसे कुछ न जान पड़ता कि क्या कर रही है।

अखण्डानन्द ने कहा "हम सच कहते हैं कि वह अच्छी तरह हैं, तुम्हीं सोचो अगर वह बिल्कुल अच्छे हो गये होते तो क्या यह व्याह होने पाता ? और जो कुछ दूसरी बात हो गई होती तो फिर जल्दी काहे को थी तब तुम हमारे हाथ से कहां जाने पातीं ? इसी मारे तो जल्दी जल्दी कर रहे हैं।"

स्वर्णलता ने सोचा सच तो है, तब ठिकाने होकर बोली "देखो हमारे कहे बिना यह व्याह मत करना, मत करना, नहीं तो अच्छा न होगा, हम फाँसी लगाकर मर जायंगी।"

पाखण्ड अखण्डानन्द ने कहा "सतपदी हो जाय, भाँवर घूम जाय फिर हम से कुछ मतलब नहीं चाहे तुम जहर खाओ चाहे फांसी लगाओ हमारा तुम्हारा सम्बन्ध तभी तक का है जब तक सतपदी नहीं होती।" यह कह कर वह पूर्वानुसार फिर विकटहास्य से हँसा।

स्वर्णलता अखण्डानन्द का पैर पकड़े पड़ी थी, अखण्डानन्द ने चाहा कि उसको पकड़कर उठावें, स्वर्ण दौड़ कर एक कोने में जाकर अपना आँचल गले में लपेट कर बोली 'जहां खड़े हो उससे एक पाव भी आगे बढ़े नहीं कि हमने फाँसी लगाया खबरदार आगे मत बढना।"

अखण्डानन्द ने कहा "स्वर्ण, तुम निरी छोकरी हो,

देखो जिद्द मत करो इसमें अच्छा न होगा, हम तो आज रात को तुम्हारा व्याह जैसे होगा करेंहोगे पर लगन टल जायगी तो उसका फल जन्म भर तुम्हीं को भोगना पड़ेगा" यह कहकर अखण्डानन्द आगे बढ़ा।

स्वर्णलता ने कहा "यह देखो हमने भी फाँसी लगाया हमारे लेखे ऐसो व्याह जैसा है वैसाही मरना भी है।" यह कहकर ज्योंही फाँसी खींचना चाहा कि बाहर बड़ा प्रकाश दिखलाई दिया, दोनों चौंक कर उसी ओर देखने लगी। देखते २ प्रकाश चारो ओर फैल गया, अखंडानन्द ने देखा कि उसके ठाकुरद्वारे में आग लग गई।

एकतालीसवां परिच्छेद।

शशि की आँखें अब खुली।

शशिभूषण ने रामसुन्दर बाबू के घर से लौटकर सब वृत्तान्त प्रमदा से कहा। प्रमदा ने सुनकर दो चार बेर दीर्घनिश्वास त्याग किया किन्तु कुछ बोली नहीं चणकाल चुपचाप बैठी रही, पीछे से उठकर बाहर जाना चाहा, तब शशिभूषण ने पूछा "कहां जाती हो? हमारी बात सुनकर चुप क्यों हो रहीं।"

प्रमदा ने कहा "अब अभी आये" यह कहकर नीचे मा के पास आई।

प्रमदा ने अनुग्रहपूर्वक मां को क्षमादान करके कहा "कुछ सुना है क्या भया है?"

मां—"नहीं"

प्रमदा—"तुम कान में ठेंठी दिये रहती हो क्या?"

मा ने कातरस्वर से कहा बिना तुम्हारे कहे हम किससे सुनें? तुम तो हमसे कुछ कहतीहो नहीं।"

प्रमदा ने कहा 'अच्छा अब भूमिका बाँधने का काम नहीं है उस दिन साहेब आया था वह हुक्म दे गया है कि "अगर वह (अर्थात् प्रमदा का स्वामी) हिसाब किताब न समझावेंगे तो नौकरी से निकाल दिये जायँगे।"

मा ने आश्चर्य्यित होने का बहाना करके किञ्चित् उच्च स्वर से कहा "यह क्या आफ़त आई, अब क्या होगा?"

प्रमदा—"तुम जो इतना चिल्लाओगी तो हम यहा से उठ जायँगी।"

मां—"नहीं नहीं बेटा अब न बोलेंगी।"

प्रमदा ने फिर क्षमा करके कहा "कागज पत्तर तो कुछ ठीक हई नहीं, बाबू साहब को शराब में चूर देखकर जिसने जो पाया चोराया, हमारे इन्होंने चोरी तो नहीं किया पर उन लोगों की चोरी में हिस्सा तो पाया है, अब देखो क्या होता है कैदखाना जाना पड़ता है नहीं तो गारद में ज़रूरही जाना पड़ेगा।"

मा ने आग्रहपूर्वक पूछा "तो अब बचने का क्या कोई उपाय नहीं है?"

प्रमदा ने उत्तर दिया 'एक उपाय है पर वह भी नहीं के बराबर, अब दूसरे अमला लोगों को चार हज़ार रुपया घूस दिया जाय तो वे लोग कहते हैं कि हम बचाय देंगे पर हमको विश्वास नहीं होता, रुपया भी जायगा इज़्ज़त भी जायगी।"

मा ग़रीब की बेटी ग़रीब की बहू, पचास रुपया भी कभी इकट्ठा देखा है कि नहीं सन्देह है, चार हज़ार का नाम सुनकर इधर उधर देखने लगी, के पचीसी का चार हज़ार होता है न समझ सकी, परन्तु पूछने से कहीं प्रमदा झिड़क न उठे इस डर से चुप हो रही।

प्रमदा ने पूछा "कुछ कहा नहीं?"

मा कुछ सोच विचारकर बोली "कितना रुपया कहा?

प्रमदा—"चार हज़ार।"

मा (सोचकर)—"कै पचीसी?"

प्रमदा चिड़चिड़ाकर "हमारा सिर। तुम तो निरी ढोकरी बन जाती हो!" मा चुप हो रही।

प्रमदा ने फिर कहा 'चार हज़ार रुपया दे देने से फिर कुछ नहीं बचता, सब गहना कोट जो है सब चला जायगा अब करें क्या?"

प्रमदा ने अनुग्रहपूर्वक मां को क्षमादान करके कहा "कुछ सुना है क्या भया है ?"

मां—"नहीं"

प्रमदा—"तुम कान में ठेंठी दिये रहती हो क्या ?"

मां ने कातरस्वर से कहा बिना तुम्हारे कहे हम किससे सुनें ? तुम तो हमसे कुछ कहतीही नहीं ।"

प्रमदा ने कहा ' अच्छा अब भूमिका बॉधने का काम नहीं है उस दिन साहेब आया था वह हुक्म दे गया है कि "अगर वह (अर्थात् प्रमदा का स्वामी) हिसाब किताब न समझावेंगे तो नौकरी से निकाल दिये जायँगे ।"

मा ने आश्चर्य्यित होने का बहाना करके किञ्चित् उच्च-स्वर से कहा "यह क्या आफ़त आई, अब क्या होगा ?"

प्रमदा—"तुम जो इतना चिल्लाओगी तो हम यहां से उठ जायँगे ।"

मां—"नहीं नहीं बेटा अब न बोलेंगी ।"

प्रमदा ने फिर क्षमा करके कहा "कागज पत्तर तो कुछ ठीक हई नहीं, बाबू साहब को शराब में चूर देखकर जिसने जो पाया चोराया, हमारे इन्होंने चोरी तो नहीं किया पर उन लोगों की चोरी में हिस्सा तो पाया है, अब देखो क्या होता है कैदखाना जाना तड़ता है नहीं तो गारद में ज़रूरही जाना पड़ेगा ।"

मा ने आग्रहपूर्वक पूछा "तो अब बचने का क्या कोई उपाय नहीं है?"

प्रमदा ने उत्तर दिया 'एक उपाय है पर वह भी नहीं के बराबर, अब दूसरे अमला लोगों को चार हज़ार रुपया घूस दिया जाय तो वे लोग कहते हैं कि हम बचाय देंगे पर हमको विश्वास नहीं होता, रुपया भी जायगा इज़्ज़त भी जायगी।'

मा ग़रीब की बेटी ग़रीब की बहू, पचास रुपया भी कभी इकट्ठा देखा है कि नहीं सन्देह है, चार हज़ार का नाम सुनकर इधर उधर देखने लगी, कै पचीसी का चार हज़ार होता है न समझ सकी, परन्तु पूछने से कहीं प्रमदा भिड़क न उठे इस डर से चुप हो रही।

प्रमदा ने पूछा "कुछ कहा नहीं?"

मा कुछ सोच विचारकर बोली "कितना रुपया कहा?

प्रमदा—"चार हज़ार।"

मा (सोचकर)—"कै पचीसी?"

प्रमदा चिड़चिड़ाकर "घमासा सिर। तुम तो निरी ढाकरी बन जाती हो।" मां चुप हो रही।

प्रमदा ने फिर कहा 'चार हजार रुपया दे देने से फिर कुछ नहीं बचता, सब गहना कोट जो है सब चला जायगा पर करें क्या?'

मा विषम विपद मे पड़ी, जो कुछ कहती है तो प्रमदा नाराज़ होती है जो नहीं कहती तो वह खोद खोद कर पूछती है 'साप छछून्दर की गति" हो रही है, क्या कहैं क्या न कहैं यह सोचही रही थी कि प्रमदा बोली, "हमारी समझ मे, इस रुपये के देने पर भी छुट्टी नहीं'—हां यही होगा कि रुपया भी जायगा और प्रान भी जायगा। इससे हम तो सोचते हैं कि नगद रुपया नोट और गहना लेकर एक दिन यहा से चल देना, इहां रहने मे आंख की सरम के मारे नहीं न किया जायगा आंख की ओट रहने से फिर कुछ नही, आज तो हम रुपया पैसा सब दे दें और कलह वह नो कैद हो जायँ तो फिर हमलोगो की कौन दशा होगी, गली २ मारे २ फिरेंगे, मा तुम क्या कहती हो ?"

मा की आंखें अब खुलीं, दिग्निर्णय हुआ, अब जितना चाहो दौड़ाओ बोली "इसमे कौन सक है, अपनी पूंजी पट्टी दूसरे को देकर आप मुह ताकना भी कोई बात है ? ऐसी भूल कभी हमारे बस में कोई नहीं कर सकता।"

परामर्श स्थिर करके प्रमदा शशिभूषण के पास आई, शशिभूषण ने पूछा "कहा गई थी ?"

प्रमदा —"कहीं तो नहीं, तनिक मा की तबियत गड़बड़ थी सो देखने गई थी।"

"तो अब रुपया देने का क्या किया?" शशिभूषण ने फिर कातरस्वर से पूछा—

प्रमदा ने कहा "जब वखत आवेगा दिया जायगा न?"

शशिभूषण को फिर कुछ बोलने का साहस न हुआ।

दूसरे दिन सबेरेही रामसुन्दर बाबू दो प्यादे साथ ले कर शशिभूषण के यहां आये। शशिभूषण ने अभ्यर्थना कर के बिठाया। रामसुन्दर ने कहा 'अब जो कुछ देना लेना होय तो देव यही मौका है फिर कुछ न हो सकेगा क्योंकि हिसाब किताब समझने को सर्कार से एक मनेजर आया है, यह दोनों प्यादे तुम्हें बुलाने आये हैं, अब न भुगतान होने से कचहरी में सब भेद खुल जायगा।"

यह सुनकर शशिभूषण ऊपर स्त्री के पास जाकर बोला, "लाओ, अब नोट दे देव और जितने में एक हज़ार रुपया हो सके उतना गहना दे देव।"

प्रमदा ने कहा "बिना अभी दिये काम न चलेगा?"

शशिभूषण—"नहीं।"

प्रमदा ने थोड़ा देर चुप रहकर कहा "रुपया देने से कुछ विशेष फ़ायदा होगा?"

शशि०—"देने से हमारी जान बच जायगी, नहीं तो हम हथकड़ी पड़ जायगी।"

प्रमदा फिर कुछ देर सोचकर बोली "रुपया देने से

कैसे जान बचैगो सो हमारी समझ में नहीं आता, हमको तो निश्चय है कि रुपया भी जायगा और तुम भी जाओगे।"

शशिभूषण का कालेजा काँपने लगा, अत्यन्त कातरस्वर से बोला "जो हमीं जायँगे तो फिर रुपया रहनेहो से क्या ?"

प्रमदा ने मुंह बनाकर कहा "तो फिर हमलोगों को घर घर भीख मागना होगा; यह क्या तुमारे लिये अच्छा होगा ?"

शशिभूषण का हृदय फटा जाता था, प्रमदा के पास बैठकर पहिले बडेही विनीतभाव से कहा "तुमलोग भीख क्यों मांगोगी, खेत बारी है, घर दुआर है, तुमलोग सुख से रह सकोगी और फिर इस रुपये के देने से हम बचही जायँगे।"

प्रमदा सिर नीचा किये चुपचाप बैठी रही, यह देख कर शशिभूषण ने कहा "जल्दी देव, लोग आकर बैठे हैं देर करने से देना न देना दोनों बराबर होगा।"

प्रमदा इस पर भी कुछ न बोली, शशिभूषण ने कुछ रूखे होकर कहा 'बोलो दोगी कि नहीं ?"

शशिभूषण को रूखा देखकर प्रमदा को उभडने का अवसर मिला बोली "तो जो ऐसा रोआब जमाओगी तो नही देंगे।"

शशिभूषण ने फिर कातरस्वर से कहा "हमसे कसूर हुआ, जल्दी देव।"

प्रमदा रोती रोती कहने लगी "तुमलोगों के ऐसा कठिन आदमी कोई न होगा, इतने दिन तक तुम्हारे भाई ने जलाया अब जो बच गये तो तुम उठे हाय। हमारे भाग में कभी सुख नहीं बदा है। बाबूजी ने क्यों ऐसी जगह हमको व्याहा?" चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी।

शशिभूषण के सिर पर वज्राघात हुआ, चुपचाप सुनने लगा, कुछ देर पीछे आंख पोंछकर प्रमदा ने कहा "तुम तो चले हम रांड़ का क्या धार चले?"

शशिभूषण ने कहा "हमको तो तुम्हीं डुबाती हो, जो तुम रुपया देव तो फिर कुछ न हो।" प्रमदा फूट फूट कर रोने लगी।

नीचे से रामसुन्दर बाबू पुकार रहे हैं "शशि बाबू जल्दी आओ, वक्त हो गया।"

शशिभूषण —"अभी आये" कहकर प्रमदा का दोनों पैर पकड़ कर रोने लगा "अब हमीं बचाओ अब बिना तुम्हारे बचाये हम नहीं बचने तुम्हारे पांव पड़ते हैं हमें बचाओ।"

सोना कोई छत पर खड़ा हो सब चिल्लाकर रोती हुई प्रमदा बोली 'बाबूजी! ... में भी नहीं मालूम

था कि हमारे भाग में ऐसा दुःख लिखा है, हाय। एक दिन भी सुख न पाया, क्यों हमारा व्याह यहां भया?"

प्रमदा का रोना सुनकर उसकी मां भी दौड़ आई और पिछलीही बात सुनकर उसपर मल्लिनाथ की टीका करने लगी। रोते रोते बोली "हमने तो उसी बखत मने किया था कि इसमें सुख नहीं होगा, हमारी बात न मान कर तुम्हारे गले में फांसी लगाया, बेटी हमें कुछ मत कहना, अरे बेटा गदाधरचन्द्र तैं इस बखत कहां है?" प्रमदा और उसकी मा अगिया कोइलिया होकर शशिभूषण के सर्वनाश की उठीं।

रामसुन्दर बाबू ने नीचे से पुकारा 'जल्दी आइये नहीं तो प्यादे लोग भीतर घुसते हैं।"

रामसुन्दर की बात सुनकर उन्मत्त की भाँति शशि-ने प्रमदा से कहा 'प्रमदा, इतने दिन पर अब तुम्हारा सब भेद मालूम हुआ, तुम हमको नासमझ कहती थीं सो यथार्थ में हम नासमझ थे, नहीं तो क्यों अपने प्राण के समान भाई विधुभूषण को तेरी सी राक्षसिनी के कहने से निकाल देते? सरला जब से हमारे घर आई कोई दुख दरिद्र पास न आया हमारा संसार सोने का संसार हो-गया, तेरी सलाह से हमने उसको अलग कर दिया, हाय वह बिचारी बिना अन्न के बिलखा की और हमने तेरी

सलाह से उसको चार दाना अन्न भी नहीं दिया, हमने तो तभी समझा अब हमारा भला नहीं, तैंनेही सरला को दुःख दिया तैंनेही हमारे भाई को पथ का भिखारी बनाया अन्त में एक हम थे सो हमारा भी खून किया, इसमें तेरा कौन दोष है ? जैसा हमारा कर्म्म है वैसा फल मिला, हाय सोना जैसी सरला को छोड़ने का फल अब फला।"

यह कहकर शशिभूषण पागल की तरह चारो तरफ भीषण दृष्टि से देखकर घर के बाहर चला आया और राम सुन्दर बाबू के पास पहुंचा। सब लोग शशिभूषण का मुह देखकर डर गये, किसी ने कुछ पूछा भी नही परन्तु शशि भूषण ने अपने मुह से अपना दोष स्वीकार किया, कहा 'यह सब हमारे कसूर हैं अब जो सजा हो सो की जाय"

मनेजर एक डिप्टी कलेक्टर थे शशिभूषण की बात सुनकर उनको अत्यन्त दुःख हुआ किन्तु कानून के विरुद्ध कर क्या सकते थे। शशिभूषण का इजहार लिख लिया, शशिभूषण के कथनानुसार थोड़ा या बहुत सब अमले अप राधी ठहरे मुहर्रिर, खज़ाञ्ची, हिसाबनवीस और राम-सुन्दर बाबू सभी शशिभूषण के साथ हवालात भेजे गये।

सभी को गारद में करके डिप्टी साहब ने सोचा, सभी की अपेक्षा शशिभूषण का अपराध विशेष है। इसका घर जमीन इत्यादि सब बेंचकर ज़िमींदार की क्षतिपूर्ति करनी

चाहिये, परन्तु अस्थावर सम्पत्ति कहीं स्थानान्तरित न कर दें इसलिये उसके घर पुलिस का पहरा बैठा दिया।

सन्ध्या समय आकाशमण्डल मेघाच्छन्न, वायु वेग से बह रही थी, देखते २ हलकी सी वृष्टि हो गई, वृष्टि होने से कुछ सर्दी विशेष हो गई, दारोग़ा दीनबन्धु, और कान्स्टेबल रमेश शशिभूषण के घर का पहरा दे रहे हैं। आज दूसरे किसी का विश्वास न करके दारोग़ा साहब स्वयं आयें हैं, सर्दी में पहरा देना सहज काम नहीं है तिसपर अनभ्यास के कारण और भी विरक्त होकर थोड़ीही देर पीछे दीनबंधु बाबू ने कहा "रमेश तुम तो जानतेही हो कि हम किसी सर्कारी नौकर से अपना निज का कुछ काम नहीं लेते, पर तुमसे जो दो चार बात कहते हैं सो इस लिये कि हम तुम पर बहुत स्नेह करते हैं, तुम रामधना के दूकान से आध पाव ला दोगे? बड़ी सर्दी मालुम होती है।" "आध पाव" और "रामधना" का नाम लेने से फिर कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं कि कौन वस्तु।

रमेश ने कहा "आपकी जरा सी ख़िदमत कर देंगे उसके लिये इतना कहने की क्या जरूरत है? आपकी तो मेहर्बानी काफ़ी है।"

थोड़ी देर में आध पाव आ गया। दारोगा साहब ने बोतल में उँगली देकर फिर उसे दीपशिखा में लगाया, वह

अच्छी तरह न जली, मुख ईषत् वक्र करके दारोगासाहव ने कहा "रमेश। तुमको नया आदमी जानकर साले ने ठग लिया।" किन्तु दारोगा साहव ने उसे फेरा नहीं, धीरे धीरे सब चढ़ा गये।

दारोगा साहव बोतल ख़ाली कर रहे थे उसी बीच में किसी ने रमेश को पुकारा, रमेश पांच मिनिट पीछे बात सुनकर आया।

दारोगासाहव को आधपाव से कुछ न हुआ, इसलिये म तफिर रमेश से बोले "तो जानतेही हो कि हम सर्कारी नौकरी से अपना निज का कुछ काम इत्यादि" कहकर फिर आध पाव लाने की इच्छा प्रकाश किया।

रमेश को इस बेर लाने में कुछ देर लगी।

दारोग़ासाहव सब चढ़ा गये इस बेर दारोग़ासाहव ने परीक्षा नहीं किया, दोही मिनिट पीछे दारोगासाहव को प्रतीत होने लगा मानो दुग्ध फेन ऐसी शय्या पर सोये हैं, ज्योंही यह मन में आया त्योंही दारोग़ासाहव लेट गये ज्योंही लेटे त्योंही नाक लगी बोलने, ज्योंहीं नाक बोली त्योंही रमेश ने घर में प्रवेश करने के लिये दर्वाज़ा खट-खटाया, दर्वाज़ा खटखटातेही खुलगया।

पहिलेही कह चुके हैं, "जहां न पहुंचे रवि वहां पहुचें कवि" ज्योंही दर्वाज़ा खुला रमेश भीतर घुसा, पीछे पीछे

ग्रन्थकर्त्ता भी चला गया, जाकर देखा क्या ? देखा कि प्रमदा और उसकी मा सब गहने कपड़े रुपया पैसे की गठरी बाँधकर प्रस्तुत है। रमेश से प्रमदा की मा ने फ़ुसफ़ुसा करके पूछा "किस दर्वाजे से जाना होगा ? चोर दर्वाज़े से या सदर से ?"

रमेश—"सदर से।"

प्रमदा की मां ने प्रमदा से कहा "तो बेटी, अब देर मत करो।"

प्रमदा ने रमेश के हाथ में रुपया गिन दिया।

प्रमदा की मा ने गठरी उठा लिया और प्रमदा हाथ में बक्स लेकर घर के बाहर निकली, रमेश घर के बाहर तक उनको पहुंचा गया।

विपिन, कामिनी, दाई चाकर सब घर में रहे।

प्रमदा ने स्वयं गहना कपड़ा पित्रालय में रख आने की इच्छा से नाव भाड़ा कर रक्खा था, घाट पर आकर देखा कि नाव प्रतीक्षा कर रही है चुपचाप दोनो नाव पर चढ़ीं, मल्लाहों ने नाव खोल दिया, थोड़ी दूर गये थे कि सन्ध्या से जो हवा चल रही थी वह शतगुन प्रबल होकर बहने लगी, गगनमण्डल देखते २ घनघटा से आच्छन्न हो गया; घोरतर अन्धकार चारोओर फैल गया, पत्थर गिरने लगे, क्षण क्षण पर बिजुली चमकने लगी। बड़े २ वृक्ष सब उखड़

कर भीषण वज्रनाद करने लगी, मारे जाडे के शरीर कांपने लगा, पवन की सनसनहाट से कान भर गये, वृक्ष पर बैठे पक्षी मर मर कर जल में गिरते, घर धडाधड गिरने लगे, प्रमदा की नाव भी जलमग्न हो गई. मुहूर्त मात्र में हाहाकार मच गया, हाथ से हाथ न सूझता, अपनी बात आप सुनाई न पडती, मल्लाह तैर कर तीर पर पहुंचे, प्रमदा की मा गठरी के सहारे लुडकती लुडकती तट पर आ लगी।

प्रमदा का बक्स अत्यन्त भारी था, और वह मारे लालच के उसको छोडती भी नहीं थी, जल में डूबने २ हुई, क्रमशः उसका सर्वाङ्ग शिथिल हो चला, बक्स हाथ से छूटकर जलमग्न हो गया, एक तरङ्ग ने उठाकर प्रमदा को किनारे पर फेंक दिया।

बयालीसवां परिच्छेद।

बुरे कर्म्म का बुरा फल।

अखण्डानन्द मण्डप में आग लगी देखकर चणकाल तो स्तम्भित सा हो रहा, फिर अग्नि ज्वाला बढ़ती देख उसी ओर दौडा। स्वर्णलता के घर में आने के समय ताले में ताली का झुप्पा लगा कुण्ड में लटका आया था उसको निकालना भूल गया, स्वर्णलता ने खिड़की से देखा कि

मण्डप में आग लगो है तुरन्तही देखा उसके पास के भी एक घर में आग पहुंची हु हु करके घर जल रहा है, स्वर्ण का कलेजा कॉपने लगा, कोई किसो को खबर नहीं लेता अपना २ प्राण लेकर जो जहा पाता है भागता है। स्वर्ण घर से बाहर निकलकर फिर क्या करेगी कुछ निश्चय नहीं कर सकतो, एकबेर सदर दर्वाज़े को ओर गई लोगों को भीडभाड देख लौट आई, फिर खिडको को ओर गई उधर अन्धेरा होने के कारण कई बेर ठोकर खाकर गिरी परन्तु उस समय स्वर्ण अपना प्राण लेकर भागती थी एक दो ठोकर से उसको क्या होना था, खिडकी के पास आ- कर देखा खिडकी खुलो है, अत्यन्त हर्षित होकर उस कारागार से बाहर निकली, रास्ते को हवा लगने से उसके शरीर में मानो जीवनसञ्चार हुआ, वहां भी भीडभाड़ देखकर साम्हने को ओर दौड़ी, स्वर्ण कहां जा रही है इस का कुछ ठिकाना नहीं परन्तु चलने से चांत भी न होती। विचार किया अखण्डानन्द के घर को अपेक्षा जहां जायेंगी वहीं अच्छा आश्रय मिलेगा, इतने में एक दोराहा मिला, किधर से चलें विचारती दम भर खडो हो गई, फिर बाईं, ओर चली, दस बीस कदम गई होगी कि पीछे से किसी ने कपडा खींचकर कहा "कहा जाती हो?" स्वर्णलता घबडा- कर चिल्ला उठो पीछे फिर कर देखा तो एक स्त्री है, कुछ साहस हुआ जी मे जो आया, खड़ी हो गइ, स्वर्णलता ने प-

हिचान कर कहा यह तो अखण्डनान्द के घर की दाई है," कहीं पकड़ने न आई हो इस भय से स्वर्णलता फिर चिल्ला उठी, बोली "हमें छोड़ दो, हम भू जायँगी और जो न छोड़ोगी तो हम चिल्लायँगी।" दाई ने कहा "डरो मत, हम तुम्हें पकड़ने नहीं आये हैं हम भी भागते हैं यह देखो उस मुंहझौंसे का सत्यानाश करके हम आ रहे है" यह कह कर उसने एक बक्स दिखाया, स्वर्णलता को विश्वास हुआ यह सच कहती है, स्वर्ण ने पूछा अब तुम कहां जाओगी?'

दाई ने कहा "रेलघर चलने से तो धर जायँगी, चल बाईं ओर चलें उस पार हमारी एक मौसी का घर है वहीं चलकर रात को रहैं कल फिर जो होगा देखा जायगा।"

दाई की बात संगत जानकर स्वर्णलता सम्मत हो गई। दोनों नदीतट पर पहुंचीं परन्तु स्वर्णलता जहा जाती थी नैराश्य दिखाई देता, वहा नावही न मिली, थोड़ी देर के पीछे एक नाव आई दोनो पार उतरीं।

नाव से उतर कर स्वर्णलता ने कहा "अब प्रान बचा" दाई ने कहा "तुम्हें काहे को डर थी? डर तो हमें है।"

स्वर्ण ने पूछा "तुमने क्यों ऐसा काम किया? चोरी क्यों किया?"

दाई ने कहा "चोरी क्यों न करैं? हमने अच्छा किया उसके बराबर बदमाश कोई है?, लोगों का रुपया मार मार

कर बड़ा आदमी बना है, हमने पायाही क्या है ?" स्वर्ण लता ने पूछा "तुमने यह कैसे पाया ?"

दाई ने कहा "जिस सन्दूक में वह जोखिम रखता था हमको मालुम था, हमने कई बेर चाहा कि निकाल लें पर मौका नहीं मिलता था, आज जब वह तुमारे पास गया था तालो का झुप्पा ताले में लगा छोड़ गया था। हमने उसी वख़्त चाहा कि उड़ा लें पर हिम्मत न पड़ी, शायद आ जाय, पर जब आग लगी और वह दौड़ा तो हमने झट झुप्पा ले सन्दूक खोल यह बक्स निकाल लिया, तुम हमारे आगे निकलीं तुम जब सदर दर्वाज़े को ओर गई तब हम खिड़की की ओर आये तुमने खिड़की खुली पाया न था ? बाहर आकर भीड़भाड़ देखकर खिड़की के पीछे छिप रहे, तुम जब खिड़की से निकलीं हमने कई बेर पुकारा पर तुमने सुना नहीं, जब तुम उत्तर के मोड़ मुड़ीं तब हमने समझा अब बिना बोले काम नहीं चलता, दौड़कर तुम्हारा कपड़ा धरा, तुमने समझा कोई पकड़ने आता है।" यह कहकर हँसने लगी।

स्वर्णलता ने कहा "सचमुच हमने समझा था तुम हमको पकड़नेही आती हो।"

दाई ने कहा "चलो वही देखो हमारी मौसी का घर दिखाई देता है।"

स्वर्णलता ने कहा "हम लखनऊ कैसे जायँगी ? कल फिर उस पार जाना होगा तब न रेल मिलैगी, हमारे साथ कौन जायगा ?"

दाई ने कहा "कल को बात कल है अब इस वक्त तो ठिकाने से चलो। योंही बात करती दोनों दासी को मौसी के घर पहुंचीं।

पहिलेही कह चुके हैं, कि जिस घर में स्वर्णलता थी वहीं से पहिले अखण्डानन्द ने अग्नि देखा था, अखण्डानन्द ने थोड़ीही देर पहिले मण्डप के पासवाले बैठकखाने के संदूक में हरीदास का दिया रुपया रक्खा था, अतएव वह दौड़ कर वहीं गया। फाल्गुन मास, सब वस्तु खूब सूख रही थी, आग लगतेही ले उड़ी देखते २ मण्डप के पासवाले बैठकखाने में जा लगी, दोनों ओर दो अग्निस्तम्भ हो उठे आस पास के घर जलने लगे। हाहाकार मच गया, लोग चारो-ओर भागने लगे। हरीदास एक हाथ से अपने लड़के को और दूसरे हाथ से अपने पुरोहित का हाथ पकड़े इस आशा से खड़ा था कि आग बुझै तब विवाह हो।

अखण्डानन्द ने बाहर आकर देखा, जिस घर में रुपया रक्खा था उसमें भी आग लगी है तथापि भीतर घुस गया, चाहा कि कमर से तालो का झुप्पा निकाल कर सन्दूक खोलै, ताली नदारद; कैसा मनस्ताप है! दौड़कर जिस

यह भी सुना कि उन लोगों की नाव डूब गई । हेड का स्टिबिल और रमेश ने मिल कर दारोगा के दोनों पैरों को खूब देखा कि कदाचित् सर्प न काटे हो किन्तु कहीं कोई चिन्ह दिखाई न दिया, कोई घाव भी कहीं न दिखाई दिया। केवल सिर में एक पुराना दाग था. हठात् दारोगा साहब के मुंह के पास जाने पर रमेश को प्रतीत हुआ मानो उनके मुंह से मदिरा की गन्ध आती है। रमेश ने हेड को पुकारकर कहा, जमादार साहब, हमको ऐसा मालूम होता है कि दारोगा साहब के मुंह से शराब की बू आती है ज़रा आप भी तो देखिये' ।

हेड ने परीक्षा करके कहा "हां तुमने ठीक पता लगाया ।"

रमेश ने कहा "जमादार साहब। हमलोग ठहरे पुलिस के आदमी, न जाने कितने फेरवट से मुकद्दमा सजा सक्ते हैं ।"

हेड ने कहा "अब उपाय क्या है ? आओ सिर पर ठंठा पानी डालें शायद आराम हो जाय, किसी को पता न लगने पावे ऐसी कार्रवाई करनी चाहिये ।"

रमेश ने कहा "हमारी समझ में यह ठीक नहीं क्योंकि जो कहीं कुछ गड़बड़ हुआ तो सारी झोंकी हमलोगों के सिर आ पड़ेगी । इसलिये डिप्टी साहब से इत्तिला कर देनी चाहिये ।"

हेड ने कहा "इसमें दारोगा साहब की नौकरी पर हरफ आ जायगा।"

रमेश ने कहा "जो जैसा करेगा वैसा भोगेगा इसके लिये हमलोग क्यों झौंको में पड़ें?"

रमेश का मुंह स्याह हो रहा था। बात कहते ओंठ हिलते थे, परन्तु हेड की यह दशा नहीं थी। दोनों ने थोडी देर परामर्श करके स्थिर किया कि डिप्टी साहब को खबर देनीही चाहिये। आदमियों को बुलाकर दारोगा साहब को उठा ले जाने के समय रमेश ने एक बोतल पाई उसको सूंघकर उसने कहा "जान पडता है इसी में शराब थी। अब इसको रखने से क्या मतलब, इसको फेंक देते है।"

हेड ने कहा "ऐसा भी कोई करता होगा? इस बोतल को भी चलान के साथ भेजना होगा, देखो तो इसमें कुछ है तो नहीं?"

हेड की बात सुनकर रमेश ने बोतल को कम्पित हस्त से उठाकर उलटा उसमें से काला अर्क सा गिर पड़ा, रमेश ने कहा "कुछ तो नहीं है।"

हेड ने कहा "यह क्या गिरा? तुम पुलिस के आदमी होकर ऐसा कच्चा काम करते हो? लाओ, बोतल हमें तो देव?"

बोतल देती समय रमेश का हाथ थरथर कांपने लगा, हेड कांस्टेबिल ने विस्मित होकर रमेश के मुह की ओर देखा। जीभ से ओंठ तर करके रमेश ने कहा "कल्ह रात भर नींद न आने से सारा शरीर कांपता है, स्नान करके थोड़ी देर सोवैं तो प्रान बचै ।" उस समय हेड कांस्टिबिल का मुख देखने से प्रतीत होता था कि रमेश के उत्तर से उसको सन्तोष नहीं हुआ, बरंच बड़ा सन्देह उदय हुआ। रमेश मुंह फेरे रहा।

हेड ने दारोगा को बोतल के साथ डिप्टी साहब के यहां पेश किया। डिप्टी साहब ने उसे सदर चलान करके नाव डूबने की तहक़ीक़ात का हुक्म हेड कांस्टिबिल को दिया।

जमादार, रमेश और कांस्टिबिलों के साथ नदीतट पर आकर तहक़ीक़ात करने लगे। गोतिखोरों से गोता लगवाया, सिवाय कपड़े लत्ते के कुछ न मिला, फिर बहुत से माँझी लगाकर नाव निकलवाई, उसमें भी प्रमदा का बक्स न मिला, तब शशिभूषण के घर तहक़ीक़ात को गये। पहिले रमेश का इज़हार लिया, यह कुछ भी नहीं जानता वह तो खिड़की की ओर पहरा देता था उधर से कोई भी नहीं गया। तब हेड ने गदाधर की मा से पूछा 'कल रात को आप लोगों को किसने रास्ता दिया था ?"

गदाधर की मा ने उत्तर दिया "जो कल रात को यहां पहरा देता था।"

"उसका नाम क्या है?"

"भला सा तो नाम है, अरे वही जो हमारे यहां आता जाता था। गदाधर से उससे बहुत बनती थी—उसी ने हमारे गदाधर से रुपया भी लिया और फिर कैद भी कराय दिया—"

हेड कांस्टिबिल ने पूछा "अच्छा देखकर उसको पहिचान लीजियेगा?',

गधदार की मा ने कहा "हां हां क्यों नहीं?"

हेड ने फिर पूछा "गदाधर को सत्यनाश करके किसने रुपया लिया था?"

गदाधर की मा ने कहा "गदाधर और वह दोनों मिलके किसी की चीठी खोल के रुपया लेते थे, हमारे बचवा का कोई कसूर नहीं, उसी कम्बखत पहरावाले ने सिखलाया था, फिर जब यह बात खुली तब एक दिन उसने आकर कहा एक सौ रुपया देव तो तुमको बचाय दें नहीं तो सब बात खोल देंगे। क्या करैं हम गरीब आदमी रुपया कहां पावैं? हमारा दमाद बडा आदमी है सही पर उससे हमको क्या? हमारे जो दो चार गहिना रहा सो गिरौं मार के कोई तरह से रुपया दिया, पर दूसरे

दिन वही पहरावाला दरोगा को ले आया और गदाधर को पकड़ाय दिया।" इतने में रमेश जो कहीं किसी दूसरे काम से गया था लौट कर आ गया, उसको देखतेही गदाधर की माने कहा "पहरावाला देखो हमने तुमको नाहक रुपया दिया। वह रुपया भी गया और जो कुछ बचा था सो भी गया" हेड कान्स्टिबिल ने फिर पूछा "किसको रुपया दिया था?"

गदाधर की मा ने रमेश को दिखला दिया।

रमेश ने विस्मय का बहाना करके पूछा "तुमने हम को रुपया दिया?"

गदाधर की मा "हां तुम्हीं को।"

रमेश—"नहीं तुम भूलती हो।"

गदाधर की मा ने कहा "काहे भैया झूठ काहे बोलते हो" हम तुमको नहीं चीन्हते क्या? अरे एक बेर तुम्हीं ने गदाधर से एक सौ रुपया लिया था फिर कल रात को तुम्हीं को प्रमदा ने २५) रुपया दया था। और फिर एक बेर दो बेर की बात होय तो कहै—तुमसे और गदाधर से कैसी बनती थी तुम रोजही हमारे घर आते थे।

यह सुनकर रमेश के मुंह से फिर कुछ न निकल सका। हेड कान्स्टिबिल के मन में भी सन्देह न रहा, रमेश को बांधकर चलान किया।

परन्तु फिर भी रमेश ने कहा "देखिये साहब, हमारा कोई कसूर नहीं है, आपको इसका फल भोगना होगा हमको ऐसा वैसा न समझियेगा, हम भी पुलिस के आदमी हैं।"

हेड ने कहा "हँ हँ तुम पुलिस के आदमी हो हम थोडेही पुलिस के आदमी हैं" यहकर दो कांस्टिबिलों के साथ चालान लिखकर रमेश को रवाना किया।

दारोगा साहब तीन दिन पीछे जागे, डाक्तर ने बड़ा यत्न किया इसी से यह निद्रा महानिद्रा न हुई, जाग्रत हो-कर उन्होंने सब वृत्तान्त मजिष्ट्रेट साहब से कहा। इधर डाक्तर साहब ने बोतल की परीक्षा करके लिखा इसमें शराब और अफीम का सत मिला हुआ था।

रामधन गिरिफ्तार हुआ। वह निर्दोषता का प्रमाण देकर छूट गया, उसने शराब में कुछ नहीं मिलाया। तब किसने मिलाया?

इसी बीच में शशिभूषण के घर के पास एक मनुष्य डाक्तरी करता था, उसने कहा "एक दिन रात को रमेश ने पेट में दर्द बतलाकर हमारे यहा से लडनम (अफीम का अर्क) लिया था, नगद दाम नहीं दिया था इससे उसके खाते में आज तक चार आना बाकी नाम पड़ा है। यह खबर थाने में पहुंची, उसको कलक्टर के यहा हाजिर होकर

इजहार देना पड़ा । मिलाने से मालुम हुआ कि जिस दिन खाते में उसके नाम पड़ा था उसी दिन दारोगा साहब बे-होश हुए थे । रमेश की नौका में नांक तक जल पहुँचा । बहुत से अपराध सुबूत हुए । पहिला, गदाधर के साथ नोट चुराना, दूसरे रिश्वत सितानी, तीसरे रिश्वत लेकर प्रमदा और उसको मा को छोड़ देना, चौथे शराब में अफीम मि-लाकर दारोगा को देना । सभव था कि इसमें वह मर जाते। इतने दोष इकट्ठे होने से रमेश पुलिस का आदमी होने पर भी कुछ न कर सका । साहब जज ने पूछा "तुम्हारा सफाई सबूत ?" रमेश सिर नीचा किये चुप, जूरियों ने यह देखकर सब अपराधों का उसे अपराधी ठहराया । जज ने यावज्जीवन दीपान्तर को आज्ञा दी ।

चौआलीसवां परिच्छेद ।

शुभ मिलन ।

दुःसह कष्ट के साथ गोपाल ने रात काटी, वह रात पहाड़ सी हो गई, एक एक पल एक एक पहर सा प्रतीत होने लगा । रात्रि को लोग शान्तिदायिनी कहते हैं पर वह किसको शान्ति प्रदान करती है ? जिनका हृदय दग्ध हो चुका है उनको ? नहीं । जो शय्यागत रोगी हैं उनको? नहीं। जो लोग दीन दुखी हैं उनको ? नहीं । इन सब लोगों

की चिन्ता, इनका क्लेश रातही को बढ़ता है, रात आतेही ये लोग मनस्ताप से काप उठते हैं, हा जो लोग दुग्ध फेनवत् शय्या पर शयन करते हैं, अनेक दास दासीगन जिनको चरणसेवा में नियुक्त रहते हैं, जिनको विलासकामना को सुन्दर रूपवती कामिनीगण पूर्ण करने को प्रस्तुत रहती हैं उनको अवश्य रात्रि शान्ति देती है। और शान्ति क्यों न देगी? जिनकी खुशामद सभी करते हैं उनकी रजनी देवी भी क्यों न करेंगी।

प्रभात होने पर पूर्व दिशा से भगवान् सूर्य्यनारायण ने दर्शन दिया। साहब बहादुर ने भी खिड़की खोलकर दूसरे दिवाकर की भांति दर्शन दिया। रेलकर्मचारीगन अपने अपने कामों में नियुक्त हुए तार की खबर दौड़ने लगी, टिकटग्राही यात्रियों के आह्वान को घण्टी बजी, सीटी देती रेल आई, फिर घण्टा बजा, झंडी उड़ी, ष्टेशन-माष्टर ने "आल राइट" कहा रेल चली गई। ऐसेही दो तीन बेर रेल आई और गई, गोपाल का हृदय सूखने लगा एकही रात की चिन्ता में गोपाल का मुख ऐसा हो गया मानो कई उपवास हुए हों। दस बजा, साहब बहादुर ने गोपाल से किराया लेकर छोड़ने की आज्ञा दी।

गोपाल एक बजे अयोध्या के लिये रेल पर चढ़ा। वहा पहुंचते पहुचते गोपाल के मन में कितनीही भावनायें उदय

होने लगीं । कभी सोचता—स्वर्णलता चिरदु:खसागर में डूबी होगी, कभी सोचता—नहीं स्वर्ण ऐसी नहीं है – उसने आत्महत्या की होगी । सोचने से कलेजा कांप उठता है कहीं आत्महत्या किई होगी तो वह हमारे ही दोष से, हम क्यों सो गये ? कही स्वर्ण का विवाह हो गया होगा या आत्महत्या किया होगा तो इस पाप का प्रायश्चित्त हो नहीं हो सकता । यही सब सोचते बिचारते रेल अयोध्या पहुंची, गोपाल झटपट उतर टिकट दे बाहर आये, अखण्डानन्द का घर पूछते २ बहुत देर में वहां पहुंचे ।

वहा पहुचकर देखा न कहीं घर न दुआर – केवल भस्म की ढेर की ढेर लगी है । गोपाल का सर्वाङ्ग कांपने लगा, सिर घूमने लगा, हृत्कम्प होने लगा । गोपाल ने सोचा स्वर्णलता ने यथार्थ में आत्महत्या कीई यह सोच तेही आगे चलने का साहस न हुआ, सड़क के एक किनारे बैठ गया, एक कांस्टिबिल सामने से होकर निकल गया पर उससे वृत्तान्त पूछने का साहस न हुआ ।

थोड़ी देर पीछे जी कड़ा करके भस्म राशि के पास आकर दारोगा से अत्यन्त विनीतभाव से पूछा "क्यों साहब, यहा क्या हुआ है ? आप लोग किस बात की तहकीक़ात कर रहे हैं ?"

दारोगा ने गोपाल की ओर देखतेही समझा कि इसके हृदय पर कोई दुःसह चोट लगी है, उत्तर दिया "घर में आग लगने के कारण इस घर के मालिक अखण्डानन्द की मृत्यु हुई है। हम लोग उसी की तहकीकात कर रहे हैं, अखण्डानन्द क्या आपके कोई लगते थे ?"

गोपाल ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा "जी नहीं, अखण्डानन्द हमारे कोई लगते नहीं थे, यहा और भी कुछ हुआ है ? किसी ने आत्महत्या तो नही की ?"

दारोगा साहब ने हँसकर कहा "नहीं नहीं तुम्हारे मन में ऐसी बात क्यों उदय हुई ?"

गोपाल ने कहा 'जी, यहा हमारी एक नातेदार लड़की रहती थी, अखण्डानन्द ज़बर्दस्ती उसका व्याह करना चाहता था, उसी को लिवाने हम आये थे, कम्बख्त की मार रेल में सो गये सो आगे बढ़ गये, उसने लिखा था कि जो कोई हमको छुड़ाने न आवैगा तो हम आत्मघात करेंगे ।' यह कहते २ गोपाल की आंख से सहस्रधार जल बहने लगा।

दारोगा साहब ने सान्त्वना देकर कहा "आप घबड़ाइये मत, आपकी नातेदार अच्छी तरह हैं, गवाहों के इज़हार से साबित है कि आग लगतेही वह भाग गई थी।"

दारोगासाहब की बात सुनकर गोपाल ने मानो आ

काश का चन्द्रमा पाया, सिर घूमने लगा हाथ पैर कॉपने लगे, चक्षु रक्तविहीन हो गये । दारोग़ासाहब ने सादर उस को अपने पास बिठाकर सिर पर जल दिया । गुलाबजल छिड़का, गोपाल जब स्वस्थ हुआ दारोग़ासाहब ने पूछा "आपको कोई बीमारी है?"

गोपाल ने कहा "जी नहीं।"

दारोग़ा साहब ने कहा "आपने भोजन किया है?"

गोपाल ने उत्तर दिया "कल रात से कुछ नहीं खाया है?"

दारोग़ा साहब ने गोपाल के खाने को मँगाया, परन्तु गोपाल ने कहा, "बिना स्वर्ण का पता लगाये हम जल भी मुह में न देंगे।"

दारोगा ने कहा "बदन में ताक़त रहे बिना आप कैसे पता लगाइयेगा? पहिले आप कुछ भोजन कीजिये फिर हम आपके साथ अपना एक आदमी भी कर देंगे।"

गोपाल ने कुछ थोड़ा सा खा लिया फिर दारोग़ा से कहा "अब आप कृपा करके कोई आदमी दीजिये।"

दारोग़ा साहब ने एक कान्ष्टेबल साथ कर दिया, गोपाल ने घर घर खोजा कहीं स्वर्णलता का पता न लगा, सिर पीटकर बोला "जान पड़ता है स्वर्णलता ने आत्मघात किया या जल में डूब मरी" अब गोपाल रुलाई

न रोक सका, चिग्घाड मारकर रोने लगा, थोडी देर पीछे कान्हैया को विदा करके गोपाल सरजू तटपर जाकर भूमि पर सो रहा।

गोपाल जहां सोया था उसके पासही माझी लोग आपस में तर्क वितर्क कर रहे थे, एक ने कहा "तैं का जाने? एकर दाम का होई बताव?" दूसरे ने कहा "अरे एकर दाम का? तैं हमरे संगे चल ऐसन पत्थर जेत्ता कह तेत्ता देई" तीसरे ने कहा "ओकर दाम नाहीं सही— सोनवा के दाम तो होई?"

दूसरे ने फिर कहा "अरे ई का सोना क हो? बड़े अदमिया कुछ आजकल का सोने पहिरे लैं?"

पहिले ने फिर कहा "और नाहीं तो का? वडे अद-मिया पीतल पहिरे लैं और तोहरे लोगन में सोना क?"

दूसरे ने फिर कहा "अरे भवा हमरे घरे सोना क गहना होय तबो लोग पितलै कै कहिहैं और बड़े अद-मिया पीतल कै पहिनैं तब्बो लोग सोना जनिहैं।"

जिस्को अँगूठी थी उसने कहा "तोनहन के एसे का मतलब? आव: सोना होई तो हमार, पीतल होई तो हमार।"

पहिले ने कहा "हम ठीक कहील: एकर दाम ढेर होई, पस: न—ई आदू लूतब औधि इनके देखाईं।"

सब सम्मत हुये, गोपाल के पास आकर गोपाल के हाथ में अँगूठो देकर एक ने पूछा "सरकार ई अँगुठिया क दाम का होई? आपके पसन्द हो?"

गोपाल अँगूठो हाथ में लेतेही उठ बैठा और आग्रह के साथ पूछने लगा "यह अँगूठो तुमलोगों ने कहा से पाई?"

गोपाल की आँख से मानो ज्योति सी निकसने लगी, मृतकवत् पड़ा था सो उत्साहपूर्वक उठ बैठा, देखते ही गोपाल ने पहिचाना यह अँगूठो स्वर्णलता की है।

गोपाल का अत्यन्त आग्रह देखकर और सब मल्लाह चुप हो गये, जिसकी अँगूठो थी उसने कहा "सर्कार कल रात के दुइठे मेहरारून के घोह पार उतरली उनके पास पइसा नाहीं रहल, सो ई अँगूठो दिहलिन।"

माझी की बात सुनकर गोपाल उठ खड़ा हुआ, दीर्घ-निश्वास लेकर कहा "तो अभी जीती है।" मल्लाह से आ-ग्रहपूर्वक पूछा "वह लोग कहा गई?" माझी ने कहा "ऊ पार अखण्डानन्द बाबा की दाई के मौसी के घर हो उहै गइल बाटिन।"

गोपाल ने कहा "इस अँगूठो का दाम कुछ भी न होगा तो तीस रुपया होगा, तुम में से कोई हमको वहां पहुचा दो तो हम और पाच रुपया देगे।"

चारो मल्लाह बोल उठे "हम जाइब, हम जाइब।"

जिसने स्वर्ण से अँगूठी पाया था उसने कहा "तू सब का जाव: हमहीं बहू के पार उतरली उनकर मालिकी के हमहीं उतारब" मल्लाह ने क्यों स्वर्ण को बहू कहा और गोपाल को उसका मालिक कहा? यह मल्लाह ही बता सकता है।

गोपाल उसके साथ चला, पार उतरकर माझी आगे आगे रास्ता बतलाता चला, थोड़ी दूर आगे चलकर माझी ने कहा उहै घर ही, इनाम मिलै सरकार।"

गोपाल ने जो इनाम देने कहा था तुरन्त दे दिया, दो चार क़दम आगे बढ़कर स्वर्णलता और उसके पास एक और स्त्री को बैठी देखा गोपाल ने दौड़कर आगे बढ़ "स्वर्ण" कहकर पुकारा, स्वर्ण के पास पहुंचते ही गोपाल बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ा।

पैंतालीसवां परिच्छेद।

सुखपरिणाम।

गोपाल ने चैतन्य होने पर देखा कि स्वर्ण के जानू पर सिर रक्खे सो रहे हैं, स्वर्णलता दाहिने हाथ से ताड़ का पंखा हांक रही है, चक्रपाणानन्द जी दाईं जल कलश लिये खड़ा है, गोपाल के आंख खोलने पर स्वर्ण ने पूछा "अब

जो कैसा है ? कुछ अच्छा है न ?"

गोपाल ने पूछा "हम कहां हैं ?"

स्वर्ण ने उत्तर दिया "तुम हमारे पास हो, हम स्वर्ण हैं, अब जी कुछ ठहरा ?"

गोपाल ने सब बातें स्मरण करने के लिये कुछ देर तक आँख बन्द किये रहने के पीछे कहा "हम अच्छे हैं।"

गोपाल ने स्वर्णलता के जानु से सिर उठाया, मनही मन बोला "आहा ! ऐसा उपाधान मिले तो यावज्जीवन मूर्छित रहना अच्छा ।" थोड़ी देर पीछे फिर आँख बन्द कर लिया, स्वर्ण ने पूछा "अब कैसा जी है ?"

गोपाल ने अनिच्छापूर्वक धीरे २ सिर उठाकर कहा "हम अब बिलकुल अच्छे हैं, पर यह तो बताओ तुम यहां कैसे आई ?"

स्वर्ण ने कहा "अभी तुम से नहीं कह सकते थोडी देर स्थिर होने पीछे सब कहेंगी ।" यह कहकर स्वर्णलता वहां से उठ गई, थोडी देर पीछे फिर आकर गोपाल को अपने साथ भीतर ले गई, बहुत दिन से स्वर्ण ने गोपाल से बात करना छोड़ दिया था, गोपाल सोचता था स्वर्ण हम को दरिद्र समझकर कदाचित् घृणा करती है किन्तु आज स्वर्ण के जानू पर सिर रखकर सोने के समय से वह चिन्ता दूर होकर एक दूसरेही प्रकार की चिन्ता उदय हुई, उसमें

इस समय मानो दिव्य चक्षु से आद्योपान्त सब देखा, गोपाल के आनन्द की सीमा न रही।

स्वर्णलता के साथ भीतर जाकर गोपाल ने देखा कि जलपान की सामिग्री प्रस्तुत है। यत्किञ्चित् खाकर गोपाल बैठा, स्वर्णलता ने आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया, स्वर्णलता ने गोपाल को आज तक भी क्रोध करते देखा ही न था परन्तु आज अखण्डानन्द की कठोरता की बात सुनते २ आंखें लाल हो गईं। ओठाधर कॉपने लगे और दक्षिण भुजा फरकने लगी। स्वर्णलता की बात पूरी होने पर गोपाल ने कहा "तो अब अखण्डानन्द की मृत्यु पर हमको तनिक भी दुःख नहीं है।"

स्वर्ण ने पूछा "कुछ सुना अखण्डानन्द के घर आग कैसे लगा था?" गोपाल ने आरक्तिम मुख नीचे किये हुये कहा "सुना पूरी करते हुये कड़ाही में घी भभक उठा।"

तब गोपाल ने अपना सब वृत्तान्त कहा। यह सुनतेही कि इन का रोग बढ़ जाने से गोपाल स्वर्णलता की विपत्ति का हाल इस से कुछ न कहकर आपही उठ खड़ा हुआ स्वर्णलता की आंखों में आंसू बहने लगा और जब सुना कि गोपाल गारद में कैद किया गया था तब तो अश्रुधारा बह निकली, उस दिन रात का किसी को भी नींद न आई।

दूसरे दिन सबेरे अखण्डानन्द की दाई को साथ लेकर रेल पर सवार हो गोपाल लखनऊ पहुंचा, स्टेशन से किराये की गाड़ी कर हेम के डेरे पर आये।

हेम अब चलने फिरने लगे, सबेरे उठकर बाहर चबूतरे पर टहल रहे थे कि एक गाड़ी आकर खड़ी हुई, उस में से पहिले गोपाल निकला। हेम ने हाथ बढ़ाकर गोपाल का हाथ पकड़कर कहा "वाह ऐसा काम आपको था कि तीन दिन तक आने की छुट्टी न मिली ?"

गोपाल बोलने भी न पाया था कि गाड़ी से वह दाई उतरी। हेम ने पूछा "यह कौन है ?" हेम का प्रश्न पूरा भी न हुआ था कि स्वर्णलता भी गाड़ी से निकली, हेम ने और भी आश्चर्य के साथ पूछा "हैं यह स्वर्ण कहां से ? आओ बहिन आओ।" यह कहकर हेम स्वर्ण के पास गया, स्वर्ण हेम का हाथ पकड़कर रोती रोती भीतर आई।

आज गोपाल और हेम एकत्र बैठे है, हेम अब सम्पूर्ण आरोग्य हो गए। किन्तु गोपाल का चेहरा अब वैसा नहीं है, इतने दिन पीछे हेम ने इसका कारण जाना, जानकर अत्यन्त आह्लादित हुआ। सोचा दोनों का अनुराग दोनों की ओर समान है, इन दोनों का विवाह होने से परम-सुख के साथ काल कटैगा।

हेम थोड़ी देर चुप रहने के पीछे मुस्किरा कर बोले "गोपाल, तुमसे एक बात पूछें ?"

गोपाल ने कहा "कौन बात ? पूछिये ?"

हेम "तुम्हें परसाल दसहरे के छुट्टी की बात याद आती है ?"

गोपाल "जी, हां ।"

हेम—"अच्छा एक दिन हम और तुम दालानमें चौकी पर बैठे थे और बाबा भी आकर वहीं बैठ गए थे, और थोड़ी देर पीछे उन्होंने स्वर्ण के व्याह की बात चलाई थी याद है न ?

गोपाल—"अच्छी तरह ।"

हेम—स्वर्ण के व्याह की बात सुनकर तुम वहां से उठने लगे तब बाबा ने कहा बैठे न रहो इस पर हमने कहा था नहीं जाने दीजिये आज इनका जो अच्छा नहीं है, यह सुनकर तुम मुंह बिगाडकर उठ गये थे, याद है न ?"

गोपाल लज्जावन्त मुख होकर बोला "हां ।"

हेम—"अच्छा अब बताओ हमने तुमको क्यों उठा दिया था ?"

गोपाल —"हमें क्या मालूम ?'

हेम ने कहा "मालूम होगा तो भी तुम न कहोगे, अच्छा सुनो हम कहते हैं, तुम्हारे साथ स्वर्ण का व्याह करने का प्रस्ताव करने के लिये तुमको हमने हटाया था, तुमने मुंह भी बिगाड़ा पर हम क्रुद्ध न होते ।"

गोपाल का मुंह लाल हो गया, भूमि की ओर ताकने लगा ।

हेम ने कहा "तुम्हारे साथ स्वर्ण के व्याहने में बाबा को एक यही उज्र था कि तुम्हारे पास धन नहीं है, देखो बुरा मत मानना हम अपनी बात नहीं कहते, बाबा का जो भाव था वह कहते हैं, उनको बस यही एक उज्र, था, पर जो बाबा जीते रहते तो हम अब तक कभी तुम्हारे साथ स्वर्ण का व्याह करा देते, उनके मरनेही से इतनी देर हो गई । अब हमारा कहना यही है कि जो कोई आपत्ति न हो तो अपने पिता को पत्र लिखकर स्वर्ण का पाणिग्रहण करो ।

हेम की बात सुनकर गोपाल की आंखों में आंसू भर आये, कण्ठ रुक गया, बोलने की चेष्टा किया बोल न सका, हेम ने कहा "अब तुम्हारे कहने का काम नहीं हमने सब समझ लिया, अपने बाबा को चिट्ठी लिखो ।"

उपसंहार ।

इधर गोपाल के साथ स्वर्णलता का विवाह हो गया। उधर शशिभूषण का मुकद्दमा ते हो गया, सब भेद सचसच कह देने के कारण रिहाई हो गई । मुहर्रिर खजाची इत्यादि सभों को सजा हो गई, उसकी सम्पत्ति सब नीलाम हो गई । अब यह विपिन और कामिनी को लेकर गोपाल के घर रहने लगा ।

प्रमदा पित्रालय में है, उसके भरणपोषण का भार भी गोपालही पर पड़ा, गोपाल ने चाहा कि उनको भी लाकर यहीं रक्खें परन्तु शशिभूषण ने रोक दिया। पित्रालय, में उससे किसी से बोला चाली नहीं है सबसे कलह है, केवल कभी कभी मा से बोलती है।

विधुभूषण डिप्टी साहब के यहां से आकर घरही रहता है। थोड़ीही अवस्था में उसके सब बाल पक गये, देखने में शशिभूषण से बड़ा जान पड़ता। स्वर्णलता को एक लड़का हुआ उसका नाम आदर से व्रजपाल रक्खा, उसी को विधुभूषण रात दिन गोद में लिये खेलाया करता।

हेमचन्द्र बरस में छ: महीना स्वर्णलता के घर आकर रह जाते, जब वे आते गोपाल और स्वर्ण के आनन्द की सीमा न रहती। जब आते तब गोपाल सहज में जाने न देते, यदि कभी किसी कारण से नियमित महीने में न आ सकते तो गोपाल और स्वर्ण अत्यन्त दुःखित होते, और आने पर खूब लड़ते।

श्यामा घर की स्वामिनी की भांति रहती, स्वर्णलता उसको अपनी सास की तरह आदर करती।

रामचन्द्र पर विधुभूषण को अत्यन्त स्नेह था, दोनों एकही अवस्था में एकही समय घर से धनोपार्जन करने निकले थे। अब आप सुखी होकर उसको भी सुखी करने

को बड़ी इच्छा हुई, बहुत खोज कर उसको बुलवाया बड़े आदर से अपने पास रक्खा, चिकित्सा करके उसको आराम किया।

सरला के आनन्द की तो सीमाही न रही। पति, पुत्र, पतोहू, और पौत्र के साथ इस लोक का परमसुख प्राप्त करके पतिसेवा रूपी महायज्ञ द्वारा परलोक सुधारने में तत्पर रहने लगी।

पाठक। "अन्त भले का भला" गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने ठीक लिखा है। "कर्मप्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥"

इति।
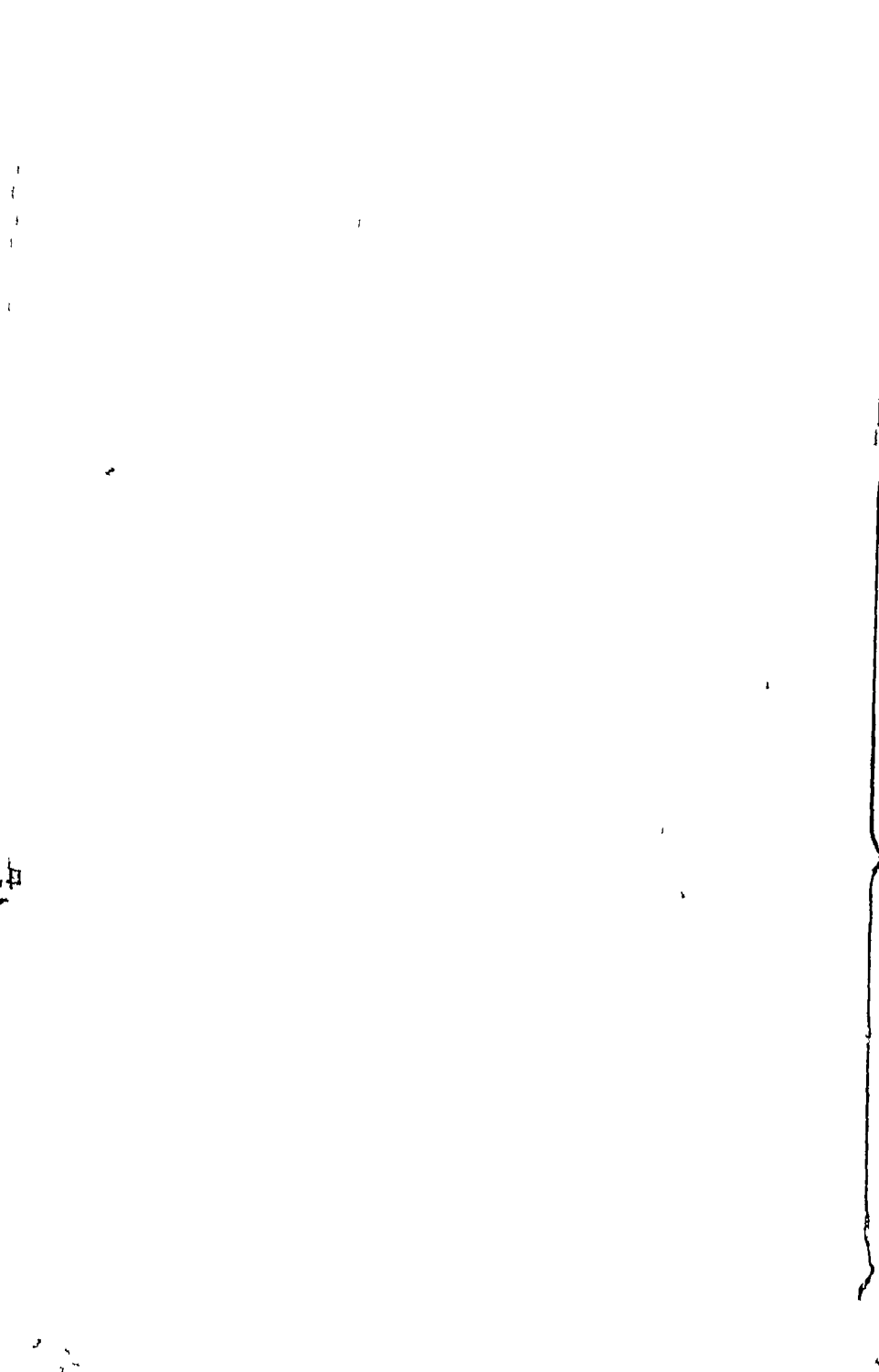
सूचना ।

फिरोजशाहको मार अल्लाउद्दिन खिलजी सन १२२५ ईस्वीमें दिल्लीके राजसिंहासन पर बैठा । चित्तौर की पद्मिनीके रूप की प्रसंशा सुन अलाउद्दीनने तीन वार चित्तौर पर आक्रमण किया । दो वार लड़ाईमे यह हार गया । तीसरी वार इसने चित्तौर फतह कर लिया पर तौभी पद्मिनी इसके हाथ नहीं लगी । कारण यह हुआ कि अलाउद्दीनके चित्तौर फतह करने पर पद्मिनी ने अग्निमें प्रवेशकर अपने प्राण त्याग दिये ।

इस उपन्यास में अलाउद्दीनके दूसरे आक्रमणका वृत्तान्त लिखा गया है ।

इतिहासके लेखक कोई तो पद्मिनीको चित्तौरके राणा की स्त्री, और कोई राणाके चाचा भीमसीकी स्त्री लिखते हैं । टौड साहब भी इसे भीमसीहीकी स्त्री बताते हैं। हमने भी टौड़ साहबकी बात को सच मानकर यह उपन्यास लिखा है ।

आप लोगोंका कृपाभिलाषी
गिरिजानन्दन तिवारी
विहार ।
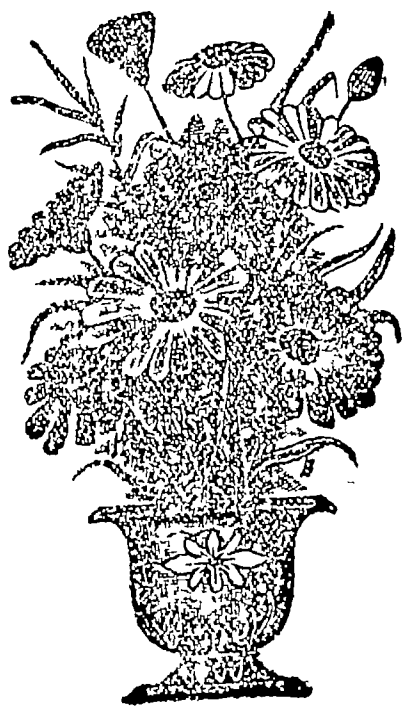
श्रीकृष्ण बांकेविहारी ।

पद्मिनी ।

प्रथम परिच्छेद ।

दो सवार ।

हमारा उपन्यास १२८८ ईस्वीसे प्रारम्भ होता है जब दिल्लीके राजसिंहासन पर खिलजी वंशका फीरोजशाह विराजमान था । यह खिलजी वंशका पहला राजा था और हालहीमें अपने स्वामीके मरनेके पश्चात् सिंहासन पर बैठा था । यह नाममात्रका भारतसम्राट् था । दिल्ली और उसके आसपासके देशही इसके आधीन थे । मुगलोंके वारवार आक्रमण करनेसे राजधानीमें हलचल मची रहती थी परन्तु बादशाहने अपने दातव्य और दयासे सब विघ्न बाधा रोक दी थी । इनके समयमें इनका भतीजा अलाउद्दीन जो कराका राज प्रतिनिधि था राजकाज सँभालता था । अलाउद्दीनका रङ्गरूप और चालचलन किसी आगामी परिच्छेद में वर्णन करेंगे ।

ग्रीष्म ऋतु है । मारे गर्मीके संसारमें जितने जीवधारी हैं । जलपर जल पीते जाते हैं पर तोभी प्यास नहीं जाती । बटोही राहमें व्याकुल हो होकर पानीके खोजमें फिर रहे हैं

दिनके पांच बजे हैं सूर्य्य भगवान् अपने तेजको कम करते हुए अस्ताचलको ओर जा रहे हैं।

शहरके रहनेवाले गर्मीमें पांच बजे दिनको सोकर उठते हैं फिर अपना अपना शृंगारकर कोई जोडी, कोई टमटम कोई घोडेपर सवार हो हवा खाने निकलते है। कोई बाईसिकल हो पर सवारी करते हैं। किसीने मैदान की राह ली, कोई वाटिकाको हवा खाने जाता है, कोई वो फटाका के कोठे की जियारत करने जाता है। अस्तु। उसी समय दिहातोमें दूसरे रङ्ग दिखाई देते है। पशुपालक गण गाय भैस लिये अपने घर लौटने लगते है। घरका स्वामी उनको बाधनेमें लग जाता है।

ललितपुर गावकी ललनाएं अपनी अपनी कमरमें कलसी दाबे जल लेने के लिये निकटवाली नदीको चलीं। सबकी सब अपनी अपनी वयसवालियोंका गोल बांध हसती बोलती चलीं जाती थी।

नदीके किनारे जाकर सबने अपनी अपनी कलसी धरी। फिर इन स्त्रियोंका गोल पानीमें धँसा, कोई घुटने, कोई कमर कोई कोई छाती कोई गलेतक जलमें जा स्नान करने लगी। कोई कोई चतुरा अपने तैरनेका चरित्र दिखाने लगीं। इसके पश्चात् सबने अपने कपडे बदले। इन स्त्रियोंमें बात चीत भी होती जाती थी। गाव

विलासी जन जो शहर को हवा खाये हुए थे लुके छिपे इनका केलि कौतुहल देख रहे थे, पर कुछ कर न सकते थे इससे मुहमें पानी भर आता था। एक युवतीने कहा। बहन तुमने कुछ सुना है ?

दूसरी। बहन कौन बात ?

पहली। अरी चितौरकी पद्मिनीके बारेमें।

तीसरी। हा दीदी मेरी भाभी जिसका पीहर चितौरहीमें है कहती थी कि ऐसी सुन्दर स्त्री भारतवर्ष भरमें नहीं है। देशमें आजकल उसीके रूपकी बडाई हो रही है।

पहली। विवाह हुए कितने दिन हुए होंगे ?

तीसरी। अरी इसी सालती माव महानेमें विवाह हुआ है।

थोडी दूरपर दो सवार घोडेको पानी पिला रहे थे। इनका घोडा पसीने पसीने हो रहा था जिससे साफ ज्ञात होता था कि वे बडी दूरसे चले आते हैं और सिवाय छः छतकके सरगाम चलेही नहीं हैं। मारके चिन्ह जो कोडेके भरपूर हाथ मारनेसे लगे थे घोड़ेकी पीठपर वर्तमान थे।

इन दोनों सवारोंने उन युवतियोंकी बात सुन ली थी। प्रेमका पिशाच एकके सिरपर सवार हो गया। हृदय थामकर रह गया। थोडी देर चुप रहकर फिर बोला—भाई मेरा तो कलेजा निकला जाता है। उस हूरने मजकूरने दिलमें जगह पकड ली है।

दूसरा। शाहजादे दुनियामें एकसे एक नाजुक और हसीन औरतें मौजूद हैं फिर आप बेताब क्यों होते हैं। क्या पद्मिनीही एक खूबसूरत है?

पहला। मेरा तो इरादा पक्का हो गया है कि चितौर पर हल्लाकर पद्मिनी छीन लूं। खुदाने चाहा तो देवगढ़ फ़तह करनेके बाद चितौरपर ज़रूर चढ़ाई करूंगा।

दूसरा। अच्छा देखा जायेगा। अब शाम हुई लश्कर की तरफ़ चलिये। यह सुन पहला घोड़ेपर सवार हो गया दूसरा मनुष्य भी अपने घोड़ेपर जा बैठा और हवाकी तरह दोनों एक ओर चले गये।

दूसरा परिच्छेद।

तय्यारी।

भीमसीकी आनन्दवाटिकामें बहुतसे मनुष्य इधर उधर फिर रहे हैं। उनकी आकृतिसे ज्ञात होता है कि वे सब किसी काममें लगे हैं। कपड़े लत्ते से वे नौकर ज्ञात होते थे। वाटिकाके देखनेसे यही बात प्रतीति होती थी कि आज यहां कुछ आनन्दोत्सव होनेवाला है वा किसी बड़भागीके चरण पधारनेवाले हैं।

वटवृक्षमें हिंडोला लटक रहा है। वाटिका भवन भी सुसज्जित है रविशें भी स्वच्छ और सुथरी दिखाई देती है।

महाराजके दास दासी भी काममें लवलीन हैं "यह वस्तु वहां धरो, वह वस्तु नहीं आयो, इसने फर्श ठीक नहीं लगाया-उसने आनेमें देर कर दी, इसी प्रकार की बातें हो रही थीं।

वाटिकामें एक बड़ा भारी तालाव था जिसके निकट ही स्त्रियां टहल रही थीं। पाठक जो आपकी अनुमति पाऊं तो उनके बारेमें कुछ लिखूं नहीं तो कलम धर दूं, पर मुझे विश्वास है कि आप लोग अवश्य मुझे लिखने की अनुमति देंगे इससे लिखे देता हूं।

एकका रंग गोरा, वयस कोई २३ वर्षके अनुमान थी। नयन बड़े बड़े और कटीले थे। मुंहपर मुस्कुराहट बनीही रहती थी। हंसकर मुंह फेर लेना तो गजबही ढाता था। अधारणतः यह स्त्री थी। जातिकी यह मालिन थी नाम चमेली था। किसी किसीको इसके चाल चलनमें सन्देह भी था। दूसरी स्त्री न ऐसी कुछ कालीही थी न गोरी, हाथ पांवकी छुटपुट थी। उरोजकी उपमा जो मनुष्यके सिरसे दें तो झूठ कहना न पड़ेगा। हस्तिनीके भी जो लक्षण पुस्तकोंमें लिखे हैं सब उसमें पाये जाते थे। जैसे हथेलियां दलदार, अंगुलियां नाटी नाटी, चाल मन्द न किसीकी हुआ। वयस सताइस वर्षकी होगी। जातकी तो कहारिन थी पर नाम अभी ज्ञात नहीं।

चितौरमें इसकी ससुराल थी कोई इसका नाम लेकर न पुकारता था सब महादेव बहू इसे कहते थे ।

महादेव इसके पतिका नाम था । चमेली भी इसे गाव के नाते भाभी कहा करती थी क्योंकि यह गावकी वेटी थी।

महादेवकी मां भीमसीके यहा नौकर थी ।

चमेली । भाभी । ऐसी उतावली कहा जाती हो नेक ठहर कर फूलतो तुडालो ।

महादेव । वाह अच्छी कही जैसे एक इनहीको हड-बड़ी है और किसीको काम करनाही नहीं है ।

चमेली । तुमतो एक ही काम करती हो और इसका यह समय नहीं है । रात रहती तो मै आपही न रोकती। मुझे पद्मिनीके लिये माला गूथना है क्या कहूं जबसे यह व्याही गयी है नित नयेही नये ढंगकी माला बनानी होती है । नाकों दम हो गया है ।

महादेव । तुम्हें तो मालाही बनानी हैं और मुझे आज पद्मिनीको नहवाना है । सासूजी बीमार हैं इससे उसके बदले आज मैं ही जाती हूं । तुम्हारी बात मान फूल तोड़ देती हूं।

दोनों फूल तोडने लगीं । आपस में हंसी भी होती जाती थी दोनों छटी हुई थीं फिर हँसी क्यों न हो ।

तीसरा परिच्छेद ।

भुँजरिया ।

बचाना आफ़ती तोरी नजर से
इलाही, यह बला आई किधर से ।

यह सिरनामा देख हमारे बहुतसे पाठक घबरायेंगे कि यह बला कैसी ? यह किसका नाम है ? महाशयो यह एक त्योहार है जो रजवाड़ों में होता था और अबतक उसी तरह भादोंवदी पडिवाको बड़े समारोहसे होता है। बहू बेटिया अपना अपना शृंगार करके अपनी अपनी भुंजरिया नदी या तालाब किनारे जहा जो हो जाकर सिराती हैं। एक दोने में मिट्टी सावनहीमें भरकर गुहूं बुनती है परिवा तक उसमें पेड़ जमने पाते हैं। इसीका नाम भुंजरिया है।

चितौरकी भुंजरिया भीमसाके वाटिकामें जो तालाब है उसमें प्रवाह की जाती थी। एक एक करके वहा स्त्रियों का जमघटा होने लगा, पहले आकर स्त्रिया अपनी भुंजरिया सिरा देतीं थी फिर कोई गाने कोई फूलने और कोई खेलनेमें मस्त होती थी।

पद्मिनी भी अपनी सखियोंके साथ उस वाटिकामें आयी। इसने भी पहले अपनी भुंजरिया प्रवाह कर दी। फिर आकर सब खियोंसे मिल गयी। वह बडेको मिला था तो उसे

पर अभिमान छू तक न गया था । इस टुक कहानीकी शृंखला तोड़ पद्मिनीका रूप रंग लिखलें तो आगे बढें।

महारानीका वयस १५ या सोलह वर्ष का होगा। रंग दूध और गुलावके मिलनेसे जैसा होता हैं ठीक वैसा ही था। नयन कान तक खिंच गये थे। भुजा लम्बी और कटि चोण थी। जांघें केले के थंभसी चिकनी और भरी थीं। उरोजकी उपमा हम क्या दें आप स्वयमही सोलह वर्षीय-वालाके उरोजोंकी उपमा खोज लें।

इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि इन दोनोंमें कुछ का-न थी। कद लम्बा और शरीर हर जगहसे सुडौल था। चेहरे में पतिव्रता सहनशीलता आदि अनेक गुण झलकते थे इनके वरावर सुन्दर स्त्री भारतवर्षमें उस समय कोई न थी।

अनुपम रूप होनेके कारण इनका पद्मिनी सार्थक नाम रक्खा गया था। उसपर आज सिंगरी पटरी है फिर शोभा-का पूछनाही क्या हैं। सोना और सुगन्ध दोनों है। जो इनके शृंगार वर्णन करानेकी इच्छा हो तो कहिये नहीं तो किसी दूसरे अवसर पर लिखेंगे।

पद्मिनी भी उन सियोंके साथ मिलकर हँसने गाने लगी। फिर झूले पर जा बैठीं दो सखिया वोवा देने लगीं। इस समय ये दामिनी सी दमक रही थीं। इसके वाद उठकर यह कमरेमें आयीं। दो सखिया जाने लगीं। कुछ रात गये सब अपने अपने घर चली आईं।

चौथा परिच्छेद।

गोविन्द।

एक पाच वर्षका बच्चा समुद्र किनारे बैठा रो रहा है। पूछने पर वह कुछ भी नहीं बता सका कि वह कौन है। उस गरीहके सरदारने दयाकर उसे अपने साथ ले लिया और बेटा न रहनेके कारण पुत्रवत् मानने लगा। एक स्त्री छोड उसके यहां और कोई न था। दास हब सा था। इस का वयस पचास वर्षका था। यह राठोर था। घर इसका चितौरमें था तीर्थ यात्राके लिये रामेश्वर गया था। वहीं यह लडका मिला। विनाद राणा लक्ष्मीका एक सरदार था। घर था उसने इसका नाम गोविन्द रक्खा। इसको धनुर्विद्यामें भी अभ्यास कराया गया। थोडेही दिनके पीछे यह बडा हुआ। कुछ पढना लिखना भी सीख गया था।

जिस समय हमारा उपन्यास प्रारम्भ होता है उस समय इस बालककी अवस्था पूरे बारह वर्षकी थी। इसके शरीरकी गठन सुडौल थी मुंहपर श्री विराजती थी बाहु लम्बे लम्बे, छाती ऊंची थी और ललाट चौड़ा था। चितौर में इसकी वीरताकी बडाई होती थी। इसके पश्चात कुल होनेसे उसको सन्देह था कि यह कौन है। क्योंकि नीच जाति में ऐसी वीरता कहां। क्षत्रियोंके छोड ऐसा उच्चमनाहता और किसमें हो सकता है।

पांचवां परिच्छेद।

मारही डाला।

जिन सवारोंने ललितपरको उन युवतियोंको आपस में पद्मिनोके रूपकी बातें करते सना था वे कौन थे? एक का नाम अलाउद्दीन था। वयस अठारह वर्षका था। इसका शरीर अच्छा और फुर्तीला था यह वर्त्तमान बादशाह फिरोज़ शाह खिलजीका भतीजा था। किसी राजाको पराजय करना तो इसके बांयें हाथका कर्तब था।

साहस और वीरता इसमें कूट कूट कर भरी थी। इसके राज्य शासन करनेसे देश भरमें उत्पात रुका रहा।

अनपढ़ होनेपर भी इसकी बुद्धि कुशाग्र थी। पुत्र न रहनेके कारण फ़िरोज़ शाह इसे पुत्रवत् मानते थे और यही उनका उत्तराधिकारी भी था, अलाउद्दीनमें ये सब गुण तो थे पर लोभी और निर्दयी पहले सिरे का था। विलासी सुखप्रिय और शराबी भी था और अपने शासनकालमें इन व्यासनोंके वस पूरे पूरे तौरसे हो गया।

इसीसे बहुतसे राज्य इसके हाथसे निकल स्वतन्त्र हो गये और यही इसके मरणका कारण हुआ। दूसरेका नाम नसारतखा था यह अलाउद्दीन के आधीन एक सेनानायक था। यह भी देखनेसे वीर प्रतीत होता था।

दिल्लीका युवराज अलाउद्दीन २००० सवार लेकर नर्मदा नदी पार हुआ और खान्देश पार हो रहा था कि इसने उन युवतियोंकी बातें सुन लीं।

इन लोगोंकी इच्छा देवगढपर अचानक आक्रमण करने की थी। इसीसे ये रास्तेका फेर देकर विजय प्राप्त करने चले आ रहे थे। छलही एकमात्र उन यवनोंका प्रधान बल था।

आज अलाउद्दीन खेमेंमें बैठा कुछ सोच रहा था। इसके ललाटदेशमें चिन्ताके चिन्ह दृष्टिगोचर होते थे इसे दो बातों की चिन्ता थी, एक तो देवगढ जय करनेकी, दूसरी पद्मिनी को, वेगम बनानेकी। सब बात सोचते सोचते अलाउद्दीनका मन व्याकुल हो गया। गानेवाली स्त्रियोंकी बुलाहट हुई। मृदुहाँसिनी प्रौढ़ा स्त्रिया खेमेंमें आ गयीं। भैरवीका समय था, इससे "निन्दिया उचट गयी राम" की धुन छिड़ी। इतनेमें जासूसोंने आ कर समाचार सुनाया कि आज रामदेव अपनी स्त्रीको साथले देवगढ़के बाहर देवी-दर्शनको आये हैं। बस इतना सुनना था कि अलाउद्दीनने गाना रोक दिया।

भला ऐसे अवसर पर गाना कौन सुने ? जीमें बड़ा प्रसन्न हुआ कि देवगढ़ जय हो जायेगा। नसारतखांको बुलाकर आक्रमणकी आज्ञा दे दी।

नसारतखाने भी आक्रमण करही तो दिया। महाराज

रामदेव जिन्हें इस आक्रमणको कुछ भी सुधि न थी, सन्धिकी इच्छा करने लगी। इतनेमें रामदेवका पुत्र सेना साथ ले समरभूमिमें आ गया इनके साथ कुल २००० नागरिक जन थे, जिन्हें यह एकत्र कर सका था,।

लड़ाई होने लगी। राजपूतोंने बडी बहादुरीके साथ युद्ध किया पर विजयलक्ष्मी यवनोंहीके हाथ रही। रामदेवने बादशाहको बहुतसा धन और इलिचपुर देकर सन्धि कर ली। इसके बाद मलिक काफूरने शाही आज्ञासे दक्षिण देशको चढ़ाईकर व्यतिव्यस्त कर दिया। देवगढ छोड़ सब देशअलाउद्दीनके मरते देर नहीं कि हिंदूओंके अधिकारमें आ गये। फिर उनके आनन्दकी सीमाका कहनाही क्या है। पराधीनताकी बेड़ी तोड स्वतन्त्र हो गये थे।

देवगढ़ विजय हो जानेसे अब अलाउद्दीन की केवल एकही इच्छा प्रबल रही। वह यह कि पद्मिनीको छीन ले अलाउद्दीन सोचता था कि एक बेर तो चित्तौर आक्रमण कर ऐसी मुंहकी खाई है कि फ़िरोज़शाह पर फिर आक्रमणकी आज्ञा दें। और बिना युद्धके पद्मिनीका मिलना भी असम्भवही है। इससे यहांसे चल पहले चचाको जहन्नुम भेजदें तो ठीक है। अलाउद्दीन दिल्ली पहुचा। यहां बूढ़े फ़िरोज़ शाह आनन्दके मारे उछल रहे थे। अलाउद्दीन को बुला उन्होंने भेंटकी। यह तो अपनी धुनमें लगा ही

था। बातचीत करते करते तलवारका एक ऐसा खर्च खानेमें कि उनका प्राण पखेरू बातही बातमें उड गया। च था।

हा लोभ। तू भी बडा दुष्ट है तू बडेसे बडा पाप मनुष्यों को अपने फेरमें लाकरा डालता है। भाई भतीजा दामाद सबको बुराई यह लोभही करता है। मनुष्य लोभहीके वश हो बुरेसे बुरा काम कर बैठता है जिससे वह मुह दिखाने योग्य नहीं रहता। अलाउद्दीन जिसको फ़िरोज शाहने पाला था, अस्त्रशिक्षा कराई थी, जिसे पुत्रके बराबर जानते थे और जो उनके मरने पीछे सिंहासन का अधिकारी था ऐसा अधीन हो गया कि उनके मरने तक नहीं ठहर सका और अन्तमें मारही डाला।

छठवां परिच्छेद।

तेजसिंह।

चितौरके सिंहासन पर आजकल राणा लक्ष्मी विराजमान हैं। ये अभी अल्पवयस्क है। इससे इनके चचा भीमसीजी राजकार्य देखने भालते है। प्रजा भीमसी से सन्तुष्ट थी। इनका विवाह हमीर शाख चौहान लंकानिवासीकी कन्या पद्मिनीसे हुआ था। प्रेमसे पद्मिनीको सब रानी कहा करते थे।

चितौरमें बहुतसे सरदार जैसे चन्दावत, राठौर जया-

चान्दनीका कहनाही क्या है मानो जगत्को मोहित करनेका इसने बीड़ा उठा लिया है ।

क्वारका महीना है । रातके दस बजे हैं । चान्दनी छिटक रही है । ऐसे समय हम आपलोगोंको शाहनसाह दिल्लीके राजभवनके एक कमरेमे ले चलते हैं । कमरेमें मखमली गद्दा बिछा हुआ है । द्वारपर सुन्दर पर्दे पड़े हुए हैं । कमरेमें बहुतसी तस्वीरें टगीं हुई थीं । जिन्हे देख नवीन नायिकाए भी कामशर से पीड़ित हो जाती थीं । साधु सन्यासी यदि देख पाते तो भगवा फेंक लगोटी पहन गृहस्थ हो जाते नपुंसक भी मुंहसे लार टपकाने लगते थे । दीवारकी दो तर दर्पणफ लगा हुआ था । कमरेमें एक चौकी पर वेशकीमत गद्दा बिछा हुआ था । उसीपर अलाउद्दीन मसनदके सहारे बैठा था ।

बगलमें एक कामिनी बैठी थी । पासके टेबुलपर शराबकी बोतलें प्याले, पानदान, इत्रदान और कई प्रकारके शर्बत धरे थे कामिनीका रंग गोरा, और बाल भौरासे काले थे । दांतोंकी पाती सघन थी जो बिजलीसी चमकती थी । पतली कमर और सुराहीदार गर्दन थी । सुगन्धित ऐसी थी मानो अभी इत्रकी नदीमें गोता मार आई है । नाम इसका जुहरा था । यह अलाउद्दीनकी प्यारी हरम थी इस समय यह काली महीन रेशमी साड़ी पहने हुए थी जिसकी कोर

में जरका काम और बीच बीचमें सुनहले बूटे थे। साडी के भीतरसे जौहराके शरीरकी शोभा फूट रही थी और चोलीसे मदन महीपतिके उलटे नगारे अपनी शोभा दिखा रहे थे। जौहरा अलाउद्दीनकी प्यालेपर प्याला शराबका दिये जाती थी। शराब पीते पीते शाहकी आँखें लाल हो चलीं। अलाउद्दीन जौहरासे छेड छाड करने लगा। यह भी अपनी सहज हँसीसे शरच्चन्द्रकी चादनीको बैठी मन्द कररही थी। फिर शाह हाथ पकड इसे दूसरे कमरेमें ले गये जहा जाने की हमारी ताब नहीं है।

आठवां परिच्छेद।

सन्यासी।

रामेश्वरके निकट समुद्र किनारे एक मनुष्य बैठा रो रहा है। कपडे इसके पानीसे भीगे हुए हैं। समुद्रकी हलकोरोंकी तरह उसका हृदय भी उमड रहा था। हिचकी बन्ध रही थी। कोई एक दिन भूखे रहनेसे उसके चेहरेका रग बदल गया था। पेट पीठमें सटगया है। आंखे अन्दर धस गई है। यह कह रहा है कि "हाय मैं बडा पापी हूं। उस जन्ममें अनगिनती पाप किये हैं। जिससे यह दुःख देखना पडा। इस जन्ममें तो न किसीका माल मारा, न किसी निरपराधीको सताया न किसीको देख जला न

कभी अपने धर्मसे विमुख हुआ। फिर यह किस पापका दंड मुझे मिला। ईश्वर बड़ा न्यायी है। अवश्य मुझे मेरे पूर्व्वजन्मके कार्य्यका फल मिला है। हाय। मेरा पुत्र कहां गया? अवश्य वह जहाज़के टूट जानेसे जलमें डूब गया। मेरी मृत्यु कहां चली गई थी। मैं क्यों नहीं मर गया? हृदय विदीर्ण हो रहा है।

बकते बकते वह मनुष्य मूर्च्छित हो गया। जब उसे सुधि हुई तो अपनेको एक सन्यासीकी कुटीमें पाया। सन्यासी इसे बेहोश पाकर अपनी कुटीमें ले गया था। दवा करनेसे इसे सुधि हुई इसने सन्यासीको अपनी रामकहानी कह सुनाई। थोड़े दिन वहां रहकर इसने भी मूड़े मूड़ा लिया और पूरा फ़कीर हो गया। भाइयो। यह पूरा सन्यासी हो गया। संसारकी माया मोह सब छोड़ ईश्वर भजनमें रात दिन रहने लगा। यह आज कलकी तरहका फ़कीर नहीं था जो केवल फैशनके लिये फकीर बने हैं। आज कलके फकीरोंको दया धर्म छू नहीं गया, समझते हैं अपनेको व्यासादि योगीश्वरोंसे भी बढ़कर। जायेंगे रण्डीके यहां और बनेंगे फ़कीर उसे कहते हैं जैसा इस दोहेमें लिखा है—

फ़ाक़ा फ़रक़ फ़िराक़ दिल, जोमें राखे पीर।
दया धर्म्मकी कफ़नी बाधें, ताको नाम फ़क़ीर॥

यह भी ईश्वर भजन करता मांगता खाता देश देश

फिरने लगा । जहां एकान्त स्थान मिला वहीं बैठ भगवान् का नाम लेता था । कभी कभी भोजनके लिये इसे नगरमें जाना पड़ता था ।

नवां परिच्छेद ।

पत्री ।

चितौरकी राजसभामें एक दरबार लगा हुआ है । जितने क्षत्री हैं सब अपने अपने कुलकी प्रथानुसार बैठाये गये हैं । बालक महाराज लक्ष्मीसिंहासनपर बैठे हैं । भीमसी, मंत्रीगण अपने अपने आसनपर आसीन हैं । सबही मौन साधे बैठे हैं । देखनेसे यही प्रतीत होता है कि यह सब राणा की आज्ञासे जमा हुए हैं । भीमसीके इशारोंसे मन्त्रीने पत्र पढ़ना आरम्भ किया जो अलाउद्दीनने दिल्लीसे राजदूतके हाथ भेजा था । दूतभी सभामें उपस्थित था । पत्र इस प्रकार था ।

भीमसी, तुम्हारी बीवी पद्मिनीके हुस्न वो जमालकी तारीफ़ सुन जहांपनाह का दिल फ़रेफ़ता हो रहा है । तुम्हें भी लाजिम है कि उस हूरे मजकूरको हरममें दाखिल कर दो, वरना शाही फ़ौजें बहुत जल्द चितौरपर हमला कर किला मटियामेट कर देंगी और पद्मिनी तुमसे बाजोर छीन लेंगी ।

नशारत खा ।

पत्र पढनेहो सब सरदारोंका चेहरा मारे क्रोधके लाल होगया। बाहें फड़कने लगीं, किसोने कोपमें असि निकालनेके लिये हाथ बढ़ाया कोई बोल उठा पत्रवाहकका मस्तक छेदन किया जाये किसो ने कहा इसको दाढो नोच ली जाये। भोमसों ने सबको यह कह शान्त किया कि दूतका अपराध नहीं। इसे स्वामोने जिस कार्यमें लगाया है वह इसने किया। नराधम अलाउद्दीन जो अपने पितातुल्य चचाके लहूमे अपने हाथको रंगे हुए है, यहा नहीं है थोडा और ठहरिये आपलोग अपना क्रोध समरभूमिमें निकाल लेना। और दूतको सम्बोधन कर कहने लगे कि हम लोग क्षत्री हैं बकवाद करना नहीं जानतें। इस बातका उत्तर रणक्षेत्रमें असिसे दे देंगे। "एक बार कालहु सन लडहीं" हमलोग एक बार यमराजसे भो लड सकते हैं। अलाउद्दीनसे कह देना कि हमलोगोंने एक बेर दयाकर उसे छोड दिया है। क्या उस पहले पराजयको वह भूल गया। जो अबकी युद्धमें आया तो जोता न जा सकेगा। दूत दिल्ली लौट गया और यहा युद्धकी तय्यारी होने लगी।

"ये वक्ले तो मेरी जान लेकर जायेंगे
ये जोक़ होक़ तो ईमान लेकर जायेंगे।"
"गुजरी न कभी चैनसे हमरी कोई घड़ी
जो इब्तिदा जमा था नहीं इन्तिहामें है।"

दशवां परिच्छेद।

लखिया।

लखिया देखनेमें भली सी सी दिखाई देती थी। यह अपना चेहरा ऐसा बनाये रखती थी कि क्या मजाल जो जरासा भी कोई ताड ले कि यह बनावटी है। भोली और छोटी स्त्रियां इसकी सूरत देख इसकी बातोंका विश्वास करने लगती थीं। उसकी हँसीमें कुछ विलक्षणता थी। उसकी अवस्था ५२ वर्षकी होगी। देखनेवाले यही कहेंगे कि इस सोने जवानीमें गजब ढाया होगा और अपने समयकी एकही सुन्दर स्त्री होगी। पहले कुटनपनेसे एक धनिकने इसे बिगाडा था अब बुड्ढी हो जानेसे आपही कुटनीका काम करती थी। इसके द्वारा अच्छे अच्छे घरकी बहुतेरी स्त्रियां बिगड चुकी थीं। अलाउद्दीन इसे मानता था क्योंकि उसके लिये यह नवीन स्त्री फँसा कर लाया करती थी। इसका एक बड़ा भारी चौमंजिला मकान था जिसमें कई एक दरवाजे थे। द्वार सड़क और गली दोनों ओर था।

आठ बजे रातको अलाउद्दीन चुप चाप लखियाके यहां पहुंचा। यह इसे देख उठ खड़ी हुई और झुककर सलाम किया। अलाउद्दीन फर्श पर बैठ गया और लखियाको आ बैठ जाने कहा। अलाउद्दीनने कहा—क्यों कुछ काम चला।

लखिया। जहांपनाह मैंने युसूफ़की लौंड़ीको पटोल लिया है आज रातको जब सबसे जावेंगी तब उसे ले भागूंगी।

अलाउद्दीन। बहुत ठीक मैं सब सामान ठीक कर दूंगा। महलके पूर्व्व जो चोर दरवाज़ा है उसीसे इसे लाना। और यह कुञ्जी उसी दरवाज़े की है। यह कह कुञ्जी उसे दे दी और घर चला आया।

शाहके चले जाने पर और दो तीन मनुष्य आये और लखियासे बात कर एक कुञ्जी ले वापस लौट गये। एक एक द्वारकी कुञ्जी ले गये। रातको ये अपनी अपनी प्रियतमाको वहां बुलायेंगे और सुखसे रात गवावेंगे। यहा चुपचाप आ अच्छे अच्छे घरकी स्त्रियां अपने अपने यारके साथ मुंह साका करती थीं।

११ बजे रातको हुस्ना युसूफ़की बेटी जिसके काले काले घूंघरवाले बाल बिखरे थे सोरही हैं। दो मनुष्य धीरे धीरे उसके सोनेके घरमें घुस गये।

जबदोसे उसके मुहमें कपड़ा दे दिया और उठाकर ले भागे। रास्तेमें लखिया मिली और ये तीनों शाही महलकी ओर चले। लखियाने चोर द्वार खोला। तीनों भीतर घुसे। इसे कमरेमें रख दो तो वापस चले आये, केवल लखिया वहां रह गई। पाठक, ठहरिये नेक मकान और हुस्नाका वर्णन करलें तो आगे बढ़ें।

यह गृह अत्यन्त सुन्दर बना था। इसमें बहुमूल्य वस्तुयें धरीं थीं। सजावटमें किसी प्रकारकी कमी न थी। होतीही कैसे। दिल्लीपतिका विलासभवन फिर कमी कैसी। इस मकानमें एक कमरा ऐसा था कि जिसे देख रोए खड़े हो जाते थे, यहां कोई चिल्लाये तो क्या मजाल कि शब्द बाहर जा सके। यहीं बिचारी हुस्नाको वे दुष्ट छोड़ चले गये थे।

हुस्ना वर्ष अठारह एककी होगी। नाटी और हाथ पावकी कुछ मोटी थी पर मुटाई कुछ ऐसी न थी कि भद्दी कही जाये। चेहरा नमकीन था। और आंखें ठीक आम-की फांकों सी थीं।

जाड़ेके दिन थे इससे शालकी साड़ी पहने थी। कमी सलूका बदनपर चुस्त सटा हुआ अच्छा खुलता था। थे तो दो ही चार गहने पर वे उसकी शोभाको दूना कर रहे थे।

इस घर का सामान देख हुस्ना हिचकी और लखियासे कुछ कहा ही चाहती थी कि अलाउद्दीन आगे बढ़ा। हुस्ना पीछे हटी। यह बेताब हो गया और बोला "जानमन् यह थोड़ा फरेब जो तुम्हें यहां लानेमें किया गया है उसे माफ करना। हुस्ना (जो शाहको पहचानती थी क्योंकि इसने अपने झरोखेसे शाहको जब वे हवा खाने निकले थे देख लिया था) आपने मुझे यहां क्यों उठवा मगाया है?

अलाउद्दीन। प्यारी तुम्हें मैंने झरोखेसे झांकते देख

लिया था। इश्कका भूत सर पर सवार हो गया। जरासी बात अगर मान लो तो मैं तुम्हें निहाल करदूं। यह देखो मोतियोंका सतलडा तुम्हारेही लिये लाया हूं। यह लो। सुवह होनेके पहले तुम घर पहुंचा दी जाओगी। किसीको मालूम तक न होगा कि हुस्ना रातको शाहके साथ रही।

हुस्ना। हुजूर। हमलोग आपकी बेटीके बराबर हैं आपको यह लाज़िम नहीं। अगर कोई सुन लेगा तो आपकी बड़ी वदनामी होगी।

अलाउद्दीन। (नशेकी झोंकमें) सुनही कर कोई क्या करेगा तुम्हें मैं हरममें दाखिल कर लूंगा। और तुम्हारे बाप को रुपये दे राजी कर लूगा। यह कह हुस्नाका हाथ पकड अपनी ओर खींचा।

हुस्ना। (हाथ छुडाकर) दूरहो नालायक। चचाका क़ातिल।

वस इतना सुनतेही इसे क्रोध हो आया। हुस्नाकी ओर झपटाही था कि सामनेसे जोहरा आती दिखाई पडी। अलाउद्दीन ठहर गया मुंहपर कुछ भयके चिन्ह दिखाई देने लगे। हुस्ना दौडकर इसके पाओंपर गिर पड़ी।

ज़ोहरा। क्यों न हो। वाह अच्छा काम लिया है। दूसरोंकी इज्जत विगाड़ना भल मनसाई है। खबरदार। जो कहीं फिर ऐसा काम किया है। यह कह हुस्नाको ले एक तरफ चली गई। लखिया जो कि छिपी छिपी सब देख रही थी भाग गयी।

जोहराको देख यह डरा क्यों ? क्या प्रेमसे उसने शाह-को बांध रक्खा था ? जिसको ढीला होते देख उसने आके इसमें बाधा दी । नहीं महाशय अलाउद्दीनका प्रेम किसी पर न था। वह अपने स्वार्थका था पर जोहराका लोहा इसपर कुछ जम गया था । सो से दबनेवाले बहुतसे अबभी हैं जो जोरूही को मा मासी समझते हैं । उनके लिये स्त्री की आज्ञाही "बाबावाक्य प्रमाणम्' है ।

पाठक ! प्रेम सब लोग करते हैं । सब कहते हैं कि प्रेम दो प्रकारका है । एकका स्वार्थपर । जिसका प्रणय प्रेमपात्र के निकट प्रेमका प्रतिदान पाने के बदले लाखों निठुरता ओंके उपहार मिलने पर भी बना रहे उसीका प्रेम अकृ-त्रिम है। और जिस व्यक्तिका प्रेम आत्मसुखके लिये हो वह स्वार्थपर प्रेम कहलाता है, पर मेरे ज्ञान तो प्रेम निरी स्वार्थपरता है । तुलसीदासजीने ठीक कहा है "सुर नर मुनि सबकी यह रीती । स्वारथ लागि करैं सब प्रीती' । संसारमें जितने मनुष्य हैं सबका प्रेम स्वार्थपर है जैसे हम पुत्रको प्यार करते हैं तो यह समझकर कि यह हमें वृद्धावस्थामें सुख देगा। किसीकी सुन्दरता देख हृदयमें प्रेम हो जाता है तो हमारी आंखोंको सुख होता है । वह जहां अपना सुख हुआ स्वार्थ आ गया । जो हम नियम प्राणयाम करते हैं तो उसमें भी लाभ छुपा है । क्योंकि मुक्तिका लालच

मनमें भरी है। चाहे हमारे पाठकगण कुछ कहें हमतो यही कहेंगे कि प्रेम स्वार्थका दूसरा नाम है।

खैर हुसाको अपने महलमें ले जाकर ओहराने इस बात की चर्चा कहीं नहीं करनेकी सौगंध खिलवाकर उसे उसके मकान पर भिजवा दिया। यह बात किसीको मालूम न हुई।

ग्यारहवां परिच्छेद ।

कूच ।

"वही अच्छे वही दाना है तुम्हारे नज़दीक,
मश्वरे तुमको करे कामके देनेवाले।"

अगहनके लगते ही अलाउद्दीनने सेनाके कूचका डंका बजवा दिया। तेगा, तलवार, कटार, भाला तीर कमान छकड़ोपर लाद दिये गये। चावल आटा शराब खसी सब कुछ साथ ले लिया गया, और पैदल सेनाने कूच किया। अलाउद्दीन एक बड़े दिग्गजपर, जिसके ऊपर गङ्गायमुनी हौदा कसा था सवार था, ख़वास चमर लिये बगलमें था। दूसरा दास पात्र लिये पीछे बैठा था। मारे धूलके सूर्य्य छिप गये थे। इसके साथ सब मिलाकर एक लाख सेना थी।

यवनोंने चितौरसे दस कोस दूर एक नदीके किनारे छावनी डाली। बीचमें एक लाल रङ्गका ख़ेमा था। जिसके

ऊपर यवनोंकी पताका फहरा रही थी। इसमें अलाउद्दीन रहता था। इसके सामने एक बड़ा दरबारी मंडप तना था। शाहके खेमेके चारों ओर सब सेनानायकोंका वस्त्रावास बना था। इसके चारों तरफ सैनिकोंके डेरे पड़े थे। कहीं रसद रक्खी थी। यह गोलाकार छावनी मानो खासी नगरी बस गयी थी।

अलाउद्दीन अपने खेमेमें खड़ा खड़ा कुछ सोच रहा था कि चोबदारने इतला दी कि एक हिन्दू हाजिर होनेको आज्ञा चाहता है। शाहने आज्ञा दी और हमारे पूर्व परिचित तेजसिंह चोबदारके साथ आ धमके। तेजसिंहने झुककर सलाम किया और शाहकी आज्ञासे फर्शपर बैठ गया।

अलाउद्दिन। "तुम्हारा आना यहां किस लिये हुआ?"

तेजसिंह। "आपकी भलाई करने आया हूं।"

अलाउद्दीन। वाह, क्या खूब, हिन्दू और मुसल्मानको फायदा पहुंचावे। यह कैसे यकीन हो। कहो भी तो आप क्या भलाई करोगे?

तेजसिंह। हुजूर, जानते हैं कि चित्तोरका जय करना आपके लिये असम्भव है। जबतक चित्तोरमें एक मनुष्य भी बचेगा आपकी मनोकामना कभी सिद्ध होनेकी नहीं।

अलाउद्दीन। यह तो सब कोई जानता है कि चितोरवाले बड़े लड़ाके हैं। पर समझलो बहादुर अफ़गानभी उनसे कुछ कम नहीं है।

तेजसिंह। यह तो मुझे भी ज्ञान है, पर बिना मेरी सहायताके आप कभी लडाई जीत नहीं सकते। मैं वहाके कुल पहाडी रास्तोंसे आपलोगोंको ज्ञात करा दूंगा। पर अब यह कहें कि उसके बदले मुझे क्या देंगे?

अलाउद्दीन। आपका नाम क्या है? और आप अपने भाई बन्धोंके खिलाफ़ क्यों होते है?

तेज़सिंह। मेरा नाम तेजसिंह है। मेरा स्वभाव कुत्ते-का सा है कुत्ता अपने भाईयोंका घातक होता है। मेरा स्वभाव भी इसी प्रकारका है। मै भी अपने जातवालोंकी उन्नति नहीं देखा चाहता। उनकी अवनति में मुझे आनन्द मिलता है। स्वाभाविकका नाश नहीं। दूसरे भीमसी ने मुझ निर्दोषीको देश निकाला दिया है। रास्तेमें कन्या और स्त्री दोनों मर गईं। उनहीका बदला भीमसीके लहूसे लेना है।

अलाउद्दीन चतुरतो था ही, ताड गया कि यह सच कहता है और बोला "खैर मैं चितौरके तख़्तपर तुम्हें बिठा दूंगा। तुम मुझे खिराज़ दिया करना। मै तो सिर्फ़ पद्मिनी के लिये आया हूं। इसके बाद फिर दोनोंमें बातें होती रहीं। बाद तेजसिंह उठकर अपने डेरेमें चला गया, जो अलाउद्दीनने उसके रहनेको दिया था।

बारहवां परिच्छेद।

तारा।

राजभवनसे सटा हुआ एक नजरबाग था। एक त्रयोदश वर्षीया बाला उसमें टहल रही है। देखनेसे यही प्रतीत होता है कि यह कोई गगनविहारिणी देवकन्या है। इसके उज्ज्वल अङ्गमे कोई दोष दिखाई नहीं देता। मुखमंडल कोमल तथा मनोहर है, ओंठ लाल और पतले हैं। किन्तु मुखपर चिन्ताके चिन्ह लक्षित होते हैं। क्या कामदेवने उसपर अपना अधिकार जमा लिया है? हे रे मनोज! देख टुक संभालके बाण चला, यह योगिराज, देवेश शिवजी नहीं हैं। यह कोमलाङ्गी, मृदुभाषिणी बाला है।

पाठक, हम आपको अधिक उलझनमे नहीं डाल कह देना उचित समझते हैं कि इस बालाका नाम तारा था। यह राणा लक्ष्मी की बडी बहन थी। गोविन्दपर यह मरती थी। गोविन्दका दीर्घ अवयव, लम्बी बाहु, चौडी छाती, ऊंचा कपाल देख किसके जीमें प्रेम नहीं होगा? तिसपर भी इसी चौदह वर्षके वयसमें ऐसी वीरता दिखा रहा है। ताराको इस बातका सोच था कि गोविन्द वीर है सही पर अज्ञातकुल होनेसे भाई चचा कोई उससे मेरा विवाह करना स्वीकार न करेंगे। ताराको विश्वास था कि गोविन्द

किसी अच्छे क्षत्रीके वंशका भूषण है, सिवाय क्षत्रीके ऐसी सहनशीलता, धीरता, वीरता और साहस किसमें हो सकता है? गोविन्द भी ताराको हृदयसे प्यार करता था। दोनोंका प्रभाव दोनोंपर पड़ा हुआ था। यह कभी, जूही, कभी चमेली तोड़ तो रही थी पर मनमें चैन न था। थोड़ी देर बाद एक दासी ने आकर कहा "महारानी बुलाती हैं" यह सुन तारा रनिवासमें चली गई।

तेरहवां परिच्छेद।

युद्ध।

चित्तौरवाले भी लड़ाईके सामान से लैस थे। यवनोंके आनेका समाचार इन्हें मिल चुका था, भीमसीने सब सर्दारों और सेनाओंको बुलवाया। सब कुलोंके मुखिये अपनी अपनी सेना साथले आ पहुँचे। भीमसीने राणा लक्ष्मी और सब सेनायों को साथ ले देवीकी पूजा करनेको प्रस्थान किया। वहा जाकर राणा और भीमसीने तलवार देवीके सामने रख प्रणाम किया। पुजारीने लाल चन्दन उसमें लगाकर आशीर्वाद दिया। फिर सब सेनाने यथासमय जा जाकर प्रणाम किया।

राणा लक्ष्मी भी संग्राममें जानेके लिये तय्यार हो गये। क्यों न हो, क्षत्रीरक्त शरीरमें भरा था, फिर कादरता कैसी!

भीमसीने उन्हें यह कह रोक दिया कि अभी आपके सेवक-ही बहुत हैं। असल बात यह थी कि राणाकी अवस्था इस समय कुल दस वर्षकी थी। अस्तु। भीमसीने सेना तीन भागोंमें विभक्त कर दी। दाहिने पार्श्वका भार, अपने श्वशुर और पद्मिनीके चचा गोरा पर सौंपा। गोराके अवयव दृढ़ और ललाट चौड़ा था। वृद्ध होनेपर भी अभी टाठे थे। मध्य भाग अपने अधीन रक्खा, भीमसीका भी शरीर बलिष्ठ ऊंचा और कमलसे नेत्र थे। क्षत्रियतेजसे मुह दमकता था। इन-की अवस्था ३० या ३२ वर्षकी होगी। वाम पार्श्वका भार विनोदसिंह तथा उनके पाले हुए गोविन्दको दिया। सब सेना दो दलमें बटी है, एक सवार दूसरी पैदल। सवार सेनाके पास तलवार भाला, और धनुष वाण है। सरदारों के कवच सूर्य्यके प्रकाशमें झका झक चमक रहे हैं।

यवन सेना भी तीन दलमें बटी थी। युद्ध होने लगा। दोनों ओरकी सेनाएं गङ्गा यमुनाकी भांति मिल गईं। ऊप-रसे मार होने लगी। अलाउद्दीन आप युद्धमें खड़ा होकर लड़ रहा था। भीमसी मारते काटते आगे बढ़े, यवन पीछे हटे। वाम पार्श्व यवनोंका विचलित हो गया। गोविन्द अलाउद्दीनके सन्मुख उपस्थित हुआ। घोड़ेको बढ़ाया। सा-मनेके यवन मारे गये। सब सेना "जय राणाकी जय" क-हती आगे बढ़ी। इतनेमें नसारतखाने पीछेसे आकर घेर

लिया। क्षत्रीगण संकटमें पड़ गये पर असीम साहस रह-नेके कारण पीछे न हटे। यवनोंका छल देख भीमसीको क्रोध हो आया। घोड़ेको एक ऐसी ऐंड़ मारी कि उसने अलाउद्दीनके हाथीपर टाप रख दिये। भीमसीने एक हाथ ऐसा मारा कि हाथी मर गया।

अलाउद्दीन और फीलवानने कूदकर अपनी अपनी जानें बचाईं। मलिक काफ़ूर, जो उसी स्थानमें खड़ा था, शाहको घोड़े पर बिठा दूर ले भागा। भीमसी घेर लिये गये। चारों तरफसे उनपर मार होने लगी। लहूसे लतपत भीमसी और घोड़ा दोनों लालोलाल हो गये। बहुतोंको इन्होंने मारा, पर अकेले कहांतक लड़ते, कई स्थानमें घायल हो गये। गोविन्दसे यह न देखा गया। सब सेनाको लिये आगे बढ़ा और जहां भीमसी थे वहां पहुंचा तो देखता क्या है कि भीमसी घोड़ेसे गिरा चाहते हैं। झट आगे बढ़ा और भीमसीको अपने साथ घोड़े पर बिठा तीरकी नाईं निकल गया। इन्हें अपनी सेनामें रख दिया। सूर्य्य भी छिप गये। लड़ाई बन्द हुई। घायलोंको दवा लगाई गई। रातको सबने विश्राम किया। भोर होनेके पहलेही दोनों सेनाएं तय्यार हो गईं। भीमसी अपनी सेनाको सम्बोधन कर कहने लगे—'भाइयो हे निज देश निज मान निज कुलकामिनी और धर्मके रक्षक वीरो! कलकी लड़ाईमें बहुतसे क्षत्री-

वीर मारे तो गये परन्तु यवन इससे भी अधिक नाश हुए हैं। पर इससे क्या यद्यपि वे हमलोगोंसे संख्यामें कहीं अधिक हैं। क्या मैं आपलोगोंको उत्साहित कर सकूंगा, कदापि नहीं। आपका धर्म्मंही आपको उत्साहित कर देगा। प्यारे मित्रो नेक ध्यान देकर सोचो तो कि जो यवन चितौर दुर्गमें घुस आये तो हमलोगोंको क्या क्या दुर्दशा होगी।

वे हमारी देवमूर्तियोंको चूर्णकर उस स्थानमें गो-वध करेंगे। मन्दिर मस्जिद हो जायगा। भाईयो जहा एक वेर मुसल्मान नगरमें पैठे बस हमें लूटकर कगाल बनादेंगे। ये पामर हमारी कुलकामिनीयोंका सतीत्व नाश करेंगे, और हम जो नालिश भी करेंगे भी वेदाग छूट जायेंगे। ये लुटेरे चाहते हैं कि वे हमें पढ़ालिखा हमारी मूढताका नाश करेंगे। ठीक है, जो स्वयम् स्वार्थके दास, छल कपटसे भरे, विषयवासनाके जालमें फँसे है, वे क्या हमें ज्ञान सिखायेंगे?

वे कहते हैं कि हम तुम्हें दूसरे राजाके आक्रमणसे बचायेंगे, तुम्हें किसीसे लड़ाई भिड़ाई नहीं करनी पड़ेगी। मित्रो। सावधान। उनके भुलावेमें कभी न आना। वे उमें कापुरुष बनाया चाहते हैं। वे हमें असाध्य काफिर कहकर उपहास करते हैं। मैं आपलोगोंसे वारवार कहता हूं जहा एकवेर इन शत्रुओंने किसी प्रकार हमें दासताकी सिकरोंमें बाध पाया फिर क्या। वे तो सजेमें बैठे बैठे सुख करेंगे।

यहांकी उपजसे उनके परिवार पेट पालेंगे, भाईयो देखो, जहां ये लुटेरे प्रबल हुए हमलोग लाख चिल्लावेंगे, पर कोई कुछ न सुनेगा। वे ऐसे ऐसे आईन कानून बनायेंगे जिसका कहनाही क्या है।

महाशयो। उठो, अपने धर्म्म, अपने देशके लिये तय्यार होकर लड़ो। सच है कि कल की लड़ाईमें किसी पक्षको न जीत हुई न हार, पर इससे हमारी बदनामी तो हुई। सा हस करनेसे हम सब कुछ कर सकते है।

असंभव कुछ नहीं है। हां, एक बातमें वे हमसे अच्छे हैं, वह क्या? वह यह कि वे अस्त्र शिक्षा हमसे अच्छी पाये हुए है। पर क्या हमलोगोंका साहस जो उनसे कही बढा हुआ है सहायता न देगा। हमें आशा है कि साहस सहा यता अवश्य देगा। फिर हमलोगोने भी तो युद्ध करना सीखा है। तब क्या कम है। एक बार "माताकी जय" "राणाकी जय" कह यवनोंको कुचल डालो और देशकी इन पामरोंसे मुक्त करदो।" यह बचन सुन सारी सेना उम गमें आ गई। और होतेही लड़ाई होने लगी। यवन बहुत मारे गये। अलाउद्दीन स्वयम् एकही चतुर था, देखा कि यों काम न चलेगा। बस भीमसी आदिको इधर लड़ाईमें फँसा रक्खा और नसारत खांको उधर तेजसिंहके साथ दुर्ग आक्रमण करनेको भेज दिया। जो सेना दुर्गरक्षा के लिये

वहां रह गई थी उसने फाटक बन्दकर प्राचीर परसे लड़ना आरम्भ किया ।

युद्ध होही रहा था कि एक सैनिकने आकर भीमसीको दुर्ग घिर जानेका हाल कहा । भीमसीने आधी सेना रख आधी दुर्ग द्वारकी ओर भेज दी और आप भी लड़ते हुये पीछे हट चले । नसारतखां तो भागा पर इतनेमें अलाउद्दीन कुल सेना साथ ले आ पहुँचा । लड़ाई घमासान हुई पर क्षत्री गण ऐसे थक गये थे कि युद्ध नहीं कर सके । दुर्गमें घुस गये और रातभर आराम करना चाहा । अलाउद्दीनने दुर्ग घेर लिया ।

यवन भी बहुत मारे गये । सेना घबरा गई थी । अला-उद्दीनने देखा कि रङ्ग बेढब है इससे सन्धिकी इच्छाकर पत्र लिखा । पत्रका तात्पर्य्य यह था कि हम सन्धि करना चा-हते हैं । हम इस लड़ाईके लिये क्षमा मांगते हैं । सब सेना हटाये लेते हैं । आप केवल पद्मिनीको एक नजर दिखादें । आजसे हम और आप भाई हो जायें ।

भीमसीने भी विचारा कि केवल दिखा देने में क्या हानि है । उत्तर दिया कि हम पद्मिनीको दर्पणके सहारे दिखा देंगे । सेना हटा ली गई । दिन नियत हो गया ।

चौदहवां परिच्छेद।

दर्शन।

"शरारतसे ख़ाली नहीं इनकी बातें,
जहां सादगी है वहां बाँकपन भी!

नियत तिथिको अलाउद्दीन केवल दो चार सेवक साथ ले चित्तौर दुर्ग में आया। आज दिल्लीपति आये हैं इससे नगरमें सजावट हुई है। राजभवन, हाट बाट सब सजाया गया था। क्षत्री तो धोखा देना जानते ही नहीं थे इससे अलाउद्दीनको अपने मारे जाने या बन्दी होनेका भय न था। जब यह भवनके द्वारतक पहुंचा तो भीमसी आगे बढ़ इसे लिवा लाये। राजोपयोग्य सम्मान इसका होने लगा। राजा जिस प्रकार राजासे मिलता है इसी प्रकार राणा लक्ष्मीसे इसकी भेंट कराई गई। अलाउद्दीन तो धूर्त था ही ऊपरी बातोंसे सबको ऐसा पटोल लिया कि सब इसका विश्वास करने लगे। चित्तौर आक्रमण करनेकी माफ़ी मांगी। कईएक दिन तक शाहका सम्मान होता रहा।

एक दालानमें अलाउद्दीन बिठाया गया। भीमसीकी आज्ञासे पद्मिनी शृंगारकर उसी स्थानमें आई। दो दर्पणोंके सहारे अलाउद्दीनने उस जगतमोहिनी, अद्वितीय सुन्दरी

पद्मिनीको देखा—महाशय। मेरी रुचि होती है कि जरा पद्मिनीका रूप और शृंगार लिख लूं तो आगे बढूं। विलम्बको क्षमा करेंगे। पद्मिनी बहुमूल्य साड़ी पहने थी। आपतो यह अवश्य समझ गये होंगे कि यह अच्छी थी। इसकी मीनमदभञ्जन नयनोंसे पातिव्रत्यके संग संग रस भी बरसता था। अधर जो स्वाभाविकही लाल थे पान चाभने से और भी शोभायमान हो गये थे। गुलाबी गालोंपर लज्जासे बराबर लाली आ जाती थी। कहीं भौंहोंके टेढ़ी हो जाने से उनमें और बांकपन दिखाई देता था। भौंरासे बालोंकी लटें काली काली नागिनियों सीं नितम्बपर लेट रही थीं। किसी स्थानमें न गहनोंकी सजावटमें न सुन्दरतामें कुछ भी कमी न थी ठीक है, तबही तो अला उद्दीन जिसको एकसे एक सुन्दर सुन्दर हरमें थीं इसके रूपका बावला था। पद्मिनी को देखते ही मुंहमें पानी भर आया पर दिल थामकर रह गया क्योंकि कुछ भी बस न चलता था। क्षत्रियोंके बल और प्रतापका थाह इसे मिल चुका था, उनके क्रोधाग्निमें पड़ चुका था करताही तो क्या करता? तिसपर भी इस समय अकेला ठहरा।

एक क्षणके पश्चात् पद्मिनी अपने भवनमें चली गई। इधर अलाउद्दीन भी उठकर भीमसीके साथ आपने कमरेमें चला आया। दूसरे दिन अलाउद्दीनने रुखसत मांगी। भी-

मसी उसे दुर्ग द्वारतक पहुँचाने गये। द्वारपर जब दोनों अन्तिम भेंट कर रहे थे कि एका एक नसारतखाने आकर भीमसीको वान्ध अपने घोडेपर बिठा लिया। अलाउद्दीन भी अपने घोडेपर जा बैठा और सब सवारोंके साथ भीमसीको लिये हवाकी तरह अपनी सेनाकी ओर चला गया। इस पामरने भीमसीके पकड़नेका बन्दोवस्त पहले हीसे कर रक्खा था।

पाठक, यवनोंकी वीरता आपने देखी ? कैसी विलक्षण वीरता है।

भलाईका कैसा बदला दिया ? अलाउद्दीन अकेला दुर्गमें गया था। भीमसी चाहते तो उसकी बोटी बोटी कटवा डालते, पर उन्होंने ऐसा न करके इसके साथ भलाई की। अलाउद्दीन भलाईका बदला यों ही चुकाता आया है। इसने अपने चचाकी भलाईका बदला ऐसा ही दिया था कि बेचारेका प्राणही ले डाला। संसारमें ऐसे मनुष्य बहुत मिलेंगे जो अपनी भलाईके बदले बुराई करते हों। माता पुत्रको पोस कर जवान बनाती है। पर पुत्र है कि उसके दुख में काम नहीं आते, मरने पर भी निकट नहीं जाया चाहते। स्त्री जो रात दिन स्वामी के लिये मरती है, नाना प्रकार सुख देती है पर स्वामी है कि उसे छोड़ उपपत्नी के साथ अपनी युवावस्था गँवाते हैं।

अलाउद्दीनने अपने शिविरमें जा भीमसीके हाथ पावों में बेड़ी डलवाकर कारागारमें भेजवा दिया और राणाको चिट्ठी लिख भेजी कि तुम पद्मिनीको मेरे पास भेज दो तो भीमसी छोड़ दिये जावें।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

उद्धार ।

पद्मिनीको जब यह सम्वाद मिला तो मारे क्रोधके पागल हो गई। उसने अपने चचा, गोविन्द और सब सर्दारोंको बुला भेजा। जब सब जमा हो गये तो उसने यों कहना आरम्भ किया—वीरवरो। उस कपटी यवन के जालमें फँस हमारे वीरशिरोमणि पतिको बन्दी होना पडा । उसने हमारे साथ धोखा किया। अब वह हमें बुलाता है। हमारे जाने पर उनको मुक्त करेगा। क्या आपलोगोंको स्वीकार है कि मैं चित्तौर छोड़ कर दिल्ली चली जाऊ ? नहीं इंसनीसे बक की सेवा नहीं हो सकती। मै क्षत्रीकुलमें जन्मी हूं फिर यवनकी दासी कैसे हो जाऊँ। राजहंसनी कहला कर बकसहचरी कैसे होऊं। मै उस तुर्की बर्बरकी आज्ञा-कारिणी दासी कभी न होऊँगी। बालकके चन्द्रमाग्रहणकी इच्छा की नाईं क्या उसकी इच्छा पूरी होगी ? कभी नहीं, मेरे प्राण भलेही चले जायें पर अपना धर्म नही छोड स-

क्षती। आपलोग मेरी सहायता करें मैं आप जाकर उनका उद्धार कर लाती हूं। मुझे ढाल तलवार लेकर लड़ने दीजिये।

पद्मिनी आगे कुछ नहीं सकी। सब सर्दारोंमें वीरता छा गई। क्रोधसे मानो आँख से आगकी चिनगारियां निकलने लगीं। नेत्र लाल हो गये। गोराने सबको शान्त किया और कहने लगे—'भाइयो, हमलोग क्षत्री हैं, निस्तेजता हमारे निकट पाप है। शोकतापसे व्याकुल होना अकर्त्तव्य है। दुष्ट यवनोंकी संख्या हमलोगोंसे कहीं अधिक है। प्राण चाहे चले जायें पर भीमसीको यवनोंके शिविरसे छुड़ा लाना आवश्यही उचित है। हे वीरो। अब धर्मयुद्धका समय गया। यवनोंने हमारे साथ शठता की है। अब हमलोगोंको भी कुछ वैसाही उपाय करना चाहिये। (इसके बाद फिर थोड़ी देर तक विचार करते रहे)।

अलाउद्दीनको पत्र लिखा गया कि पद्मिनीको भेज देते हैं पर इसके साथ पाच सौ डोले सखियों और दासियों के जॉयेगी जिसमेंसे तीन सौ तो लौट आयेगी। उन डोलोंकी स्त्रियोंको कोई देख नहीं सकेगा। अलाउद्दीनने सब बातें सहर्ष स्वीकार कर लीं। जानेका दिन भी ठीक हो गया। चित्तौरमें यह बात फैल गई।

आज बादशाही शिविरमें धूम मची है। सब आमोद

प्रमोदमें मग्न है। वहां किसी बातका ठिकाना न था सब ही अपने अपने मनमौजी थे। अलाउद्दीनने आनन्द मनाने की आज्ञा दे दी थी। कारण यह था कि पद्मिनी दिल्ली जानेके लिये आज यवन-शिविरमें आयेगी, फिर आनन्द क्यों नहीं मनाया जाये। जिसके लिये इतनी लड़ाई हुई वह मनोकामना सिद्ध हुई, चित्तौरके राणाने बाजार लगवा दिया था। जब सन्धि हो गई फिर बातही क्या रही ?

पांच सौ रङ्ग विरङ्ग डोले) जिनके बीचमें एक अत्यन्त मनोहर डोला था) आज बादशाही शिविरकी ओर जा रहे हैं। इन डोलोंके साथ एक सहस्र सवार भी थे। आसा सोटेवालों की संख्या भी ए त सौ से कम न होगी।

डोले एक कतार से रख दिये गये। सहस्र सैनिक, जो चित्तौरसे गये थेबाहरही रोक दिये गये। बादशाही सेनाने डोले घेर लिये। एक दासीने नसारतखासे कहा कि पद्मिनी दिल्ली जानेके पहले अपने पतिसे मिल लेना चाहती है। आप बादशाहसे निवेदन करदें। नसारतखा भावी वेगमकी आज्ञा टाल न सका, इससे अलाउद्दीनको जाकर पद्मिनी की प्रार्थना कह सुनाई। अलाउद्दीनने भीमसीकी बेडी कटवा पद्मिनीके पास उसे भेज दिया। इसने भीमसीको छुड़ानेके लिये दम्पतिकी भेट कराई थी। सन्धिके अनुसार तो भीमसीको छोड़ देना चाहता था पर उस धूर्त्तके मनमें

कुछ दूसरीही बात थी। नसारतखांको आज्ञा दे दी थी कि भीमसी जाने न पायें।

आध घण्टेके बाद तेजसिंह घबराया हुआ बादशाही शिविरमें उपस्थित हुआ। उसने कहा कि "हुजूर भीमसी भाग गया। डोलेमें पद्मिनी नहीं है। सब डोलोंमें सवार भरे हैं। कहार भी वास्तवमें सिपाही हैं।"

आज्ञा आपने दी। क्षत्रीगण आगे बढ़े। थोडी दूर जाकर यह सब ठहर गये जहां चित्तौरकी और सेना खडी थी। यवन जो पीछे चले आते थे वे भी यहां पहुंच गये। लड़ाई होने लगी-फिर चित्तौरवाले पीछे हटे। यवनोंने पीछा किया। थोडी दूरपर चित्तौरकी बहुत सेना गोरा लिये खडे थे। यहां क्षत्रीगण ठहर गये। यवन भी वहां पहुंच गये अब जमकर लडाई होने लगी। अलाउद्दीन भी बाकी सेना साथ ले आ पहुचा। भीमसी भी यहीं ठहर गये थे। मारकाट मची थी।

पाठक। सब सर्दार, गोरा, और गोविन्दने मिलकर यह बात पक्की की थी कि पाच सौ डोलीमें दो दो सवार, हर डोले में छः छः वीर कहार के भेषमें लगें। आसा सोटावाले भी सैनिकही रहैं। सहस्र सवार साथ ले गोरा राहमें खड़े रहैं। आधी सेना गोविन्दके साथ दुर्गके गुप्त द्वारसे जाकर छिपी रहे। जब सब गोराकी सेनासे भिड़ जाये बादल पीछेसे आक्रमण करें। भीमसी डोले से बाहर चले आवें। इनका विचार ठीक उतरा।

गोविन्द इस्लेको, यवन सम्भाल न सके। उनको जान पर आ बनी, क्षत्रियोंने दोनों ओरसे मारको, यवन सेना घबरा गयी और उनके पांव उखड़ गये। इसने लाख थिर थोटा पर जिसको जहां जगह मिली भाग खड़ा हुआ।

अलाउद्दीन आगे बढ़ा और बोला—"“क्या राजपूत सेना पति मेरे डरसे भाग गया?”

गोविन्द अलाउद्दीनके सामने आकर और डपटकर बोला—"डर किसे कहते हैं? राजपूत डरना नहीं जानते। कायर मरनेके पहलेही सैकड़ों बार डर डरकर मर जाते हैं। यहां कायर कोई नहीं है जो तुझसे डरे। आज निरपरा धियों की रक्त बहानेका प्रतिशोध करूँगा।

अला०—वाह क्या कहना है। आप बड़े बहादुर हैं इसीसे भागी हुई फौज पर आ टूटे हैं। आओ हम तुम लड़ें और दोनों फौजें तमाशा देखें। इतना सुनतेही गोविन्द तय्यार हो गया। दोनोंने अपनी अपनी सेनाको लड़नेसे मना कर दिया।

द्वन्द युद्ध होने लगा। बादशाहके वारको बचाकर वा दल अपना वार कर रहा था। बादशाह बहुत स्थानोंमें घायल हुए। गोविन्दने घोड़ा बढ़ा एकही हाथमें बादशाह का काम तमाम करना चाहा। नसारतखां यह देख रहा था उसने भालेसे बादलके घोडेको निहतकर दिया और शाहको सम्भाल अपने घोडे पर बिठा ले भागा। बादशाही सेना जो रह गई थी अब वह भी भाग चली। राजपूतोंने उनका पीछा किया, कुछ मारे गये, कुछ भाग गये, और कुछ बन्दी बना लिये गये। भीमसीने बादशाही शिविर लूट लिया। खेमे

में आग लगवा दी। उस समय ठीक होलीका दृश्य सामने था। खेमेमें आग लगनेसे होलीका फूंकना प्रतीत होता था वीरगण रक्तसे भींगे रँग गुलाल में बोरे से प्रतीत होते थे। आँख मूदकर देखिये होलीहीका समा जँचेगा। मेरे मनमें तो ऐसे अवसर पर दो चार होलिया गानेकी इच्छा होती है पर डरता हूं कहीं आपलोग मुझे पागल न कह बैठें। जरा ख्याल तो कीजिये कि उन राजपूतोंको इस विजय पर कितना आनन्द हुआ होगा। तेजसिंहभी बन्दी बना लिया गया था।

सोलहवाँ परिच्छेद।

परिचय।

अलाउद्दीनको इस पराजयका बड़ा शोक हुआ। पद्मिनी के हाथसे निकल जानेका भी सोच कुछ कम न था। भीमसी इसकी आँखोंमें शूल सा गड़ता था। ठीक है Her monrach ill can rival brook, Even in a word or smile or look. अर्थात् राजा बात, मुस्कुराहट या दृष्टिमें भी अपने प्रेमका प्रतिद्वन्दी होना नहीं चाहता। क्या इसीसे अलाउद्दीन पृथ्वीराजके सिंहासन पर विराजमान था। फिर भीमसीकी उसके सामने क्या हकीकत थी। अलाउद्दीन दिल्ली आकर

फिर सेना इकट्ठा करने लगा । इसने चित्तौर परफिर आक्रमण किया या नहीं। इसका हाल इतिहासमें लिखा है। इस बातका हमारे उपन्याससे कोई सम्पर्क नहीं ।

पाठक । हमने आपके चित्तविनोदार्थ कई एक नायिकायें खड़ी की हैं । इसमें एक तो वीरपत्नी, वीरवान्धवा परम पूजनीया अद्वितीया सुन्दरी पद्मिनी है । दूसरी सुकुमारी, नाजिनी प्यारी हरम जोहर है । तीसरी नायिका यूसुफकी बेटी हुस्ना है । चौथी गोविन्दकी प्यारी राणा लक्ष्मीकी बहिन उन्नतहृदया तारा है इसके सिवाय चमेली तथा मंछादेव बहू हैं ।

यदि किसीका प्रभाव आपके हृदय पर नहीं पड़ा हो तो हमें लिख भेजियेगा हम आपको अरसिक समझ अपने श्रमको वृथा समझेंगे और भगवान्से यही प्रार्थना करेंगे कि 'अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख'

आज चित्तौरका दर्बार सर्दार सेना और प्रजासे भरा है । सब अपने अपने आसन पर यथायोग्य बैठे हैं । युद्धके बन्दी भी हाथ पावोंमें बेडी पहने खड़े हैं । तेजसिंह भी इन्हींके साथ खड़ा किये गया है। अलाउद्दीनका साथ हो जानेसे यह शराब अधिक पीने लगा था ।

भीमसीने यवनोंको तो कुरानकी सौगन्द खिलवा खिलवा छोड़ दिया पर तेजसिंहको कुछ अधिक दण्ड दिया।

जोहरा अपनी जिन्दगी भर बादशाहकी प्यारी हरम रही। विचारी संसारका सुख बहुत दिन तक नहीं भोग सकी। अकालहीमें कालके गालमें पड़ गई।

सासके मर जानेसे महादेवकी स्त्री भीमसीके यहां अपनी सासके स्थानमें नौकर हो गई। तेजसिंहका मृत शरीर एक गड्हेमें पड़ा पाया गया। पावकी उँगलिया गिर गई थीं। शरीरमें पिल्लू पड़ गये थे।

परिशिष्ट।

इस उपन्यासको पढ़नेवालोंके लिये ईश्वरसे प्रार्थना है कि यदि यह उपन्यास राजनीतिज्ञ पढ़े तो शिवाजी, प्रताप सिंह ऐसे देश-प्रिय हों। प्रेमी अपने प्रियपात्रसे मिलें। बुड्ढोंको सुख हो। विद्यार्थियोंको विद्या और सफलता प्राप्त हो। सब को आनन्द, प्रेम, एकता, और सुख मिले।

सूचना ।

यह उपन्यास मेरी दूसरी भेंट है, इसे लेकर मैं आप-लोगोंकी सेवामें उपस्थित होता हूं। उपन्यासमें कल्पना मुख्य वस्तु है इसी कारण मुझे कहीं कहीं इतिहाससे दूर भागना पड़ा है पर, असल बातों में भेद नहीं पडने पाया।

अलाउद्दीनने तीन वार चित्तोर पर चढ़ाई की थी। पहली वार वह हार खाकर दिल्ली लौट गया, जिस हारके वृत्तान्तसे इस उपन्यासका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी चढाईकी घटनायें इसमें लिखी गयी हैं। तीसरी चढ़ाईका हाल हमने नहीं लिखा है क्योंकि इस आक्रमणका और वार वृत्तान्त सब इतिहास लिखनेवालोंने लिखा है।

इस उपन्यासका प्लोट (Plot) टाड राजस्थान Todd's Rajasthan से लिया गया है।

भवदीय
गिरिजानन्दन तिवारी।

॥ दीपनिर्व्वाण ॥

॥ जिसको ॥

मुंशी उ[illegible]नारायणलाल वर्म्मा वकील

जिल: गाजीपुर ने

भारतवर्षीय इतिहास और हिन्दी भाषा रसिकों के विनोदार्थ बङ्ग भाषा से आर्य्य भाषा में अनुवाद किया और इस पुस्तक के छपाने का अधिकार श्रीयुत बाबू रामकृष्णवर्म्मा सम्पादक भारतजीवन को है।

पञ्चैते पाण्डुपुत्राः क्षितिपतितनया धर्मभीमार्जुनाद्याः ।
शूरा सत्यप्रतिज्ञा दृढतरवपुषः केशवेनापि गूढाः ॥
ते वीराः पाणिपात्रे कृपणजनगृहे भिक्षुचर्यां प्रवृत्ताः ।
को वा कार्ये समर्थो भवति विधिवशाद्भाविनी कर्मरेखा ॥

काशी ।

भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुआ ।

१८०५ ई० ।

दूसरी बार १०००]　　　　[मूल्य [illegible]

निवेदन ।

प्रिय पाठकगण ।

आप सज्जनो ने मेरे सतीनाटक के अनुवाद का आदर किया जिससे मुझ को इस दूसरी पुस्तक के अनुवाद का साहस हुआ । यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इसके प्रगट करने की तो कोई आवश्यकता नहीं है कि मै कायस्थ जाति हूँ मुझे सर्व्वदा यवनभाषा से प्रयोजन रहता है अतएव हिन्दीभाषा मे मेरे लेख की उत्तमता व लालित्य का होना अति कठिन है किन्तु आपकी गुणग्राहकता और सज्जनता से दृढ़ आशा है कि इसके अवलोकन से प्रसन्न होकर मेरा उत्साह किसी तीसरी पुस्तक के अनुवाद करने मे बढ़ावेंगे और मेरा श्रम सफल करेंगे ।

आपका प्रेमाभिलाषी ।

उदितनारायणलाल वर्म्मा ।

ग़ाज़ीपुर ।

उपक्रमणिका।

मुसल्मान लोग जब भारतवर्ष आक्रमण करने आये उसके पहिले जिस समय हिन्दू राजाओं में एकता का दृढ़ बन्धन क्रमशः शिथिल होता चला आता था, और जिस समय परस्पर सभी लोग सर्वप्रधान होने के लिये सङ्कल्प करके घरफूट का सूत्रपात (प्रारम्भ) करते थे, उसी समय की एक घटना अवलम्बन करके इस उपन्यास का आरम्भ है; और इसी घरफूट को सुअवसर समझ कर यवनों ने जिस समय भारत के चिरप्रज्वलित दीप को निर्वाण किया, वही दीपनिर्वाण, इस दीपनिर्वाण का अन्त है।

इस उपन्यास में दिल्ली ही प्रधान रङ्गभूमि है। जिस समय कुरुराज दुर्योधन हस्तिनापुर के राजा थे, उसी समय में पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने एक और राजधानी बनाकर उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा। कुरुक्षेत्र के युद्ध होने के उपरान्त पाण्डव लोग एकादि क्रम से तीस पीढ़ी तक इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर अधिकार करते आये। पाण्डव लोगों के उपरान्त गौतमवंश के राजा हुए। गौतमवंश के राजा दिलु ने इन्द्रप्रस्थ के कुछ दक्षिण एक और स्वतन्त्र नगर बनाकर उसी जगह राजधानी स्थापन की। अपने नाम से उस

नगरी का नाम दिल्ली रक्खा, क्रमशः दिल्ली ही प्रधान हो गई, और एक समय में वही दिल्ली प्रायः समस्त भारतवर्ष की राजधानी गिनी गई। फिर कुमायूंदेश के राजा पुरु राज ने दिल्लूराज को युद्ध में पराजित करके दिल्ली पर अधिकार किया। इस सकल घटना के उपरान्त तूयार (तोमर) वंश और उसके बाद चौहानवंश दिल्ली के राजा हुए। राजा अनंगपाल ने दिल्ली नगरी को स्तम्भ, (खम्भा) दुर्ग (किला) और कोठो अटारियों से विभूषित किया था। अनङ्गपाल की मृत्यु होने पर उनके दौहित्र, (नाती) अजमेराधिपति सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासनपर बैठे। उनके समय में यद्यपि सकल क्षत्री राजा लोग चढ़ेबढ़े थे, तथापि घरफुट से उनलोगों की एकता शिथिल होती जाती थी। वही घरफूट पीछे सकल अनर्थ का मूल हुआ।

कान्यकुब्जाधिपति जयचन्दही घरफूट के मूल कारण हैं। जिस समय नागौर देश की बहुत काल की सञ्चित ७० लाख स्वर्णमुद्रा (अशर्फ़ी) का पता पाकर पृथ्वीराज ने, चित्तौर के राजा समरसिंह की सहायता से उस धन को लेना चाहा, उस समय जयचन्द और पत्तनराज ने ईर्षावश उनके दर्पचूर्ण करने की अभिलाषा से महम्मदगोरी को देश में बुलवाया। १११३ शकाब्द, अर्थात् ११९१ ईस्वी में महम्मदगोरी ने भारतवर्ष पर चढाई की। स्थानेश्वर में

हिन्दू और यवनों का घोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में ऐसा नहीं हुआ कि पृथ्वीराज और समरसिंह केवल यवनों को पराजितही करके शान्त हो गये, किन्तु महम्मदगोरी और अनेक बड़े २ यवनों को कैद भी कर लाये थे। अन्त में पृथ्वीराज ने अपनी सुजनता और उन्नत स्वभाव के गुण से उन लोगों को मुक्त करके अपने देश में लौट जाने दिया। स्थानेश्वर के पहिले युद्धवृत्तान्त के साथ हमलोग इस उपन्यास का कोई सम्बन्ध न समझ कर जयचन्द्र को इस उपन्यास में नहीं लाये, और उनकी विश्वासघातकता का भी विशेष वर्णन नहीं किया, किसी २ स्थान में केवल उनका नाम मात्र उल्लेख किया है।

उस युद्ध में के पराजित होकर भाग जाने के दो वर्ष उपरान्त [illegible] में फिर यवनलोग दिल्ली पर चढ़ाई करने के अभिप्राय से आये। जयचन्द्र इत्यादि राजगण ईर्षा के मद में मत्त होकर, आनन्दितचित्त से निश्चिन्त होकर देखते रहे और भीतरही भीतर उनकी सहायता करने में भी उन्होंने कसर त्रुटि न की। इस बार भी थानेश्वर में युद्ध हुआ, और इस युद्ध में तीन दिन लगातार लड़ाई होने पर यवनों की धूर्तता और विश्वासघातकता से हिन्दू लोग पराजित हुए। यहीं से भारत राज्य का लोप होना प्रारम्भ हुआ।

चित्तौर के राजा समरसिंह पृथ्वीराज के परम बन्धु थे, मुसल्मानों के संग पृथ्वीराज के जो दो युद्ध हुए उन दोनों में उन्होंने पृथ्वीराज की बड़ी सहायता की । उपन्यास के अनुरोध सेहमलोग समरसिंह के सम्बन्ध में दो स्थानों पर इतिहास के व्यतिक्रम करने में बाध्य हुए हैं । प्रथम, हम-लोगों ने समरसिंह का वयःक्रम चार वर्ष अधिक किया है । दूसरे समरसिंह पृथ्वीराज के बहनोई (भगिनीपति) थे, किंतु उपन्यास के अनुरोध से हमलोगों ने उस सम्बन्ध की रक्षा नहीं की है । यद्यपि यह पुस्तक उपन्यास मात्र है, किन्तु पुस्तक के प्रधान २ व्यक्तिगण प्रायः इतिहास ही से लिये गये है और उनलोगों के स्वभाव और जीवनघटना को इतिहास के अनुसार रखने की यथासाध्य चेष्टा की गई है।

कविचन्द यथार्थ में एक प्रसिद्ध राजपूत महाकवि पृ-थ्वीराज के परम बन्धु थे, और पृथ्वीराज के सहवास ही में सर्व्वदा रहते थे । चन्द्रकवि पुस्तक मे कविचन्द्र के नाम से लिखे गये है । इङ्गल्याण्ड के सर फिलिप्‌सिड्‌नी और सर वालटर रेली के समान वे काव्यविषय में निपुण थे, युद्ध विषय मे भी वैसेही दूरदर्शी थे, किन्तु काव्य ही उनके यश का मुख्य चिन्ह है । उनका सकल महाकाव्य राजपूत लोगों के विशेषतः पृथ्वीराज के कीर्त्तिकलाप और शूरता पराक्रम में वर्णन हुआ है। सुतरां समस्त आर्य्यजाति मे जैसे रामाय

और महाभारत आदरणीय है, ग्रीक (यूनानी) लोगों में जैसे होमर आदरणीय है, राजपूत लोगों में चन्द्रकवि का काव्य समूह भी वैसेही आदरणीय है। किन्तु चन्द्रकवि का कपोलकल्पित काव्य बहुत कम है, प्रकृत वृत्तान्त का भाग अधिक है। दुःख का विषय यही है कि उनका समस्त जीवनचरित्र कहीं भी नहीं पाया जाता और उनका काव्य समूह अधिकांश प्रायः प्राचीन हिन्दीभाषा में छन्दोबद्ध है।

पृथ्वीराज के समय हिन्दू लोगों में तोप का व्यवहार प्रचलित था। इसमें बहुतेरों ने कल्पना और सन्देह किया, और किसी किसी हमारे स्वजन ने भी नितान्त कल्पना चित्त में करके उस विषय में पहिले नाना तर्क वितर्क किये किन्तु फिर जब उन लोगों ने प्रमाण पाया कि यथार्थ में बहुत प्राचीन काल से हमलोगों में तोप प्रचलित है तब उन लोगों का सन्देह दूर हुआ और जिसमें पीछे फिर भी उनके सन्तान आदि दूसरा सन्देह न करें, इसी आशा से उन्होंने भूमिका में तोप सम्बन्धविषयक कुछ विशेष रूप से वर्णन करके लिखने का अनुरोध किया। उन्हीं के अनुरोध से इस स्थान पर तोप के सम्बन्ध में संक्षेपतः कुछ कहना पड़ा। किसी २ अंग्रेजी इतिहासवेत्ता ने कहा है * कि आदर

* [illegible]

के समय इस देश में पहिले पहिल तोप का व्यवहार हुआ। उसके पहिले इस देश में तोप का प्रचलित होना उनलोगा ने स्वोकार नहीं किया है, विशेषत: यूरोप मे, क्योंकि १३३६ ईस्वो के पहिले तोप प्रचलित नहीं था। सुतरा उसके सैकडो वर्ष पहिले हिन्दू लोग जो तोप बनाने और चलाने जानते थे इसका विश्वास विदेशियो को सहज में में नहीं हो सकता। साधारण मत यहो है कि १३१६ किंवा १३३८ ईस्वो में यूरोप में पहिले पहिल तोप का प्रचार हुआ। किन्तु बड़ो तहकोकात के बाद इतिहास जाननेवालो मे यह अब एक प्रकार सिद्ध हुआ है कि उसके पहिले १३१२ ई० में मूर लोगो ने स्पेन मे एक प्रकार के तोप का व्यवहार किया था। मूर लोग जो कि अरबनिवासियो से निर्मित अस्त्र विद्या म दीक्षित (तालीम याफ़्ता) हुए थे इसमें सर्ववादी सम्मत हैं, और अब इस प्रकार से प्रमाण पाया जाता है कि अरबनिवासियों ने भारतवर्ष से चिकित्साविद्या, जोतिषविद्या, गणितशास्त्र इत्यादि को शिक्षा पाई थी, इससे बोध होता है कि तोप के व्यवहार मे भो उन लोगों ने भारतवर्ष से शिक्षा पाकर यूरोप में प्रचलित किया है।

किन्तु जब मूर लोगों ने यूरोप में तोप प्रचलित किया उसके बहुत दिन बाद अंग्रेज़ लोगों ने १३४७ ई० में पहिले

पश्चिम तोप का व्यवहार किया था इसलिये यदि यह बात कि 'भारतवर्ष में भी थोड़े ही दिन से तोप चली है' वे लोग प्रमाणसिद्ध करने की चेष्टा करें तो इसमें आश्चर्य क्या है ? किन्तु रामायण और महाभारत में "शतघ्नी" शब्द का उल्लेख है वह अनेक अंग्रेज ग्रन्थकार लोगों के मत में भी तोप के सिवाय दूसरा कुछ नहीं हो सकता। हालहेड महोदय ने तोप व्यवहार विषय में नाना तर्क वितर्क करके यही स्थिर किया है, कि "हिन्दू और चीनदेशीय लोग इतने प्राचीन काल से बारूद का बनाना और व्यवहार करना जानते थे कि उसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है"। (१) किन्तु शतघ्नी विषय में नाना प्रकार के सन्देह रहने पर भी, [illegible] का वृत्तान्त पढ़ने से "[illegible] के समय में तोप का व्यवहार होता था, इसमें [illegible] को सन्देह नहीं रह सकता। [illegible] लिखा है [illegible] "सब तोपों से [illegible] और [illegible]

से ऐसा भयानक शब्द होने लगा कि वह दस कोस तक सुना गया था। फिर "नव लक्ष मुद्राहार" नामक काव्य के युद्धवर्णनस्थल में उन्होंने कहा है "विषम भार युक्त तोप समूह श्रेणीवद्ध भाव से सज्जित रहो"। एक और जगह लिखा है कि "तोपों का समूह और बारूद की थलिका तीन कोस तक भरी रहो"। जो कोई हिन्दीभाषा जाननेवाले अंग्रेज़ ग्रन्थकार हैं, वा जिन्होंने कविचन्द्र की किसी २ कविता का अनुवाद किया है, उन लोगों ने भी इस तोप शब्द को (Cannon) कहकर भाषान्तर किया है।

यमुनास्तम्भ (खम्भ) अब कुतुबमीनार के नाम से प्रसिद्ध है और उसी नाम के कारण वह हिंदू लोगों का बनाया होकर भी छिप रहा है। प्रकृत प्रस्ताव में यमुनाखम्भ पृथ्वीराज का निर्मित है। कन्यावत्सल पृथ्वीराज ने अपनी कन्या के प्रतिदिन सन्ध्याकाल में यमुनादर्शन के निमित्त बनवाया था यह बात हमलोगों की कपोलकल्पित नहीं है। आजकल भी दिल्ली के आसपास और प्राचीन काल के सब लोगों में यही चर्चा प्रचलित है। और मेटकाफ, हिवर इत्यादि अनेक अंग्रेज़ और मुसलमान लोगों ने भी इसको प्रमाणित किया है कि यमुनाखम्भ हिन्दू लोगों का बनाया हुआ है। यमुनाखम्भ के बनाने के कौशल के सङ्ग मुसलमान लोगों के खम्भ बनाने के कौशल में अनमेल देखकर बगलार

महोदय ने सिद्धान्त किया है कि यमुनास्तम्भ हिंदू लोगों का बनाया हुआ है (३)। फिर अलीगढ़निवासी विख्यात सैय्यद अहमदखां ने, कर्नल कनिङ्गहम को उस विषय में जो एक पत्र लिखा है उसमें उन्हों ने दिखलाया है (४) कि यमुनास्तम्भ कभी मुसलमानकृत नहीं हो सकता। विशेषतः यमुनास्तम्भ के नीचे के अलङ्कार में हिन्दू लोगों के पूजन के घाट इत्यादि जो समस्त प्रतिमूर्ति हैं इससे वह हिन्दू लोगों का कृत कहा जाना प्रमाणित होता है। यमुनास्तम्भ जितना ऊंचा पहिले था अब उतना ऊंचा नहीं है क्योंकि कुतुबुद्दीन ने उसका शिखर (कंगूरा) तोड़कर मुसलमानों के ढङ्ग से फिर उसका शिखर बनवाकर अपने नाम से प्रसिद्ध किया है।

जैसे कुरुक्षेत्र इस समय स्थानेश्वर के नाम से कहा जाता है, उसी प्रकार कुरुक्षेत्र की पुण्य नदी दृषद्वती भी आजकल आगार (५) नाम से विख्यात है। यह स्थानेश्वर प्रदेश के दक्षिण अलग बहती है।

---

(3) [illegible] Vol. [illegible]

(4) [illegible]

(5) [illegible]

से ऐसा भयानक शब्द होने लगा कि वह दस कोस तक सुना गया था। फिर "नव लक्ष मुद्राहार" नामक काव्य के युद्धवर्णनस्थल में उन्होंने कहा है "विषम भार युक्त तोप स-मूह श्रेणीवद्ध भाव से सज्जित रहो"। एक और जगह लिखा है कि "तोपों का समूह और बारूद की थलिका तीन कोस तक भरी रहो"। जो कोई हिन्दीभाषा जाननेवाले अंग्रेज़ ग्रन्थकार हैं, वा जिन्होंने कविचन्द्र की किसी २ कविता का अनुवाद किया है, उन लोगों ने भी इस तोप शब्द को (Cannon) कहकर भाषान्तर किया है।

यमुनास्तम्भ (खम्भ) अब कुतुबमीनार के नाम से प्र-सिद्ध है और उसी नाम के कारण वह हिंदू लोगों का ब-नाया होकर भी छिप रहा है। प्रकृत प्रस्ताव में यमुनाखम्भ पृथ्वीराज का निर्मित है। कन्यावत्सल पृथ्वीराज ने अपनी कन्या के प्रतिदिन सन्ध्याकाल में यमुनादर्शन के निमित्त बनवाया था यह बात हमलोगों की कपोलकल्पित नहीं है। आजकल भी दिल्ली के आसपास और प्राचीन काल के सब लोगों में यही चर्चा प्रचलित है। और मेटकाफ़, हिवर इत्यादि अनेक अंग्रेज़ और मुसलमान लोगों ने भी इसको प्रमाणित किया है कि यमुनाखम्भ हिन्दू लोगों का बनाया हुआ है। यमुनाखम्भ के बनाने के कौशल के सङ्ग मुसलमान लोगों के खम्भ बनाने के कौशल में अनमेल देखकर बगलार

महोदय ने सिद्धान्त किया है कि यमुनाखम्भ हिंदू लोगों का बनाया हुआ है (३)। फिर अलीगढ़निवासी विख्यात सैय्यद अहमदखां ने, कर्नल केनिङ्गहम को उस विषय में जो एक पत्र लिखा है उसमें उन्हों ने दिखलाया है (४) कि यमुनाखम्भ कभी मुसलमानकृत नहीं हो सकता। विशेषतः यमुनाखम्भ के नीचे के अलङ्ग में हिन्दू लोगों के पूजन के घाट इत्यादि जो सकल प्रतिमूर्ति हैं इससे वह हिन्दू लोगों का कृत कहा जाना प्रमाणित होता है। यमुनाखम्भ जितना ऊंचा पहिले था अब उतना ऊंचा नहीं है क्योंकि कुतबुद्दीन ने उसका शिखर (कंगुरा) तोड़कर मुसलमानों के ढङ्ग से फिर उसका शिखर बनवाकर अपने नाम से प्रसिद्ध किया है।

जैसे कुरुक्षेत्र इस समय स्थानेश्वर के नाम से कहा जाता है, उसी प्रकार कुरुक्षेत्र की पुण्य नदी दृषद्वती भी आज-कल कागार (५) नाम से विख्यात है। यह स्थानेश्वर प्रदेश के दक्षिण अलँग बहती है।

---

(3) Journal A. S. Bengal for 1864 Vol. 33.

(4) Cunningham's Archaeological Survey of India Vol. IV.

(5) Elphinstone's History of India.

श्री

दीपनिर्व्वाण ।

प्रथम परिच्छेद ।

सम्वत् १२२९ विक्रमीय शाके १०९४—सन्ध्या समय आज चित्तौर नगरी में महा धूमधाम मच रही है—राजभवन में आज महोत्सव है। नगर में स्थान २ पर बाजेवाले उपस्थित हैं, पथ पथ पर दीन दुखीगण को धन वितरण हो रहा है, दीपमाला प्रभृति की ज्योति से नगरी उद्दीप्त हो रही है, घाट बाट वीथी सकल हास्यमय हो रहे हैं, नगर के समस्त जन आनन्द में निमग्न हैं; भद्राभद्र सब के द्वार पर कदलीखम्भ और मंगलकलश स्थापित हैं, और प्रति गृहों में मंगलसूचक शङ्खनाद सुनाई देते हैं; राजगृह शङ्खध्वनि और नृत्यगीत से परिपूर्ण है। आज इस नगरी के जिस ओर दृष्टिपात करो, सर्वत्र ही उत्सवमय दीख पड़ता है। यह कैसा उत्सव है?

महाराज समरसिंह के आज पुन. एक पुत्र उत्पन्न हुआ है। चित्तौराधिपति की प्रथम महिषी के गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। उस महिषी की अकाल मृत्यु पर महाराज ने लघ्मोदेवी से विवाह किया। उनसे कोई पुत्र न होने से का-

रण उन्होंने पत्तन की राजकन्या कमलादेवी का पाणिग्रहण किया। कमलादेवी को आज यह प्रथम सन्तान उत्पन्न हुआ है। तीन पुत्र के सुख से सुखी रहने पर भी समरसिंह ने पुत्रकामना से फिर क्यों विवाह किया? यद्यपि यह कुतूहलजनक है, किन्तु यह कुतूहल कुछ कालानन्तर आनन्ददायक होगा।

सन्तान भूमिष्ठ होने के पूर्व्व महाराज समरसिंह आज चिन्ता में निमग्न हो रहे है। उनका वही सुप्रशस्त (१) और महत्वप्रकाशक ललाट चिन्ता से किञ्चित् कुञ्चित हो गया है। उनके सुदीर्घ, स्थिर एवं उज्वल नेत्र की गम्भीर और मधुर दृष्टि शून्यदेश में स्युक्त हो रही है। उस मूर्त्ति के अवलोकन मात्र से हृदय में एकक्षण में नाना भाव उदय होते हैं। जैसे अपार अतलसागर की शोभा देखकर समस्त हृदय प्रशस्त हो जावे, सकल विस्तीर्ण—सकल महान—सकल आनन्दमय होकर मन को नूतनभाव में परिणत करे, तरग के संग २ हृदय नाच उठे, किन्तु फिर उसी आनन्द प्रकरण के मध्य एक भय का भाव भी तरंगित हो जावे, उसी प्रकार से समरसिंह के उसी स्थिर गम्भीर नयन से नयन मिलतेही हृदय में भक्ति और प्रेम का उदय होता है, फिर उसी के सग हृदय कम्पित भी हो जाता है। उनकी

(१) चौड़ा।

मूर्त्ति तेजस्विनी अहङ्कारशून्य और कोमल है किन्तु साथही दृढ़ प्रतिज्ञाव्यञ्जक भी है । समरसिंह की अवस्था यद्यपि छब्बीस वर्ष की होगी, किन्तु उनकी वह उन्नत राजमूर्त्ति देखने से यह बोध होता है कि उनकी अवस्था विशेष अधिक है। जिस कक्ष (२) में महाराज बैठे थे उसी कक्ष में सहसा एक भृत्य ने (३) आकर रुद्धश्वास से कहा कि महाराज, "राजमहिषी को पुत्र उत्पन्न हुआ है'। इस शुभ सम्वाद के सुनते ही महाराज का मुखकमल अतिहर्ष से प्रफुल्लित हो गया। पूर्णचन्द्र के उदय से विशाल समुद्र तुर्त मानो रजतमार्ज्जित (४) होकर उमग पड़ा।

महाराज समरसिंह ने अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर पुत्र का मुख देखने के हेतु अन्तःपुर में गमन किया। पूर्णिमा तिथि को चन्द्रोदय के सगही कुमार की भी उत्पत्ति हुई। ऐसे शुभ लग्न में कुमार का जन्म होना देख कर सब के हृदय में आह्लाद परिपूर्ण हो गया। समरसिंह ने पुत्र को देखकर वहां गमन किया जहां उनके गुरुदेव मङ्गलाचार्य्य पुत्र का भाग्य निर्णय करते थे। मङ्गलाचार्य्य राजबाटी के उद्यान में कुशासन पर उपविष्ट थे, हाथ में ज्योतिषग्रन्थ लिये पट्टवस्त्र का परिधान पहिरे सुदीर्घ शुभ्र ललाट में रक्तचन्दन का त्रिपुण्ड्र लगाये शोभायमान थे। वे ग्रन्थ देख

(१) प्रकाशक (२) कमरे (३) दास (४) चांदी के ऐसा साफ।

देखकर नवकुमार के भाग्य की गणना करते और उसी के संग २ तारा नक्षत्र मिलाने के निमित्त बीच २ नभमण्डल की ओर भी दृष्टि करते थे। गगन में मेघ का चिन्हमात्र भी न था, आकाश स्थान २ पर तारागण समूह के प्रकाश से दीप्तिमान था; और पूर्ण शशधर के निर्मल किरण से समस्त उद्यान, सरोवर, वृक्ष, पत्र, शुभ्रवेष धारण किये थे। भला इस प्रकाश के निकट दीपमाला के प्रकाश की शोभा कब हो सकती है? समरसिंह ने आकर देखा कि गुरुदेव गणना कर रहे हैं, किन्तु उनका मुख विषाद से अङ्कित है। उनका मुख देखकर समरसिंह का आह्लाद दब गया, और बोले कि "गुरुदेवजी नवकुमार का भाग्य देखा? कैसा है? वह भविष्यत में राजा होगा?"

मङ्गलाचार्य ने गम्भीर स्वर से कहा, कि "होगा-किन्तु"।

समरसिंह "किन्तु" सुनकर विषाद और विस्मय से गुरुदेव की बात शेष न होने पाई थी कि बोल उठे, "इस बार भी किन्तु? हाय। मैंने ऐसे कौन पाप किये हैं, कि मेरे वंश में कोई भी किसी प्रकार से सिंहासनारूढ नहीं हो सकता। मेरे ज्येष्ठ पुत्र कल्याणसिंह के भाग्य का निर्णय करके आपने कहा था—कि "कल्याण यदि सिंहासनारूढ हो, तो चित्तौर का सौभाग्य है। ऐसा सुपुत्र तुमारे वंश में आद्यावधि उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु कल्याण किसी शाप से

राजा होने के उपयुक्त वय:क्रम पर्यन्त इस पृथिवी पर रहेगा कि नहीं इसी मे सन्देह है, तुम उसके राजा होने की आशा त्याग दो" । मैंने कल्याण को मङ्गलकामना से आपको कितनी यात्रा, यज्ञ, हवन करने को कहा था, आप किसी प्रकार उसे शान्ति न कर सके । अब कल्याण की आशा मैने परित्याग कर दी । कल्याण के जो दो कनिष्ठ भ्रात हैं, आप ने कहा "कि वे भी राजा होने के उपयुक्त नहीं हैं, उनके राजा होने से चित्तोर का मङ्गल नहीं है । फिर विवाह करो ।" उसी कारण मैंने उन सभी को त्याग कर लक्ष्मीदेवी से विवाह किया । उनसे भी स- न्तान न देखा तब आपके आज्ञानुसार कमलादेवी से ाह किया । उनके गर्भवती होने पर आपने कहा कि "इस बार जो पुत्र जन्म लेगा वही तुमारे राजसिंहासन का अधिकारी होगा ।" यह सुन कर अपने हृदय मे मै कितना आनन्दित होता था, ईश्वर को कितना धन्यवाद देता था कि क्या कहूँ । इस समय आप कहते हैं कि "राजा होगा किन्तु' — तो किन्तु क्यों कहा ? हमारे भाग्यही मे नही है तो आप क्या कीजियेगा ?

गुरुदेव बोले "वत्स । इतने निराश मत हो । कपाल का लेख खण्डन नहीं होता, मै क्या करूँगा । इस नवकुमार का समस्त राजलक्षण देखता हूँ जिस प्रकार से हो राजा

होकर बोली, कि "क्या ? तुम भी सौतिन के पक्ष में होकर मेरे पुत्र को उसे देने कहते हो? मेरा स्वामी भी मेरे ऊपर निर्दय है। नां, मैं अपने पुत्र को कदापि नहीं दूंगी, वरन तुम मेरे सौतिनों के होकर रहो। फिर मैं तुमको नहीं चाहूंगी। तुम केवल उन्हीं लोगों के स्वामी होजाओ। मैं अपने बच्चे को लेकर रहूंगी। अपना बञ्चित धन, निधि मैंने फिर पाया है—अब मुझको क्या भावना है?" पगली बालक को समरसिंह के मुख के निकट लाकर फिर कहने लगी, "देखो देखो, मेरे बच्चे का मुख देखो ठीक वैसाही है। देखो तो कब को लाई हूँ—तुमने पुत्र के मुख का एक चुम्बन भी नहीं लिया। हां बूझती हूं, दो रानियों के मध्य में न यह बालक रहा है, एक रानी का पुत्र होता तो अबतक न जानें कितना चुम्बन चाटन हुआ होता।" समरसिंह ने कहा, अच्छा हमारे गोद में देव चुम्बन करें।

पगली ने कहा—तुमारे गोद मे देते हुये भय मालूम होता है, कि सौतिन के वश में होकर, मेरे पुत्र को उन लोगो को देकर उनका मन सन्तुष्ट करोगे। अच्छा लेव तुमारा भी तो पुत्र है। तुमको भी तो गोद मे लेने की इच्छा होगी। यह लेव, एक वेर गोद में लेकर चुम्बन करके दे दो!" समरसिंह ने पगली के गोद से पुत्र लेकर एक परिचारिका के गोद मे दे दिया। वह बालक को लेकर अन्तः

पुर में चली गई । पगली क्रुद्ध और विस्मययुक्त हो क्षणेक राजा की ओर देखती रही, फिर रोष से कम्पित स्वर से बोली, "क्या । यही तुमारा कर्तव्य है । अब न हमारा सौन्दर्य्य है और न रंगरूप है हा यही बात यही उचित है । जाव जाव । चले जाव, सब चला जाय । अब हमारा कौन है ?" पगली रूस कर बकती हुई चली गई । पगली जब तक रही मङ्गलाचार्य्य उसकी ओर एकटक देखते रहे । उसके चले जाने पर बोले, "तीन वर्ष पर्यन्त इस पगली की गोद में कुमार को किसी प्रकार न देना चाहिये, इस पर विशेष ध्यान रखना होगा । एक तो वह पागल है, उसकी गोद में शिशु सन्तान देना ही उचित नहीं, दूसरे उसके मन का भाव प्रतिक्षण बदल सकता है, कभी मातृचक्षु से देख कर अत्यन्त स्नेह करेगी, कभी सपत्नी का पुत्र समझ कर उसको खोटी इच्छा होने में भी आश्चर्य्य नहीं है, और वह बालक को लेने में जो उत्सुक होती है, इसीसे उसको देख कर मुझे भय उत्पन्न होता है, और यदि कुछ है तो इसी के द्वारा ही कुमार को क्लेश होगा, इसी कारण वह कुमार को मातृभाव से देखती है । जो हो, तीन वर्ष पर्यन्त उसकी गोद में किसी प्रकार बालक को न देना चाहिये, और एक रक्षाकवच सर्व्वदा कुमार के गले में रखना होगा । तीन वर्ष यदि निर्विघ्न कट जावे, तो कोई भय

नहीं है।" मंगलाचार्य ने फिर कहा कि "एक बात और भी है कि लक्ष्मीदेवी को कोई सन्तान नहीं है, इस कारण सौत का सन्तान देख मन मे क्रोध करके कदापि कोई अनिष्ट कामना करे अतएव वह पथ भी रोकना उचित है। कमलादेवी को सब बात समझा कर कह दी कि लक्ष्मीदेवी को यह शिशु सन्तान समर्पण कर देवे। यह बालक आज से उनका दत्तक पुत्र होजावे। जिसमें कमलादेवी का सन्तान कह के कभी कोई व्यक्ति न पुकारे, बस अपना पुत्र होने से लक्ष्मीदेवी को हिंसा अथवा द्वेष होने का कोई कारण न रहैगा।" मंगलाचार्य ने जो जो कहा, महाराज ने ठीक वैसा ही किया। नवकुमार का किरणसिंह नाम रक्खा गया। लक्ष्मीदेवी उनको पुत्ररूप से पाकर अतिशय प्रसन्न हुईं। दिन दिन कुमार का सौन्दर्य बढ़ने लगा। पगली उनको अपना पुत्र जानकर अतिशय स्नेह करती किन्तु उसको गोद मे देने का निषेध था अतएव नितान्त विनती करने पर भी कोई उसको गोद में देने का साहस न करता था। इस कारण पगली अत्यन्त दुःखित और समय २ पर क्रुद्ध होती थी। किन्तु क्या करे, स्वामी सौतिनों के वश,—उसका कोई वश न था।

क्रमशः बालक ने तीसरे वर्ष में पदार्पण किया। इतने दिवस में कुमार को एक बार भी गोद में न पाने से पुनः

सन्तान प्राप्ति की आशा से पगली क्रमशः निराश होने लगी। अब यदि मेरी सौत एक दिन के लिये भी मेरे बच्चे को मेरी गोद में देवे, तो मैं फिर बालक को सौतिन को न दूगी, यही अपने मन में स्थिर करके पगली ने एक परिचारिका से कहा कि "तुम सौतिन से जाकर कहो कि मैं अपना पुत्र उसको देने को प्रस्तुत हूं। अब वह एक बार भी मेरी गोद में किरण को देगी कि नहीं? इस समय किरणसिंह दासी की गोद में थे वहा और कोई न था। परिचारिका उसकी बात पर हँसकर बोली कि "नहीं वह इस बात के होने पर भी नहीं दगी।" पगली ऐसा उत्तर मिलने की आशा नहीं करती थी। वह समझती थी, कि ऐसी बात स्वीकार करने से वह अपने पुत्र को अपने गोद में लेने पावेगी। इस समय परिचारिका की बात से आश्चर्य और हताश होकर उसने कातर स्वर से उसके निकट क्षण-काल के लिये कुमार की याचना की। परन्तु परिचारिका उससे सम्मत न हुई। पगली ने कहा "हमारे बच्चे को एक बेर भी न दोगी? क्या दुर्भाग्य है। स्वामी सौतिन के वश, उ[illegible] के कहने से मेरे बच्चे को मुझे देना नहीं चाहती। मैंने उन्हीं के स्वीकार करने से अपना बालक सौतिन को दिया था। अब एक बार भी मेरी गोद में न दोगी?" पगली बालक के मुख की ओर एकटक दृष्टि करके रोने लगी।

तिस पर भी परिचारिका ने उसकी गोद में कुमार को न दिया। किसी प्रकार बालक को गोद में न प्राप्त होने से क्रमशः पगली अत्यन्त क्रुद्ध हो गई, और अति दुःखित होकर बकती २ चली गई, और बोली "अच्छा रहो, मैं एक दिन अपने बालक को कैसे नहीं ले जाऊँगी तुम देखोगी। एक बार हमारी गोद में नहीं दिया। भगवान मेरे बालक को मुझे देगा।" परिचारिका ने पगली की बात नहीं समझी। पगली ने उसी दिन से राजभवन परित्याग कर दिया। और कोई न था। वह एक सामान्य स्त्री थी, और विक्षिप्त थी, चली गई, किसी ने उसका अनुसन्धान भी न किया।

दूसरा परिच्छेद।

कुमार किरणसिंह की अवस्था का तीसरा वर्ष पूर्ण हो गया। अब वे गोद ही में न रह कर उद्यान में कभी २ परिचारिकाओं के संग फिरते, कभी दौड़ते, कभी फूल ले कर छींटते। इसी भांति नाना प्रकार की क्रीडा कौतुक करते थे, फिर मध्य २ में आकर दासियों की गोद में बैठते और अर्द्ध स्वर से तुतला कर अनेक बातें करते थे।

पगली के राजभवन त्यागने के थोड़े ही दिन उपरान्त एक दिन किरणसिंह परिचारिका की अँगुली पकड़ कर

उद्यान में भ्रमण करते थे दासी उनको मनमोदक बातें सुनाकर सुमन दे उनका मन सन्तुष्ट करती थी। कुमार ने कहा "क्यों रे वह पगली क्यों नहीं आई?" दासी ने कहा "क्यों, वह पगली आकर क्या करेगी?" कुमार ने कहा, मैं ऐसेही दौड़ २ कर उसकी गोद में जाऊंगा।"

दासी ने कहा, "हमलोग क्यों जाने देंगे?"

कुमार बोले 'वाह। जाने क्यों नहीं देगी। मैं दौड़कर उसकी गोद में चला जाऊंगा, वह मुझको बहुत चाहती रही। दासी ने कहा 'वह पगली है यदि तुमको पकड़ कर मारे तो।"

कुमार बोले "वह मुझको मारेगी क्यों। मुझको तो कोई नहीं मारता, मैं उसकी गोद में दौड़ कर जाऊंगा?"

परिचारिका ने कहा 'तुम उसकी गोद में कैसे जाओगे? हम लोग तो जाने नहीं देंगे।' बालकों को जिस वस्तु का निषेध किया जाता है, उसके निमित्त और भी व्यग्र होते हैं। परिचारिका की बात पर वह हठ करके बोले 'ना, मैं जाऊंगा।' दासी उन्हें भुलवाने की इच्छा से बोली कि "वह तो यहां नहीं है तुम कैसे जाओगे?'

कुमार ने कहा 'ना मैं जाऊंगा' दासी उनको मना करने की चेष्टा से बोली "वह देखो कैसा सुन्दर फूल फूला है।' फिर पगली की कथा भूल गये व्यग्र होकर पूछने लगे, "कहां?"।

दासी बोली 'वही जो, उस तालाब के किनारे है। देखो वही तो है।" किरण ने फिर पूछा 'कहां? ।

दासी ने कहा "देखो वही न है उस वृक्ष की ओट में पड़ गया है, वही दीख पडता है'। किरन ने कहा कि 'उस फूल को मै लूंगा, मैं जाऊंगा'। यह कहकर कुमार उसी ओर चले। दासी उनको पकड कर बोली कि 'ऐ बच्चे। वह तालाब के किनारे फूला है, तुम कैसे ला सकोगे? गिर पडोगे।" कुमार ने उसका हाथ छुड़ा कर भागने के निमित्त बल प्रकाश किया, किन्तु मुक्त न होने से कहा कि "मैं वह फूल लूंगा, नहीं पाऊंगा तो मां से कह दूंगा।" दासी पुष्करणी के तीर जाकर कण्टकमय केवडे के फूल को तोड़ने में विषम कष्ट देख कहने लगी, कि "लो बेटा यह जो अनेक प्रकार के फूल इसी जगह फूले है तोड़ देती हूं।"

किरण ने कहा 'नहीं, मै यह फूल न लूंगा मैं तो वही फूल लूंगा'।

दासी बोली "अच्छा तो मै उस द्वार पर जाकर एक पहरी को बुला लाती हूं, वही वहां जाकर फूल तोड़ लावेगा।

किरण बोले 'ना पहरी नहीं देगा, तुही ला दे।' दासी किरण के हाथ से किसी भांति छुटकारा न पाकर विवश कठिन कष्ट स्वीकार करने मे लाचार हो बोली कि 'अच्छा

आओ, तुमको उस पहरी के निकट रख कर मैं फूल तोड़ लाती हूं।"

चित्तोर का राजगृह ऐसे किले के आकार में बना है कि समस्त राजभवन ऊंची दीवारों से घिरा है। उस गढ़ के मध्य २ में भी जो २ स्थान और गृह हैं, वे पुष्प वृक्ष, और पत्थर के चित्र और फौआरों (जलयन्त्र) से सुशोभित हैं। उस उद्यान के मध्य में स्थान २ में गृह तक सुन्दर २ पथ चले गये हैं। गढ़ की चारों ओर चार प्रवेशद्वार हैं। हर द्वार पर बाहर और भीतर पहरी लोग सर्वदा पहरे पर नियुक्त रहते हैं। इन चार फाटकों को छोड़ गृहप्रवेश का अन्य द्वार नहीं है। गढ़ के बाहर चारों ओर फिर वृक्षसमूह से उद्यान वेष्टित है। इस उद्यान की चतुर्दिक् और दीवार नहीं है। ऊंचे २ लोहे के दण्डों से घिरा हुआ है और इनके द्वार भी लोहे के बने हुए हैं। जैसे राजभवन की दीवार में चार फाटक हैं, वैसे ही इस उद्यान के भी चार प्रधान प्रवेशद्वार बने हैं। किन्तु उनके अतिरिक्त इनकी स्थान २ पर और भी छोटे २ लोहे के द्वार हैं। चार प्रधान द्वार की भांति इन छोटे २ द्वारों पर प्रहरीगणों का आडम्बर नहीं था। हर छोटे द्वार पर सर्वदा केवल एक पहरा नियुक्त रहता था। किसी आततायी आदि की भीरुता के कारण प्रधान प्रवेशद्वार से आने जाने न फिर और [illegible] द्वार

राजमहल की दास दासी कभी २ इसी पथ से आते जाते थे। उनके सिवाय और किसी के आने जाने का यह पथ नहीं था। प्रथम इस उद्यान में प्रवेश करके, फिर गढ के द्वार को लांघ कर राजगृह में प्रवेश किया जाता था। आज इसी उद्यान में राजकुमार किरणसिंह परिचारिका के सहित भ्रमण करते हैं जिस तालाव के तीर केवडा फूला था, उसके दक्षिण प्रान्त में उपरोक्त प्रकार का एक छोटा द्वार था। परिचारिका ने वहां आकर द्वारपाल से कहा कि मैं उस तालाव के तीर फूल तोडने जाती हूं तुम क्षणमात्र कुमार को देखो। भाई, ऐसा ढीठ बालक तो देखा नहीं, जो हठ पकडता है सो किसी भांति छोड़ना जानताही नहीं।" किरण को पहरी के निकट रख कर दासी फूल तोडने चली। वृक्ष के निकट पहुँच हाथ फैला कर फूल तोडना चाहा कि अँगुली में एक काटा गड गया इससे उसने हाथ खींच लिया। चित्त में कुमार पर अत्यन्त क्रुद्ध हुई किन्तु फूल न लेजाने में निस्तार नहीं देखा तो फिर सावधान होकर फूल तोडने की चेष्टा की। अपने अचल द्वारा साव-धानी से डाली पकड कर धीरे २ फूल तोडा। किन्तु काटा चुभने से निस्तार न पाया। फूल लेकर ज्योंहीं आने लगी, कि उसका अचल काटे में ऐसा अँटक गया कि वह तुर्त तालाव मे गिर पड़ी। गिरतेही "मै मरी' मै मरी" कहकर चिल्लाने लगी। उसको सुन और समझ कर कि दासी जल

मे डूबती है प्रहरी कुमार को छोड कर दौडा हुआ तालाव के तीर गया, और आप्ने जल मे पैठ उसे खींच कर तीर पर लाया। भयभीत होकर दासी अधमरी सी हो गई थी। तीर पर आ सचेत होतेही अनेक प्रकार का क्रोध कुमार पर प्रकाश करने लगी। भाई ऐसा वालक तो देखा नहीं, जो जिद्द पकडता है किसी प्रकार नहीं छोडता। राजकुमार ठहरा हमलोगों को कुछ वोलना योग्य भी नहीं'। प्रहरी ने उसका हाथ पकड और खीच कर कहा कि 'चुप चुप, तेरी वात यदि कोई सुन ले तो। राजाओं के प्रति गुस्सा करना उचित नहीं, यदि किया भी तो हृदय मे रखना चाहिये'। प्रहरी उस को लेकर द्वार पर आ पहुंचा। किन्तु जिस स्थान पर कुमार को छोड गया था, वहां उन्हें नहीं पाया। एक दम भयभीत हो गया, प्रथम तो उसको यह आशङ्का हुई कि खेलते २ कहीं चला गया, दोनों घबडा कर उसको इधर उधर खोजने लगे, किन्तु पाया नहीं। तब समझा, कि किसी आर्य्य वस कोई दासी इस पथ से आई है, और कुमार का गहना देखकर उठा ले गई है। कुमार के अपने भवन से दासी के निकलने से अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ, कि राजा यह सुन कर न जाने कौन सा दण्ड देंगे। और रानियों के तिरस्कार का क्या उत्तर दूंगा यही विचारते हुए और २ अन्त पुर में गए। कंचुकी आने पर

रानियों के बोलने के प्रथमही विलाप कर बोली, कि मेरा कोई दोष नहीं है, मैं प्रहरी के निकट रख कर गई थी। किन्तु—किन्तु"—कमलादेवी आश्चर्य्यान्वित होकर बोलीं, "क्या बकती है। पागल तो नहीं हो गई?" दासी ने जब देखा कि मेरा तिरस्कार नहीं करती हैं, तो साहस पाकर बोली "मै शपथ करके सच कहती हूँ कि मैं कुमार को प्रहरी के निकट रख कर गई थी। होनहार को क्या करूं"। कमलादेवी डरकर बोलीं कि 'इस समय क्या दैवी दुर्घटना हुई?। क्या प्रहरी के निकट से कुमार कहीं गिर पड़ा?"

दासी बोली "ना ना, कुमार क्यों गिरेगा, मैं बलि जाऊँ। मै तालाब में डूब कर आज मर चुकी थी।" वे लोग हँस कर बोलीं कि "तो फिर कैसे बच गई?"

दासी बोली "वही प्रहरी मेरा चिल्लाना सुन कर दौड़ा हुआ गया और मुझ को बाहर खींच लाया। आप लोग विचार कर देखिये, कि इसमें कुछ मेरा दोष है?"

कमलादेवी बोलीं, "कौन कहता है कि तेरा दोष है, जल में गिरी थी, प्रहरी खींच कर बाहर लाया, इसमे और दोष क्या?"

दासी बोली, "मै भी तो यही कहती हू, कि इसमें और दोष क्या है? तो भी मैं आप लोगों के तिरस्कार के भय से डर गई थी।"

कमलादेवी ने कहा, "इससे डर क्यों गई ? तू मरते २ बच गई है, हमलोग सुन कर और प्रसन्न हुईं, भला तिरस्कार क्यों करेंगी ?

दासी ने कहा, "मैं भी तो वही कहती हूं कि आप लोग माता पिता हैं, आप लोग क्षमा नहीं करेंगी, तो दूसरा कौन करेगा ? तो अब कहो कुमार कहां हैं ? उन्हीं के हेतु मैं यह फूल तोड़ कर लाई हूं।"

कमला ने कहा, "कुमार कहा है इसको हमलोग क्या जानें ? तूही न कहती है कि प्रहरी के निकट रख कर गई थी ?"

दासी बोली, "मैंने समझा कि आप लोगों ने क्षमा किया, और आप लोगों ने सुन भी लिया कि हमलोगों का कुछ भी दोष नहीं, फिर क्यों ? भला अब तो क्षमा करो"

कमलादेवी विरक्त और क्रुद्ध होकर बोलीं कि मालूम होता है कि, तुम्हीं सभों के दोष से कुमार को कहीं चोट लगी है ? क्या हुआ है खुल कर कहती क्यों नहीं ? और हमलोग तेरा यह "क्षमा करो" सुनना नहीं चाहतीं।"

दासी ने कहा, "मैं बलि जाऊँ। कुमार को कुछ नहीं हुआ।"

कमला ने कहा, "तब क्या ?"

दासी बोली, "कुमार को अकेला छोड़ कर प्रहरी मुझ को निकालने गया था यही कहती हू।"

कमला—"अकेला छोड़ कर गया था तो क्या हुआ ?"

दासी—"और कुछ नहीं हुआ, केवल हम्हीं लोगों को धोखा हुआ है।"

कमला—"तुम लोगो को कैसे धोखा हुआ ?"

दासी—"कुमार को अकेला देख कर हमलोगो को धोखा देने के निमित्त कोई उन्हें लेकर चला आया है।"

कमला—"इसमे तेरे धोखा होने की क्या बात है ?"

दासी—"आप लोगो के निकट लावेगा, और आप लोग मुझ पर क्रोध करेंगी।"

कमला—"क्या ? हमलोगो के निकट तो कुमार को कोई नहीं लाया।"

दासी को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने समझा कि ये लोग मेरे साथ हँसी करती हैं। वह बोली कि, "अपराध क्षमा करो, फिर कभी कुमार को मैं अकेला नहीं छोडूंगी। बतलाओ वह कहा है मैं उन को फूल दूंगी"। महिषीगण आश्चर्य्यान्वित और डर कर बोलीं कि "तूने किस के निकट छोड़ा था ? वह कहां ले गया, हम लोग यहां से कैसे जाने?" दासी कमलादेवी के चरण पर गिर पडी और बोली, कि 'यथेष्ट दंड हो चुका है अब फिर मै कभी ऐसा कर्म्म नहीं करूगी। अब कहिये कुमार कहां है?" महिषीगण उसके इस कहने पर अधिकतर घबडाई

तथा डरने लगीं और दासी को आज्ञा दी कि यथार्थ घटना जो हुई है उस को सविस्तर कह। क्रमशः जो घटना हुई थी उसे दासी ने निवेदन किया, सुन कर वे लोग भयभीत हो कर गृह के प्रत्येक दास दासी और पहरीगण से कुमार को पूछने लगीं। सभों ने कहा कि "हम नहीं जानते" कुमार के निमित्त राजभवन में कोलाहल मच गया। वे सब लोग उद्यान और गृह २ में चारोंओर ढूंढने लगे। शंका की कि "कुमार अकेला खेलते २ कहीं चला गया"। परन्तु सबको एक यह भय उत्पन्न हो गया कि कहीं तालाव इत्यादि में गिर न पड़ा हो, इसी भय से सब भीत हो गईं। क्रमशः यह समाचार राजा समरसिंह ने सुना। उन्होंने व्याकुल-चित्त होकर स्वयं कुछ मनुष्यों को साथ ले राजगृह की प्रत्येक पुष्करिणी प्रत्येक मच प्रत्येक गृह में जा जाकर अनुसधान किया। इस आशंका में कि कहीं जल में डूब गया हो, प्रत्येक पुष्करणी मे दो दो तीन तीन वार पनडुब्बों से खोज कराया किंतु हाय। उन लोगों का परिश्रम व्यर्थ हुआ। उद्यान, वाड़ों इत्यादि मे खोजते २ संध्या हो गई, तथापि कुमार का पता न लगा। तब समरसिंह शोकपूर्ण हृदय से परिचारिका को सन्मुख बुलाकर उससे नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे। जब प्रहरी तुझ को निकालने गया, तो किरण जिस स्थान पर रहा, उसके आने में कितना विलम्ब

हुआ इत्यादि अनेक प्रश्न किये उसने जिस प्रकार से पहिले कहा था, उसी भांति फिर इस समय भी वर्णन किया। समर सिंह जिस समय उससे पूछ रहे थे, उस समय वहां अनेक लोग उपस्थित थे। यह सुन कर कि दासी किरण को पहरेवाले के निकट रखकर फूल तोड़ने गई थी, एक मनुष्य ने कहा कि "मिथ्या बात है, दासी कुमार को रख कर फूल तोडने नहीं गई, वरन प्रहरी फूल तोडने गया था। क्योंकि उस समय मैं भी उस राह से जाता था तो फाटक पर पहरी को मैंने नहीं देखा था, द्वार पर केवल दासी को देखा कि कुमार को गोद में ले कर फिरती थी"। दासी आश्चर्य से बोली कि "कब गोद में लिये हुए देखा था? जितनी देर उद्यान में मैं किरण के निकट रही, तिसके मध्य कुमार एक बार भी मेरी गोद में नहीं बैठा, उसका हाथ पकड कर मैं फिराती थी। तुम लोग जो कहते हो कसम खाकर कहो, और मैं भी कसम खाती हूं। और फूल तोडने गई थी कि नहीं, इसका भी प्रहरी को साक्षी दूंगी"। प्रहरी ने दासी की बात का समर्थन करके कहा कि "यह यथार्थ है कि दासी कुमार को मेरे निकट रखकर फूल तोड़ने गई थी। मुझको जान पडता है कि जब मैं तालाब से इसको निकालने गया हूं, तब किसी अन्य दासी की गोद में कुमार को देख कर तुमको इसी दासी का भ्रम हुआ है। किन्तु सो भी कैसे

हुआ? सभी दासियां तो कहती हैं कि "कुमार को नहीं देखा। उन सभों की बात चीत में अकस्मात् दो तीन प्रहरी एक साथही बोल उठे, कि "तब तो एक बात और हो सकती है, आज पगली राजभवन में आई थी, फाटक शून्य और कुमार को अकेला देख कर सम्भव है कि वह उसी द्वार से ले गयी हो।" इस बात पर दासी व्यग्र हो कर बोल उठी कि "यही होगा, यही ठीक है। एक दिन पगली मेरी गोद से कुमार को लेने आई थी मैंने निषेध किया उसको नहीं दिया। उससे वह अति क्रुद्ध होकर कुछ बकती हुई चली गयी थी। उस समय उसकी बात का अर्थ मैंने नहीं समझा, कि क्या कहा अब मैं समझ गयी।" यही कह कर जो २ बात उससे और पगली से हुई थी सब समरसिंह से सविस्तर कह गयी। इस बार वे समझ गये कि कुमार को पगली ले गयी है। मन में विचारने लगे कि इसके स्मरण न होने से व्यर्थ गृह और निकट २ के स्थान देखने में वृथा इतना समय नष्ट हुआ, जिन्होंने पगली को गृह में प्रवेश करते देखा था, उनको बुलाया और कहा कि "जो पगली को प्रवेश करते हुए देखा था तो इतनी देर तक क्यों नहीं कहा?" उन लोगों ने कहा "कि उसको प्रवेश करते हुए देखा था, किंतु हम लोगों को उस पर कोई सन्देह न हुआ, क्योंकि पगली

कुमार को लेकर भागती, तो द्वार लांघने के समय किसी न किसी पहरेवाले की दृष्टि अवश्यही पडती, किंतु हम-लोगों में से किसी ने उसको गढ से बाहर जाते नहीं देखा परंतु औरों से जब सुनते है कि एक छोटा सा द्वार सूना था तब मन में आता है कि उसी द्वार से पगली भागी होगी, हम लोगों में से किसी ने देखा नहीं।"

समरसिंह ने इस समय व्याकुल होकर पगली की खोज में चारों ओर लोगों को भेजना आरम्भ किया और आप भी उसको खोज में चले। यह सुन कर कि कुमार को पगली ले गई, मंगलाचार्य्य मन में कल्पना करने लगे कि "यदि पगली की गोद में उस बालक के देने को निषेध न करते, तो यह दुर्घटना न होती। निषेध करना ही विप-रीत हुआ यह उसी परामर्श का फल है।

तीसरा परिच्छेद।

पगली किस प्रकार से कुमार को लेकर भाग गई थी, उसको हम इस परिच्छेद में प्रकाश करेंगे।

राजभवन त्यागने के समय से पगली अनेक पथ और वन २ भ्रमण करती और भिक्षाद्वारा उदरपालन करती थी, किन्तु किरण को न भूली। थोडे ही दिनोपरान्त उस को फिर किरण के देखने की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो गई।

परन्तु उसने सौतिनों के वशीभूत स्वामी के भवन में जाना अपमानजनक जान कर, अपने चित में यह स्थिर किया कि गढ़ के बाहरही से किरण को देखूगी। पगली किरण के देखने के निमित्त उसी दिन राजगृह के समीपवाले राजपथ पर अकेली भ्रमण करती रही । किरण अपनी परिचारिका के संग थे। पगली उन्हें दूरही से स्नेहमय नेत्रों से देखा करती थी । किरण को देखकर उनके निकट आने के लिये पगली अत्यन्त व्यग्र हो उठी । उसके चित्त से पूर्व्व का यह ध्यान कि "सौतिनों का गृह है" जाता रहा । वह राजपथ को त्याग कर राजगृह के सन्मुख चली । द्वार पर पहुंचते ही एक पहरेदार ने कहा कि "पगली ! तू इतने दिनों पर आज यहां कैसे आई ?" "पगली" कहने से वह अत्यन्त क्रुद्ध होती थी । उसी क्रोध में धीमे २ बकती और कुछ भुनभुनाती हुई वहां से उद्यान में जाकर बोली, कि "इसकी ढिठाई तो देखो ! दास होकर रानी को पगली कहता है । भला स्वामी तो सौतिनवश होकर कहते ही हैं अतएव मैं उनसे बुरा नहीं मानती" । किरण और परिचारिका जहां थे, पगली उसी ओर आई पर उनको पाया नहीं । चलते २ कुछ दूर और आने पर अकस्मात् चिल्लाने का शब्द उसके कान में पड़ा और एक पहरी को उसने उसी ओर दौड़ते देखा । पहरी को जाते देखकर किरण

भी बन्धनमुक्त अश्व की भांति अकेले इच्छानुसार फाटक में इधर उधर स्वतन्त्र खेलने लगे। किरण को अकेले देखकर पगली ने आशातीत फल पाया। वह प्रसन्न हो शीघ्रता से उनके निकट आकर उपस्थित हुई। द्वार को शून्य देखकर सहसा उसके हृदय में एक नूतन आशा का सञ्चार हुआ। उसने आज अपने बहुत दिनों की आशा पूर्ण करने का सुयोग देखा। किरण को गोद में लेकर चुम्बन करती हुई पगली बोली, "आहा। ऐसे बच्चे को मुझे नहीं देते हैं। बच्चा। तू मेरा बेटा, मेरा माणिक्य, मेरा धन, मेरा सर्वस्व है। मेरे सदृश तुझे कोई भी प्यार नहीं करता। आओ तुम्हें एक फुलवारी दिखलाऊँ, बड़ी सुन्दर है।" किरण बोले पहरी "मेरे हेतु फूल लाने गया है वह फूल ले लूं तो चलूं।"

पगली ने कहा "उस फुलवारी में इस फूल से भी अधिक सुन्दर २ फूल लगे हैं, कैसे २ पक्षी है, मैं तुमको सब देखाऊँगी, वहा इससे भी सुन्दर फूल पाओगे।" किरण हर्ष के साथ बोले "तब चलूंगा—कहां है?" पगली उनको लेकर फाटक के बाहर हो बोली "किन्तु तुम रोना मत नहीं तो वे लोग तुमारा रोना सुन सुनकर तुमको मेरी गोद से छीन लेंगे। मेरे संग फुलवारी देखने तुमको नहीं जाने देंगे" पगली की गोद में मुझको कोई नही देता था, कि-

रण इस बात को समझते थे, इसी कारण उन्होंने सिर हिला कर कहा कि "ना'। पगली ने कहा "तब तुमको लेकर दौडी हुई वह फुलवारी देखाने चलती हूँ।" पगली अत्यन्त वेग से उसी क्षण किरण को लेकर भागी। उसने राज-पथ परित्याग कर निर्जन पथ का अनुसरण किया और हाफती हुई नदीतीर की ओर चली। वहा पहुँच उसने देखा कि अनेक नौका चलती हैं। उनमे से एक नाव के माझी को उसने पुकार कर कहा कि "मैं तुमारी नाव पर चलूंगी इसे तीरे लगाओ' इस समय कुमार ने पूछा कि वह फुलवारी कहा है?"

पगली बोली "इसी नाव पर हमलोग फुलवारी देखने चलती हैं' कुमार फिर कुछ न बोले।

माझी ने कहा कि "हमलोग बहुत दूर जायँगे।"

पगली बोली "तुम लोग जहा चलोगे हम भी वहीं चलेगी। शीघ्र आओ, विलम्ब होने से मेरी सोतिनें आकर मेरे बच्चे को ले लेंगी'। माझी ने नौका तीर पर लगाई और पगली को नौका पर बैठाकर, वह चल पड़ा। नौका में बैठ, पगली ने कमर से एक वस्त्र की थैली निकाली, और अपने भिक्षासञ्चित धन में से कई एक रुपये माझी के हाथ में देकर बोली कि 'पहुचने पर और भी दूँगी।" कुछ दूर जाकर कुमार ने फिर पूछा फुलवारी कहा है,' प-

गलो ने फिर उनकी तीर के उद्यानों को दिखाकर भुलवाने की चेष्टा की।

क्रमशः सन्ध्या हो गई। पश्चिम की ओर गगन में सध्या का तारा दिखाई देने लगा। इस समय के मन्द २ पवन से अल्प २ तरङ्ग उठकर नौका के पेटे में आकर टकराने लगीं। तरङ्गभङ्ग से झप झप शब्द से डांड़ फेंक २ करके खेनेवालों ने उच्चस्वर से गीत गाना आरम्भ किया। नौका इस समय बहुत दूर जा रही है। कुमार भी 'फुलवारी २' कहते २ थक कर पगली की गोद में सो गये। आज कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा है। चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ता। चांदनी से मानो विलग होकर इस समय तरङ्गमाला भी नहीं हँसती, ऐसा क्यों? । हाय। जान पड़ता है कि चन्द्रमा की शीतल किरण आज इस पृथ्वी को ठंढी करने न आवेगी। पूर्व्व दिशा गगन में देखो। चन्द्रमा के स्थान पर मेघ ने आकर अधिकार किया है। क्रमशः देखतेही २ चारो ओर मेघ व्याप्त हो गया। पवन का वेग कुछ बढ़ने लगा और उसके सङ्ग तरङ्ग भी उठने लगीं। क्षणकाल की उपरान्तही पवन की गति अस्थिर हो गई, कभी दक्षिण कभी पश्चिम और कभी दूसरी ओर से वायु चलने लगती थी। उसके संग मध्य २ में मेघ का गर्ज्जन और वज्र का कड़ २ शब्द होने लगा। माझियों को फिर कुछ देखने भ-

थवा सुनने का उपाय न रहा। वायु के प्रबल वेग और उच्च-तरङ्ग के उठने से नौका में जल प्रवेश करने लगा। सब मांझी व्यग्र होकर नौका को तीर पर लाने की चेष्टा करने लगे। विद्युत् की ज्योति और किञ्चित् अनुमान से वे लोग नौका को तीर की ओर ले चले। कुछ दूर नौका आगे बढ़ी कि एकही तरङ्ग से उन लोगों का सब परिश्रम व्यर्थ हो गया। अति वृष्टि और आँधी के शब्द से कुमार की निद्रा भङ्ग हो गई। वे माता की गोद में अपने को न देख और क्षुधा से पीड़ित होकर उच्चस्वर से रोदन करने लगे। पगलो ने उनको भुलवाने की इच्छा की। क्रमशः रोते २ थक कर वे फिर सो गये।

इधर मांझी लोग यह कुलक्षण देखकर अत्यन्त भय-भीत हुए और फिर नौका तीरे लगाने की चेष्टा करने लगे किन्तु पुनः एक तरङ्ग ने आकर बाधा की। बारम्बार इसी प्रकार बाधा पाकर अन्त में वे लोग निराश होकर उच्च-स्वर से ईश्वर का नाम लेने लगे। देखतेही देखते फिर एक तरङ्ग आई। फिर दूसरी, फिर तीसरी — तले ऊपर दो तीन लहरें ऐसी प्रबल उठीं कि नौका अचानचक उलट गई। नौकारोही सब जल में गिरपड़े। पगली के डूबने के समय कुमार उसकी गोद से गिरकर दूर जा पड़े। मल्लाह प्रभृति जो तैर सकते थे पार जाने के हेतु हाथ पैर मारने लगे।

अन्धकार के कारण कोई किसी की सहायता न कर सकता था ।

इधर राजगृह के लोग पगली के अनुसन्धान में चले कि थोड़े ही देर में सन्ध्या हो गई। उसके संगही आँधी भाई और राशि की राशि धूलि उड़ २ कर उन लोगों के मुख और नेत्रों में प्रवेश करने लगी। उस धूलि और भयङ्कर अन्धकार में निकट की वस्तु भी देखना उनलोगों को कठिन हो गया। क्रमशः आंधी के संग वृष्टि भी आरम्भ हुई और वृक्ष सब टूट २ मरमरा कर गिरने लगे।

जो लोग चित्तौर के बाहर स्थान २ पर खोजने गये थे वे अत्यन्त कष्ट से नगर में लौट आये। वहा पुरानी २ अट्टालिकाओं के जीर्ण भागों के गिरने का शब्द 'धड २ पड २ धम २' उन लोगों के कर्णगोचर होने लगा। किसी अट्टालिका का जीर्ण अंश किसी के अंग पर गिरते २ बच जाता था। भूमि पर गिरे हुए वृक्ष से ठोकर लग कर किसी को गुरुतर आघात हुआ, कोई घोर अन्धकार में पथ भूल गया इसी प्रकार राजकुमार के अनुसन्धान में कष्ट भोगने के कारण विशेष खोज करने में वे लोग असमर्थ हो अतिकष्ट से राजभवन को फिर आये। आने के समय सबको परस्पर यह आशा होने लगी, कि दूसरे पथ से कोई व्यक्ति कुमार को अवश्य राजगृह में ले गया होगा।

किन्तु सब लोगों के फिर आने पर भी उसी झड़ वृष्टि अन्धकार और कुसमय में विचारे समरसिंह निज प्राणतुल्य बच्चे को खोकर, वातक्षुभित सागर में वायुग्रस्त नौका की भांति उन्मत्त होकर इधर उधर फिरने लगे। प्रत्येक वायु-शब्द को सुनकर वे अपने पुत्र का रोदन अनुमान करते थे, अन्धकार में दूर के छोटे २ वृक्ष देखकर उनको अपने पुत्र ही का भ्रम होता था। ज्यों २ निराश होते त्यों २ और भी अधिक उन्मत्त होते जाते थे। हा विधातः! आज तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई। अदृष्ट! तुमने महाराज की बड़ी बड़ी योग्यता का परिहास करके आज अपना कठोर लेख सार्थक किया। तुमने समरसिंह की गोद से उनका सन्तान ले लिया और आज बिचारे राजा के वर्तमान आनन्द और भविष्यत् आशा को नष्ट कर दिया।

फिरते २ वे कुछ देर में नदी के तीर पर पहुंचे। देखा कि वही प्रशान्त मृदुल शब्द करनेवाली नदी इस समय लोकक्षयकारिणी मूर्त्ति धारण कर क्रोध से भयङ्कर तर्जन गर्जन करती है। उसके मध्य में एक भी नौका नहीं है। तीर पर खाली नौका बांध २ कर देशीय मल्लाहगण इस कुसमय में अपने २ स्थान पर गये हैं। केवल तीरस्थ व्यापारियों की नौका के लोग रह गये हैं। सब लोग कुसमय देखकर सावधान हो गये थे। जो लोग सचेत न थे

वे इस क्षण उसका फल भोग रहे थे। उन्होंने एक महाजनी नौका के निकट आकर मांझी से पूछा कि तुमने इस नदी की तीर से एक स्त्री को एक सुन्दर बालक गोद में लिये हुए जाते देखा है ?" मांझी उनका उन्मत्त वेष देखकर बोला "यह पागल है क्या ? हमलोग नदी पर रहते हैं, दूर से कितनी स्त्रियों की गोद में बालक देखा करते हैं परन्तु यह नहीं देखने जाते कि बालक सुन्दर है, कि नहीं, और उसका बयस कितना है अथवा स्त्री कैसी है" । समरसिंह ने उससे और दो एक प्रश्न किये किन्तु फिर भी उसी प्रकार का निरर्थक उत्तर पाकर उसे छोड़ एक दूसरी नौका के निकट जा उसके मांझी से भी उसी प्रकार पूछा । उसने कहा कि "हमलोग अपनी २ नौका में व्यस्त रहते हैं, तीर से कौन किसको गोद में लेकर कब कहां जाता है, इसके देखने का सावकाश हमलोगों को नहीं रहता ।" वहां से वे और एक तीसरे मांझी के निकट आये । वह मांझी बोला कि 'महाशय । हमलोग विदेशी हैं, अन्न की चिन्ता में अपने देश से यहां आये हैं, हमलोगों से ऐसी ऐसी बात पूछना व्यर्थ है क्योंकि हमलोग कुछ नहीं बतला सकते ।" समरसिंह ने किसी प्रकार उन विदेशियों के निकट भी कुछ अनुसन्धान न पाया, और स्वदेशी मांझियों को भी वहां न देखा कि उनसे कुमार की बात पूछें ।

वे यही पूछते थे कि "पगली तौर से होकर कुमार को ले गई है कि नहीं ? किन्तु हाय । उन्होंने यह नहीं जाना कि अभी एकही क्षण पूर्व दूसरी नटी से उनका किरण गया है।

समरसिंह के मनमें यह बात कभी न आई थी कि पगली कुमार को लेकर चित्तौर नगर त्याग चली जायगी ।

किसी प्रकार कुमार के प्राप्त न होने पर महाराज भी एक बार गृह लौट आने को बाध्य हुए । मायाविनी आशा ने उनसे कहा कि "क्यों व्यर्थ इस समय यहां घूमते फिरते हो ? तुम्हारे हृदयमणि को इस समय दूसरी ओर से दूसरा मनुष्य गृह पर फेर ले गया है । कुमार इस समय निज माता की गोद में बैठकर बातचीत कर रहे हैं । राजभवन में चारों ओर आह्लादसूचक हास्य मच गया है, और तुम यहां घूमते फिरते हो । जाओ शीघ्र जाओ, राजगृह में जानेही से कुमार को देखोगे" । आशा की बात से महाराज उसी समय राजभवन को चले । स्थिर सागर जैसे प्रबल वायु के वेग से भयानक हो जाता है, आज उसी प्रकार राजमूर्त्ति को शोकाभिभूत देखकर किसका पाषाणहृदय व्यथित न होता होगा ? वे पथ में आते हुए 'कुमार कुमार' शब्द से आगे चार घाटों पर पुकारने लगे । कुमार ने उन का उत्तर न दिया और गृह में आने पर भी कुमार को न पाया । देखा कि उनकी माता की गोद शून्य है । उनका

माता कंपितहृदय, और सजलनयन से उन्हीं की प्रतीक्षा करती है। इसी आशा से कि "वे कुमार को लेकर फिर आवेंगे" रानीगण प्रतिशब्द पर उन्हीं के आगमन की बाट जोहतीं थीं। महाराज गृह पर आये, आशा ने भी उनको त्याग दिया। वे हताश होकर गिर पड़े।

महाराज के निराश और अकेले फिर आने पर महल में और भी हाहाकार मच गया। उस रात्रि किसी को भी निन्द्रा न पाई। अब कौन किस प्रान्त में कुमार को खोजने जायगा, इस प्रबन्ध विचार में सारी रात बीत गई और प्रभात हो गया। किसी ने कहा कि "पगली किसी पर्वत की गुफा में होगी, वहीं लोगों को भेजो" किसी ने कहा कि वहां क्यों होगी, पगली पर्वत पर जाने से बहुत डरती थी, पर्वत पर वह कभी न गई होगी, और कहीं होगी,। इसी प्रकार अनेक मनुष्य अनेक बातें कहने लगे। किन्तु क्या आश्चर्य है। कि यह बात किसी के भी मुख से न निकली, कि पगली चित्तौर से भागने के समय नौका से भी जा स कती है। भोरहो फिर कुमार की खोज में लोग चले। कुछ काल उपरान्त कई एक मनुष्य पगली का मृत देह लेकर राजभवन में लौट आये। समरसिंह के मस्तक पर मानो बज्राघात हो गया। उन्होंने अनुमान किया कि पगली के संग कुमार की भी मृत्यु हो गई होगी। लोगोंने क-

म्पित स्वर से कहा कि 'हमलोगों ने कुमार को खोजते २ नदी के तीर पर इस मृतक देह को देखा था वहीं से लिये आते हैं।'

महाराज ने पूछा 'तो क्या वहां कुमार को नहीं देखा?' उन लोगों ने कहा जी 'नहीं'।

महाराज बोले "तो कुमार क्या हुआ ? और पगली कैसे मरी ?"। वे लोग बोले, जान पड़ता है कि वह नाव पर बैठ कर, कल्ह उसी घोर वृष्टि और आँधी के समय जाती थी नौका डूब गई है'। समरसिंह ने वही सम्भव जान कर रात्रि की आँधी का समस्त सम्वाद लेने के निमित्त लोगों को भेजा। उन्होंने सब समाचार जान फिर आकर खबर दी कि 'हमलोग बहुत दूर तक गये थे वहां एक चट्टान पर एक टूटी हुई नौका देख आये हैं। रात्रि की आँधी में उसी जगह नौका टूट गई है, और मल्लाहों से जो पूछा तो उन लोगों ने भी कहा कि "एक स्त्री तीन चार वर्ष का एक बालक गोद में लिये हुए नौका पर सवार होकर जाती थी, उसको हमलोगों ने भी देखा था।" उन लोगों ने जिस प्रकार वर्णन किया, उससे तो वही स्त्री पगली और वह बालक कुमार मालूम होते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। पगली डूब कर प्रवाह के वेग से तीर पर आ लगी किन्तु कुमार के विषय में कुछ नहीं कह सकते कि वे क्या हुए।"

से भी सुखी देख कर उनके उसी सूखे हुये अधर पर हंसी की रेखा दीख पड़ी। वे उसकी बात का उत्तर न देकर अश्रु पूर्ण लोचन से उसका मुख चुंबन कर फिर चिन्ता में मग्न हो गये। कुछ देर बाद फिर बालिका ने अंगुली से दिखाकर कहा 'देखो देखो। बाबा, वह जल में कौन खड़ा होकर हम लोगों की ओर देखता है।' वे उसी ओर देखने लगे, एक मनुष्य सन्यासी प्रातःकाल की क्रिया कर उनलोगों की ओर दृष्टि किये हुये जल से निकला आता था। सन्यासी ने उन दोनों की सब बात सुनी थी। वे क्रमशः उन लोगों के निकट ही आ गये। सन्यासी को देख बालिका के पिता ने उठ कर प्रणाम किया। वे आशीर्वाद देकर बोले "मेरे साथ आओ।' बालिका के पिता ने अकस्मात् इस बात से आश्चर्यान्वित हो कर कारण पूछा। सन्यासी ने कहा "इस समय कारण मत पूछो फेर कहूंगा।" बालिका के पिता को इस बात से अधिकतर आश्चर्य हुआ किन्तु वे कन्या और अपने पथ के सहारे उसी सन्दूक को लेकर सन्यासी के पीछे चलने लगे।

नगर से चार पांच कोस दूर जंगल के किनारे [illegible] छोटी छोटी पर्वतश्रेणियां हैं। उनमें से एक [illegible] ऊपर सन्यासी की कुटी थी। इसी कुटी [illegible] सन्यासी को अपने साथ ले आये। [illegible]

असभ्य मनुष्यों के अतिरिक्त इस पर्वत पर सचर और कोई दीख न पड़ता था। केवल कभी २ कोई अजमेर से दिल्ली जाने के समय इसी पर्वत से जाता। कारण यह था कि इस यात्रा का दूसरा सुगम पथ रहने पर भी इस पर्वत के पथ से शीघ्र पहुँचने के कारण, किसी विशेष प्रयोजन होने से लोग कष्ट कर के भी इसी मार्ग से जाते थे; इस पर्वत पर हम लोगों को फिर भी आना होगा अतएव हमने ऊपर इतना वर्णन कर दिया है।

सन्यासी को आते देख प्राय: दश वर्ष का एक बालक हंसते २ 'पिता पिता' कहता हुआ उनके निकट आकर बोला 'पिता जी आप तो इस कुटी को त्याग कर कहीं नहीं जाते थे, आज इतनी रात्रि रहते ही नदी स्नान करने गये तौभी इतना विलम्ब करके आये। फिर मैं आपको अकेले जाने न दूंगा–ये लोग कौन हैं?" सन्यासी बोले "अच्छा मैं फिर अकेले कहीं न जाऊंगा, अब से तुमको संग लेकर जाया करूंगा, ये लोग मेरे अतिथि हैं, इस समय यहीं रहेंगे"। अतिथि सुन कर बालक को अतिशय आह्लाद हुआ और शीघ्र ही अतिथिसेवा के उद्योग में चला गया। कुटी में आकर बालिका के पिता ने पूछा कि "कि आप जिस कारण हमें लिवा लाये हैं सो कहिये"। सन्यासी ने कहा कि "कहता हूं। प्रथम तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो। तुम कहां से यहां आते हो?"

वालिका के पिता ने कहा कि "चमा करो! मुझे यह बतलाने की इच्छा नहीं है"।

सन्यासी ने कहा "उसे मै जानता हूं केवल परीचा के निमित्त मैने पूछा था, तो क्या तुम देश त्याग कर छद्मवेश मे यहां आये हो?"

वालिका के पिता बोले 'आपने किस प्रकार जाना?'

सन्यासी ने कहा "तुम से कन्या से जो बातचीत होती थी उसे सुनकर मुझको इसी प्रकार का अनुमान हुआ है। मेरी भी एक दिन यही दशा हुई थी राह में वेष वदल कर मै फिरता था, किन्तु उस समय भी मैने अपना देश त्याग नही किया। अस्तु सब जाने दो—तुम को किस निमित्त मैं यहा ले आया सो कहता हूं, तुम छद्मवेश में रहने की इच्छा करते हो?"।

पिता बोले 'हा'।

सन्यासी ने कहा "यह कुटी अति निर्जन है, इस स्थान पर निःशंकचित्त से तुम बास कर सकते हो, इसी निमित्त तुम लोगो को मैं इस स्थान पर ले आया हूं'। बालिका के पिता ग्लानि करके बोले 'मैं समझता हूं, कि हमलोगों को आश्रयहीन देख कर आप को दया हुई है, इसी हेतु अपने कुटी में हम लोगो को आप आश्रय देते हैं, किन्तु यहां रहने की मेरी इच्छा नही है, इसमें आप लोगों को असुभीता होगा।"

सन्यासी ने समझा कि बालिका के पिता किसी के अनुग्रह के इच्छुक नहीं है, बोले कि "हम लोगो के निमित्त तुम चिन्ता मत करो। हम लोगो को कोई असुभीता नहीं होगा। तुमारे मन का भाव मैं यथार्थ बूझता हूं। तुम किसी के निकट अनुगृहित होना नहीं चाहते, किन्तु दूसरो के साथ मेरी तुलना मत करो। मै सन्यासी हूं, तुमारे पितृतुल्य। मै तुमारे निकट अनुग्रह की प्रार्थना करता हूं, तुम नहीं करते हो। वाञ्छा पूर्ण नहीं करने से मेरे मन में कष्ट होगा"। बालिका के पिता सन्यासी और योगी लोगों को अतिशय भक्ति और श्रद्धा करते थे। इस भय से कि कुटी में न रहने से कदाचित् सन्यासी क्रुद्ध हों, वे उनके आज्ञोल्लघन करने में समर्थ न हो कर उस स्थान पर रहने में सम्मत हुये। उन लोगों को आहारादि से सन्तुष्ट करके वह बालक, बालिका को संग ले अपने खेल की सामग्री दिखाने लगा। दोनो में परस्पर अनेक प्रकार की बातचीत होने लगी। बालिका बोली "तुम लोगो के घर के नीचे नदी नहीं है क्यों? हम लोगो का घर तो ऐसा नहीं था"।

बालक बोला—"तो तुम लोगो का घर कैसा रहा भइ?"

बालिका ने कहा—"हम लोगों का घर नदी के तीर

पर था। हम लोग घर पर से नदीजल का कैसा उथला उथ्ली करते, हिलोरा मारते कैसा सुन्दर देखते थे। बाबा उस घर को नाव कहते थे, उस घर में मैं सर्वत्र कैसा घूमती फिरती थी"।

बालक ने पूछा—"तुम कभी हम लोगो जैसे घर में नहीं रही हो ?"

बालिका बोली—"ना"

बालक ने पूछा—"किन्तु ऐसा घर कभी देखा है ?"

बालिका बोली—"देखा क्यों नहीं ? इससे भी अधिक बड़े २ घर देखे हैं, हम लोग घर पर बैठे २ नदी पार इस प्रकार के अनेक घर देखते थे"।

बालक ने पूछा—"तो उस घर को देखने के हेतु जाने की तुमारी इच्छा नहीं होती थी ?"

बालिका बोली—"इच्छा तो होती थी, और मैं बाबा से कहती थी—कि बाबा वह सब मैं देखने जाऊंगी"।

बालक ने पूछा—"वहां रहने की तुमारी इच्छा होती है ?"

बालिका—"क्यों नहीं"।

बालक—"तो तुम वह घर छोड़ कर क्यों आई ?"

बालिका—'बाबा चले आये इसी कारण मैं भी चली आई"। बालक उत्साहभंग हो कर बोला "तो तुम हमारी कुटी में रहने की इच्छा नहीं करती हो ?"

बालिका ने कहा—"बाबा जहां रहते हैं मुझ को भी वहीं रहना भला मालूम होता है"।

बालक ने कहा—"तो तुमारे बाबा यदि जायगे तो तुम भी चली जाओगी"।

बालिका बोली—"हां"

बालक ने कहा—"अच्छा, आओ अब मैं तुम्हें अपना हरिण दिखाऊं'। यह कह दिलीप शैलबाला का हाथ पकड़ कर कुटी से बाहर हुये। कुटी से बाहर होते ही बालिका, निकट में २ मोरों को देख कर बोल उठी "देखो देखो। कैसा सुन्दर पक्षी है। मैं जाती हूं—इन में से एक को पकडूंगी'। बालिका मोर पकडने को दौडी, मोर भी तुरत भागा। दिलीप बोले 'मैं मोर पकड़ देता हूं तुम दौडो मत'। किन्तु बालिका ने उनकी बात न सुनी। दिलीप भी उसके साथ चले। कुछ दूर जाकर पर्वतीरास्ते में चलने का अभ्यास न होने के कारण पत्थर से ठोकर खाकर शैलबाला गिरने लगी। दिलीप ने तत्काल ही उसी अर्द्ध-पतित अवस्था में गिरते २ शैलबाला को पकड़ लिया और पूछा कि 'कहीं चोट तो नहीं लगी,' बालिका ने कहा "ना' इतना कह उस पत्थर को बारम्बार पैर से मारने लगी। दिलीप उसे और नाम ले कर मयूर को पुकारने लगे, मयूर आया। शैलबाला आश्चर्यान्वित और दुः

बिजली चमक रही है। बोध होता है कि इस समय अत्यन्त वृष्टि होगी।

किन्तु दीपज्योति की सहायता से इस समय भी कुटी में अन्धकार नहीं है। बालक और बालिका दीप के सन्मुख बैठ कर खेल रहे थे। सन्यासी और बालिका के पिता द्वार खोले हुए आकाश की ओर देख कर वार्तालाप करते थे।

सन्यासी बोले "देखते हो कैसी काली घटा हैं, इस समय घोर वृष्टि होगी" बालिका के पिता बोले 'हां वृष्टि होने पर तो घटा चली जायगी, किन्तु हमलोगों के दुःख का अन्धकार तो किसी प्रकार से नहीं मिट सकता।

सन्यासी ने कहा 'ऐसी चिन्ता मत करो। दुःख भी इसी मेघ की भांति चचल है, तुम क्या समझते हो कि तुमारा दुःख अनन्त है? ऐसा मत बिचारो, इस लोक में सुखी न हुए तो परलोक में अवश्य होगे, अभी एक बारही निराश मत हो"।

परस्पर यही बातचीत हो रही थी कि बूंदों का टपटप शब्द आरंभ हुआ, क्रमशः छहर २ वृष्टि होने लगी। मेघ के गर्जन और दामिनी की कड़ाकड़ाहट से पृथ्वी कांपने लगी। बिजली चमक २ कर आकाश के एक प्रांत से दूसरे प्रात में दौड़ने लगी। अन्धकारमय पृथ्वी, मेघावृत

आकाश, और अविश्रान्त वृष्टिधारा अति भयकर बोध होने लगी । जब कुटी में बौछार आने लगी तो सन्यासी ने द्वार बन्द कर लिया । कुछ समय के उपरान्त सहसा कुटी के द्वार पर शब्द होने लगा। सन्यासी ने कुटी के भीतरही से पूछा 'कौन है ?' उत्तर मिला कि 'मै पथिक हू, वृष्टि के कारण अधिक चलने की शक्ति नहीं है, रात्रि हो जाने से यहां ठहरने की प्रार्थना करता हूं' सन्यासी ने द्वार खोल दिया और बाहर जाकर एक वृद्ध पुरुष को कुटी के भीतर ले आये। उसका सर्वाङ्ग जल से भींग गया था, हाथ पाव इत्यादि ठिठुर कर शीतल हो गये थे और शीत से होठ नीलवर्ण हो गये थे वे कांपते थे। वृद्धावस्था मे थोडी सर्दी मे भी अत्यन्त कष्ट होता है। सन्यासी ने उस वृद्ध को सूखा वस्त्र पहिनने को दिया जिसे पहिन वह अग्नि के निकट बैठ कर हाथ पाव सेंकने लगा।

बालिका के पिता उसे प्रवेश करते ही देख कर चौंक उठे। वे वस्त्र द्वारा अपने नेत्र और नासिका के अतिरिक्त समस्त मुख को भली भाति ढाक कर कुटी में एक ओर जा बैठे। हाथ पैर सेंकते सेंकते उस वृद्ध पुरुष ने सन्यासी के संग वार्तालाप प्रारभ किया। सन्यासी बोले 'इस कुसमय में तुम कहां जाते हो ?"

आगन्तुक ने कहा 'मैं दिल्ली जाता हूं। मेरे प्रभु चन्द्र-पति वहीं हैं, इसी कारण मैं उनके निकट जा रहा हू।'

सन्यासी बोले, भला दूसरे सुगम मार्गों के रहते तुम इस पथ से क्यों जाते हो ?

आगन्तुक ने कहा कि "जल्दी के निमित्त इसी राह से जाता हूं ?"

सन्यासी बोले 'शीघ्र जाने की क्या आवश्यकता है ?'

आगन्तुक ने कहा 'दुःख की बात क्या कहै, प्रभु का विवाह उपस्थित है।' सन्यासी आश्चर्यान्वित होकर बोले 'विवाह होगा तो यह सुख का विषय है, दुःख क्यों कहते हो"।

आगन्तुक ने कहा 'उसे आप किसी प्रकार नहीं समझ सकते ? वे कहीं से एक कन्या विवाह कर लावेंगे, दो दिन के अनन्तर वह हमलोगों पर प्रभुत्व करने लगेगी, प्राचीन नौकर समझ कर किंचि ्मात्र भी संकुचित न होगी। क्या यह हमलोगों के सुख का विषय है ?' आगंतुक के दुःख का कारण सुन कर सन्यासी हँसने लगे। आगतुक उत्साहभंग हो कर बोला कि ' आप हंसेंगे नहीं तो और क्या ? मान तो हमलोगों का ायगा न, आप का क्या होगा, हमलोगों का दुःख आप क्या समझियेगा ! सन्यासी हँसी को छिपाकर बोले कि जब तुमारे प्रभु का घर अजमेर है, तो दिल्ली मे क्यों विवाह हो ता है ?'

आगन्तुक ने कहा "दिल्लीश्वर की ऐसा ही इच्छा है। हमलोगो के प्रभु उनके परमबन्धु है, इसी कार ण दिल्लीश्वर

स्वयम् कन्या ठहरा कर बड़े धूमधाम से अपने ही निकट विवाह किया चाहते हैं। सुनते है कि कन्या द्वादश वर्ष की परम सुन्दरी है, और हमारे प्रभु उसे देखतेही मोहित हो गये है, इस वार हम लोगो की रक्षा नहीं, अब तो हमारी मानमर्य्यादा सब गई"।

सन्यासी ने पूछा "किस प्रकार की धूम धाम होगी?'

आगन्तुक ने कहा कि "अनेक राजाओं को निमंत्रण दिया गया है, वे सब आ भी गये हैं। केवल जयचन्द्र नहीं आये। समरसिंह तो परिवार सहित आ पहुंचे है, किन्तु कमलादेवी के न आने से राजमहिषी अत्यन्त दुःखित हुई हैं। कमलादेवी के सग महिषी का अत्यन्त प्रेम है।"

सन्यासी ने पूछा "वह क्यों न आई ?"।

आगन्तुक ने कहा "हाय। जिस क्षण से उनके पुत्र किरणसिंह जलनिमग्न हुए, तब से वे किसी आमोद प्रमोद में कहीं नहीं जातीं, वे मानो जीवन्मृतक हो रही हैं।"

सन्यासी ने पूछा 'क्या, समरसिंह के कोई पुत्र जलमें डूब भी गये? यह दुर्घटना कुमार पर कैसे हुई?' इसपर वह आगन्तुक पुरुष किरण के जलनिमग्न होने का वृत्तान्त कहने लगा, और सन्यासी भी चुप चाप सुनने लगे। शेष होने पर वे बोले कि 'अब उस कथा से क्या प्रयोजन,

सब स्मरण होने से अत्यन्त कष्ट होता है। अब एक सु-सम्वाद सुनो। हमारे प्रभु को महाराज इस बार "कवि" की उपाधि प्रदान करेंगे।"

सन्यासी ने पूछा "क्या तुमारे प्रभु कवि हैं?"

आगन्तुक बोला "कवि। आप इतने निकट रह कर क्या यह बात नहीं जानते? दूर २ के देशों में उनका नाम 'कवि' प्रख्यात है और वे इस समय अद्वितीय कवि प्रसिद्ध है।'

सन्यासी ने कहा "मै नहीं जानता था।"

आगन्तुक बोले "इस बार साधारण मनुष्य भी उन्हें कवि जान लेगा अब फिर कोई चन्द्रपति न कहैगा, अब से लेकर उनका नाम कविचन्द्र होगा।' सन्यासी इस वार्ता को छोड कर बोले 'अच्छा, यह तो कहो कि जब और सब राजा आये है, तो जयचन्द्र क्यों नहीं आये?'। सुना है कि जयचन्द्र और दिल्लीश्वर का परस्पर कोई सम्बन्ध भी है।

आगन्तुक ने कहा "और कारण क्या? स्वर्गवासी दिल्लीश्वर ने उन को राज्य नहीं दिया, पृथ्वीराज को दे गये, उसी समय से जयचन्द्र द्वेष में भस्म हो रहे हैं। एक बात और भी सुनी है कि जयचन्द्र पृथ्वीराज से कुछ द्वेष रखते हैं और उनके संग मन्दकार्य्य करने को प्रस्तुत हैं, जयचन्द्र के चाचा ने उनको न जानें कौन उपदेश दिया

था कि उसी अवधि से उन दोनों में परस्पर विवाद चला आता है"। कथा कहते कहते आगन्तुक की दृष्टि बालिका के पिता पर जा पड़ी। उसने पूछा "ये कौन बैठे हैं?"। सन्यासी बोले 'ये मेरे शिष्य हैं"।

आगन्तुक ने पूछा ये बालक बलिका दोनो किसके हैं?"

सन्यासी ने कहा यह मेरा पुत्र और वह उनकी कन्या है"।

आगन्तुक हंसकर बोला कि 'वाह। अच्छा जोड़ मिला है।" इस समय बाहर से कोई ऐसा शब्द होने लगा, जिस से वे लोग किसी प्रकार निश्चिन्त न बैठ सके। सन्यासी ने द्वार खोल शब्द का कारण देख फिर झट कपाट बन्द कर दिया। बालिका के पिता के अतिरिक्त और सब पूछने लगे "क्या है?"सन्यासी ने कहा कि"हम लोगों के द्वार पर एक व्याघ्र आया है।' व्याघ्र का नाम सुनतेही दिलीप का ध्यान अपने पाले हुये हरिण और घोड़े पर आ पड़ा। वे बोल उठे "बाबा यदि बाघ मेरी अश्वशाला में प्रवेश करे तो? और किसी पथिक को भी अकेला पाकर कदाचित् चोट करे तो क्या होगा।। चलो हम लोग उसको मार आवें। सन्यासी उनमें सम्मत हुए देखा कि चौदह वर्ष के दिलीप आनन्द-चित्त से तलवार लेकर व्याघ्र को मारने चले। बालिका 'दिलीप दिलीप' कहके रोने लगी। यह कह कर दिलीप कुटी से बाहर हुये कि मैं अभी आता हूं कुछ भय नहीं। दिलीप और सन्यासी के संग आगन्तुक पुरुष भी गया। और कोई

दिन होता तो बालिका के पिता भी उनलोगों के संग जाते परन्तु आज वे चिन्ता में मग्न हैं, वे सब बातें उनके कान में न पड़ीं। सोचते सोचते वे मन ही मन बोले कि "कल प्रातःकाल हम को पहिचान लेगा। क्या लज्जा की बात है, मैं तेजसिंह हूं, और इसी कुटी में—भाग कर भेष बदल समय बिताता हूं। क्या लज्जा की बात है। कल मैं परिचित व्यक्ति को किस प्रकार यह मुख दिखलाऊंगा और यदि यह कन्या न होती, तो मैं कदापि इस भांति न रहता, उसी दिन प्राण त्याग करता, अब क्या होगा। क्या मुझे पहिचानेगा? सो तो कभी न होगा आज रात्रि ही में कन्या को लेकर मैं यहां से भाग जाऊंगा"। कन्या के रोने से उनकी चिन्ता भंग हो गई। वे बोले 'क्या हुआ पुत्रि? कन्या कातरस्वर से बोली 'बाबा दिलीप बाघ मारने गया है, यह सुनकर वे व्यस्त हो उनकी सहायता के निमित्त उठे। इधर सन्यासी ने कुटी से बाहर निकलते ही देखा कि व्याघ्र कुटी के द्वार से कुछ दूर खड़ा हो कर मन्द २ गरज रहा है। दिलीप उसे देख कर सन्यासी और आगन्तुक को पीछे रख आगे बढ़ कर खड़े हो गये। आगन्तुक ने सन्यासी से कहा "चलो महाशय! हम लोग आगे चलें, देखते नहीं—बालक किस अभिप्राय से जाता है?" सन्यासी बोले "हम लोगों के इतने निकट रहते बालक के अग्रसर होने

पर भी उसको विपत्ति की कोई आशंका नहीं। वृथा उसके उत्साह में वाधा देना और साहस को नाश करना उचित नहीं"। मनुष्य को देखते ही व्याघ्र आहार के लोभ में जिह्वा चाटता हुआ बड़े वेग से उन लोगों पर झपटा तुरंतही दिलीप उसके शरीर पर तलवार की वार कर कुछ दूर हट गये। व्याघ्र चोट खातेही दूसरों को परित्याग कर फिर उन पर आक्रमण करने को लपका। ज्योंही उसने मुख फैला कर उन्हें पकड़ने की इच्छा की शीघ्र दिलीप ने अत्यन्त सावधानी से उसके खुले हुये मुख में तलवार प्रवेश कर दी। इस प्रकार घायल लोहू लुहान और क्रोधान्ध हो व्याघ्र तलवार से मुंह खींच कुछ दूर हट गया और एक स्थान पर स्थिर भाव से खड़ा हो भयंकर गर्जन करने लगा। थोड़ीही देर उच्चःस्वर से गर्जन कर फिर एक बेर तड़पा, अब तो सन्यासी और आगन्तुक दोनों दिलीप के निमित्त भयभीत हुये। उन लोगों ने भी तलवार हाथ में ली थी उसको दृढ़ता से पकड़ा, दिलीप ने व्याघ्र को तड़पते देख उसके लक्ष स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की चेष्टा की, कि घाट से सिढ़ी चिकना होने के कारण फिसल कर भूमि पर गिर पड़े। व्याघ्र ने ज्योंही उन्हें दाँप पूर्वक पकड़ना चाहा त्योंही पीछे से सन्यासी ने व्याघ्र पर तलवार चलाई दिलीप को परित्याग कर व्याघ्र क्रोध

से पीछे फिर देखने लगा। तब तक दिलीप ने अवकाश पाकर भूमि से उठ बलपूर्व्वक व्याघ्र के पिछले चरण में तलवार मारी जिससे वह लँगड़ा होकर गिर पड़ा। व्याघ्र फिर उनकी ओर फिरा। इस बार दिलीप ने उसके कन्धे पर वार की। व्याघ्र व्यथा से अधीर हो कर तुर्त भूमि पर लेट गया और उसको फिर उठने की शक्ति न रही। थोड़े ही काल के अनन्तर उसको मृत्यु हो गई।

बालिका के पिता कुटी से बाहर न हुये थे कि दिलीप लोहू से भरी तलवार हाथ में लिये कुटी में फिर आये। उनको देख बालिका सब दुःख भूल गई और हँसती हुई दिलीप के सम्मुख आई। इस प्रकार छोटे से बालक का असीम साहस देख कर आगन्तुक को अतिशय आश्चर्य्य हुआ।

रात्रि अधिक हो गई थी। आहार करने के अनन्तर उन सब लोगों ने शयन किया। प्रातःकाल जब सन्यासी उठे तो बालिका और उसके पिता न देख पड़े।

छठवां परिच्छेद।

और भी चार वर्ष व्यतीत हो गये, समय ने नाना घटना वपन कर चौथे पद का चिन्ह छोड़ा, तदंन्तर शीत ग्रीष्म वर्षा ने भी चार बार पृथ्वी पर अधिकार किया, और चार

दार पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा कर आई। इस समय बहता हुआ कालप्रवाह १११२ शाके का आ गया। इसी सम्वत में कन्नौजाधिपति महाराज जयचन्द्र और दिल्लेश्वर पृथ्वीराज के बीच एक संग्राम उपस्थित हुआ। यद्यपि इस युद्ध से हम लोगों को कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है, तथापि इस कारण से कि कदापि कोई पूछ बैठे हम उसे संक्षेपतः आगे प्रकाश करते हैं—

इसी सम्वत में महाराज जयचन्द्र ने चक्रवर्त्ती राजा की पदवी ग्रहण करने की इच्छा से अश्वमेध यज्ञ किया। इसमें और सब राजा उनका अग्रगण्य स्वीकार कर यज्ञ-सभा में उपस्थित हुये, केवल दिल्ली और अजमेराधिपति पृथ्वीराज और चित्तौराधीश्वर समरसिंह इस बात को अस्वीकार करते वहां न गये। इस कारण जयचन्द्र ने पृथ्वीराज के अपमान के हेतु उनकी एक प्रतिमा बनवा कर द्वारपाल के स्थान पर अर्थात् द्वारदेश में रखवा दिया। केवल यही एक कारण न था कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज का अपमान किया। इसके होने से तो समरसिंह भी उसके भागी होते परन्तु एक दूसरे कारणवश पृथ्वीराज के ऊपर जयचन्द्र को द्वेष विशेष हुआ था, अर्थ यह है कि—

जयचन्द्र और पृथ्वीराज दोनों अनंगपाल दिल्लीश्वर के नाती थे। जयचन्द्र बड़ी और पृथ्वीराज छोटी कन्या के पुत्र थे किन्तु पृथ्वीराज में अनेक सद्गुण रहे इस कारण

दिल्लीश्वर इन्हीं को अधिक प्यार करते थे और उनको कोई पुत्र भी न था अतएव मृत्युकाल में जयचन्द्र को राज्य न देकर पृथ्वीराजही को अधिकारी कर गये। पृथ्वीराज अजमेर मे पिता के राज्य और दिल्ली में नाना के राज्य के अधिकारी हुये। जयचन्द्र इसी कारण अपने मन में पृथ्वीराज से यथेष्ट घृणा करने लगे किन्तु कोई अवसर ऐसा न पाया कि इसको प्रगट करते, इस समय सुयोग जानकर प्रकाश किया।

पृथ्वीराज ने जयचन्द्र के विरोध से क्रुद्ध हो कर सैन्य दल सहित कन्नौज पर चढ़ाई की। युद्ध में पृथ्वीराज की जय हुई किन्तु उनके प्रधान प्रधान २०८ सेनापतियो में से केवल ६४ मनुष्य बॅच कर आये, इसी से अनुमान हो सकता है कि सामान्य सिपाही कितने मरे। इसी युद्ध में, जय होने के दिन जब सव कोई अपने २ शिविर में फिर आये, तब एक मनुष्य अस्त्रधारी युवा पुरुष उसी रणक्षेत्र से हो कर जाते थे। युवा पृथ्वीराज के परमबन्धु कविचन्द्र हैं। इतिहास में उनका नाम 'कवि' कर के विख्यात है। कविचन्द्र कवि होने पर भी वीरो में गिनेजाते थे। इनकी उमर २४ वर्ष की, मुखारविंन्द सुन्दर और प्रफुल्ल, गठन वलिष्ट, वीर नाम के उपयुक्त है, उसी वलिष्ठ शरीर में युद्धोपयोगी अस्त्र शस्त्र अत्यन्त शोभायमान थे। उनका मस्तक शिर

स्त्राण, और शरीर कवच से ढका हुआ था। उनके पीठ पर ढाल, बायें हाथ में बर्च्छी, और कमरबन्द के बाम भाग में तलवार शोभित हो रही थी। बोध होता है कि यह किसी कारणवश और लोगों के संग एकत्र न जा सके, इस समय अकेले शिविर में फिरे आते थे। सहसा किसी बालिका के कण्ठ का रोदन शब्द उन के कान में पडा। उन्होंने देखा कि, एक बालिका एक मृत पुरुष के गले से लिपट कर "पिता पिता" कर रो रही है। उन्होंने समझा कि इसी युद्ध में उसके पिता की मृत्यु हुई है और यह भी विचारने लगे कि "यदि ऐसा ही हुआ तो, बालिका की माता कौन और कहा है कि उसके संग नहीं आई, केवल उसी को अकेली क्यों आने दिया? क्या उसके और कोई नहीं है?। क्या इस बालिका का ससार में पिताही एक मात्र अवलम्ब था, यदि कोई होताही तो इस बालिका को अकेले इस घोर भयकर स्थान में क्यो आने देता? यदि और कोई नहीं है तो इसको अब कौन रक्षा करेगा? ऐसे अवसर मे यह सुकुमार कुसुमकलिका किसका अवलम्ब कर के जीव धारण करेगी? क्या सत्य ही वह आज से अनाथा हो गई? और यदि हुई, तो हमी लोग उसके मूल हैं क्योंकि हमी लोगो ने आज उसके पिता को युद्ध में बध करके इस बालिका को चिरदुःखिनी बनाया है।

चन्द्रपति स्वभावतः दयालु है, यही सब सोचते २ उनका हृदय दया से पूर्ण हो गया। उसकी अवस्था जानने के हेतु वे उत्साहित होकर उसके निकट आये। घोड़े की टाप का शब्द सुन कर बालिका ने मस्तक उठाया। इस मृतक लोथों की ढेर के मध्य एक जीवित मनुष्य को देखकर उनका उदासीन मुखमण्डल भी जैसे कुछ प्रफुल्लित हो गया। दूर से वे उसको पांच ५। ६ वर्ष की अनुमान करते थे, पर देखा तो उससे अधिक वयःक्रम है। उनको बोध हुआ कि यह अनखिली गुलाबकली किसी समय में सुगन्ध विस्तार करेगी। कविचन्द्र ने पूछा "तुम किसके हेतु रोती हो? ये तुमारे कौन हैं?"

बालिका ने उत्तर दिया कि "ये मेरे पिता हैं।"

शैलवाला के पिता सन्यासी की कुटी परित्याग कर प्रथम दो तीन वर्ष कन्या को लेकर देश देशान्तर भ्रमण करते रहे। इस युद्ध के कुछ पहिले वे कनौज की एक पर्व्वत पर आकर वास करने लगे, मानो मृत्युही के निमित्त यहां आये थे। आज वे रणक्षेत्र में मृत्यु शय्या पर सो रहे है, छाती में खड्ग बिध जाने से प्राण त्याग किया है। बाहु और दूसरे दूसरे अङ्गो मे भी चोट के चिन्ह हैं। समस्त शरीर लोहू लुहान है, इस समय सब सूख गया है बगल में एक किनारे रक्त से भरी तलवार पड़ी

है। एक तलवार के अतिरिक्त कोई दूसरा अस्त्र निकट में नहीं है। दोनो हाथ समभाव से छाती पर पड़े हुए हैं। उनके दोनों नेत्र अर्द्ध मुद्रित, ओष्ठाधर किंचित् खुले हुए, और विषादांकित मुख जैसे गभीर दुःख में कातर होकर ईश्वर के निकट प्रार्थना करता हो। मानो मरने के समय भी निश्चिन्त न रह सके हो। अथवा किसी गंभीर दुःख की चिन्ता करते २ प्राण त्याग किया हो। जैसे मरने के समय कातरचित्त होकर ईश्वर को पुकार रहे थे, इस समय भी मानों ठीक वैसेही कर रहे हैं। उसी कातरता के ऊपर, शान्तभाव आकर से इस समय मुख की शोभा और भी बढ़गई है, उनका परिधान गेरुआ वस्त्र है, समरभूमि मे आने के समय भी उन्होंने वह वस्त्र त्याग न किया था।

युद्ध के समय उनका गेरुआ पहिरावा देखकर कविचन्द्र को आश्चर्य हुआ। कुछ देर उपरान्त वे बोले "तुम बालिका हो कर अकेली इस भयंकर स्थान में किस प्रकार आई कुछ भय नहीं मालूम हुआ क्या ?"

बालिका बोली "भय क्यों मालूम होगा ?" क्या प्रेम भय से बली नहीं है ?"

कविचन्द्र बालिका के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुन कर आश्चर्यान्वित हो बोले "तुम बालिका हो और इस भयंकर स्थान में आने जाने से अनेक विपत्तियों को

सम्भावना है, तुमने जब यहां आने की इच्छा की तो तुमारी माता ने तुमारे संग किसी और को यहां आने को नहीं भेजा, अकेली तुम को कैसे आने दिया ?"

बालिका बोली—"हमारी माता अथवा और नातेदार नहीं है।

कवि ने पूछा "क्या तुमारे और कोई भी नहीं ?" कुछ देर चुप रह कर फिर पूछने लगे "तुम कहा रहती हो ?" बालिका ने अंगुली से दिखा कर कहा कि "उसी पर्व्वत पर"। कविचन्द्र बोले "इतनी दूर पर अति शीघ्र तुमारे पिता की मृत्यु का समाचार तुम्हें किसने दिया ?"

बालिका बोली "किसी ने नहीं, मैंने आप ही उस पर्व्वत पर से पिता जी को घोड़े की पीठ से गिरते देखा था। किन्तु दुर्भाग्यवश मेरे उतरने में इतना विलम्ब हुआ, कि मैं आकर पिता जी को जीवित न देख पाई। हाय। यदि वे कह कर आते तो उनके उतरने के थोड़ीही देर पर मैं भी पर्व्वत से उतरना आरम्भ करती।" इतना कह कर बालिका और भी रोने लगी।

कवि ने पूछा "वे युद्ध में आये, तो क्या तुमसे नहीं कह आये ?"

बालिका ने कहा "नहीं ?"

कवि ने पूछा "तब उनके युद्ध में आने का तुमको क्यों संदेह हुआ?तुमने यह कैसे जाना कि जहां युद्ध होगा वे वहीं होंगे ?"

बालिका ने उत्तर दिया कि युद्ध में आने की तो कोई बात नहीं कही, परन्तु इतना कहा था कि आज युद्ध होगा और कई दिन से उनका भाव बदल गया था, प्राय: मुझको देख कर रोते और पूछने पर कारण नहीं बतलाते थे। उसी से मैं अनुमान करती थी कि वे मेरे लिये किसी विपद् की आशंका करके रोते हैं। कल मुझे एक छोटी सन्दूक दे कर बोले, कि बेटी! मैं वृद्ध हूं, तुझे इस असहाय अवस्था में छोड़कर यदि मेरी मृत्यु पहिले हुई तो तेरी दशा क्या होगी? और यही होगा, मैं अब अधिक दिन न बचूंगा। इस सन्दूक में तेरे हेतु जो कुछ द्रव्य मैं छोड़ जाता हूं, उसी से जितने दिन किसी सत् पुरुष का आश्रय न पाना, आत्मरक्षा करना। तू बालिका है, देख किसी दुष्ट मनुष्य की बात में आकर उसका सहवास न करना। जितने दिन विवाह न हो किसी भद्र पुरुष के आश्रय में रहना, और जिसके आश्रय में रहै, उसका बुरा अभिप्राय देखने पर तत्काल वह घर छोड़ देना।" इतना कह कर वे भी रोने लगे और मैं भी रो पड़ी। आज प्रात:काल उठने पर उनको मैंने न पाया। मन में महा भय उत्पन्न हुआ, स्मरण आया कि आज युद्ध होगा। तुर्त्त पर्व्वत-शिखर से उठकर देखने आई। देखा कि जिसकी मैं आशंका करती थी वही बात हुई।" बालिका

और कुछ न कह सकी, उसका श्वास बन्द हो गया। कवि-चन्द्रबोले "यदि तुमारे पिता को तुमारे निमित्त इतना भय था तो वे युद्ध में क्यों आये ?"

बालिका ने कहा "देश में रहकर, देशहितार्थ युद्ध में न आना वे अधर्म्म मानते थे। क्या वे मेरे निमित्त अधर्म्म करते ?"

कविचन्द्र ने बालिका के मुख से इस प्रकार की बातें सुन कर, उसको उच्चवंश को कन्या जाना। इसी कारण वे उत्साहित होकर उसका विशेष परिचय पूछने लगे। बालिका और कुछ न कह सकी, उसने केवल पिता का नाम बतला दिया। इससे उनको कुछ बोध न हुआ अतएव सन्तुष्ट न होके उसका नाम पूछा, सुना कि "शैलबाला।" कविचन्द्र ने पूछा तो अब तुम कहां और किस प्रकार रहोगी ?"

बालिका बोली "यदि कोई और उपाय न जान पड़ेगा, तो मै भी पिता का अनुसरण करूंगी।"

कवि ने कहा "मेरे संग चलोगी ?" बालिका कुछ सोच कर बोली "कहा ?" वे बोले "मेरे घर पर।"

बालिका ने पूछा "वहां कौन है ?"

चन्द्र बोले "वहा एक युवती तुमसे कुछ बडी है, वह तुमको अपनी बहिन की नाईं प्यार करैगी।"

बालिका ने कहा "तो चलूंगी। मुझको और एक मनुष्य स्नेह की दृष्टि से देखते और प्यार करते थे।"

चन्द्र ने पूछा 'वे कौन थे?

बालिका बोली 'वह एक बालक थे। हम लोगों ने उनकी कुटी में कुछ दिन वास किया था।"

चन्द्र ने पूछा "उनका घर कहां है?"

बालिका बोली "बहुत दूर है। उस देश का नाम मैं नहीं जानती, तब मैं छोटी थी। हम लोग कुछ दिन वहां रहकर चले आये थे। दिलीप ने कहा था कि मुझ से बिना कहे कहीं मत जाना। किन्तु आने के समय वे न जान सके।" यह कथा कहते २ उसके मुख पर एक और प्रकार का दुःखव्यञ्जक भाव छा गया। कविचन्द्र ने समझ लिया कि "उस बालक का नाम दिलीप था। बालिका उसको प्यार करती थी। वे और बात चीत छोड उसको सग ले पृथ्वीराज के शिविर में आये, चलते समय बालिका अपने पिता के निमित्त बहुत रोई। कविचन्द्र ने यथासाध्य समझा बुझाकर उसको संतोष दिया। मार्ग में आते समय कविचन्द्र ने बालिका की अवस्था पूछी। वह बोली "पिता कहते थे कि यह बारहवां वर्ष व्यतीत हुआ है।" वार्तालाप करते २ दोनों शिविर में पहुंचे। उन्हें देख पृथ्वीराज ने पूछा 'कवि जी तुम्हारे आने में इतना विलम्ब

क्यों हुआ ?" कविचन्द्र ने बालिका को दिखलाकर उसका सविस्तर वृत्तान्त कह सुनाया। पृथ्वीराज बोले "अब मैं निज देश जाने की इच्छा करता हूं इसमें तुमारी क्या अनुमति है"? कविचन्द्र बोले कि "अब इस युद्ध में हम लोगों ने जय पाया है, अब जहां इच्छा हो चलिये।"

पृथ्वीराज ने कहा "तब चलने के हेतु समस्त उद्योग करने को कह दो। तुमारे परामर्श विना इस समय तक मुझ को निश्चय नहीं था कि जाऊँगा वा नहीं। दूसरे दिन और सकल मनुष्यों ने कनौज परित्याग कर दिल्ली की यात्रा की, केवल चन्द्रपति दिल्ली नहीं गये, किन्तु उन्होंने अजमेर को गमन किया। पृथ्वीराज ने अजमेर होते हुए दिल्ली में आकर वास किया तौ भी चन्द्रपति अजमेर ही में रहे कारण यह कि जन्मस्थान उनको बहुत प्रिय था। वे केवल युद्ध अथवा किसी अन्य प्रयोजन से दिल्ली आते थे। कार्य्य समाप्त होने पर पुन: लौट जाया करते थे। चन्द्रपति ने घर पहुंचते ही शैलबाला को अपनी स्त्री के हाथ समर्पण किया। उनकी स्त्री का नाम प्रभावती था, वह उसे पाकर अतिशय अह्लादित हुई। गुलाब नामक चन्द्रपति की एक भगिनी थी, वह उस समय घर पर न थी, किन्तु राजकन्या के सग दिल्ली में वास करती थी। इस कारण प्रभावती को अकेले रहना पडता था, आज भगिनी पाकर उस के संग वार्तालाप करने लगी।

सातवां परिच्छेद

अजमेरप्रान्तवाहिनी, मानस नदी धीरे २ तटस्थ लता वृक्षों को स्पर्श करती लहराती हुई वेग से बह रही है। उसके तीर पर एक उद्यान अति सुन्दर रमणीय है, चाँदनी में शैलबाला और प्रभावती बैठकर नदी की शोभा देख रही हैं। चन्द्रिका-धौत-तरङ्गमाला नाचती हुई बालू की रेती पर ढुलकी पड़ती है। सन्ध्यासमीर से कम्पित झाऊ वृक्ष का मृदु मधुरनिनाद नदीकल्लोल के साथ मिल जाता है। माता की गोद में शिशुसन्तान की भांति, नदी के गर्भ में नौकाराजि, हिलती डोलती तरङ्गमाला के सङ्ग क्रीडा कर रही है। जहां वे दोनों चाँदनी में बैठी थीं, उनके निकट-वर्त्ती एक झाऊ वृक्ष की लम्बी लता आकर उस चाँदनी को स्पर्श करती थी शैलबाला उसी जगह से हाथ बढ़ा-कर उसका फूल पत्रसहित तोड रही थी। शैलबाला अब वह बालिका नहीं है। शैलबाला अब उस दिलीप की बाल्यसखी नहीं और तेजसिंह की नयनानन्दवर्धक कुटीर-निवासिनी नवजात कुसुमलतिका भी नहीं, अथवा रणक्षेत्र को रोदन करनेवाली बालिका भी नहीं है। हमलोगों ने जिस समय उसको शोकातुर बालिका देखा था तब से और दो तीन वर्ष व्यतीत हो गये हैं। अब वह मुद्रित गुलाबकलिका अर्द्धविकसित होकर अति मनोहर हो गई

है। शैलबाला फूल लेकर प्रभावती का शृङ्गार करने बैठी। प्रभावती का वयस २० वर्ष है, उसका सौन्दर्य्य शैलबाला की भांति अर्द्धविकसित गुलाब पुष्प के समान नहीं है किन्तु चन्द्रमा की भांति अति मधुर है। इसको तेज नहीं परन्तु उज्वल कह सकते है। इसे जितना देखो, उतनोही अधिक देखने को इच्छा होती है, किसी प्रकार नेत्र थकित नहीं होते। बालिका होने के कारण शैलबाला सर्वदा हास्यमयी और प्रभावती किञ्चित् गम्भीर है। दोनो को एकत्र देखने पर किसको अधिक सुन्दरी कहा जाय यह ठीक २ कहना अत्यन्त कठिन है। शैलबाला अबलों शृङ्गार करती थी, अभी तक शृङ्गार शेष नहीं हुआ। उसने पहिले एक एक करके सब फूलों को चोटी मे चारोंओर गूंथ दिया। फूल तो समाप्त हो गये, किन्तु उसकी रुचि के अनुसार सजावट न हुई, बोली कि "अभी तक भली भांति नहीं हुआ, जैसे कहीं २ खाली दीख पडता है"—और फूल लेकर प्रभावती का मस्तक समस्त भूषित कर दिया। अब भी रुचि के अनुसार नहीं हुआ। इस बार और फूल लेकर गूथने बैठी। फूलों का विविध भांति का अलङ्कार बनाकर प्रभावती के गले, हाथ और लिलाट में पहिराकर एक टक देखने लगी। अब इस बेर रुचि के अनुसार हुआ। इस गुरुतर कठिन कार्य्य के शेष होने पर वह वार्त्तालाप करने का

अवकाश पाकर बोली "इस बेर उत्तम हुआ है मैं आज लों इस प्रकार से किसी दिन भी भूषित न कर सकी थी।" उसकी बात सुनकर प्रभावती बोली "तेरी बातों पर तो हँसी आती है क्या प्रतिदिन मुझको इसी प्रकार से सजना पड़ेगा, और जब मैं शृङ्गार नहीं करना चाहती तब तू रो देती है। अच्छा आज मैं तेरा शृङ्गार करूँगी।" शैलबाला हँसकर बोली "मैं किसके निमित्त शृङ्गार करूं? कौन देखैगा?"

प्रभा०—"क्यों मैं?"

शैल०—"ना, सो तो होगा नहीं, मैं तुमको आभूषित करूँगी, और देखूंगी।"

प्रभा०—"न भइ, तू ऐसा क्यों कहती है कि अपना शृङ्गार नहीं करूँगी और मेरा शृङ्गार करैगी, बोल् तो?'

शैल०—"बोलूं? ना, नहीं बोलूंगी।"

प्रभा०—"तुझे मेरे सिर की सौगन्द, बतला।"

शैल०—यथार्थ बात के गोपन करने की चेष्टा कर बोली "बतलाऊँ? अच्छा कहती हूँ, इतने दिन हुए और मेरा विवाह नहीं हुआ इसी से मन में दुःख है।"

प्रभा०—तेरे सङ्ग बात करनी भी एक आपत्ति है।"

शैल०—"क्यों रुष्ट हो गई? क्या? अच्छा अब सत्य २ कहती हूँ, मैंने पहिले कई बेर कहा था, क्या सब भूल गई?"

प्रभा०—"हां सब भूल गई हूँ, फिर कह।"

शैला०—"बाल्यावस्था में मुझे दिलीप फूलों के अलङ्कारों से इसी प्रकार अलङ्कृत करके देखते थे, अब होते तो मैं भी उनको सज्जित करती सो अब उनको तो सज्जित कर नहीं सकती तुम्हीं को सजकर देखती हूँ।"

प्रभा०—"ओः अब समझी—मानो मैं ही तुमारी दिलीप हूँ। हां समझ गई कि उनको तू नहीं भूलेगी। बाल्यावस्था का भाव क्या इतना मन में रहता है? भई यह बात तो तूने मुझसे पहिले कभी नहीं कही।"

शैल०—"क्या मैने नहीं कहा था कि वे मुझको सज्जित करते थे?"

प्रभा०—"हा, सच है इतना तो कहा था।"

शैल०—"तो और सब अनुमान से नहीं बूझ सकी?" मैं होती तो और कहने की आवश्यकता न होती।"

प्रभा०—तेरे सङ्ग क्या मेरी तुलना हो सकती है? जो हो, किन्तु वह दिलीप न जानें कहां का कौन है, उसको मन में मत रख और वह न जानें कहां गया इतने दिन तक है कि नहीं फिर उसका क्या पता? यदि वह आवे तौभी मैं उसके सङ्ग तेरा विवाह नहीं करूँगी। तुझ ऐसी सुन्दरी का विवाह किसी राजा महाराजा के सङ्ग हो तो उचित है। तूं बालिका है, प्रीति किस

को कहते हैं नहीं जानती इसी से उसी बाल्यसखा दिलीप का प्रेम तेरे मन में है। जब यथार्थ प्रीति होगी तो अपनी भूल समझ सकेगी" शैलबाला दीर्घनिःश्वास परित्याग कर बोली—"उनके सङ्ग मुझे विवाह देने की तुमारी इच्छा नहीं है इसी से ऐसी बात कहती हो और जिस कारण से नहीं है सो भी मैं जानती हूँ। वे अज्ञातकुलशील है । किन्तु जो वेही अज्ञात कुल-शील है, तो क्या मैं भी इस विषय में उनकी तुल्य नहीं हूँ? इस कारण यदि उनको सुपात्री नहीं मिलेगी, तो मुझको भी सुपात्र मिलने की आशा नहीं है।" प्रभावती ने शैलबाला की बातों को समझ लिया और दुःखित होकर बोली "अच्छा भद्र यह तो कह कि तू क्या अपने जन्म का वृत्तान्त कुछ भी नहीं जानती?"

शैल०—"के बेर पूछोगी? जब से मैं आई बराबर वही बात मुझसे पूछा करती हो।" शैलबाला उन सब बातों के उड़ा देने की चेष्टा कर बोली कि "अब वह सब बातें जाने दो । क्या कुछ और कहोगी? मेरी इच्छा होती है कि तुमारे नाम पर एक छन्दोबद्ध कविता करूँ।"

प्रभा०—"इस समय कविता करने का प्रयोजन नहीं है, कुछ गाओ।"

शैल०—"रुचि के अनुसार तो कोई गीत स्मरण नहीं आता।"

प्रभा०—"वह गीत गाओ।" शैलबाला बोली "कौन ?"

प्रभा०—"स्मरण नहीं होता ? अरे वही जो मेरे निकट प्रायः गाया करती हो"। शैलबाला ने कहा कि "बहुत अच्छा" और गाना प्रारम्भ किया।

गीत काफी ताल।

सखी मैं तो भई हूँ बावरी मर्म्म न जानों काय ॥
टोना कियो किधौं बाँकी चितवन गई हिय मांहि समाय।
मन्द हँसनि लखि मनमोहन की घर आँगन न सुहाय ॥
याको भेद कहा है सजनी तू किन देहि बताय ।
कितक उपाय कियो हम तबहूँ रहि २ जिय घबराय ॥

शैलबाला ने धीरे २ आरम्भ करके सप्तम सुर तक चढ़ा दिया। उसके सुमधुर और पूर्ण स्वर से उद्यान, नदी, वृक्ष, पत्र, सब मधुमय हो गये। नौकाराजि हिल २ और झूम २ कर उसके सङ्ग ताल देने लगीं। तरङ्गमाला उछल उछल कर उस ताल के सङ्ग नाचने लगी मर्म्मर शब्द से वृक्ष के सब पत्र शैलबाला के गाने में सुर भरने लगे। उसके पुरस्कार में पवन धीरे २ कुसुमगन्ध लेकर उद्यान में उड़ाने लगा। चन्द्रमा ने हँसते हुये मानो और अधिक किरण का विस्तार किया। क्रमशः शैलबाला का गान शेष हुआ। गान समाप्त होते ही सब के सब जैसे दुख में अ-

धीर होकर शोभाहीन हो गये। प्रभावती ने कहा "सखी तेरा गान अति प्रिय और मधुर लगा और भी कुछ गा"।

शैल०—"मैं अब और न गाऊंगी, इस बार तुमारे नाम की एक कविता बनाती हूं। हां, एक तो बना लिया है। प्रभावती ने कहा "जा जी मत जला"। शैलबाला ने इस बात पर ध्यान न दिया। वह उसका चिबुक पकड़ कर बोली ;—

"सुमनहार जेहि कंठ में अति अपूर्व छबि देत।
तेहि रमणी को तुच्छ नर सहजै मन हरि लेत"।

प्रभा०—"तुम को तो भई रात दिन कविताही सूझी रहती है"।

शैल०—जिसका स्वामी ऐसा कवि, उसको कविता से अरुचि क्यों? मैं जानती हूं, कि जो सदा सागर में रहता है, और बड़े २ तरंगों के संग जिसका मन खेलता रहता है, क्या उसका मन नदी नाले की ओर ढुलैगा? हां जैसे न ढुलैगा वैसेही अच्छा भी नहीं मालूम होगा। नहीं, यह भी उपमा ठीक नही है। जो रात दिन कोकिला का मधुर स्वर सुना करता है उस को काग की बोली क्या कभी प्रिय जान पड़ती है? किन्तु छि:! ऐसे बड़े कवि के निकट रह कर भी तुम स्वय कवि न हो सकी?"

प्रभा०—मै तो नहीं हुई, भला तुम्हीं कवि के निकट रह कर कवि हो गई, सोई धन्य है। कवियों के निकट रहते २ तुमारे मुख से तो कविता के अतिरिक्त और कुछ निकलता ही नहीं"।

शैल०—"और भी कई एक कविता बनाऊंगी, अभी हुआ क्या है ? देखो न एक और यही कविता करती हूं"। शैलबाला बात करती थी, किंतु दृष्टि उसकी दूसरी ओर थी। शैलबाला को देख कर कि क्या देख रही है, प्रभावती ने भी उसी ओर मुख फेर लिया। देखती क्या है कि कविचन्द्र आते हैं। उनको देख प्रभावती बोली "अपनी कविता इस चण रहने दो। देखो उनके सम्मुख भी यह सब बात मत कहना, यदि कहोगी तो मै तुमारे दिलीप की कथा कह दूंगी"।

शैलबाला बोली "वह देखो तुमारे प्राणनाथ इधर ही आ रहे है। क्या वे चण भर भी अकेले रह सकते हैं ?

गीत।

देखो सखी आवत कन्त तिहारो।
चन्द्र प्रभा बिनु रहत न कबहूं यह जिय मांह बिचारो।
रवि कर सो जस चन्द्र उदित है गगन करत उंजियारो।
तैसोई चन्द्र पाय तो शोभा जगत होत विस्तारो।

प्रभावती ने क्रोध से शैलबाला का हाथ चिबुक से हटा दिया।

शैलबाला को इससे और भी अधिक आनन्द प्राप्त हुआ, हँसती २ बोली;—"तो लजाती क्यो हो ? भला प्रभा बिना चन्द्र की शोभा हो सकती है ?"

प्रभावती ने हाथ से उसका मुख बन्द कर दिया शैल-बाला उसका हाथ छोड़ाही रही थी कि इसी मे चन्द्रपति उन लोगों के निकट आ गये। उन लोगो ने देखा कि और दिनों की भाति चन्द्रपति के मुखपर हँसी नहीं है। उनका बदन अति विषन्न है, इस प्रकार उन्हें चिन्तायुत देख उन लोगो का आमोद आह्लाद जाता रहा। शैलबाला बोली कि "आज निष्कलंक चन्द्र में कलंक क्यों है ?' प्रभावती स्वामी की ओर देख कर बोली "शैलबाला को तो हरदम ठट्ठा करने का अभ्यास पड गया है। तुमारा मुख देखकर मुझे बडी चिन्ता होती है। शका होती है कि जैसे कोई अमगल वृत्तान्त कहने आये हो !"। चन्द्रपति बोले कि "सचमुच मै अमंगल वृत्तान्त सुनाने आया हूं।'

प्रभावती ने व्यस्त हो पूछा "क्या ?"

चन्द्र।—"कल मै दिल्ली जाऊगा।"

प्रभा।—"क्यो ?"

चन्द्र—"महाराज ने लिखा है कि, यवन लोग फिर दिल्ली आक्रमण करने आये है। शैलबाला बोली "क्यों ? अभी तो उस दिन वे आप लोगो से युद्ध में हार गये थे न ?।

मुझे जिस वर्ष आप लाये, उसके छै मास अनन्तर उन लोगों से युद्ध हुआ था ?"

चन्द्र—"उस पराजय का अपमान वे अब तक न भूल सके, इस बेर अधिक सैन्य संग्रह कर उसका बदला लेने की आशा से आये हैं।" शैलबाला बोली "कौन बदला लेगा सो देखा जायगा। उस बेर आपने दया कर छोड़ दिया इसी से उनलोगों को इतना अहंकार हो गया है। उन्हे उचित था कि कृतज्ञ होते, न कि उलटा फिर उपद्रव करने आये।"

चन्द्रपति बोले "मैं कलही जाऊंगा। अब कुछ भी विलम्ब नहीं कर सकता।" प्रभावती इस क्षण तक मौन हो रोती रही, कष्ट से अश्रुजल निवारण कर बोली "नाथ! तुम स्वदेशरक्षा के अर्थ जाते हो, अतएव मैं कदापि इसमें बाधा न करूँगी। ईश्वर करे उस बेर की भांति कृतकार्य्य हो कर फिर आओ। तुमारे संग और कौन जायगा ?"

चन्द्र—"वृद्ध अनाथ को ले जाऊँगा।" इतनी बातें कर वे लोग उद्यान से घर की ओर चले। पृथ्वी में सर्वदा सुख दुःख स्थिर नहीं रहता। देखो, अभी एक घड़ी पूर्व्व वे सब कैसे हास्यामोद में रत थीं। दुःख ने आकर प्रबल प्रचण्ड वायु की भांति उसको उड़ा दिया। उद्यान में आने के समय जैसे हँसती हुई आई थीं, जाने के समय वैसेही

रोती हुई गयीं। मार्ग में चलते २ शैलबाला ने प्रभावती से पूछा "उस बार तो युद्ध में चन्द्रपति के जाने के समय तुम इस प्रकार कातर नहीं हुई थीं, इस बार ऐसी क्यों दीख पड़ती हो?" प्रभावती बोली "न जाने क्यों, इस बार की सी अमंगल भावना और कभी न हुई थी।"

आठवां परिच्छेद।

अब हम दिल्ली राजान्तःपुर में जहां राजकन्या उषावती, मन्त्रीपुत्र के संग बातचीत कर रही है प्रवेश करते हैं।

दोपहर रात गई है, अन्धकार छाया हुआ है, धरती निःशब्द है, और वृक्षों के पत्तों पर जुगनू की ज्योति से विकाश हो रहा है, लगातार झिल्ली का झनकार मानो उस सूनसान को छेड रहा है। सब निद्रित, कोई जाग्रत नहीं है। उस समय दिल्ली के राजान्तःपुर में एक कोठे पर केवल दो मनुष्य आसन पर बैठे है। आधीरात के समय जहां और कोई भी जाग्रत नहीं है, सभी सो गये है, वहा इस कोठे पर एक युवती कन्या अकेली परपुरुष के सग क्यो है?

राजकन्या हाथ पर कपाल रख स्वर्णजटित पलग पर बैठी है, विजयसिंह नीचे किमखाब की शय्या पर बैठा है। राजकन्या सोलह वर्ष की युवती और परम सुन्दरी हैं, इस प्रकार की रूपवती रमणी विरलीही होगी। उसका

रूप पूर्णिमा की चन्द्रिका की भांति हँस रहा है चदनों जिस वस्तु पर पड़ती है वह हँसती है, वस्तुतः वह खिल जाती है, वैसेही उसकी रूपराशि की ज्योति जिस पर पड़े वह दीप्तमान हो जावे। उसके अप्सराविनिन्दत मस्तक से, निविड़ कृष्णवर्ण केशराशि कधे से होता हुआ आकर वक्ष-स्थल पर पड़ा हुआ है। उसके ऊपर श्यामरंग चादर ओ-ढ़ने से ऐसी छवि है मानो चांदनी मेघ के सग लिपट रही है। उन छोटे छोटे कानों में कर्णफूल झूम कर शोभा दे रहे हैं, अलकागुच्छ, भ्रमर की भांति मधुलोभ से बद्ध हो-कर मानो उसके सग खेल रहे हैं। रूप की ज्योति से वस्त्र चमक रहा है, समस्त गृह मानो हँस रहा है, किन्तु वह नहीं हँसती। यद्यपि उसके मुख से विरक्तिबोधक भाव प्र-काश होता था, तो भी उसके मुख को कान्ति से चतुर्दिक् प्रकाशमय हो रहा था। चन्द्र में कलंक है तो क्या उसमें उज्वलता नहीं है? किन्तु यह कलंक क्या स्थायी है? क्या फिर दूर नहीं होगा? जिसकी शोभा पाकर समस्त वस्तु इ-तनी शोभित हुई है, यदि वह हँसती तो न जाने कितनी शोभा होती?

वे दोनों चुपचाप हैं, किसी के मुख से कुछ बात नहीं निकलती, कुछ देर पर उपावती ने बात करना आरम्भ किया; मानो वीणा बज उठी। जहां तक वह स्वर गया

तहां तक मानो अमृत की वृष्टि हो गई। उनने कहा "क्या कहने आये हो कहो। देखते नहीं कि हम लोग किस अवस्था में बैठे हैं? यदि कोई आ जावे तो क्या समझेगा? देर होने में विपद की आशंका है, शीघ्र कह कर प्रस्थान करो"। विजयसिंह ने कहा "सुना है कि यवन फिर आते हैं?"। यदि सकल वस्तु पर विचार किया जावे तो विजयसिंह को सुशील कह सकते हैं। उस की दृष्टि अन्तर्भेदी होने पर भी प्रकाश में उसको अति नम्र और सद्व्यक्ति कहा जा सकता है, किन्तु जो लोग सूक्ष्मदर्शी हैं वे देख कर समझ सकते हैं कि उसका सब गुण कृत्रिम है, वास्तविक में वह सत्पुरुष नहीं है। इसी से वह अपने मुख की सरलता दिखा कर अनेक सीधे मनुष्यों को भुलवा सकता है। राजकन्या उसकी बात सुन कर बोली "तुम यदि यही कहने के निमित्त आये थे तो जाओ। मैं इसके पूर्व्व ही उसे सुन चुकी हूं"। विजय ने कहा "ना, मैं केवल यही बात कहने नहीं आया कुछ और भी है"। उषावती ने पूछा "और क्या?"

विजय०—"यदि इस बार महाराज पृथ्वीराज पराजित हों तो तुम क्या करोगी?" उषावती सक्रोध बोली "क्या? पिता परास्त होंगे। क्या तुम नहीं जानते कि जयचन्द्र का पराभव करके जब पिताजी आये तो उसी वर्षो बधाई अल्प

संरक्षित सेना से उसी वर्ष में यवनदल को कैसे मेषपालों (१) की भांति दिल्ली से बाहर कर दिया था ?"

विजयसिंह ने किंचित् लज्जित हो कर कहा कि "ईश्वर करे वैसाही हो, किन्तु यदि विपरीत घटना हुई तो क्या करोगी ?"

उषा०—"सो इस समय कैसे कहूं ? जो दशा पिता जी की होगी सोही मेरी भी समझो"।

विजय०—"तुम स्त्री जाति हो तिस पर राजकन्या, किस प्रकार कष्ट सहन करोगी ?"

उषा०—"तुम कापुरुष हो इसी से ऐसी बातें कहते हो। और बार यवन लोग युद्ध के समय किस प्रकार भागे थे, स्मरण करके देखो तो मैं यद्यपि पुरुष नहीं हूं तथापि तुमारी अपेक्षा साहसी हूं। ऐसा अपने मन में मत विचारो कि मैं कष्ट सहन न कर सकूंगी। यदि अभी कोई आकर कहे कि तुमारी मृत्यु होने से देश की रक्षा होगी' तो देखो कि मैं तुर्त मर सकती हूं कि नहीं ? तुमारे सदृश मैं स्वदेश की अपेक्षा प्राण को अधिक मूल्यवान नहीं जानती"। विजयसिंह के हृदय में यह बात तीक्ष्ण बाण की नाईं बिध गई। उसके रणक्षेत्र से भागने का हाल और कोई नहीं जानता था। केवल राजकन्या के निकट उन्होंने उसको प्रगट किया था, किन्तु जिस लोभ की आशा से उसने यह कहा था

(१) भेड़ के चरवाहे।

वह फल न देखा, विपरीत ही देख पडा। वे इस समय मन ही मन क्रुद्ध हुए किंतु प्रकाश्य में उसको छिपाकर बोले कि "तुम मुझ से सर्वदा वह बात कह कर मेरे मन को कष्ट देती हो किंतु तुम जो कहती हो वह सत्य नहीं है। मैं स्वदेश की अपेक्षा प्राण को प्रिय नहीं जानता किंतु तुम को प्रिय समझ कर मरने की इच्छा नहीं करता, तुमारे ही वास्ते मैंने रणक्षेत्र से पलायन किया था। मरने पर तुमारा यह मुखचन्द्र न देख सकूंगा यही समझ कर मैं भागा था। यह जानबूझ कर भी कि भागने से कापुरुष बोध होकर सब के निकट घृणास्पद होना होगा, मैंने केवल तुमारे ही निमित्त पलायन किया था। मैंने तुमारे ही चरण के नीचे प्राणाधिक क्षत्रिय तेज विसर्ज्जन किया था। अब तुमारे मुख से यह निर्दय वाक्य सुनना पडा ? यदि मैं यह जानता कि तुम मुझ से इस प्रकार घृणा करोगी तो मृत्यु को सुखकर जान निःशंक प्राण दे देता"। उपावती यह सुन अपनी उक्त प्रकार की बातों को अन्याय विवेचना कर बोली "अच्छा, यदि मेरी बातों से वास्तव में तुम को कष्ट होता है तो मैं और कुछ न कहूंगी। किन्तु तुमने जो कहा सो मिथ्या नहीं, तुम कापुरुष की भांति भागने की अपेक्षा यदि रणक्षेत्र में मर जाते तो मैं तुम को अधिक प्यार करती, मेरे कोई भ्राता नहीं है, तुमारी मृत्यु होने पर तुम को

वीर भ्राता जान कर मै तुमारे निमित्त रोदन करती, रोने में भी मुझको आह्लाद होता। उस समय मै यह कह सकती कि मेरे भ्राता ने देशरक्षा के निमित्त युद्ध में प्राणत्याग किया है। जो हो, मैने जो भूल कर इतनी बात कह तुम्हें लज्जित किया इससे इसबार बोध होता है कि तुम युद्ध में अपना वीरत्व दिखलाओगी !"

विजय०—"यदि मैं तुमारे मुखारबिन्द से सुनूं कि इस बार बीरत्व दिखाने में तुमारे प्रेम का पुरष्कार पाऊंगा तो मै प्राण देने में अब प्रस्तुत हूं। हम लोग बाल्यावस्था में एकत्र रह आये है, परन्तु कभी भी तुमने मुझ को प्यार से नहीं पुकारा। किन्तु मै तुमारे निमित्त सर्वस्व देने को प्रस्तुत हूं"।

उषा०—तुम मेरे ऊपर यह मिथ्या दोषारोपण करते हो, कि मै तुम को प्यार नहीं करती। मैने तुमसे कई बार कहा कि मै तुम को ज्येष्ठभ्राता की भांति प्यार करती हूं। और इस समय भी वही कहती हूं"।

विजय०—"फिर मुझ को वृथा क्यों कष्ट देती हो ? इस बार यदि युद्ध मे बीरत्व प्रकाश करू, तब तो तुम मेरी हो जाओगी न ?"

उषा०—मैं कई बार तुम से कह चुकी हूं कि यह बात [illegible]ा पर मत लाना। मै कदापि तुमको उस प्रकार प्यार [illegible]ी"।

विजय०—"क्यों ? तो क्या तुम किसी और को प्यार करती हो ?"

उषा०—"इसके जानने की तुम को क्या आवश्यकता है ?"

विजय०—इसके जानने से प्रेम की बातें कहकर फिर तुम को विरक्त न करूंगा"। विजयसिंह रुद्धश्वास हो कर स्तम्भित भाव से उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। उषावती अनिच्छापूर्व्वक धीर और गभीर स्वर से बोली "हां मैं प्यार करती हूं"। इसी एक बात से विजय की इतने दिनों की आशा मानों सब विलुप्त हो गयी। कम्पित स्वर से बोले "किस को ?"। उषावती के वदन मण्डल में इस प्रश्न से एक मात्र विरक्त भाव का प्रकाश बोध हुआ कि मानों वह मन ही मन यह कहती है कि तुम को इस बात के पूछने का अधिकार नहीं है" सच है किसी को अधिकार नहीं है, अपनी प्रीति की सामग्री अपनी है। मन में विचार किया कि "बोलूंगी नहीं।"

विजय ने सुना था कि, चितौराधिपति समरसिंह के पुत्र युवराज कल्याण के संग राजकन्या के विवाह का सम्बन्ध होता है, इसी के सुनने से उन्होंने अतिशय व्याकुल हो कर राजकन्या के संग साक्षात प्रार्थना की थी। आज इस चेष्टा से वे आये थे कि राजकन्या की परीक्षा लें कि कल्याण के

प्रति वह अनुरागिणी है कि नहीं, और इसके जानने पर ऐसा यत्न करें कि वह किसी प्रकार से उनके सग विवाह करने में सम्मत न होवे। किन्तु अपने अन्तिम प्रश्न मे राज कन्या को निरुत्तर देख वे और अधिक उत्तर की प्रतीक्षा न कर सके। आपही बोल उठे "का युवराज इन्द्रसिंह अथवा रणवीरसिंह में से कोई तुमारा प्रणयपात्र है ?" उषावती पूर्व्ववत् मौन रही। उसको निरुत्तर देख विजय अधीर हो बोले "क्या मुझ से उस बात के कहने मे भी तुम्हे इतनी वाधा है?" उषावती विरक्त होकर बोली "नहीं वे लोग मेरे प्रणयपात्र नहीं हैं। अब अधिक कुछ पूछ कर मुझे विरक्त मत करो इन सब विषयो का उत्तर मै न दूंगी। यदि और कोई दूसरी बात न हो, तो जाव ?" इसको निश्चय जानने के हेतु से कि वह कौन प्रणयपात्र है, उन्होंने राजकन्या को सुना कर अपने मन में मृदुस्वर से कहा 'वे लोग नहीं हैं तो और कौन है ? रणवीरसिंह नहीं, इन्द्रसिंह भीं नहीं और इसके उपयुक्त प्रणयपात्र यहां अब कौन है ? एक युवराज कल्याण ?। तो क्या उसी को राजकन्या ने प्रेमपात्र बनाया है ?" कल्याण का नाम सुनते ही राजकन्या घबडाकर देखने लगी उसके मुख का भाव बदल गया। वदनमंडल किंचित रक्त वर्ण हो गया। दृष्टि नीची कर ली, इससे लज्जा का चिन्ह प्रकाश हुआ मन का भाव गोपन करने के नि-

भित्त वह चद्दर से बदन ढांक चुपचाप खेलने लगी। उसको सिरसे थोडा सरका दिया फिर खींचकर घूंघट काढलिया। विजयसिंह यथार्थ भाव बूझ गये। उनके हृदय में जो आशा का अंकुर जमा था, वह सूख गया। फिर वे वहा न ठहरे, शीघ्र उस घर से बाहर होकर एक बारगी आकर अपने घर पर उपस्थित हुए। राजकन्या विजय की यह क्रिया देख ज्ञानशून्य हो गई। कुछ देर उपरान्त जब विस्मय कम हुआ उसने अपनी प्रियसखी गुलाब को पुकारा। गुलाब का बदन अति उदास नेत्र रक्तवर्ण, बोध होता है जैसे इसके पहिले रोती हो। किन्तु राजकन्या ने अन्यमना होने से उसपर ध्यान न दिया। वह बोली "तुम मन्त्री पुत्र को गुप्त-द्वार से यहा ले कर आई थीं, किन्तु जाने के समय उसने तुमारी अपेक्षा न किया और चलागया, मैं पहिले उसके संग साक्षात् करने में किसी प्रकार सम्मत नहीं हुई। तुमारे अत्यन्त अनुरोध करने से अन्त मे सम्मत हुई। जिस अभिप्राय से वह आना चाहते थे उसके जानने से मै कभी सम्मत न होती इस समय उस को किसी ने देखा कि नहीं, अब गुप्तद्वार बन्द कर आओ।"

इतना कह कर राजकन्या शयनागार को चली गई।

नवां परिछेद।

सचराचर पृथ्वी में दो प्रकार का प्रणय देखने में आता है। एक का नाम अकृत्रिम, और दूसरे का नाम स्वार्थ-प्रेम है। जिस व्यक्ति का प्रेम, प्रणयीजन के निकट प्रेम का प्रतिदान न पाने और सहस्रशः निष्ठुरता का उपहार पाने पर भी हृदय मे अचल रहे उसी का प्रेम अकृत्रिम है। जो व्यक्ति प्रणयीजन के सुखसाधन के हेतु आत्म सुखाभिलाष विसर्ज्जन कर सके उसी का प्रेम अकृत्रिम है। किन्तु इस प्रकार के उच्च प्रणयी बिरले होते हैं और परस्पर का प्रणय यदि अटल हो तो वह भी अकृत्रिम है। इस प्रकार का अकृत्रिम प्रणय उतना विरल नहीं है, और जिस व्यक्ति का यत्नसंचित प्रेम भी क्षणभंगुर द्रव्य की भाँति किसी एक बात में भंग हो जाय अथवा जो आत्मसुख के हेतु प्रेम करे, उसका प्रेम, प्रेम नाम के योग्य नहीं है। वह जब सु-नता है कि उसके प्रेमपात्र का प्रेम किसी दूसरे पर लगा है, उस समय उसका प्रेम घृणारूप में परिणत हो जाता है, उस समय वह बिचारता है कि वह अपने हेतु प्रीति थी, कुछ मेरे निमित्त नहीं। ऐसे प्रेम का नाम स्वार्थपर प्रेम है।

विजय का प्रेम इसी दूसरी श्रेणी मे है उन्होंने जब सुन लिया कि राजकुमारी मुझसे कभी प्रेम न करेगी क्यों कि वह दूसरे पर आशक्त है, तो तुर्त उनके हृदय पर घृणा

और हिंसा ने अधिकार कर लिया। केवल यही नहीं कि वे राजकन्या के लाभ से वंचित हुए। उनकी एक और भी बहुत दिनों की आशा उसी के संग लुप्त हो गयी। उन्होंने यह आशा की थी कि यदि मैं राजकन्या का प्रेम प्राप्त कर सकूंगा तो भविष्यत् राजा भी हो सकूंगा क्योंकि पृथ्वीराज के कोई पुत्र न था। जब यह देखा कि वह आशा वृथा है, मेरा स्थान तो कल्याणसिंह ग्रहण करेंगे तो वे अपने मन में उसका दोषी राजकन्या और कल्याण को ठहराने लगे। हिंसा और क्रोध से शरीर जल उठा और अपने मन में कहा कि यह तो कभी न होगा, मरूंगा किंवा मारूंगा। यही चिन्ता करते २ विजय अपने घर पर आकर उपस्थित हुए। देखा कि उनका दास उनके आसरे में बैठा है। भृत्य विजय को देखते ही बोला "मन्त्री महाशय आप के निमित्त चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे हैं।" यह सुन विजय अपने घर से पिता के घर पर आये। उनके पिता अस्सी वर्ष के वृद्ध थे दाढ़ी मोंछ सम्पूर्ण श्वेतवर्ण, मुख अति गम्भीर और उससे दुगुण प्रकाश होता था, उस असामयिक वृद्ध को देखते मात्र भक्ति उत्पन्न होती है। इनको देख कर मन में प्रतीत होता है कि युवावस्था में ये एक सुन्दर पुरुष रहे होंगे। विजय की मुखाकृति से यद्यपि उनके मुख की आकृति अनेक प्रकार से मिलती थी, तथापि उनका सद्गुण विजय में न दीख पड़ता था।

विजय ने गृह में प्रवेश करते ही देखा कि मन्त्री और अमरसिंह एक दीप की ज्योति के सन्मुख बैठे कुछ लिख रहे हैं, पासही अनेक कागज पत्र रक्खे है । उन्होंने लिखना बन्द नहीं किया, इशारे से उनको बैठने की आज्ञा दी । जो लिखते थे उसे समाप्त कर बोले "मै सन्ध्याकाल से तुम्हारे हेतु प्रतीक्षा कर रहा हूँ, तुमारे सङ्ग मुझे कुछ विशेष बात करनी है"। विजय यह सुन आश्चर्य्यान्वित हो बोले "मै घर पर ज्योंहो आया आपका बुलाना सुन तुर्त यहीं चला आता हूँ, आप की क्या आज्ञा है ? कहिये कि सुन कर परितृप्त होऊँ।" मन्त्री ने कहा 'किसी कार्य्यवश कलहही तुमको विदेश यात्रा करनी होगी, सब कुछ प्रस्तुत है, अब रात्रि मे तुम तय्यार हो जाव।' विजय को सहसा दूसरे हो दिन अपना जाना सुन और भी अधिक आश्चर्य्य हुआ। अमरसिंह कईएक पत्र दिखला कर बोले, "येही सब अति प्रयोजनीय है, इन्हीं सबो को निर्दिष्ट स्थानों में ले जाने के लिये एक विश्वासी और उपयुक्त पुरुष आवश्यक है। आगामि युद्धोपलक्ष में सन्धिबद्ध और छोटे २ भूमिकर देनेवाले राजाओ के निकट सहायता की प्रार्थना इसका उद्देश्य है। मुसलमान लोग इस देश मे आये हैं, यह जान बूझकर भी हमलोगों ने इतने दिनो तक कोई विशेष तय्यारी नहीं की। कारण यह है, कि हमलोगो ने मन मे

विचार किया था कि यदि उस बार का अपमान भूल गये और साहस करके वे सब इस बार युद्ध करने के निमित्त फिर आवैं, तो हमलोग अपनी ही सैन्य द्वारा उन सभी को पराजय कर सकैंगे, तथा अन्य राजाओं की सहायता लेने की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु अब देखते हैं, कि शत्रु को बलहीन समझ तय्यारी में त्रुटि करना कदापि उचित नहीं है। अति सामान्य युद्ध होने में भी असावधानी न करनी चाहिये। विशेषत: मुसलमानों के संग युद्ध जैसा सहज है सो प्रगट है। यदि कोई क्षत्रिय उन सबों के संग योग देवें, तो निस्सन्देह सहज न होगा। फिर उस बार जिस समय कन्नौजाधिपति को पराजय करके हमलोग आये, वही थोडी बची हुई सेना लेकर यवनों से जयलाभ किया था, तो इस बार उन सभों के पराजित करने में हमलोगों को समस्त सेना को युद्धक्षेत्र में जाने का प्रयोजन पडेगा या नहीं इसमें भी सन्देह है। किन्तु जयचन्द्र हमलोगों की शत्रुता है। हमलोगों को इस प्रकार की आशङ्का होती है कि वह देश की मर्यादा भूलकर इन सभों के संग योग दे सकते हैं इसी कारण सब बातों का विचार करके तुमको भेजते हैं। हमारे चारोंओर शत्रुओं के गुप्त दूत उपस्थित हैं एक पग भी निर्भय आगे बढने के योग्य नहीं है। इसी कारण सामान्य दूतद्वारा इसे भेजने में साहस नहीं होता।

सामान्य दूत विपद् में पड़ने पर कलाकौशल अथवा बल-द्वारा शत्रु के हाँथ से बचना न जानेगा। और यदि शत्रुगण इसे किसी प्रकार पा जांयगे तो हमलोगों का कार्य्य सिद्ध न होगा। इस कार्यनिर्वाह के निमित्त साहस इत्यादि जिन सर्व्वगुणों की आवश्यकता है, वह सब तुम्हीं में पाये जाते है। इसी कारण महाराज से कह कर तुम्हें इस कार्य में नियुक्त किया है। इसमें अनेक विपत्ति की सम्भावना देखने पर भी सावधानी के साथ कार्यनिर्वाह करना। यद्यपि तुम मेरे प्राण की अपेक्षा भी प्रिय हो, तथापि स्वदेश रक्षा निमित्त तुम्हीं को भेजता हूँ। देशकल्याणार्थ इस वृद्धावस्था में एक मात्र पुत्र को भी त्यागना हमने स्वीकार किया है। यदि मैं वृद्ध होने से असमर्थ न हो गया होता तो मुझको स्वयं जाने में इतना कष्ट न होता।'—बोलते २ उनके दोनों नेत्र जल से पूर्ण हो गये परन्तु पुत्र को विदा करही दिया। जब लों वह पथ मे दीख पड़ते थे, तब लों एकटक देखते ही रहे। जब दूर जाने से अदृश्य हो गये तब उस ओर से चक्षु फेर किया। फिर मन्द चिन्ता ने आकर उनके चित्त पर अधिकार किया। सोचने लगे कि 'जिस कार्य के लिये विजय को भेजा है उसमें मृत्यु होने की सम्भावना है। यह गया तो सब कुछ विदा हुआ। इस वृद्धावस्था में अपना और कोई नहीं, यही एक मात्र पुत्र

है, उसको भी मैं इस बार खो बैठा। यदि पुत्र फिर कर न आया, तो किसका मुख देख जीवनधारण करूँगा? ऐसी दुर्घटना होने से मेरी क्या दशा होगी?' फिर विचारा कि 'यदि भाग्य से सकुशल फिर आया, तो यह सकल चिन्ता वृथा है, परमात्मा ऐसा हो करे, यदि ऐसा होगा तो उसको भविष्यत् में ऐसे विपज्जनक कार्य में फिर कभी न भेजूगा। सकुशल फिर आने का मन में ध्यान ही करने से उनका हृदय आह्लाद से पूर्ण हो गया। किन्तु वह क्षणिक था फिर बुरी आशङ्का होनी कुछ आश्चर्य नहीं है। यह तो मनुष्य का स्वभावसिद्ध धर्म है। वे जिस समय इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, उस समय विजय क्या कर रहे थे,? उन्होंने यह विचार करके कि निद्रा से सकल कुचिन्ता दूर हो जायगी पहिले शयन किया। किन्तु निद्रा किसी प्रकार न आई। पिता की महत्वयुक्त मुखश्री को देख कर जिस विषय को कुछ देर के लिये भूल गये थे, वह मन में फिर उद्दीप्त हुआ। विजय उस चिन्ता से निवृत्ति पाने के हेतु जितनीही निद्रा आने की चेष्टा करने लगे, उतनीही राजकन्या के संग की बातचीत स्मरण होने से डाह में उनका शरीर दग्ध होने लगा। शय्या कण्टक के समान हो गई। वे शय्या त्याग कर घरही में चारोंओर टहलने लगे, और यह उपाय सोचने लगे कि राजकन्या और उनके प्रियपात्र

कल्याण को किस प्रकार दण्ड दूँ। क्षण पर्यन्त चित्त स्थिर होने पर उनको स्मरण हुआ, कि जब मैं राजकन्या के गृह से बाहर हुआ था तो उस समय द्वार पर किसी को खड़े देखा था। मन में अनवस्थिता के कारण उस समय उसको भली भांति न पहिचाना, विचारने लगे कि 'वह कौन था? गुलाब तो न थी? वह वहां खड़ी क्या करती थी? क्या वह हमलोगों की बातचीत सुनती थी? वही होगी। वह अपने मनमें क्या कहती थी सो तो स्पष्ट स्मरण नहीं होता। इतनाही स्मरण है कि केवल पुरुषजाति की निन्दा करती थी, किन्तु उसके निन्दा करने का कारण भी है, क्योंकि मै जानता हूँ कि वह मेरे प्रति दृढ़ अनुरागिणी है, और उसको जानकर भी मै उसके प्रेम में सम्पूर्ण उदासीन हूँ किन्तु इस बार उसके प्रति प्रेम प्रगट कर के अपना एक मुख्य उद्देश्य उसके द्वारा सिद्ध कर लूंगा।' इस समय वि-जय के हृदय मे नूतन आशा का सञ्चार हुआ वे फिर गृह में न ठहरे, हिताहितविवेचनाशून्य होकर झट राजभवन के सन्मुख चले, गढ़ लांघ कर उद्यान मे प्रवेश किया। वि-जय, यह उत्तम प्रकार से जानते थे कि राजगृह के किस किस स्थान मे पहरी नियुक्त है, और किस पथ से जाने में निर्विघ्न जा सकेंगे। उसी के अनुसार सावधानी से चले और अन्धकार होने के कारण पहरी लोगों मे से किसी ने उन्हें

न देखा। गुलाब का गृह किस स्थान पर है उसको भी विजय जानते थे। उद्यान मे पहुँच कर उसी ओर चले। गुलाब जिस घर में रहती था वह दोमंजिला था। उसी के नीचे उद्यान में खड़े हो सोचने लगे कि ऊपर किस प्रकार चलूं। जिस समय गृह से बाहर हुये थे उस समय यह सब बातें ध्यान मे न आई थीं। विजय की दुर्बुद्धि मे स्थिरता न रही। वे इस समय विचारने लगे कि हम किस प्रकार कृतकार्य होंगे, अचानक पाव की आहट सुन पडी और एक मनुष्य दीख पडा। विजय उसे पहरी समझ कर मन मे भयभीत हो एक वृक्ष की ओट मे खडे हो गये। उस व्यक्ति के निकट आने पर जान पडा कि कोई स्त्री है। रमणी और भी आगे बढी, विजय ने गुलाब को पहिचाना। गुलाब भी निद्रा न आने से विरक्त हो शय्या त्याग उद्यान में आई थी, उसने विचार किया था, कि रात्रि को ठण्डी वायु से शरीर शीतल होने पर चिन्ता जाती रहेगी, किन्तु कृतकार्य न हुई। विजय जिस हेतु आये थे, बिना कष्ट उसको पाकर अतिशय आह्लादित हो उसके सम्मुख चले। एक पुरुष को अकस्मात् सम्मुख आते देख कर गुलाब ने भयभीत हो चिल्लाने का उद्योग किया। किन्तु यह अनुमान कर ही विजय बोले "क्या करती हो? तुम्हारे चिल्लाने से मैं चोर समझ कर पकडा जाऊँगा।' इस स्वर से

सुनतेही गुलाब ने पहिचान लिया । यद्यपि वह यह न जानती थी कि विजय उसी के हेतु आये हैं, तौभी उनको देखकर उसे आह्लाद हुआ। किन्तु वह उस भाव को छिपा कर बोली "यह क्या, इतनी रात्रि में तुम यहा क्योंकर आये ?"

विजय ने कहा, "तुम्हारे निमित्त ।"

गुलाब दुखव्यंजक मुसकराहट से बोली, "यह ठट्ठा करने का समय नहीं ।"

विजय—"मै ठट्ठा नहीं करता, सत्य कहता हूँ :"

गुलाब—"मुझ से तुम्हारा ऐसा कौन प्रयोजन है जो तुम प्रात:काल न कर सकते थे और इस रात्रि में आये हो?"

विजय—"मै कल प्रात:काल यहां न रहूंगा ।"

गुलाब—"क्यों ? अच्छा क्या प्रयोजन है, कहो ?"

विजय—"यह स्थान वार्त्तालाप करने के योग्य नहीं है, किंचित् और दूर चलो ।" कुछ दूर जाकर बोले "मै तुमसे एक बात पूछने आया हूं, बतलाओगी ?" गुलाब इस पर कुछ क्रुद्ध होकर बोली "जानती हूं, राजकन्या की बात" । उनके मुख से तो सब स्पष्ट तुमने सुनाही था फिर पूछने क्या आये ? उनका प्रेम कल्याण पर है । उनके पाने की आशा त्याग दो ।" विजय ने देखा कि मेरा अनुमान सत्य है कि राजकन्या ने कल्याणही से प्रेम किया । गुलाब की

निकट विजय के आने के अनेक कारण थे। उनमें से एक इस विषय के जानने की भी इच्छा थी कि राजकन्या यथार्थ कल्याण के प्रति अनुरागिणी है कि नहीं। यह इच्छा बिना परिश्रम पूर्ण हुई तब वे बोले "नहीं, राजकन्या की बात नहीं, तुमारी बात है।" गुलाब आश्चर्य से बोली "क्या। मेरी बात क्या?"

विजय—"हां तुमारी बात, आज तुम उस समय जो कहती थीं, क्या सत्य है?"

गुलाब—"कब। मैं क्या कहती थी?"

विजय—"वही जब मैं राजकन्या के घर से आता था, तब तुम कहती थी न कि कोई एक जन मेरी प्रणयिनी हुआ चाहती है—वह कौन है? क्या वह तुम्हीं हो?" गुलाब समझ गयी कि मेरी सब बात प्रकाश हो गयी है, उसने लज्जित होकर सिर नीचा कर लिया, फिर कुछ विचार कर बोली "जब सब सुनही लिया है तो फिर क्या पूछते हो?"

विजय—"तो क्या मैं जो अनुमान करता हूं, वही ठीक है? क्या तुम मुझसे यथार्थ प्रेम करती हो?"

गुलाब—"मैं प्रेम करता हूं कि नहीं, इसके जानने से तुम को क्या लाभ? तुम तो मुझसे प्रेम नहीं करोगे न? तुमारा हृदय तो दूसरी ओर है।"

विजय—"नहीं, मैं तुमसे अवश्य प्रेम करूंगा।" इ

तना सुन गुलाब का मुख हर्ष से खिल उठा, किन्तु चण-मात्र हो पर फिर मलीन हो गया। सूर्योदय के संग ही मेघ का संचार हुआ, दीपक जल कर बुझ गया। वह बोली 'जो व्यक्ति अभी थोड ही देर पूर्व राजकन्या के हेतु पागल हुआ था, वह कैसे दूसरे को हृदय मे स्थान देगा ? और यदि दे भी तो वह भी चणकाल के निमित्त है। तुम आज मुझसे प्रेम करोगे, कल्ह वेही बातें कह दूसरे से मन तुष्ट करोगे।"

विजय—"क्या तुम भी मेरा प्रेम स्वीकार न करोगी ? मेरा कैसा दुर्भाग्य है। मेरे निमित्त जिसको इतनी लालसा थी वह भी मेरा प्रेम जानकर मेरे प्रति निर्दयी हुई। राज कन्या ने मुझसे प्रेम नहीं किया, फिर एक और जो मेरे प्रति अनुरागिणी भी है, उससे यदि इतना जान कर भी मैं प्रेम नहीं करूंगा तो कैसे रहूंगा ? तुम से प्रेम प्रगट किया तो क्या तुहारे निकट दोषी हुआ।" सरलहृदया गुलाब ने विजय की चातुरी न समझी। उसे भी अपनी भांति सर-लचित्त जान कर, उनने जो कहा था उसका विश्वास कर लिया। वह अबोध बाला आज धूर्त्तता के फन्दे मे फँस गयी, बोली कि तुमने जो कहा मै विश्वास करती हूं, मैने जाना कि अब मेरे सौभाग्य का सूर्य्य उदय हुआ। आज से मैं तुमारी वे मोल की दासी होकर रहूंगी। यदि मेरी बातें

से कुछ कष्ट हुआ हो तो, क्षमा कीजियेगा।" इतनी देर में कहीं जाकर विजय की मनोकामना सिद्ध हुई। वे हर्ष में अधीर हो उठे, और गुलाब ने धोखा खाया। उसने समझा, कि मेरे ही निमित्त विजय को इतना हर्ष हुआ है। किन्तु उस समय एक पहरी के पाव की आहट पाकर दोनों का हर्ष भंग हो गया। गुलाब बोली "तुम जाओ, पहरो देख लेगा तो सर्व्वनाश हो हो जायगा।" विजय ने कहा "इस समय तो मैं जाता हूं। कार्य्यसिद्ध करके फिर आऊंगा, तो भेंट होगी।" इतना कहकर विजय चले गये। पहरो निकट आया, गुलाब को देखकर कुछ नहीं बोला, वह जानता था कि ग्रीष्म काल में गुलाब कभी कभी रात्रि को इस उद्यान में टहलने के निमित्त आया करती है।

घर पहुंचने पर विजय इस वार पहिले की अपेक्षा शान्त होकर सोये। उनके स्थिर होने का कारण क्या है? क्या गुलाब के पाने से उनके हृदय के दाह की आग बुझ गयी? नहीं, नहीं अब वे बदला ले सकेंगे इसी आशा से पहिले की अपेक्षा स्थिर हुए हैं। विजय एक घड़ी भी न सोये थे कि भोर हो गया। रात्रि में सोने के समय खिड़कियों का किवाड़ बन्द न किया था इसी से घर में प्रकाश हो गया, और उनकी निद्रा भंग हो उठी। देखा कि पूर्व्व दिशा उज्ज्वल हो रही है, और मन्द २ प्रभात का पवन बन-

सनाता हुआ उनके अङ्ग को स्पर्श करता है। उस शीतल समीर के स्पर्श और नूतन आशा के संचार से उनका शरीर पहिले से फुर्तीला हो गया। विलम्ब होने के कारण उठतेही विजय ने पिता से साक्षात् भी न की, तुर्त्त घोड़े पर सवार हो जहां जाने को थे चल दिये।

दशवां परिच्छेद।

सन्यासी और दिलीपसिंह के निकट हम लोगों को गये बहुत दिन हो गये आज एकबार उस कुटी मे चलकर देखना चाहिये कि वे लोग क्या करते है किन्तु चन्द्रमा के उदय न होने से पृथ्वी शोभाविहीन है। रजनी गंभीर और निःशब्द है, पृथ्वी अन्धकारमय हो रही है। इस सूनसान मे कभी कभी केवल उल्लू के कठोर कण्ठ का शब्द और झिल्ली का झनकार सुनाई पड़ता है। उसके भिन्न इस समय और कोई शब्द कान में नहीं आता, सारी पृथ्वी नींद में बेसुध है। किन्तु इस गम्भीर रात्रि मे भी कुटीरवासी लोग नहीं सोये। वे लोग दीपक के उजिआले मे दिखलाई पडते है, कुटी के एक प्रान्त मे सन्यासी शय्या पर बीमार पड़े है, निकट में दिलीप बैठा है। दिलीप के हाथ के निकट रोगी की औषधि इत्यादि आवश्यक वस्तु सकल मिट्टी के पात्र मे रक्खी है। रोगी का ज्वर छूटगया है, परन्तु वह

शरीर की ज्वाला से छटपटा रहा है, और बीच२ में दिलीप से जल मांग रहा है। दिलीप इस समय बाइस वर्ष का युवा पुरुष है। उसको मुखश्री पूर्व्ववत् कोमल और सुन्दर है। संसार की कठोरता इस समय भी इस युवा में लक्षित नहीं होती, आज दिलीप का हृदय विषाद से पूर्ण और मुख खेद से मलिन है। सन्यासी के पीड़ित होने से एक क्षण भी इसके मन में सुख नहीं है। दिलीप इस समय रो रहा है और रोगी को देखता हुआ बीच २ में एक २ बार दीपक उत्तेजित करता जाता है। सन्यासी ने कहा "जल," दिलीप उसके मुंह में पानी देकर बोले अब औषधि खाने का समय हो गया है, थोड़ी सी खालीजिये।" यह औषधि सन्यासी ने स्वयं बनायी थी। वह अपने रोग की आपही चिकित्सा करते थे। सन्यासी बोले "नहीं, अब नहीं खाऊंगा। औषधि अब कुछ नहीं कर सकती और थोड़ा जल।" दिलीप थोड़ा और जल मुख में देकर फिर बोले "पिता जी, आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? आप के भिन्न इस अनाथ सन्तान का और कोई नहीं है, यह क्या आप नहीं जानते?"

सन्यासी—"दिलीप! मैं तुम्हारा पिता नहीं हूं। मुझे पिता कहकर संबोधन मत करो। इतने दिन तुमको लेकर मैंने सन्तान की इच्छा पूरी की किन्तु मरने के समय तुम्हें भ्रम में नहीं रखना चाहता।"

दिलीप—"आज आप एक बेरही ज्ञानशून्य हो गये है, पुत्र को भी आज पराया कहते है।"

सन्यासी "नहीं,—मैं ज्ञानशून्य नहीं हूं। आज तुम सेसब खोलकर कहूंगा, तो फिर तुम ऐसी बात नहीं कहोगे। अब अधिक बात नहीं कर सकता, थोड़ा और जल दो।"

दिलीप जल मुख में देखकर बोले "पिता जी धैर्य्य धरिये, बातें करने का प्रयोजन नहीं है, आप बहुत थक गये है।"

सन्यासी—"जल पीने से मेरी श्रान्ति दूर हुई अब बोल सकता हू सुनो। तुम बीच बीच में बातें कह कर बाधा करोगे, तो और बिलम्ब हो जायगा तो फिर मुझको बोलने की शक्ति न रहैगी ; जो कहता हूं उसे चुपचाप सुनते जाओ। "चित्तौर नगरी मेरी जन्मभूमि है, मै एक धनाढ्य वणिक्-सन्तान हूं। पिता वाणिज्य कर्म करके बहुत धन संचय कर मर गये। मै उनके मरने पर उनकी समस्त विषय का अधिकारी हुआ, और मैं भी वाणिज्य करने लगा परन्तु मेरे हाथ से वह कार्य्य वैसा उत्तम न चला ; लाभ के बदले घाटा होने लगा। क्रमश: पिता की जो कुछ धनसंपत्ति थी सो सब इसीके संग चलो गयो। मैं पूर्णतया निर्धनी हो गया। महाजनों ने घर बार सब बिकवा कर अपना २ ऋण चुका लिया फिर मैं बहुत कष्ट में पड गया। जल, जल और नहीं बोल सकता।" दिलीप मुख में जल देकर बोले

"अब मत बोलिये। आप मेरे पिता नहीं है मैं विश्वास करता हूं।"

सन्यासी—"नहीं, मुझको कहना ही पड़ेगा। तुम विश्वास नहीं करते, मुझको रोकने के निमित्त ऐसी बात कहते हो।" जल पीकर उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया। प्रति मुहूर्त उनका जीवन शेष होने लगा। बात करना उनके लिये धीरे धीरे कठिन हो चला। तथापि वे बोलने लगे—"तत्पश्चात् उसी दुःख के समय में एक और दुःख उपस्थित हुआ। मेरा जो एक मात्र पुत्र था वह भी सग छोड सुरलोक को सिधारा। घरवाली ने उसके शोक में प्राणत्याग किया। मैं उन्मत्तप्राय होकर सन्यासी के वेष में नगर नगर वन २ घूमने लगा।" सन्यासी का जीवनवृत्तान्त सुनते सुनते दिलीप के नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने उनके मुख में फिर जल दिया। सन्यासी ने कहा एक दिन रात के समय आधा पानी खाने के अनन्तर मैं नदी के तीर अकेला भ्रमण करता था, देखा कि तीर पर एक स्थान में एक मृत बालक पड़ा है। मृतक जानकर सङ्कुचित न हुआ, मैंने उसे गोद में लिया, देखा तो उसे कुछ कुछ श्वास आता था, जीवन का अन्त नहीं हुआ था। उसके चिकित्सा आदि कर के इस वन में उसको सचेत करने की चेष्टा की। अन्त में उसमें मैं कृतकार्य हुआ

बालक को जीवन प्राप्त हुआ। तुम वही बालक दिलीप-सिंह हो। जल।" जलपान करके सन्यासी फिर कहने लगे "जो वस्त्र पहिने हुए तुम जल में निमग्न हुए थे, उसको मैंने यत्न से रख छोड़ा है। तुमारे वंश को प्रमाणित करने में वह काम आवेगा। तदनन्तर, तुमको पाकर मुझे फिर संसार के प्रति ममता उत्पन्न हुई मैं उस स्थान से आकर यहां रहता था, आज सदा के लिये जाता हूं।" सन्यासी इतना कहते २ अत्यन्त थक गये, फिर कुछ भी न बोल सके। दिलीप बोले "आप मेरे जन्मदाता न भी हों तौभी मेरे पिता हैं। मै इस वृत्तान्त के सुनने के पूर्व जैसे आप को अपना पिता जानता था अब भी वैसाही समझूंगा" हर्ष से सन्यासी के चक्षु में जल भर आया, और बोले 'वत्स, मैंने एक अति अन्याय किया है। अपने सुख के निमित्त तुमारे यथार्थ पिता को तुमसे बंचित किया है।" दिलीप बोले 'आप तो मेरे यथार्थ पिता को न जानते थे कि वे कौन हैं?"

सन्यासी—"जानता नहीं था किन्तु जानने का उपाय था, तुमारे कंठ के जन्तर में तुमारा नाम लिखा था। उसी नाम से तुमारे पिता की खोज कर सकता था। किन्तु तुमको मुझे किसीको भी देने की इच्छा न थी इसी से नहीं किया। तुमारे पिता को देने से तुम यहां की अपेक्षा अत्यन्त सुखी रहते।" दिलीप बोले "आपने यह किस प्रकार जाना?"

सन्यासी—"तुमारे पिता का कुछ पता एक बेर मैंने पाया था। जल, जल।" दिलीप ने मुख में जल दिया। सन्यासी का इस बार सपूर्ण ज्वर छूट गया। उनकी मृत्यु सन्निकट आयी, वे अब कुछ न कह सके। कष्ट से धीरे २ बोले "और आओ—निकट"—दिलीप समझ गये और मुख के निकट कान ले गये। सन्यासी ने कष्ट से कहा सोने के जन्तर में—तुमारा यथार्थ नाम है।" उनको इसबार उर्द्ध श्वास आने लगा। किंचित् जलपान कर फिर बोले तुम—चित्तौर—"सन्यासी का वाक्य बन्द होगया। कण्ठ-श्वास आरम्भ हो गया। जो कहते थे उसको समाप्त न कर सके। उनके नेत्रो से अश्रुजल गिरने लगा। श्वास वेग से च-लने लगा। थोडे ही कालानन्तर उनकी मृत्यु हो गई। दि-लीप ने देखा कि मै मुरदे के निकट बेठा हूं। प्रथम मन में किंचित् त्रास हुआ कि अकेला किस प्रकार उनका सं-स्कार करूगा, उन्हें यही चिन्ता हुई। दिलीप ने सन्यासी के मृतक शरीर को वस्त्र से भलीभाति ढॉक दिया, मुर्दे की दाहक्रिया के निमित्त एक चिता बनाने की चिन्ता में कुटी से बाहर निकले। पर्वत पर एक योग्य स्थान मे चिता की तय्यारी कर वहा ले जाने के निमित्त कुटी में फिर आये, शव को उठाने लगे। अत्यन्त भार वोध हुआ, इस कारण उठा न सके पुनः उठाने की चेष्टा की। वारंवार

चेष्टा करके थक गये किन्तु किसी प्रकार कृतकार्य्य न हुए। अन्त मे निराश होकर मृतक के निकट भूमि पर सो रहे। मन के कष्ट के कारण सारी रात्रि झपकी तक न आई। प्रातःकाल गम्भीर निद्रा आ गई और सो गये। निद्रा टुटते ही देखा कि सब वस्तु जहां की तहां पडी हैं, उन्होंने उठकर फिर मृतक के उठाने की चेष्टा की परन्तु इस बार भी पहिले की भाति चेष्टा निष्फल हुई। विचार किया कि अब सहायता के लिये समीपवाले गांव में जाना उचित है।

ग्यारहवां परिच्छेद।

दो पहर का समय है, सूर्य्य की गरमी से रास्ता चलना कठिन हो रहा है। जो लोग कभी नहीं चलते थे, वेही लोग आज सूर्य्य की किरण को तुच्छ मान रास्ता चलते हैं। ऐसे समय में उसी पर्वत के रास्ते से हो कर कविचन्द्र और उनका सेवक दोनो घोडे पर सवार दिल्ली को जाते थे धूप से उन लोगों का समस्त शरीर पसीने पसीने हो गया है, देखने ही से जान पडता है कि राह के कष्ट से बहुत थक गये है। वे लोग चट्टान पर बैठ थकावट दूर करने के निमित्त घोडे से उतर पडे, अनाथ ने देखा कि इसी सुयोग से सन्यासी का दर्शन हो सकता है, बोले "थोड़ीही दूर पर

एक कुटी है, वहां चलने से आप भली भांति विश्राम कर सकते हैं।" कविचन्द्र ने पूछा "वह किस ओर है? अनाथ ने जिस ओर बतलाया, उसी ओर चल पड़े; कुछ दूर जाने पर कुटी दीख पड़ी, तब वे उसी ओर चले। कुटी का द्वार खुला हुआ पाया, घोड़े की बागडोर सेवक के हाथ में दे कुटी में प्रवेश किया। देखा कि एक मनुष्य कपड़े से ढंका हुआ सो रहा है। उसको कुटी का स्वामी जानकर उससे आश्रय प्रार्थना करने के हेतु उसकी निद्रा भग करने की चेष्टा की। गृहस्वामी के अज्ञात और उसकी अनुमति के विना कुटी मे ठहरना उनको अनुचित बोध हुआ। वे बोले कि "मै पथिक हूं, आपकी कुटी में थोड़ी देर के लिये श्रम दूर करने को आया हूं।"

उनकी बात से कुटी के स्वामी की निद्रा भङ्ग न हुई। वे और जोर से बोले, तथापि उनको निद्रा भङ्ग होने का कोई लक्षण नहीं देखा। फिर बोले "महाशय। एक पथिक श्रान्त होकर आपकी कुटी में विश्राम की प्रार्थना करता है शीघ्र उठिये।" कुछ उत्तर न पाया। उनके स्वर से कुटी गूंज उठी, तौभी कुटी के स्वामी की निद्रा भङ्ग न हुई। उनके पुकारने से गृह के स्वामी का एक भङ्ग भी न हिला, पूर्व्ववत् स्थिर ही रहा। कविचन्द्र मन में कुछ विचारने लगे कि यह कैसी निद्रा है। कहीं चिरकालिक निद्रा तो नहीं?

धीरे २ उसके मुख से वस्त्र हटा दिया। मुख और नेत्र की चेष्टा देखकर मन में कहने लगे कि देखो मैं इतने काल तक मृतक को निद्राभंग की चेष्टा करता था। इतने ही में घोड़े को उत्तम स्थान पर बांध अनाथ भी कुटी में आया। द्वार पर पांव रखतेही चन्द्रपति ने उसको कुटी से बाहर चलने की आज्ञा दी, और आप भी बाहर चले आये। उसको आश्चर्य हुआ। कविचन्द्र ने बाहर आकर देखा, कि एक युवा पुरुष रोता हुआ उसी कुटी की ओर चला आता है। दिलीप, सन्यासी के संस्कार निमित्त सहायता लेने के लिये निकटवर्त्ती ग्रामों में जा रहे थे। कुछ दूर जाकर पीछे फिर कर देखते क्या हैं कि कुटी के द्वार पर एक घोड़ा और दो मनुष्य उपस्थित हैं। कुटी के पास मनुष्य देखने पर फिर ग्राम में जाने का प्रयोजन न देख लौट आये। दिलीप को देखकर अनाथ बोल उठा "यह क्या वही बालक है, अब इतना बड़ा हो गया ? यदि इसे यहां न देखकर मैं किसी दूसरे स्थान में देखता तो पहिचान भी न सकता।" दिलीप भी अनाथ को देख कर पहिले न पहिचान सके। निकट आनेपर अनाथ ने पूछा संन्यासीजी कहां है ? और उनका शिष्य किधर है ?" दिलीप को देख कर कविचन्द्र बोले—"क्या आपही इस कुटी के स्वामी हैं? यदि हैं तो हमलोगों का अपराध क्षमा कीजियेगा। हम

लोग पथिक हैं धूप की गरमी से व्याकुल होकर यहां आये हैं।" दिलीप ने कविचन्द्र की बात पर ध्यान न किया, अनाथ से बोले "हा! आज वह दिन नहीं है कि जब तुम ने हम तीन चार मनुष्यों को एकत्र सुखपूर्व्वक समय बिताते देखा था—अब वह दिन नहीं है, पिताजी के शिष्य उस कन्या को लेकर बहुत दिन हुए कि इस कुटी से चले गये। कल पिताजी ने भी स्वर्गलोक की यात्रा की। अब अकेले हम्हीं इस कुटी में हैं। इस समय हमारी कुटी शून्य है। यही कहते २ उनका पुराना शोक नवीन हो आया, दोनों नेत्र जल से परिपूर्ण हो गये। कुछ काल बातचीत करने पर वे तीनों मनुष्य सन्यासी को कन्धे पर उठाकर दाह-कर्म्म करने के निमित्त ले गये। क्रिया समाप्त कर लौट आये और कुटी में विश्राम किया। युवा के सम्बन्ध में कवि-चन्द्र के मन में कितनी बातें उपजने लगीं। वे विचारने लगे कि ऐसा सुन्दर पुरुष राजभवन में न रह कर कुटी-स्वामी क्यों है? यह अवश्य किसी भद्रकुलोत्पन्न होंगे, यहां छद्मवेश में हैं। मैं अपरिचित हूँ, विशेष मित्रत्व न होने से परिचय पाने की सम्भावना नहीं है किन्तु पूछने में क्या हानि है? कविचन्द्र अपनी चेष्टा छिपा न सके बोले "आप को देखने से बोध होता है कि आप दूसरे वेष में हैं। यह स्थान यथार्थ आप का निवासस्थान नहीं है आप कितने दिनों से यहां वास करते हैं?"

दिलीप—"मै बाल्यावस्था से यहीं रहता हूँ।"

चन्द्र०—"तो क्या आपका जन्म इसी स्थान पर हुआ था?"

दिलीप—"जी नहीं मेरा जन्म तो यहां नहीं हुआ था, किन्तु मै यह भी नहीं जानता कि मेरा जन्मस्थान कहां है।"

चन्द्रपति—"क्यों अपने पिता सन्यासीजी से आप ने कुछ सुना नहीं?"

दिलीप—"जी उनके मुख से जो सुना उससे मालूम हुआ कि वे मेरे पिता न थे। असहाय अवस्था में मुझको पाया था यहां लाकर सन्तानतुल्य मेरा पालन किया इससे अधिक और कुछ मैने नहीं समझा।" कविचन्द्र आश्चर्य से बोले "तो सन्यासीजी आप के यथार्थ पिता नहीं थे?"

दिलीप—"जी नहीं।"

चन्द्र०—"तो आप के यथार्थ पिता कौन हैं?"

दिलीप—"इसको तो मैं नहीं जानता और जानने का कोई उपाय भी नहीं है। पिता मृत्यु के समय कहने लगे थे किन्तु जीवन शेष होने के कारण मुझसे और कुछ न कह सके।" दिलीप की बातचीत से कविचन्द्र को उनके अधिक परिचय की आशा मालूम न हुई। कुछ देर उपरान्त कविचन्द्र बोले "सन्यासी की मृत्यु

हो जाने से आप यहां अकेले पड गये ?" दिलीप ने कहा "जी हां।"

चन्द्रपति—यद्यपि कहते हुए मुझे सकोच मालूम होता है किन्तु कहता हूँ—कि यदि और कोई यहा नहीं रहता तो फिर आप किसके हेतु रहैंगे ?" दिलीप ने कहा "इसे तो मैने भी कई बेर विचार किया है, किन्तु कहां जाऊँ ? कविचन्द्र सहर्ष बोले "यदि आपकी इच्छा हो, तो मै अपने संग दिल्ली ले चलूं।" युवा उनसे सम्मत होकर बोले "वहा जाकर क्या करना होगा ?"

चन्द्र०—"आपकी जो इच्छा होगी कीजियेगा। यदि युद्ध कर सकैं तो आगामि युद्ध में सेनापति हो सकते हैं।" युवा आगामि युद्ध का हाल कुछ भी जानते थे। कैसे जानते ? इसे जानने की इच्छा प्रकाश करने पर ही कविचन्द्र ने सविस्तर कह सुनाया। युवा ने समग्र वृत्तान्त सुन कहा "मैंने अस्त्रशिक्षा तो नहीं पाई है किन्तु अस्त्र धारण करने जानता हूँ। जितना जानता हूं उससे तो युद्ध में भय नहीं है।" कविचन्द्र के सङ्ग दिलोप का दिल्ली चलना स्थिर हो गया। थोडी देर पर कविचन्द्र ने पूछा कि आपका नाम क्या है ? जन्म का परिचय नहीं पाने से पूछने में भी भूल होती थी।

दिलीप ने उत्तर दिया—"दिलीपसिंह' सुनतेही कवि-

चंद्र को आश्चर्य हुआ। मन में विचारने लगे "यह क्या वही दिलीपसिंह है ?" उनका नाम सुन कर जो कविचन्द्र को आश्चर्य हुआ इसका कारण दिलीप ने पूछा किन्तु कवि-चंद्र ने उस समय उत्तर न दिया। कुछ सोचकर बोले 'क्या आप लोगों को इस कुटी में कोई बालिका अपने पिता के संग वास करती थी ?।"

दिलीप व्यग्र होकर बोले "हां, कुछ दिवस तक वे लोग इसी स्थान मे थे, इसको आप ने किस प्रकार जाना क्या आप उनलोगो का संवाद जानते है ? वह बालिका क्या हुई? बाल्यावस्था में हमलोग एकत्र खेला करते थे।

चद्र०—"बालिका के पिता तो युद्ध में मारे गये।"

दिलीप—"तो क्या वह भी मेरेही भांति पितृहीना हो गई? अब उसकी क्या दशा है ?"

चन्द्र०—"वह अच्छी तरह है, उसे कोई कष्ट नहीं।"

दिलीप इस बात से सन्तुष्ट न होकर पूछने लगे "वह अब कहां है ?"

चन्द्र०—"अजमेर में।"

दिलीप—"अजमेर मे किसके निकट ?"

चंद्र०—"अजमेर के एक भद्रपुरुष ने उसको अनाथिनी देखकर अपने निकट रख छोड़ा है।" दिलीप यह बात सुन चिहुँक उठे। फिर पूछने लगे "क्या उसका विवाह हो

गया ?" कविचन्द्र उनके मन का भाव समझ गये और उन के परीक्षार्थ बोले "नहीं उसका विवाह तो अभी नहीं हुआ किन्तु उसके आश्रयदाता उसके विवाह करने में उद्यत है' इस बात के सुनतेही दिलीप का मुख सूख गया। उन्होंने इतने दिवस पर स्पष्टरूप से अपने मन का भाव समझा। उनको चुप देख कविचन्द्र ने पूछा—"क्यों, उसके विवाह होने से क्या आप असुखी हुए ?" दिलीप मन का भाव गोपन कर बोले "आपके मन में ऐसा क्यों विचार हुआ ?"

चन्द्र०—'मेरे मन में इसका संभवयों हुआ कि बाल्यावस्था से एकत्र रहने के कारण प्रीति विशेष हो गई हो तो इसमें आश्चर्य क्या है ?"

दिलीप कुछ लज्जित होकर बोले "यदि आपकी बात सत्य है तो प्रीतिहो होने से क्या हुआ ? इतने दिन मे जो उसका विवाह हो गया है, तो वह पर स्त्री है, अब उसके प्रति अनुराग अधर्म्म है।"

चन्द्र—"उसके आश्रयदाता के संग उसके विवाह की स्थिरता अभी नहीं है। अज्ञातकुलशीला समझ कर उसके सग विवाह करने की सम्मति उनके गुरुजनों को नहीं है।"

युवा—"इसके होने से क्या होता है, शैलबाला को जो इष्ट है वही होना यथेष्ट है।"

चन्द्र—"नहीं, उसको भी इच्छा नहीं है" इस बात को

सुन कर युवा बहुतही सुखी हुए। किन्तु कविचन्द्र ने उस बात को छेड़ने न दिया बोले "तो आप मेरे संग चलेंगे?"

दिलीप—"जी हां चलूंगा।"

चन्द्र—"तो संग मे क्या २ लेंगे? जो लेना हो ले लोजिये मेरो श्रान्ति दूर हो गई।" दिलीप ने सन्यासी के कहने के अनुसार अपना जल मे का डूबा हुआ वस्त्र निकाल कर बांध लिया और बोले कि 'जो लेना था सो ले लिया और तो यहां लेने के योग्य कोई वस्तु नहीं दीखती। एक और प्रिय वस्तु मेरी है, उसको भी कुटी से बाहर चल कर संग ले लूंगा।"

कविचन्द्र बोले—"वह क्या?"

दिलीप—"भीम?"

चन्द्र—"भीम कौन?"

दिलीप हँसकर बोले "मेरा घोडा।"

उसी दिन रात को वे दोनो आदमी और सेवक, पर्वत के नीचे आकर एक धर्मशाला में सो रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल कविचन्द्र ने दिलीप से कहा "मैंने दिल्ली जाने का विचार त्याग कर दिया। कल रात को मैंने यह संकल्प किया है कि यहां से गुप्त वेश में जाकर यवन शिविर (छावनी) का पता लूं, कि उन सभों की क्या अवस्था है, तत्पश्चात् दिल्ली जाऊंगा। इसमें मुझे कुछ दिन विलम्ब होगा। तुम दिल्ली चले जाओ। यह सुनकर कि तुम कविचन्द्र के

निकट से आती हो पृथ्वीराज तुझे आदर से ग्रहण करेंगे, वर एक पत्र उनके नाम का लिख कर तुम्हे देता हूं।

यह कह उन्होंने एक पत्र उनको देकर विदा किया और अनाथ को भी अपनी इच्छा यवन शिविर में जाने को प्रगट कर अजमेर को फेर दिया।

तीनों आदमियों ने तीन ओर को यात्रा की।

बारहवां परिच्छेद।

शतद्रू नदी के तीर यवनो का डेरा पड़ा है। महम्मद गोरी के चारो-ओर सभासद लोग बैठे है और यह विचार कर रहे है कि दिल्ली का आक्रमण किस प्रकार करना होगा।

वेला ढल गई है, अस्ताचल को जानेवाले सूर्य्य देव, तीक्ष्ण कान्ति को बदल निस्तेज सोनहले किरण को वितरण कर रहे है। वायु भी अधिक उष्ण नहीं है, क्रमश: शीतल होता जाता है। इस समय श्रान्त क्लान्त मनुष्यगण अधीर हृदय होकर ग्रीष्म के सन्ध्याकाल को प्रतीक्षा कर रहे है।

उन लोगों के परामर्श स्थिर होने पर महम्मदगोरी ने कहा "जो तर्कीब या तदबिर बाँधी गई है उससे समझ पड़ता है कि इस मर्तब: हम लोग जरूर फतहयाब होंगे आखिरी मर्तब: की जंग से बखूबी जाहिर हो गया है कि

बामुकाबिल और बाईमान की लड़ाई में इन हिन्दुओं को शिकस्त देना हर्गिज़ आसान नहीं है, बल्कि जो बंदिश हम लोगों ने बांधी है उसमें इस मर्तब: फ़तहयाबी की उम्मेद पाई जाती है।' सभासदवर्ग सब के सब महम्मदगोरी के सङ्ग एकमत होकर बोल उठे "जी हां हुजूर बजा फर्माते हैं, हुजूर की बंदिश से बेशक जंग में फ़तहयाबी होगी।"

महम्मदगोरी ने कहा "हिन्दू लोग जैसे और इल्म के उस्ताद हैं रियाजी और नजूम वगैरह में भी वैसेही महारत और कमाल रखते है, वैसेही दुनियवी कारखानों में अकसर निहायत बेवकूफ देखे जाते हैं। वे मुतलक नहीं जानते कि दगेबाजी करने और मौके पर झूठ बोलने से क्या २ फायदे हासिल होते हैं, यहां तक कि अगर उनकी जान पर भी नौबत आ जावे तौभी वे झूठ नहीं बोलते खैर इसे तो दरकिनार कीजिये यह बेवकूफी देखिये कि जंग में भी वे सब बाईमान लड़ते है, बजुज चालाकी अगर कोई शख्स बाईमान लड़ना चाहे तो हर्गिज उन पर फतहयाबी हासिल नहीं कर सकता, देखो हज़रत सिकन्दर शाह, भी पारस वगैरह मुल्कों को फतह करने पर भी हिंदुओं के राजा पुरु के साथ बाईमान लड़ने की हिम्मत न कर सके। उन्होंने भी लाचार होकर इन्हें साथ चालाकी के शिकस्त दी थी, और अगर हम भी फतह पा सकते हैं तो सिर्फ

इसो चालाको और बन्दिश को मदद से। सभासद बोले "वल्लाह जाये ताअज्जुब है कि ये बेवकूफ़ हिन्दू लोग जंग के मैदान में भो ईमान की दुम बॉधे फिरते है। तब तो बे-शक फतहयाबी हमे हासिल होगो। हमलोग उनके ऐसे बेवकूफ नहीं हैं इसलिये हमलोगों को खुदा का शुक्र गु-ज़ार होना मुनासिब है।" महम्मदगोरी ने कहा हम-लोगों के साबिक बादशाहको देखिये जिन्होने बहर के पार हो फकत पचासही बर्ष के अन्दर पच्छिम मुलक मे भी ५० बरस से अपना कब्जा कायम कर लिया और कुरान शरोफ का सादिक मजहब फैलाया था, पस अगर वे इन बहादुर हिन्दूओ से तीन सौ बरस भी बाईमान जग करते रहते तो कोई भो बन्दिश या उस्तादो हिन्दुस्तान को फतहयाबी में काम न आती। कुछ यह नहीं कि आखिरोहो मर्तब: फकत हम लोगो ने शिकस्त पाई, हिन्दुओ से जग शुरू होने के पेश्तर तब से लेकर इतने रोजतक फिर कभी हम लोग उन्हे शिकस्त न दे सके। इसी लिये कहता हूं कि इन ईमा-नदार और बेवकूफ हिन्दुओ की मानिन्द हम लोगों को जग में शिकस्त देना कोई आसान बात नहीं है। बावजूद कि हिन्दू लोग दूसरो बातो मे हम से ज्यादातर अक्लमन्द है ताहम् हम लोगों की चालाकी को वे हर्गिज नहीं पा सकते वे लोग ईमान के इस कदर पाबन्द हैं कि हम लोगों

की चालाकी के साथ लड़ने पर वे सब हर्गिज ईमान न छोड़ेंगे इस मतंब; हम्हीं लोग फतहयाब होंगे। इन्हीं सब उमेदों से इसबार हम लोग यहां आये हैं।

इतने में एक पहरी ने आकर महम्मदगोरी को सलाम किया और कहने लगा "गरीबपर्वर एक हिन्दू आया है और हुजूर से मुलाकात की अर्ज़ करता है हम लोगों ने उसे गोइन्दा समझ कर गिरफ़्तार कर लिया है।"

महाम्मदगोरी "अगर वह गोइन्दा है तो उसे कैद कर रक्खो यहां लाने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

प्रहरी—"कैदी कहता है कि मैं गोइन्दा नहीं हूं।"

महम्मदगोरी—"अगर वह दरहोकक़त गोइन्दा है तो बतलावेगा क्यों ? फिर चाहे वह गोइन्दा हो या न हो, हमलोगों को अपने मतलब निकालने के लिये हिन्दू को शकल को गिरफ़्तार करना ज़रूरी है। तुम जाओ उसे नजरबन्द कर रक्खो।"

इस आज्ञा के सुनने पर भी जब प्रहरी न गया तो महम्मदगोरी ने पूछा "और क्या बात है ?" प्रहरी ने कहा "कैदी कहता है कि मुझे गिरफ़्तार करने से आप लोगों को भलाई की हर्गिज उम्मेद नहीं है।'

महम्मदगोरी ने क्रोध से कहा "क्या। उसके खौफ़ से हम लोग अपनी कारगुजारी से बाज आयेंगे ? उसे कैद करने से हमारा क्या नुकसान होगा ?"

प्रहरी—"वह कहता है कि आप लोगों को जंग में फतहयाबी हासिल न होगी।"

महम्मद—"जंग से उससे क्या वास्ता है?"

प्रहरी—"वह कहता है कि मैं आप लोगों को जंग में फतहयाबी दिला सकता हूं।'

महम्मदगोरी ने पूछा—"क्योंकर?"

प्रहरी—"यह तो उसने नहीं बतलाया, कहता है कि हुजूर के रूबरू बयान करूंगा जो कुछ उसने कहा है वह भी बड़े मुश्किलों से, सो भी तब, कि जब उसने बखूबी देख लिया कि बगैर बतलाये वह हुजूर को कदमबोसी हासिल नहीं कर सकता।"

महम्मदगोरी ने चणकाल लों विचारकर उसे सम्मुख लाये जाने की आज्ञा दी। प्रहरी उस हिन्दू को संग लेकर उनके निकट आया। जान पड़ता है कि इस हिन्दू को जो विजय से भिन्न दूसरा कोई नहीं है सब लोग पहिले से जानते थे। महम्मदगोरी ने विजय को बैठने के लिये कहकर पूछा 'आप का आना यहां किस गर्ज से हुआ?"

विजय—"आप का उपकार करने आया हूं।"

महम्मद "आप हिन्दू होकर हम मुसल्मान लोगों को फायदा पहुँचाने आये हैं यह क्योंकर मुमकिन हो सकता है? आप उपकार किसे कहते हैं कहिये।"

विजय—"आप जानते हैं कि दिल्ली को जय करना आपकी दुराशा मात्र है। गत बार दैवसंयोग से बच गये, इस बार भी उसको नहीं पा सकते, वहां जाने पर फिर रक्षा पाना सम्भव नहीं है।"

महम्मद—"इसको तो हमलोग मञ्जूर करही कर आये हैं। क्या हम लोगों को खौफ़ दिखलाने के लिये आप यहां आये हैं?"

विजय—"जो नहीं जो उस विपद से आपका उद्धार कर सकता है उसे मैं जानता हूं, उसी को कहने आया हूं।"

महम्मद—"वह कौन है?"

विजय—"हम।"

महम्मद—"आप! तो आप कौन हैं?" विजय इस बात से चिन्तित हुये क्योंकि उनको अपना परिचय देने को इच्छा न थी। वे बोले "मुझे जानकर आप क्या करेंगे?। मैं कोई होऊं मेरी सहायता से आप जय लाभ कर सकते हैं।"

महम्मद—"बगैर वाकफ़ीयत हासिल हुये मैं क्यों कर जानूं कि आप में किस कदर ताकत है। अगर आपही पर फतहयाबी या शिकस्त मुकद्दम है तो बगैर पेश्तर शिनाख़्त हासिल हुये हम लोग हर्गिज़ आप पर एतकाद नहीं कर सकते।" विजय ने देखा कि परिचय न देने से निस्तार

नहीं है, तथापि महम्मदगोरी क्या कहते है, यह देखने की निमित्त बोले "किन्तु यदि मै परिचय न दूं?"

महम्मद—"तो आप हम लोगो के कैदी है।" विजय का मुख रक्तवर्ण हो गया। क्रोध में अपने को भूल गये और सगर्व्व बोले तो मुझे आप जानाही चाहते है? मैं दिल्लीश्वर का मंत्रीपुत्र विजयसिंह हूं।" परिचय सुनतेही एक सभासद बोल उठा "ठीक, वजीर के फर्ज़न्द विजयसिंह येही हैं, मै इन्हें पहिचानता हूं। जब मै एलची होकर दिल्ली के दर्बार में गया था, तभी से इनको पहिचानता हूं, मैं पहिचानता तो था मगर नाम अबतक याद न आता था। अब इनकी बातों से याद होता है।" सभासद के कहने से यह प्रमाणित हुआ कि विजय यथार्थ मन्त्रीपुत्र है। महम्मद गोरी ने भी समझ लिया, कि इसकी सहायता से हम लोगो को जयलाभ की सम्भावना है, इसलिये उन्होंने विजय को सतुष्ट करने की चेष्टा की। स्वभावत: दुर्व्वल के ऊपर प्रभुत्व दिखाने और अनुग्रहप्रार्थी लोगों के प्रति निर्दय व्यवहार करने में ये लोग जैसे चतुर हैं, वैसही वे लोग क्षमतापन्न मनुष्य के निकट नम्र होने कर स्वार्थसाधन के निमित्त अति सामान्य व्यक्ति को भी सतुष्ट करने मे इतने निपुण हैं कि जिससे भारतवर्ष के समस्त जाति को ऐसे कौशल में उन लोगों के निकट पराजय मानना चाहिये।

जब यह देखा कि विजय से उपकार होगा, तो महम्मदगोरी गर्वित स्वर छोड विनीत स्वर से बोले "मुआफ कीजियेगा मैने फकत आपकी वाकफीयत् हासिल करने के लिये इन सख्त कलमो का इस्तियामाल किया था। मैं समझता हूं कि आप हर्गिज़ कैद होने से खौफ नहीं खाते" विजय इस बात से मन ही मन हँसे। अब चतुरी से चतुरता। किन्तु विजयसिंह महम्मादगोरी की कपटता समझ कर भी उनके बिनीतस्वर से संतुष्ट हो गये। किसी प्रकार हो, महाम्मदगोरो की जय हुई। विजय ने समझा, महम्मदगोरी धोखे में आये। महम्मद ने कहा 'अच्छा कहिये आप हमलोगो की मदद क्योंकर कर सकते हैं ?"

विजय—"आप को बोध है, बिचारते नहीं, कि एक बिधर्मी मनुष्य बेमतलबही आप के मङ्गल की चेष्टा से यहा आया है ?

महम्मद—"नहीं, यह बात दिल में नहीं आती। अगर हमलोगो का फायदा करके आप भी कुछ मुआवजे की उम्मेद करैं, तो मैं समझूं।"

विजय—"अच्छा तो कहिये यदि आप लोगों को युद्ध में जय लाभ हो तो मै क्या आशा रक्खूं ?"

महम्मद—"आपही कहिये आप क्या चाहते हैं ?"

विजय—"सिंहासन।"

महम्मद—"तो फिर हम लोगों को जग से क्या फायदा होगा ? क्या आप ख्याल करते हैं कि बहुत से लोगो का खून बहानाही हम लोगों की मुराद है ?"

विजय—"जी नहीं, प्रथम तो आप लोग युद्ध में जय लाभ करने से पूर्व अपमान का बदला दे सकेंगे फिर विशेष धन लेकर अपने देश को पधारेंगे और मेरी सहायता न होने से उसकी कोई आशा आपको नहीं है।" महम्मदगोरी ने हँस कर कहा "इस मर्तबः हम लोग हिन्दुओं की फौज की बनिस्बत किस कदर ज्यादा फौज लाये हैं क्या आप नहीं जानते ? और फिर भी ऐसा कहते हैं ? इतनी फौज पर भी बगैर आप की मदद हम जंग में फतहयाबी हासिल न कर सकें, यह बात काबिल एतबार नहीं है।"

विजय०—"आप लोगों के पास सहस्रगुण अधिक सेना रहने पर भी मेरी सहायता बिना आपके जयलाभ की सभावना नहीं है। यदि आप मेरी सहायता नहीं लेना चाहते, तो मैं जाता हूं"। यह कह विजयसिंह उठ खड़े हुए। महम्मदगोरी ने कहा 'खैर फर्ज़ किया कि आप का कहना सच है और अगर हम लोग आप से मदद भी लेने में तयार हों तो क्या तरह के सिवाय और किसी तोर आप राजी नहीं हो सकते ?"

विजयसिंह ने कहा "नहीं"। सुनतेही महम्मदगोरी का मुख आरक्त हो गया, ललाट और भौंह टेढ़े हो गये, देखा कि नितान्त नरम होने से यहां काम न चलेगा, बोले, "मगर जब आपकी ख्वाहिश पूरी करने में हमलोग राज़ी न होंगे तो शायद आपको मदद इन्हीं लोगों को करना हो क्योंकि इस वक़् आप हमलोगो के हाथ में हैं कुछ हमलोग आप के कब्जे में नहीं। अगर आप हमारी मदद नहीं करते तो हम पृथ्वीराज के पास कहला भेजेंगे कि हमारी मदद करने आये थे उस हालत में आप न जा सकियेगा। अब भी बगौर ख्याल कर देखिये कि बगैर हमलोगों की मदद किये और किसी तौर आप रिहाई नहीं पा सकते।' विजय ने देखा कि सच मुच मैं इन लोगों के हाथ पड़ा हूं, दूसरे की हानि करने चले आपही फन्दे में आ फँसे। क्रोध हिंसा और लोभ के वशीभूत होकर यहां से आगे चलने का ज्ञान न रहा। यदि महम्मदगोरी को हमारा परिचय प्राप्त न हुआ होता तो कुछ साहस भी रहता, अब वह भी नहीं है। इसके प्रस्ताव से सम्मत न होने पर यह हमारी सब बातें पृथ्वीराज के निकट प्रकाश कर देगा जिस भय से मुझे परिचय देने की इच्छा न थी वही बात आगे आई। तब विजयसिंह ने महा संकट में पड़ कर कहा "अस्तु यह तो नहीं होगा मै जाता हूं; आप लोगों से तो कुछ भी लाभ की आशा नहीं पाई जाती।'

महम्मदगोरी ने जब देखा कि विजयसिंह किसी प्रकार सम्मत नहीं होते तो कहने लगे "यह तो सच है, खैर आप राजा होंगे। अब कहिये कि आप क्योंकर और क्या मदद हमलोगों की कर सकते हैं ?

विजय। 'मैं युद्ध के समय सैन्यदल में रहकर किसी प्रकार उन लोगों को युद्ध से विरत रक्खूंगा, आप उसी सुअवसर में जयलाभ कर सकेंगे।

महम्मद—"यह तरकीब तो उमदा नहीं।"

विजय। "तो मैं उपाय स्थिर करके आज से पन्द्रह दिन के उपरान्त आपको सूचित करूंगा। इस समय आप की बात का विश्वास क्या ?"

महम्मद—"मैं मंजूर करता हूं"। विजय ने मनमें विचारा कि "ये लोग—और मंजूर। किन्तु यहां आने से इन लोगों के हाथ में पड़ा हूं। इस समय इन लोगों की बात पर अविश्वास देखाना युक्तिसिद्ध नहीं है। ऐसा कर यदि ये लोग मेरा अभिप्राय महाराज के निकट प्रकाश करेंगे तो मैं दोनों ओर से मारा जाऊंगा यह समझ कर विजय ने पूछा तो आपने "अंगीकार किया ? महम्मदगोरी ने कहा "हां मंजूर है मगर जंग में फतहयाबी हासिल होगी तो आप बेशक आइन्दः के लिये राजा होंगे लेकिन अगर आप इस काम में गफलत करेंगे या धोखा देंगे तो मैं बेशक आप

को मना दूंगा और आप की यह धोखेबाजी राजा के रू बरू जाहिर करूंगा। मह्म्मदगोरी इतना कह कर मनमें विचारने लगे "कि जब इसने अपने राजा से दगेबाजी को तो मौका पाने पर हमलोगों के साथ भी वैसाही करेगा इसलिये इसका एतबार नहीं। फतहयाबी हासिल होने पर राजा होने का ईनाम चाहता है पर यह नहीं समझता कि इसको जां बख्शीही इसके लिये सबसे भारी ईनाम है, क्या इससे भी बढ़कर कुछ उमेद रखता है।

विजयसिंह बोले "मैं इस समय राजपुताने से हो कर दिल्ली जाता हूं। आज से पन्द्रह दिवसोपरान्त रात्रि समय दिल्ली के पर्वत पर आप के आदमियों की प्रतीक्षा करूगा। जो उपाय स्थिर होगा उसे उन्हीं मनुष्यों के द्वारा आप के पास कहला भेजूंगा। क्रमश: आप लोग आगे बढ़ते चलें।" मह्म्मदगोरी। "तो क्या राजपुताने के तमाम राजा मदद के लिये आवेंगे?"

विजय। "इस समय तो उन लोगों ने लिखा है कि हम आवेंगे, किन्तु बातों से मैंने उन लोगों पर ऐसा भाव प्रगट किया है कि उन लोगों की सहायता का हमें कुछ प्रयोजन नहीं है, परन्तु जितना अधिक सैन्यसंग्रह किया जाय उतनाही उत्तम है, इसीलिये हमलोगों ने आप से साहायता की याचना की है। मेरी इन बातों का जब उन

लोगो के मनमें दृढ विश्वास हो गया तो फिर वे लोग अपना देश त्याग कर वृथा दिल्ली क्यो आवेंगे। आप यदि मेरे प्रस्ताव से सम्मत न होते, तो जैसे वे लोग दिल्ली आते वैसे उन्हें लाने के लिये यत्न करता और पुनः मुझे जाना पडता, किन्तु मैं जानता था कि आप मेरी बात से सम्मत हो जांयगे, इसी कारण मैं वैसाही प्रबन्ध कर आया हूं।"

मह। "तो क्या सबकी सब आया चाहते थे?"

विजय। "जी हां, किन्तु जयचन्द्र और पत्तनराज तो आवेंगे नहीं, और उन लोगो से तो हम लोगो ने सहायता भी नहीं चाही।"

महम्मद—"जयचन्द्र ने तो हमें कहला भेजा है, कि ऐसा ही करना चाहिये जिसमें पृथ्वीराज की इज्जत में फर्क आवे और पोशीदा तौर से वे भी हमारी मदद करने को तयार हैं।

विजय—"हां, वे महाराज के शत्रु हैं इसे हमलोग जानते हैं।" इतना कह विजयसिंह वहां से विदा होकर चलते भए।

मन्नौहर। देखो, तुमने जिसे अधिक विश्वासपात्र समझा था, उसने कैसे विश्वासघात का कार्य किया।

विजय के चले जाने पर एक मुसाहिद बोला "आप इसे यहां की बादशाहत दिया चाहते हैं, मगर दरहकीकत ए-

साही हुआ तो फिर हम लोगों को दिल्ली फतह करने से क्या फायदा होगा ?'

महम्मदगोरी ने कहा "अव्वल उसकी मदद से हम लोगों को फतहयाबी तो हासिल करने दो, पादशाहत देने की बात तो इसके पीछे न है ? इस वक्त वह अपने खातिरखाह समझ लेवे।"

इधर, कविचन्द्र यवनशिविर के निकट एक छोटे पर्वत पर से शिविर की अवस्था देखते थे। हठात् हिन्दू वेशधारी एक मनुष्य को यवनशिविर में प्रवेश करते देख उनको अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ कि यह कौन है ? और किस हेतु आया है ? यह जानने के निमित्त वे अत्यन्त उत्सुक हुए और शिविर के निकट छिपकर देखने के लिये कोई स्थान है कि नहीं ढूंढ़ने लगे, देखा कि शिविर के पीछे एक बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष है। वे धीरे २ पर्व्वत से उतर बड़े कौशल और अति सावधानी से प्रहरी लोगों के हाथ से बँचकर उसी वटवृक्ष पर जा चढ़े। जब उन्होंने विजय को यवनशिविर में प्रवेश करते देखा था, उस समय भी सूर्य्य की थोड़ी ज्योति रही किन्तु उनके उतरते २ सन्ध्या हो गई। अन्धकार के कारण छिपकर वटवृक्ष पर चढ़ने में उन्हें और भी सुविधा हुआ। वटवृक्ष की जो शाखा शिविर को स्पर्श करती थी उस पर चढ़ कर अपनी तलवार के अग्रभाग से

उन्हों ने तम्बू के वस्त्र में एक छोटा सा छेद कर दिया और उसमें एक आंख लगाकर उन्होंने तम्बू के अन्दर बैठे सब लोगों को देखा। मन्त्रीपुत्र को देखकर वे अत्यन्त विस्मित हुए और सोचने लगे कि विजय यहां क्यों आया। विदा होने के पूर्व्व महम्मदगोरी के संग विजय की जो जो बातें हुईं, उन्होंने केवल उतनाही सुन पायी किन्तु जो सुना उसी से उसका अभिप्राय समझ गये। क्रोध से उनका प्रत्येक अंग कांपने लगा। इच्छा करी कि शिविर में जाकर अभी उसका मस्तक छेदन करें किन्तु यह विचार कर कि इसका फल विपरीत होगा इस इच्छा को त्याग दिया और वृक्ष से उतरने लगे। मनकी चंचलता से चढ़ने की भांति निःशङ्क न उतर सके। एक डाल मरमरा गई और कुछ पत्ते खड़क उठे। दैवात् चढ़ने के समय जिस प्रकार प्रहरियों की आंख बचा कर गये थे, वैसा न हुआ। चालाक यवनों के हाथ कौशल से बारम्बार बच जाना सहज नहीं है। शब्द सुनकर एक प्रहरी वृक्ष के निकट चला आया कि यह कैसा शब्द हुआ। चन्द्रपति के दुर्भाग्य वश उसी समय कुछ चान्दनी भी निकल आयी थी। प्रकाश के कारण प्रहरी ने उन्हें देख लिया, और चिल्लाता हुआ उनके पीछे २ दौड़ा। उसकी चिल्लाहट सुनकर अस्त्र शस्त्र ले शाही सेना के अनेक लोग उसके संग हो गये। इतने मनुष्यों के हाथ से भागना असम्भव जानकर चन्द्रपति ने तलवार म्यान से नि-

काली किन्तु सोचा कि "यदि इस समय मैं उन लोगों के मारने की इच्छा प्रगट करता हूं तो ये सब मुझे मार डालेंगे और मेरी मृत्यु होने से विजय की कुमन्त्रणा प्रगट न होगी किन्तु बन्दी होने पर चातुरी कर फिर निकल सकता और पृथ्वीराज से सब समाचार सविस्तर कह सकता हूं, अतएव इस समय तलवार निकालना कदापि बुद्धि-संगत न होगा।"

उन लोगों ने चन्द्रपति को पकड़ लिया और महम्मद गोरी के निकट ले आये। द्वार पर विजय से देखा देखी हुई। उसे सम्मुख देख उनका क्रोध उबल पड़ा। हिताहित को विवेचना जाती रही, लाल २ नेत्र कर बोले "क्योंरे पाखण्ड। तू राज्यलोभ से देश के अनिष्टाचरण में प्रवृत्त हुआ है। इसका फल तुझे थोड़ेही काल में प्राप्त होगा।" इतना कह कमर से तलवार खींचने को हाथ बढ़ाया किन्तु प्रहरी लोगों ने तुर्त उन्हें धक्का देकर कमर से तलवार लेली।

कविचन्द्र ने विजय की मन्त्रणा सुन ली थी, यदि उसे प्रगट न करते तो विजय द्वारा महम्मदगोरी के हाथ से छूट सकते किन्तु वह पथ भी उन्होंने बन्द कर दिया। विजय ने समझा कि कविचन्द्र ने सब बात सुन ली है। यवन शिविर में आने का मिथ्या कारण प्रगट कर उन्हें भुलवा न सके। कविचन्द्र के मुक्त होने से उनको फिर रक्षा नहीं

है। विजय अत्यन्त चिन्तित होकर फिर महम्मद गोरी के पास गये और उन लोगों मे अकेले में कुछ बात चीत हुई। इस बेर कविचन्द्र को अति सावधानी के साथ बन्दी करके रखने की आज्ञा महम्मदगोरी ने पहरियों को दियो।

तेरहवां परिच्छेद ।

तारागण के बीच शोभित चन्द्र की भांति दिल्लीश्वर पृथ्वीराज, सभासदों के मध्य बैठे हैं। उनका शरीर बलिष्ठ ललाट प्रशस्त, नासिका सुठाम सघन कृष्णवर्ण युगल भौंहें किंचित स्थूल हैं उसके नीचे भ्रमरयुक्त कमलवत् दीर्घ उज्वल दोनों नेत्र हैं, देखने में सरल और चञ्चलस्वभाव बोध होते हैं, किन्तु भली भांति देखने में उस चञ्चलता के मध्य दृढ़ता की भी आभा पाई जाती है। क्षत्रियतेज सरलतामिश्रित होने से उनके सुन्दर मुख पर एक और प्रकार का अलौकिक सौन्दर्य लक्षित कराता है। उनकी अवस्था अभी अधिक नहीं केवल पैंतीस वर्ष की है, प्राय [illegible] इसी अल्प वयस में [illegible] सकल सुख विसर्जन कर देना [illegible]।

निकट ही एक दूसरे सिंहासन पर [illegible] के ऊपर और [illegible] समरसिंह बैठे हैं। यद्यपि देश में [illegible] किन्तु पृथ्वीराज युद्ध की [illegible] विशेष [illegible] नहीं करते, निश्चिन्त होकर बैठे हैं, यथा गुनकार

समरसिंह चिन्तित हो सैन्यदल सहित दिल्ली आये हैं। हम-लोगों ने समरसिंह को जब अन्त में देखा था, तब से आज प्रायः बीस वर्ष और व्यतीत हो गये हैं, काल का परिवर्त्तन दीख पड़ता है। अब उन्हें युवा पुरुष नहीं कहा जा सकता, अब प्रौढ़ हो गये हैं, अवस्था ४८ वर्ष की है। उन्होंने किरणसिंह के जलनिमग्न होने पर, मुकुट त्याग कर जटाधारण का संकल्प किया था, वह जटा अब बढ़ कर मस्तक से कन्धे पर्य्यन्त पड़ी है और दाढ़ी क्रमशः दीर्घ होकर उनके विशाल वक्षस्थल को ढाके हुए है। केश और दाढ़ी तथा मोंछ के बाल कुछ २ पक गये हैं। गले में कमलाक्ष की माला उस योगीन्द्र के कंठ में ऐसी शोभायमान है जैसे महादेव जी के कंठ में फणी का हार हो। अब भी उनके शारीरिक मानसिक तेज में कुछ न्यूनता नहीं है, अवस्था अधिक होने और उस गंभीर दुःख के कारण उनकी मूर्त्ति पहिले से इस समय कुछ अधिकतर गम्भीर दिखाई पड़ती है। इस समय के देखने में पूर्व्वापेक्षा और अधिक भक्ति-भाव उदय होता है, भय भी अधिक जान पड़ता है, उस जटाश्मश्रुधारी, कमलाक्षमालाशोभित, स्थिर गंभीर मूर्त्ति के देखने से सहसा एक तेजस्वी ऋषि की मूर्त्ति जान पड़ती है। यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि समरसिंह नानागुण विभूषित थे, किन्तु इसलिये कि उनका सकल सद्-

गुण सब किसी को स्पष्टरूप से और भी हृदयस्थ हो जावे, कविचन्द्र उनके गुण के विषय जो कह गये हैं हम उन्हींको पुस्तकों की कथा का पुनरुल्लेख करते हैं। कविचन्द्र इस प्रकार कह गये हैं—'समरसिंह रण में बड़े साहसी धीर कुशल और निपुण थे, सभा में अतिविज्ञ सुविवेचक और सद्वक्ता थे, वे स्वभावतः अति धार्मिक थे हर समय और हर विषय में उनका धर्मिष्ठ भाव और सामाजिक प्रेम प्रकाश होता था। उनके अधीनस्थ कर देनेवाले राजागण तथा सेना के लोग सभी उनसे प्रीति रखते थे, यहां लों कि पृथ्वीराज की सेना सामन्त से भी अधिक सम्मान और भक्ति करती थी, युद्धयात्रा के समय शुभाशुभ सब लक्षणों का निर्णय कोई भी उनकी भांति न कर सकता था, रणक्षेत्र में उनकी नाईं कोई भी सेना तयार न कर सकता था, अस्त्र और शस्त्र चलाने में भी कोई उनकी बराबरी न कर पाता था। युद्धयात्रा के पहिले और पीछे, अथवा युद्ध की सधिस्थल में, समरसिंह का शिविर सकल सैनिक पुरुषों के सम्मिलन का स्थान था, सभी उनके ज्ञान से उपदिष्ट और यथार्थ मधुर वाक्य से सतुष्ट हो जाते थे। कविचन्द्र मुक्तकंठ से स्वीकार कर गये हैं, कि राज्यशासन, मन्त्रीनिर्वाचन, राज दूतप्रेरण इत्यादि विषय में हमने जो जो उपदेश दिये हैं वे सब समरसिंह ही के मुखारविन्द से निकले हुए हैं, और उन्होंने अपनी वक्तृता में नीति धैर्य वा कर्तव्यानुष्ठान, विश-

ध्वंस बलती आग में गिरते है, उनको यदि पूर्व्व घटना स्मरण हो, तो यहां से डेरा कूंच करें । मै दया करके उन्हें उनके देश को लौट जाने दूंगा, और वह जो बावन होकर चन्द्रमा पर हाथ बढ़ाने आये है इसे भी मै क्षमा करूंगा"।

यह दूत आज उन्हीं सब बातों का उत्तर लेकर आया है। सभा में दूत के उपस्थित होने पर पृथ्वीराज ने पूछा कि महम्मदगोरी ने हमारी बातों का क्या उत्तर दिया ? दूत ने हाथ जोड़ निवेदन किया कि महाराज महम्मदगोरी ने कहा है कि 'हम क्या करें, हम खलीफा तो नहीं है। हम तो फ़कत सिपहसालार है। हमको खलीफ़ा साहब ने जंग के लिये भेजा है, अगर हमारी जान भी जाय तौभी इस हुक्म की तामील करनीही होगी।" यह सुन पृथ्वीराज ने सगर्व्व कहा "तो यदि महम्मदगोरी इच्छापूर्वक अपने ऊपर विपत्ति लाया चाहते है, तो उनसे कह दो कि आवें और फिर एक बेर क्षत्रीयों का तेज देख जावें।"

पृथ्वीराज की बात समाप्त होने पर एक और मनुष्य सभा के एक कोने से बोल उठा। 'उसने कहा, "और बेर तो हम लोगों ने यवनो के पराजय पर हिन्दू रीति के अनुसार उनलोगो पर दया की थी। क्या उस न्यायाचरण का यही फल है ? कि फिर वे लोग हमारे देश में उत्पात करने आये है। इस बार उनलोगो को समुचित दण्ड दिया

जायगा और एक भी पुरुष तुम्हारे दल का जीता स्वदेश न जाने पावेगा'। जिस ओर से यह शब्द आया, सब की दृष्टि उसी ओर हो गयी। पृथ्वीराज ने कहा "यह कौन? विजय। तुम कब आये? जिस कार्य्य को गये थे सो क्या हुआ? तुमारे सग वह अपरिचित युवा मनुष्य कौन है?" विजय को सकुशल आये देख फिर मन्त्री के अह्लाद की सीमा न रही उनकी आशा से बढ़कर फल प्राप्त हुआ। विजय बोले "कार्य्य की बात पीछे कहूंगा, पहिले दूत को जो कहना हो कह कर बिदा कीजिये।" पृथ्वीराज ने कहा "ठीक है" फिर दूत से बोले "तो वह यहा कब आया चाहते है?' दूतने कहा "आज से एक महीने पर।"

पृथ्वीराज बोले "अच्छा, हमलोग उन्हीं की इच्छा में सम्मत है। जाकर कह दो कि आज से एक महीने पर हमलोग उनका अहङ्कार चूर्ण करने के लिये थानेश्वरमें आसरा देखेंगे।"

दूत के चले जाने पर बिजय पहिले कार्य्य की वात समाप्त कर वोले "ये युवा चन्द्रपति के निकट से श्रीमान् के निकट आते थे, मै भी अपना दूतकार्य्य समाप्त कर यहा आता था, कि मार्ग मे साक्षात् होने पर इन्होने दिल्ली आने का मार्ग पूछा मुझसे इनसे परस्पर वात चीत हुई, इससे सग लेता आया हू।" पृथ्वीराज के पूछने पर दिग्पाप ने

कविचन्द्र का सब समाचार जो जानते थे कहकर उनका पत्र महाराज के हाथ में दिया। महाराज ने उसको पढकर उनके निवास के योग्य घर इत्यादि देने को आज्ञा देकर कहा "इतने दिन हुये, कविचन्द्र यवन-शिविर से न फिरे, मुझे शंका होती है कि कदाचित् किसी विपत्ति में न पड़ गये हो। इस समय उनके रहने से अति उत्तम होता।"

मन्त्री बोले "कविचन्द्र के निमित्त हमलोगो को कोई भय नहीं है, उनके सदृश मनुष्य को किसी विपत्ति मे पड़ने को आशंका नहीं। यदि कोई दुर्घटना हुई भी हो तो कविचन्द्र जिस प्रकार हो उससे निकल कर चले आवेंगे। उनकी बुद्धि और कुशलता पर मुझे दृढ़ विश्वास है।"

इस नये मनुष्य को समरसिंह स्थिर नेत्र से देखते थे। यह सुन्दर युवा पुरुष कौन है? यह न जाने किस भाग्य-मान का पुत्र होगा? इसे देख कर किरण क्यों चित्त पर चढ़ता है? क्या किरण के सग इसका कोई सादृश्य है?। किरण रहता तो क्या अब तक इतना बडा हुआ होता? क्या वह ऐसाही सुन्दर देखने में आता? न मालूम किस पाप से मैंने उसे खोया? सोचते २ उनको चिन्ता का प्रवाह भूतकाल को ओर प्रवाहित हुआ। गत दुर्घटना स्मरण हुई। किरण के खोये जाने का दिन चित्त पर चढ़ गया। वही आँधी, वही वृष्टि, क्रमशः पगली का मृतक शरीर पर्यन्त

चिन्ता की आंखो के आगे दिखाई देने लगा। महिषीगण के रोदन की ध्वनि जैसे उनके कान में ध्वनित होने लगी। इस समय उस योगीन्द्र पुरुष को भी विमर्ष होगया। पृथ्वीराज ने उनसे पूछा "यह क्या ? आप अकस्मात् ऐसे क्यों हो गये ? समरसिंह का सोच भंग हो गया, बोले "उस युवा को देख मुझे किरण की बातें स्मरण आ गई। उसकी अ-अवस्था का व्यक्ति जिस किसी को मैं देखता हूं तुरन्त मेरा मन उसी की ओर चला जाता है। किन्तु इसे देखकर आज मै अधिक चंचल हो गया हूं।" समरसिंह की बात सुनकर पृथ्वीराज ने उस युवा की ओर जो देखा तो उनको समरसिंह के मुख से उसके मुख की समानता पाई गई"। परन्तु इस भय से कि इस कहने से समरसिंह उसको यथार्थ पुत्र समझने लगेंगे अपने मन की बात प्रकाश न कर बोले कि "गत बात को सोच कर आप क्यों वृथा कष्ट उठाते है? जो पृथ्वी पर नहीं है उसको आशा करने मे क्या होगा ? यदि किरण मरा न होता, केवल गायब हो गया होता तो मैं भी इस युवापुरुष को देख कर किरणही समझता किन्तु जब किरण निश्चय जल में डूब ही गया है तो फिर उसकी आशा क्यों की जावे ? मराहुआ मनुष्य तो अब नहीं फिर आवेगा।" समरसिंह इस बात से दीर्घ निश्वास त्याग बोले "सो तो सत्य है। किन्तु यद्यपि मै जानता हूं कि उसको

उपाय किये थे। कल्याण के अशुभ ग्रहों का सदाही उनको ध्यान बना रहता था। विवाह होने के कुछ दिन उपरान्त पुत्रवधू विधवा होकर कष्ट भोग करेगी इसी भय से उनकी इच्छा अबतक कल्याण के विवाहने की न थी। किन्तु कल्याण किसी प्रकार बाज न आते थे। बोले कि "राजकन्या को न पाने से मैं विक्षिप्त हो जाऊंगा और यदि यह विवाह न हुआ तो मेरे प्राण की हानि भी हो जायगी।" उस समय समरसिंह को पूर्व्व कथा फिर स्मरण हुई। किरण किस प्रकार से जल में डूबा था यही सोचने लगे। पगली की गोद मे न देनाही उसके खो जाने का मूल कारण है। अपने ही लोगों की बुद्धिदोष से एक पुत्र गँवाया, कल्याण के विवाह में बाधा करने से यदि वह भी दुःखी होकर प्राणत्याग देगा तो इस बार भी हमी लोगो की ही दुर्बुद्धि से यह दुर्घटना होगी। अतएव विवाह कर देने से सुखी होकर फिर बच भी सकता है। यह कौन कह सकता है कि न बचैगा? उनको गुरुदेव ने कल्याण के भाग्य का निर्णय करके कहा था कि 'विवाह के पहिलेही मरैगा।' विवाह हो जाने से वह गणना मिथ्या हो जायगी। इसकी होने से कल्याण की मृत्यु की गणना का मिथ्या होना सम्भव है। समरसिंह ने यही सब सोच विचार कर फिर विवाह बन्द करने की चेष्टा न की, वर उनके मन में यह बात बै-

ठने लगी कि विवाह हो जाने से कल्याण को फिर मृत्यु का भय न रहैगा ; इसी कारण वे शीघ्र विवाह हो जाने के उद्योगी हुए। उषावती को अनिच्छुक नहीं देखा इससे पृथ्वीराज को भी इस विवाह से कोई असम्मति न थी। किन्तु विजय के रहने से इस विषय में कुछ मतामत प्रकाश न किया। विजय ने आकर सुना कि इस युद्ध के शेष होने पर उषावती और कल्याण का विवाह होगा। उन्होंने विचार कि "युद्ध में पहिले कल्याण के प्राण की रक्षा तो हो लेवै?"

जिस समय उनलोगों में युद्ध का परामर्श होता था उस समय कल्याण वहां न थे। उन्हें अनुपस्थित देखकर उनको सभा में लाने के लिये पृथ्वीराज ने विजय को भेजा, विजय ने सभा से प्रस्थान किया।

चौदहवां परिच्छेद।

जिस समय इधर ये बातें हो रही थीं युवराज कल्याण क्या करते थे? वे यमुनास्तम्भ के ऊपर से राजकन्या के संग यमुना की शोभा देख रहे थे। पृथ्वीराज ने कन्या के लिये यमुनादर्शन हेतु यह बड़ा और चमत्कार स्तम्भ बनवाया था। वह अबतक वर्तमान है। मुसल्मानों ने दिल्ली जय करने के पश्चात् उसका नाम 'कुतुबमीनार' रक्खा है। इसी यमुनास्तम्भपर चलो तो कल्याण को देखें।

सन्ध्या हो गई है राजभवन से नौबत का शब्द, तथा दिल्ली अधिष्ठात्री आशापूर्णा देवी के मन्दिर से सन्ध्या आरती की शखध्वनि, चारो दिशा से मनुष्यो का कल्लोल और पीपल तथा बट वृक्ष से पक्षियों का कलरव मन्द २ होकर यमुनास्तम्भ के शिखरदेश मे प्रवेश करता है, थोडीही दूर पर अत्यन्त ऊंचा और विचित्र चांदनी से प्रदीप्त राजमहल है, उस पर असंख्य दीपमाला चन्द्रकिरण से तेजहीन हो रही है जैसे दिवागमन से तारागण मलिन हो जाते है प्रासाद के सब श्वेत शिखर इस सुनसान रात्रि में देखनेवालों के हृदय में एक अपूर्व्व गम्भीरभाव उदय करते हुये उर्द्ध नेत्र से असीम गगनमार्ग में देख रहे हैं मानो निकटवर्त्ती विपत्ति को समझकर ऊर्द्धमुख हो कातरचित्त से देवोपासना में लगे हुये है। फिर उधर आकाशभेदी लौहस्तम्भ सगर्व्व मस्तक उठाकर पृथ्वीराज की गरिमा और गुरुता का प्रचार करता है, और उससे किंचित् अन्तर पर प्रस्तरमय लोहित दुर्ग नगर की शोभा सम्पादान कर रहा है। निकट की छोटी घनी नीली मनोहर पर्वतश्रेणी रजतमार्जित होकर औरभी मनोहर हो रही है। कुछ दूर पर यमुना बहती है, पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र को वक्ष में धारण किये यमुना स्वतन्त्र अपने मन से बहती जाती है। कल्याण, यमुना की शोभा देखने के निमित्त यमुना—स्तम्भ के ऊपर आये हैं,

किन्तु क्यों ?—वे तो यमुना की शोभा नहीं देखते। राजकन्या नीचे मुख किये युवराज के चरणकमल देख रही है। उन्हें यमुना की शोभा से राजकन्या के मुख की शोभा अधिकतर प्रिय जान पड़ती है। राजकन्या के वदनमण्डलही में यमुना की शोभा देख रहे हैं; भला यमुना की शोभा क्या है ?

आज यमुना के श्याम जल में पूर्णचन्द्र जैसे चंचल हो रहा है, क्या उसी प्रकार हमलोगों की उषावती का मुखमण्डल भी लावण्यराशि में दोलायमान नहीं है ? तारकाखचित यमुनालहरी की अपेक्षा भी उषावती का मुक्ताजटित जगमगाती हुई केशराशि जो वायु से हिल रही है, क्या अधिक मनोहर नहीं है ? फिर राजबाला के प्रेम पूरित लज्जावनत और उज्वल लोचन, और उनके कपोलस्थित किंचित प्रफुल्ल गुलाबकलिका के सग तुलने की सामग्री क्या यमुना को देखने देती है ? इन सब शोभा को देखकर कुमार को यमुना की शोभा क्यों भली मालूम होगी ? यह सकल शोभा देखने से कुमार का मन तृप्त नहीं होता, जितना ही देखते हैं उतनाही नूतन बोध होता है। देखते २ लोचन विवश हो जाते हैं तथापि मन को संतोष नहीं होता, देखते ही जाते हैं। क्या इतने पर भी लोचन थकित न हुये ? इतने देखने पर भी साध पूर्ण न हुई। यह देखो

हैं कि अभी नूतन है। इस देखने में इतने मुग्ध हो गये हैं कि यह नहीं देखते कि यमुनास्तम्भ के द्वार पर कौन खड़ा है? हमलोगों को छिप कर कौन देख रहा है? हमलोगों की बात सुनने के लिये कौन कान लगाये है? भला उसे नहीं देखते तो न सही मुख से बोलते क्यों नहीं? क्या बात करने में राजकन्या को न देख सकेंगे? इतनी देर से आये है—परन्तु दोनों चुपचाप! अब भी मोह नहीं छूटा? अभी तक बात चीत का अवकाश न मिला। नहीं, भला यह मोह भी कभी छूटा है? किन्तु अब कुछ समझ कर बात करने लगे। कन्या का मोह छूटा, एकबेर गंभीर दीर्घ निःश्वास त्यागकर बोले "उषा! क्या सोचती हो? मुख मलिन क्यों है?" उषावती ने कल्याण की बात सुनकर उनकी ओर देखा किन्तु वह कल्याण का महत् भावयुक्त उच्च ललाट, वह वृहत् और उज्वल नेत्र, वह स्वतः सहास्य ओष्ठाधर, वह वलिष्ट औ सुडौल शरीर, देखकर उनके प्रश्न का उत्तर देना भूल गई। कल्याण ने फिर पूछा "उषा, मुख मलिन क्यों है? क्या सोचती हो? इस बार उषावती नम्र-भाव से बोली" "नहीं, मै तो कुछ नहीं सोचती आप क्या सोचते है?"

कल्याण—"मैं सोचता था, कि मैने स्वप्न देखा है कि उषावती जैसे मेरीही है। राजकुमारि! क्या मेरा यह स्वप्न कभी फलीभूत होगा?"

उषा—"तो आपको फिर कब विश्वास होगा ? युद्ध समाप्त होने पर हमलोगों का विवाह होना स्थिर हुआ है, अब भी आप को विश्वास नहीं होता ?"

कल्याण—"नहीं, मेरे मन में आता है कि इस रत्नलाभ के पूर्व कोई न कोई दुर्घटना होगी। वह यह है कि युद्ध में मेरा प्राण विनष्ट होगा, और यह दुर्लभ रत्न मुझसे किसी अधिकतर भाग्यवान् के हाथ पड़ेगा।" यह सुन उषावती सजलनयन हो बोली "आप अपने मन में ऐसा कदापि न सोचिये। यदि ईश्वर ने मेरे ऊपर निर्दय होकर ऐसाही किया, तो मैं विधवा हो जाऊंगी। आप मेरे—"

बोलते २ उषावती का कण्ठ भर गया, दोनों विशाल लोचन रोते २ लाल हो गये किन्तु इसको कल्याण ने न देखा।

कल्याण—"यदि तुमारे पिता तुम्हें दूसरे को समर्पण करें तो तुम क्या करोगी ?'

उषा—"मैं प्राण त्याग कर फिर आपसे परलोक में भेंट करूँगी। स्त्रियों का प्रेम, आप पुरुष होकर कैसे जान सकते हैं ? प्रेम के निकट हमलोगों का प्राण अति तुच्छ पदार्थ है।"

इतना सुनतेही कल्याण का हृदय एक अपूर्व आशा से परिपूर्ण हो गया। उन्होंने मोहवश होकर उषावती के दहिने हाथ को चुम्बन की अभिलाषा से अपने ओठाधर

की ओर खींचा। तुरन्त राजकन्या ने चटक कर हाथ खींच लिया और कहा "राजकुमार—" इसी एक बात मे उषा-वती के हृदय का गम्भीर प्रेममय अभिमान, और निर्दोष पवित्र हृदय का दर्पमय कोमल तिरस्कार प्रकाश हुआ। कल्याण अतिशय लज्जित हो चिहुंक कर बोले "सरले। तुमारा निःस्वार्थ प्रेम देख मैं एक प्रकार मोह में विवश हो गया, यदि कोई अपराध हुआ हो तो चमा करना। तुम पुरुषजाति के ऊपर दोषारोपण करती थीं, किन्तु मैं इन्हीं चतुर्भुजा देवी को साची देकर कहता हूं कि, तुमारे भिन्न और कोई भी मेरे प्रणय को पात्री न होगी, किम्वा किसी को भी पत्नीभाव से ग्रहण न करूंगा।" इतने में एक परचारिका ने आकर उन दोनों की सुखनिद्रा भंग कर दी और बोली "मन्त्रीपुत्र ने कहा है कि महाराज आप को सभा में बुलाते हैं।"

विजय का नाम सुनतेही राजकन्या चिहुंक उठी। उसे उस रात्रि की बातचीत स्मरण हो आई; विजय का क्रोध सहित भागना चित्त पर चढ़ गया। अकस्मात् उसके मन में आ गया कि विजय कल्याण से कुछ शत्रुताचरण करने आया है। वह मनही मन डर गई, राजकन्या का अचानचक ऐसा भाव देख कल्याण ने पूछा 'यह क्या?।' राजकन्या को इच्छा हुई कि एकबेर ही सब खोल दूँ, किन्तु लज्जा-

विजय ने राजसभा से आकर कल्याण के घर पर सुना कि 'वे यहां नहीं हैं, राजकन्या के संग यमुनास्तम्भ पर गये हैं।" यह सुनकर पूर्व्व घटना को स्मरण करते हुए यमुनास्तम्भ के उपवन में पहुँच कर एक माली से पूछा कि "राजकन्या यमुनास्तम्भ के ऊपर है, उनके संग सहचरी कौन आई है ?" माली ने कहा "गुलाब।"

विजय—"गुलाब कहां है ? वह क्या उन्हीं लोगों के संग है ?"

माली—"नहीं वह तो उधर टहल रही हैं।" माली ने जिधर दिखला दिया उसी ओर जाकर विजय ने गुलाब को पाया। उन्हें देखकर गुलाब प्रफुल्लचित्त से उनके निकट आकर बोली 'जान पड़ता है कि इतने दिनों पर मेरी स्मृति हुई। तुम मुझ से प्रेम नहीं करते, नहीं तो इतने दिन व्यतीत हुए क्या एक पत्र भी न लिखते ?" विजय यद्यपि गुलाब के सङ्ग प्रेमालाप करने न आये थे, तथापि इस समय यही चिताना आवश्यक बोध हुआ। विचार किया कि विना प्रेम की छलना से गुलाब को भली प्रकार हस्तगत किये हम राजकन्या और कल्याण का विच्छेद नहीं करा सकते। ऐसा न होने से हमारी मनोवासना पूर्ण न होगी। इसी हेतु विजय ने अपने आने का यथार्थ कारण पहिले न कहा और बोले "तुम मुझको वृथा दोषी बनाती

हो । देखतीं नहीं कि मैं अभी आया हूं क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं किया, तुम्हारे देखने के हेतु ऊर्द्ध श्वास से चला आता हूं कि: । स्त्रीजाति बड़ी निठुर होती है । पहिले मैं जिनसे प्रीति रखता था, उन्होंने न जानें क्यों मुझे परित्याग किया, और इस समय जिससे प्रीति रखता हूं, उसने अब जिस वस्तु से कि मैं कष्ट पाऊं- वही करने का सङ्कल्प किया है ।" विजय जानते थे कि गुलाब मुझे यथार्थ प्यार करती है, और उनका विश्वास था कि जब मैं दूसरे का प्रेमवृत्तान्त कहूंगा तो गुलाब को कष्ट और द्वेष होगा । विजय ने गुलाब को कष्ट देनेही के हेतु ये बातें कही थीं सो उनका अभिप्राय सिद्ध हो गया । गुलाब बोली 'अब मुझे जान पड़ता है कि तुम राजकन्या का प्रणय नहीं भूल सकते । क्यों भूलोगे ? जो द्रव्य एक बेर प्राप्त हो जाता है उसका फिर गौरव क्या ? मेरा प्रेम तो पा हो चुके हो फिर उस प्रेम का आदर क्या ? राजकन्या का प्रेम तो अप्राप्य है इसी से न व्याकुल हो रहे हो ?'

विजय—"नहीं मैं अब उनसे प्रीति नहीं रखता ।'

गुलाब—'तो फिर किससे प्रेम रखते हो ?'

विजय—'तो क्या तुम उनको नहीं जानती जो बार २ पूछती हो ? हाय ! एक बेर प्रेम में पड़ कर के तो फन्दे में फंस गया । फिर मैं क्या प्रेम करता हूं ? छिन्नाङ्ग मन को

समझाता हूं कुछ समझताही नहीं। तुम जो कहती हो एक प्रकार वही ठीक है; जो धन दुर्लभ होता है उसी के पाने की इच्छा होती है। मै जानता हूं कि तुम मेरे लिये दुर्लभ हो इससे तुम्हीं को चित्त चाहता है।"

गुलाब—"आज मुझ से इतना ठट्ठा क्यों करते हो? मैंने तुमारी प्रीति करने के पूर्व्वही परीक्षा लेकर मन दिया है, अब मैं तुमारे निकट दुर्लभ हूं। परंच यह तो कहो कि, तुम मुझ से अब प्रेम नहीं करते क्या इसी कारण इस प्रकार भुलवाते हो?"

विजय—"हां, इस समय मै जानता हूं कि तुमारा प्र णय पात्र मैं हूं, किन्तु परस्पर के प्रेमही से क्या मिलन हो जाता है?"

गुलाब—"नहीं, ऐसा नहीं होता, माता पिता की अ- नुमति चाहिये। किन्तु यदि तुमारा अनुराग मेरे प्रति हो, तो तुमारे वृद्ध पिता हमलोगों के विवाह में कभी असम्मत न होगे। मैं कुछ नीच कुल की नहीं किन्तु चन्द्रपति की भगिनी हूं—उनको तुमारे पिता भली भांति जानते है।"

विजय—"नहीं, पिता असम्मत न होंगे इसे मैं जा नता हूं।"

गुलाब—"तब कौन? तुम?"

विजय—"मै तो तुमारे पाने के हेतु पागल हो रहा हूं, मैं भला असम्मत क्यों होऊंगा?"

गुलाब—"तुमारी बातें समझना मुझ जैसी स्त्री जाति को अत्यन्त कठिन है।"

विजय—"तुम जानती हो, कि प्रतिज्ञा की रक्षा हम लोगों को सब से प्रिय है।"

गुलाब—"तो क्या तुमने यह प्रतिज्ञा की है कि मुझ से विवाह न करोगे? तो फिर मुझ को प्रणय की आशा क्यों दिलाई? यदि मैं जानती कि तुम प्रीति न करोगे, तो उसको मैं अलभ्य समझ कर अपने मन को प्रबोध देती।"

विजय—'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। मैंने यह प्रतिज्ञा नहीं की थी। तुमारी प्रीति जानने के प्रथम, मैंने एक दिन अपने मन के कष्ट से यह प्रतिज्ञा की थी, कि जो स्त्री मेरा एक कार्य्य सिद्ध कर देगी, उसी से मैं प्रेम करूंगा दूसरे से नहीं, वह यदि मुझको चाहेगी तो उससे विवाह करूंगा उसके अतिरिक्त और कोई मेरा प्रेमपात्र न होगा।"

गुलाब—"क्या वह काम ऐसा कठिन है कि मैं उसको नहीं कर सकती? तुमारे निमित्त अन्य स्त्री जितना कष्ट स्वीकार कर सकती है, मैं उससे शतगुण अधिक कर सकती हूं।"

विजय—"उसमें कोई कष्ट नहीं है।" गुलाब इस बात को सुनकर सहर्ष बोली "कष्ट नहीं है—तो क्या बात है कहते क्यों नहीं? कष्ट हो या न हो, तुम जो कहोगे उ

सकी मैं अभी करूंगी।" गुलाब की ऐसी सरलता देखकर विजय का पाखण्ड हृदय भी क्षणकाल के लिये विचलित हो गया। यह विचार कर कि इस निर्बोध बाला को कैसे विश्वासघाती कर्म्म में रत कराता हूं, एक बेर उसका भी कठिन अन्तःकरण द्रवीभूत हो गया। किन्तु यह भाव उसका क्षणकाल मे लोप भी हो गया। उनको निस्तब्ध देख कर गुलाब डर गई और बोली "कहो न क्या बात है, कहने में भय क्यों करते है? कोई अनुचित काम तो नहीं है?" अनुचित कर्म्म में गुलाब को कुछ अश्रद्धा देख विजय कार्य्य सिद्ध करने के निमित्त और भी दृढ़ हुए, और गुलाब को कार्य्य करने में सम्मत देख कर जो क्षणकाल के लिये उसके प्रति दया हुई थी वह जाती रही। वे कुकर्म्मी मनुष्यों के स्वभावानुसार गुलाब की श्रेष्ठता न देख सके, गुलाब को पाप कर्म्म में रत कराने की इच्छा कर बोले "मैंने तो समझा था कि तुम न कर सकोगी।"

गुलाब—"अच्छा, क्या कहते हो सुनूं भी, सुनकर विचारूं कि कर सकूंगी वा नहीं? किन्तु मेरे चित्त में नहीं आता कि तुमारे ऐसे मनुष्य के मन में किसी पाप इच्छा की सम्भावना हो?"

विजय क्षुब्ध होकर बोले "पहिले सुनो कि क्या कहता हूं, तत्पश्चात् विचारना कि पाप है वा और कुछ।"

गुलाब—"कहो, सुनती हूं।"

विजय—"जिस रात्रि राजकन्या ने मुझे प्रेमाशा से निराश किया उसी रात को वह प्रतिज्ञा की थी कि उन्होंने जिसको प्रणयाकांक्षिणी होकर मुझको तुच्छ समझा है उस से उनका वियोग न कराऊं तो मेरा नाम नहीं और उन्होंने जैसे मेरे सुख को जलाजलि दी, मैं भी वैसाही करूंगा।" गुलाब दुःखित होकर बोली "तो क्या तुमारा वह दुःख अबतक नहीं गया?। मेरा प्रेम पाकर भी अभी सुखी नहीं हुए?"

बिजय—"नहीं मैं उस रात की बात कहता हूं। तुमारे प्रणय से तो अब सुखी हुआ, किन्तु उस समय तो इसको आशा नहीं थी न।"

गुलाब—"तो यदि अब सुखी हुए तो उस इच्छा को त्याग दो।

विजय—"तो क्या, मैं प्रतिज्ञाच्युत हो जाऊं? क्षत्रिय होकर अपनी बात छोड दूं? मैं प्राण विसर्ज्जन कर सकता हूं सर्व्वस्व को जलाजलि दे सकता हूं, यहां लों कि तुमारे अमूल्य प्रेम की आशा पर्य्यन्त परित्याग कर सकता हूं, किंतु प्रतिज्ञाभङ्ग नहीं कर सकता। तुमारे मुख से मुझे ऐसी बात सुनने की आशा कदापि न थी।' गुलाब ठिठक कर बोली "किन्तु मैं राजकुमारी का प्रेम विच्छेद किस प्रकार कराऊंगी?"

विजय—"सो तो मैं सिखला दूंगा, मैं जैसे बतलाऊं तुम वैसेई करो।" गुलाब और कुछ मतामत प्रकाश न करके विजय के मनका भाव सुनने की इच्छा से बोली "अच्छा, क्या करना होगा, कहो न?"

विजय—"प्रथम तो राजकन्या की यदि कोई विशेष मूल्य की चीज तुमारे पास हो तो उसे मुझको देना होगा।"

गुलाब—"हां, उनकी नामांकित एक अंगूठी मेरे पास है। एक दिन राजकन्या की शय्या पर वह पड़ी थी मैंने देखी और उसको लेकर अपने पास रख लिया, किन्तु तब से फिर उन्हें देना भूल गई थी। तुमने चेत करा दिया तो अच्छा हुआ। जो हो, तुम उसको लेकर क्या करोगी?" चुपके से अंगूठी लेकर जो कार्य्य करना था, और उसकी सहायता से जो गुलाब को करना पड़ेगा वह सब विजय ने कहा। गुलाब उसको सुन कर चिहुंक पड़ी। उसका धर्म्मभीरु स्वभाव और कोमल मन उस कर्म्म के करने से विरत हुआ। वह रोती हुई विजय का चरण पकड़ कर बोली 'मैं यह न कर सकूंगी। राजकन्या मुझ पर इतना प्रेम रखती है, इतना मेरा विश्वास करती है, फिर मैं क्यों कर ऐसा विश्वासघात करूं? तुमको और जो कुछ करना हो कहो मैं अभी करती हूं।" विजय क्रोध से बोले "अभी न तुमने कहा था कि मैं जो कहूंगा सो करोगी? क्या मेरे प्रणय का यही प्रतिदान है, इया क्या कहती थी?

मैं जान गया कि तुम मुझको प्यार नहं करती। यदि तुमारा प्रेम यथार्थ होता तो तुम ऐसा न करती? तुमारे पूछने पर मैंने कहा था, नहीं तो कदापि न कहता। अब हमारे तुमारे हो चुकी, मैं जाता हू।' गुलाब चुपचाप रोने लगी, कुछ उत्तर न दे सकी, विजय के प्रेम का कारण अब उसको मालुम हो गया। उसने समझ लिया कि विजय मुझसे प्रीत नहीं रखते और मुझको भी ऐसे मनुष्य से प्रेम करना उचित नहीं है। किन्तु यदि बुद्धि प्रणय को दबा सकती तो पृथ्वी में इतनी अनिष्ट घटनायें क्यों होतीं?

किसी कवि ने कहा है 'वह प्रेम नहीं हैं, जो दुःख, सुख, यश, अपयश में समान न रहै। न मै जानता, और न जानने चाहता हूं, कि मेरे प्रियतम के हृदय मे कोई दोष है कि नहीं, मै इतनाही जानता हूं, कि वह कैसाही क्यो न हो, मै उनको प्यार करता हूं"।

गुलाब सब जान कर भी विजय के प्रति चित्त से स्नेह न त्याग सकी। उसका सरल और प्रेममय हृदय विजय के हेतु और भी व्यग्र हो गया किन्तु राजकन्या के अनिष्ट साधन विना उसके पाने का उपाय दूसरा नहीं है अतएव उससे भी नितान्त अनिच्छुक हुई। आत्मसुख के निमित्त राजकन्या को चिरकाल के लिये दुःख में डालना, यह भी उसके चित्त में न बैठा। कुछ भी स्थिर न हुआ कि क्या

करे, उसको बुद्धि विवेचना सब लोप हो गई। एकबार विचारा कि नहीं राजकन्या की बुराई करके कभी सुखी न होऊंगी। फिर जब देखा कि इसके न करने से जन्मपर्यन्त विजय के पाने की आशा त्यागनी पड़ेगी, तब सोचने लगी कि अच्छा, यदि विजय के आज्ञानुसार काम करती हूं, तो क्या राजकन्या चिरकाल के लिये असुखी हो जांयगी? इसका तो कोई कारण नहीं देखती। विजय कहते हैं कि राजकन्या का वियोग करा देने से वे मेरे होंगे। तो यही क्यों न करूं? हमलोगों का जब विवाह हो जायगा, उसके पश्चात् राजकन्या और कल्याण से सब खोल कर सविस्तर वर्णन कर दिया जायगा। इसके होने से वे लोग भी तो फिर सुखी हो जावेंगे। तो केवल उतनेही दिन कष्ट पावेंगे जबतक हमलोगों का विवाह न होगा, वह भी थोड़ेही दिन तक, पीछे तो फिर सुखी होही जावेंगे। मैं भी विजय को पाकर सुखी होऊंगी, और वे लोग भी होंगे। फिर वे दोनो व्यक्ति ऐसे उदारचरित हैं, कि जिस कारण से ऐसा कार्य्य करने मे मैं प्रवृत्त होती हूं उसको सुनने से मेरा अपराध क्षमा करेंगे और विवाह हो जाने से विजय भी मुझ को त्याग न कर सकेंगे और मेरा अमङ्गल होना जान कर विजय को भी कुछ न कहेंगे"।

अपनी इच्छा के अनुकूल होने में मन शीघ्र ही समझ जाता है। उसने इसी प्रकार अपने मन को समझा कर अन्त उस कार्य्य के करने का सङ्कल्प किया। इतनी देर तक कोई उत्तर न पाकर विजय जाने को उद्यत हुये, यह देख गुलाब ने अश्रुजल निवारण कर उनको बैठने के लिये कहा और बोली "मैंने अब समझा कि तुमने अपने कार्य्य सिद्ध करनेही के हेतु मुझ को प्रेम दिखलाया था, कुछ मुझ से प्रीति नहीं रखते। अच्छा तुमने जो कहा, यदि मैं उसके करने में सम्मत होऊ तो क्या यथार्थही तुम मेरे हो जाओगे?"

विजय—"मैं तुमसे प्रण करके कहता हूं कि इस काम के होने पर तुम वास्तविक मेरी हो जाओगी।" गुलाब हर्ष-पूर्व्वक बोली "अच्छा, तो मै तुमारे लिये ऐसा पाप करने मे भी प्रवृत्त होती हू, देखना मुझे अन्त धोखा मत देना।

इतना सुन कर विजय खुशी से मत्त हो गये और गुलाब के हृदय को जो इतनी देर तक कष्ट दिया था उसके निवारणार्थ परस्पर के भविष्यत् सुख की बातचीत करनेलगे। बिचारी गुलाब उसी मे भूल गई। उसे शान्त देख कर बोले "राजा की आज्ञा से मै कल्याण को बुलाने के लिये यहां आया हूं किन्तु तुमारे सग बातचीत करने मे भूल गया था इसी से अबतक तुम से न कहा था"।

गुलाब—"तो मै जाती हूं, कह आती हूं"।

चय से अज्ञात थे, अब भी वैसे ही रह गये सोचने लगे कि "इससे किस प्रकार वंश सपरिमाण होगा ?" फिर भी वस्त्र उलट कर देखने लगे, किन्तु जब किसी प्रकार आशा पूर्ण न हुई, तो विरक्त हो कर उस वस्त्र को दूर फेंक दिया। फेकने के संग दो तीन कागज के छोटे २ टुकड़े वस्त्र से भूमि पर गिर पड़े। उनका हृदय विह्वल होगया समझे कि इन्हीं से मेरा परिचय मिलेगा। क्या आश्चर्य है कि अबतक ये देखने में न आये वे तुरन्त कागज़ उठाकर एक टुकड़े को पढ़ने लगे,—

महामहिम प्रबलप्रताप कुमार तेजसिंह महिमार्णवेषु।

"आपके भ्रातृपुत्र महाराज जयचन्द्र आपकी उस बात से क्रुद्ध होकर मन्द चेष्टा करते है, सावधान रहियेगा।

आपका शुभाकाङ्क्षी श्री—"

यह क्या ? इसका क्या अर्थ है ? इसमें उनका परिचय कहा है ? दिलीप ने उस पत्र में जो देखने की आशा की थी, कुछ भी न पाया। वे नितान्त अधीर होकर दूसरा टुकड़ा पढ़ने लगे।—

"महामहिम प्रबल प्रताप .... तेजसिंह..... ।

जयचन्द्र का क्रोध अबतक नहीं गया। उन्होंने आपके निर्वासन करने की इच्छा प्रकाश की है। आप यदि जयचन्द्र के क्रोध का समय... .. .इच्छा .. . ...तो अपनी कन्या गेन्नवाला को मेरे निकट रख कर आप भाग जावें।"

शैलबाला का नाम पढ कर दिलीप चकित हो उठे, उनको स्मरण हुआ कि जिस दिन सन्यासी अपनी कुटी में शैलबाला और उसके पिता को लाये थे, उस दिन सन्यासी के हाथ मे उन्होंने इस प्रकार के कई एक कागज के टुकडे देखे थे। बालिका के पिता ने जब उन पत्रों को जल मे फेंक दिया था, उस समय यथार्थ मे सन्यासी उनको उठा लाये थे। किसी समय बैराग्य में हिताहितविवेचना-शून्य होकर मनुष्य जिसको फेंकती है दूसरे समय वही उनके काम आ सकता है, यही समझ कर सन्यासी ने उनको उठा कर रख छोडा था, किन्तु बालिका के पिता ने यह न देखा था । सन्यासी ने उन पत्रों का पढा था कि नहीं इसमे सन्देह है, क्योंकि मृत्युकाल मे उस बात की कुछ भी चर्चा न करी। किम्वा उस समय उनको वह बात स्मरण न रहा हो ऐसा भी हो सकता है। दिलीप आत्मपरिचय का अनुसन्धान करते थे उसमे शैलबाला का परिचय प्राप्त होने से अतिशय आह्लादित हुये। वे विचारने लगे कि 'अ-ज्ञातकुलशीला शैलबाला क्या कुमार तेजसिंह की कन्या है? तो मेरी शैलबाला क्या सत्यही राजकुलाङ्गना है?' दिलीप इसी प्रकार मन मे तर्क वितर्क कर रहे थे, कि इतने में कल्याण उनके घर पर आ उपस्थित हुये। कल्याण को देख कर दिलीप ने व्यस्तभाव से उन पत्र इत्यादि को

छिपा दिया। घर में आतेही कल्याण की दृष्टि भूमि पर पड़े हुये वस्त्रों पर पड़ी। वे राजवस्त्र देख कर चकित हुये। जिस समय पगली किरण को ले गई थी, उस समय की घटना कल्याण को कुछ भी स्मरण न था, तथापि उस वस्त्र को देखतेही उनके मन में आया कि यह वस्त्र कभी देखा था। दिलीप से पूछने लगे "यह वस्त्र किसका है?"

दिलीप—"सुना है कि मेरी बाल्यावस्था का है"।

कल्याण—"तुमने राजपरिच्छेद कहां पाया? मेरे ध्यान में आता है कि जैसे मैंने इसको कभी पहिले भी देखा है। तुमारे सम्बन्ध मे मुझ को कुछ सन्देह होता है और तुम से जब मेरा साक्षात् होता है, तो तुमारी बातचीत से वह सन्देह और भी दृढ़तर हो जाता है। जो हो यह तो कहो कि तुमारी बाल्यावस्था के वस्त्र आज भूमि पर क्यों पड़े है?"

दिलीप—"सन्यासी जी ने कहा था कि इन वस्त्रों में तुम अपना परिचय पाओगे, इसीलिये इनको लाकर मैं देख रहा था। कुछ न मिलने से विरक्त होकर फेंक दिया है"। कल्याण चित्त लगा कर उनकी बातें सुनने लगे। दिलीप से उन्होंने जो २ बाते सुनी थीं उससे उनको दिलीप के प्रति किरण का भ्रम होता था। उत्तरोत्तर वह दृढ़ीभूत हुआ। किन्तु जबतक कोई स्पष्ट प्रमाण न पाया जाय, तबतक अपने मन का भाव प्रकाश करना न चाहा। क्योंकि यदि

अन्त में दिलीप किरण न ठहरेगी तो समरसिंह आज्ञा पाकर निराश होने में और भी अधिक कष्ट पावेंगे। कल्याण बोले "तुमने उस दिन कहा था न, कि सन्यासी जी ने कहा है कि तुमारे कण्ठ के कवच (तावीज) में तुमारा यथार्थ नाम है, उसको मुझे क्यों नहीं दिखलाया ?"

दिलीप—"काम काज से अवकाश नहीं पाया। किसी समय उसको दिखला दूंगा"। इस समय दिलीप की इच्छा यह थी कि कल्याण अधिक काल लों यहां न रहें। इस समय उनका ध्यान केवल उन्हीं पत्रों ही की ओर था और यही चाहते थे कि कब कल्याण जावें तो फिर मैं उन पत्रों को पढ़ूं और शैलबाला का परिचय प्राप्त करूं, इसी लिये वे अधीर हो गये थे कि इस समय कवच दिखाने से कल्याण शीघ्र न जावेंगे इस कारण कवच न दिखाया। कल्याण को भी इच्छा यहां अधिक ठहरने की इस समय न थी। उनका चित्त भी राजकन्या के देखने को व्याकुल था परस्पर दोनों का मन दूसरा २ ओर आकर्षित हो गया था। कल्याण भी इस समय कवच देखना न चाहते थे किन्तु जो बात कहने आये थे, कह कर झटपट चल दिये। उनके चले जाने पर पत्रों को लेकर दिलीप पुनः आनन्दचित्त से पढ़ने लगे। पर पढ़ने से मालूम हुआ, कि शैलबाला के पिता, [illegible] सम्बन्ध न [illegible]

(चाचा) थे, दोनों महाशयों में किसी विवाद होने के कारण जयचन्द्र ने तेजसिंह को देश से बाहर कर दिया था। इस प्रकार अपमानित होकर वे लज्जा और घृणा से भेष बदलकर कालक्षेप करते थे। सत्य है ऐसे अवसर में परिचित लोगों से मुख दिखलाने में लज्जा करना क्या आश्चर्य है? दिलीप पत्रों को बारम्बार पाठ करने लगे पढ़ते २ उनके नेत्रों से आनन्दाश्रुधारा चल पड़ी, शैलबाला की शैशवक्रीड़ा सब चित्त पर चढ़ने लगी, उसे फिर देखने के लिये उन का हृदय चंचल हो गया। मनोवेग स्थिर करने के लिये वे फिर उन पत्रों को आद्योपान्त पढ़ने लगे किन्तु जयचन्द्र के संग उनके पितृव्य के विवाद का कारण पत्र में कुछ भी न पाया गया।

इधर कल्याण दिलीप की बातों पर ध्यान करते हुये राजकन्या के घर पर उपस्थित हुये। द्वारही पर गुलाब दीख पड़ी। उसे देख उनको एक और बात स्मरण हुई, सगर्व बोले "क्यों रे, राजकन्या के दुश्चरित्रा होने का प्रमाण तू नहीं दे सकती न?" गुलाब बोली "आप मेरी इतनी तर्जना क्यों करते है? मुझे प्रमाण दिखलाने की क्या आवश्यकता है, यदि सत्य है तो आपही आप को देख पड़गा, यह न होता तो आप आज आते क्यों? आज यहां विजय के आने की बातचीत है, आप का आना उनको न

जनाऊंगी, बस वे घर में प्रवेश करेंगे"। इस मिथ्या बात के कहने में गुलाब ने धीरे २ एक लम्बी सांस ली नेत्रों में जल भर आया, किन्तु राजपुत्र ने इसको न देखा। गुलाब की बातों से कल्याण का हृदय कुछ विचलित हो गया। विजय का नाम सुन कर यमुनास्तम्भ पर राजकन्या का जो भावान्तर हुआ था वह सहसा चित्त पर चढ गया। बारम्बार रगड खाने से काष्ट से यदि अग्नि की चिनगारी उड़े तो क्या आश्चर्य्य है? किन्तु यह चिनगारी स्पर्श मात्र थी, अभी तक प्रज्वलित न हुई थी। इस अग्नि के प्रगट होने का कोई फल हुआ कि नहीं अभीतक मालूम नहीं हुआ। कल्याण अपने मन में विचारने लगे कि "गुलाब जो कहती है, क्या सत्य है? क्या उस दिन उषावती इसी कारण मेरे सम्मुख विजय का नाम सुन कर चिहुंक उठी थी"। गुलाब से उन्होंने कहा कि "तुम जो कहती हो, वह यदि सत्य है, यदि विजय इस समय यहां आवे, तो मैं अवश्य तुम्हारी बात का विश्वास करूंगा"। कल्याण वहां से राजकन्या के घर पर गये, देखा, कि राजकन्या करपल्लव से अपना मुख-कमल छिपा कर पलँग पर सोई हैं। राजपुत्र निःशब्द निकट आये। राजकन्या ने उन्हें न देखा, किन्तु कल्याण खड़े होकर उसे देखने लगे। क्षणकाल के लिये उनके मन में राजकन्या के प्रति सन्देह हुआ था वही समझ कर अपने

को धिक्कार देने लगे। अपने मन में बोले "छिः, मैं कैसा पापिष्ट हूं।" राजपुत्र का स्वर सुन उषावती ने चिहुँक कर मुख से हाथ हटा लिया। तब युवराज को उनका मुख दीख पड़ा, देखा कि वह रो रही है।

यदि हमारे पाठकों को ऐसा अवसर पड़ा हो तो वेही अपने मन में विचार कर देखें, कि सुन्दरी युवती का वदन मण्डल निःशब्द रोदन करने में कैसा मनोहर बोध होता है? क्या यह रमणीगण के हास्यपूर्ण वदनमण्डल से अधिकतर मधुर नहीं है? सुन्दर गुलाबपुष्प जब ओसकण के भार से झुक जाता है, उस समय क्या वह और भी रमणीय बोध नहीं होता? सूर्य्य के तीक्ष्ण उज्वल किरण के परिवर्तन से जब हीनकान्ति चन्द्रमा की अपरिष्कुट कोमल ज्योति विकीर्ण होती है, क्या उस समय पृथ्वी अधिकतर शोभायमान नहीं होती? दिन में श्वेतवर्ण उज्वल गगन प्रान्त के बीच २ में कभी २ कृष्णवर्ण मेघ चला जाता है उस समय क्या उस उज्वलता की और भी श्री वृद्धि नहीं होती?

उषावती के उज्वल रक्तनयनपल्लव ओसकणयुक्त गुलाब की भांति छोटे २ अश्रुबिन्दु से भींग गये हैं। और वे पूर्ण होकर क्रमशः कपोल पर बहते हैं, मानो निःशब्द मृदु झरना बह रहा है। उसका सुचिक्कन केशजाल पुष्पवेष्टित

मनोहर वेनी की भांति बद्ध नहीं है, बिथुर कर मुखमण्डल और दोनों कपोलों को स्पर्श करता हुआ वक्षस्थल और पीठ पर पड़ा हुआ है किसी किसी स्थान पर अश्रु से भीग भी गया है, स्थिर और अश्रुसिक्त लोचन अवनत हैं, शरीर स्तम्भित, ओष्ठाधर बन्द, थोड़े २ कभी कभी फरक उठते हैं। राजपुत्र उसका रूप देख कर मोहित हो गये। मनमें सोचने लगे कि ऐसी सुन्दरता तो मुझको कभी नहीं प्रतीत होती थी। कुछ देर में मुग्ध की भांति बोले 'उषा। रोती क्यों हो?" राजकन्या कुछ नहीं बोली। उन्होंने फिर पूछा फिर भी कुछ उत्तर न मिला, वह रक्त वदनमण्डल धीरे २ आपही आप नीचा हो गया—विषण्णमुख लज्जा और राग से शोभित हो गया। युवराज सोहाग के अभिमान से पूर्ण हो कर फिर पूछने लगे, किन्तु इतना पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला और न यह समझ सके कि यह क्यों रोती है। राजकुमार प्रेममय मधुर स्वर से फिर पूछने लगे और उषावती का कर पकड़ एक श्वेत प्रस्तरमण्डित भवन में जा उस घर से कुछ हट कर था ले गये। इसी समय एक पुरुष हठात् राजकन्या के गृहद्वार पर आया और कन्याओं को देखते साथ जैसे व्याघ्र देख कर हरिण भागता है भाग गया। राजपुत्र ने विजय को पहिचाना। इस बार विजय की चेष्टा सफल हो गई, काठ में जो आग लगा दी, वह भभक

उठो। समस्त ब्रह्माण्ड उनके नेत्र में मानों चतुर्दिक प्रलय-विप्लव सा हो गया, चण २ उनके नेत्रों के सम्मुख जैसे बि-जुली सी चमक जाती थी, सर्व शरीर कण्टकित हो गया, क्रोध से मूर्ति भयङ्कर हो गई, उन्होंने वेग से राजकन्या का हाथ छोड़ कर किनारे कर दिया। राजकन्या ने अपने दुःख में व्यस्त होने के कारण विजय को न देखा, अकस्मात् कल्याण का यह भाव देख कर वह चकित हो गई। राज-कन्या ने अबतक कल्याण का मुख भली भांति न देखा था, अब जो देखा तो रक्तवर्ण पाया, देख कर भयभीत हो गई। कल्याण बोले "पापिनि। जिस हेतु तू रोती थी उसे मैंने अब समझ लिया। मालूम हुआ कि उसी के कारण मेरी बातों का उत्तर न दे सकी। हठात् क्या कहकर उत्तर देती सो तो तेरी समझ में न आया। हाय। मैं कैसा निर्बोध हूं। मैं समझता था कि मेरा युद्ध में जाना स्मरण कर रोती है। मैंने स्वप्न में भी नहीं समझा था कि तू दूसरे के लिये रोती है" ।।। उषावती इस बार चुप न रह सकी, अति कातर और गम्भीर स्वर से बोली।"

उषा—"क्या मैं दुश्चरित्रा हूं यह तुमारे मुख से निकले और मुझे जीते जी यह सुनना पड़े ? हाय।" राजकन्या के मस्तक पर मानो वज्र टूट पड़ा। राजकुमार ने जो उसके प्रति सन्देह किया था उसको अब समझ गये। कल्याण बोले

"हा, तुम सती हो, इसी से न विजय को प्रणयोपहारस्व-रूप अंगूठी दी है? तुम सती हो, इसी कारण न उसको प्रेमी बनाकर भी मुझे स्वामी रूप ठहराती थी? पापिनी! तू केवल दुश्चरित्रा होकर भी शान्त नहीं रही कपटिन की भांति मिथ्या प्रणय के फन्दे में मुझे फँसाया। तुझे दुश्चरित्रा जानकर भी मैं उस बन्धन को तोड़ सकता मेरे जीवन का सुख विलोप हुआ। उः, क्या मैं मुग्ध हो गया था? गुलाब की बातों का किसी प्रकार विश्वास नहीं करता था, यदि अपनी आंखों से न देखे होता तो बोध होता है कि किसी प्रकार भी मैं विश्वास न करता।" कल्याण की बातों से राजकन्या आश्चर्ययुत होकर कहने लगी "क्या तुमने अपनी आंखों देखा है? मैंने कब विजय को अंगूठी दी है?" राजकुमार ने आगे न कहने दिया बोले "बस—जो किया सो यथेष्ट किया। अब अधिक मिथ्या बोल कर पाप मत बढ़ाओ। यदि स्वयं नहीं देखता तो तुम्हारी बात का विश्वास करता। मैं तुम्हें कुछ नहीं कहता, तुम्हारा हृदय तुमको नरकाग्नि तपा देगा। मैं अब जाता हूँ। युद्ध में प्राण त्याग करने जाता हूँ। मैं तुम को विदा करने आया था, आज आजन्म के लिये विदा होता हूँ। तुमको एक समय इसका फल भोगना पड़ेगा। यदि मनमें कुछ भय हो—तो पश्चात्ताप और प्रायश्चित करो।' इतना कह राजकुमार

उस भवन से शीघ्रतापूर्व्वक चले गये। राजकन्या इस समय मौन होकर रोने लगी, नेत्रों के आगे अन्धकार छा गया; फिर खड़े होने की शक्ति न रही। मूर्छित हो श्वेत पत्थर पर जो उस भवन में जटित था गिर पड़ी किन्तु इसको राज-कुमार ने नहीं देखा। गुलाब छिप कर द्वार पर से ये बातें देखती थी, राजकन्या को गिरते देख उसका हृदय खेद से पूर्ण होगया, फिर उसने अपने सुख की इच्छा न की। उसके चित्तमें आया कि कल्याण से सब वृत्तान्त खोलकर कह दूं, किन्तु फिर बिचारा कि अभी अवसर नहीं है। यदि मैं क-हने के लिये जाऊं तो इधर राजकन्या की मूर्छा कौन छो-ड़ावेगा? इतना बिचार गुलाब शीघ्रता से राजकन्या को चैतन्य करने का यत्न करने गई। फिर सोचा कि राजकन्या को सचेत कर उनके निकट अपना दोष स्वीकार करके तब कल्याण से कहूंगी। भवन में पहुंच उसने देखा कि शीतग्रस्ता कुँम्हिलाई कमलिनी की भांति राजकुमारी अचेत पडी है। मुख पर पिअरी छा गई है, कपोल और ओष्ट से खेद के बुन्द टपक रहे हैं। गुलाब ने जल लाकर राजकन्या के मुख और नेत्रों पर छिड़का फिर वायु सेवन कराने से उनको एकबेर कुछ ज्ञान हुआ, किन्तु फिर मूर्छित होकर गिर पडीं। गु-लाब अपने मन में डर गई। उसका साहस न हुआ कि राजकन्या की अवस्था छिपावे झट एक परिचारिका द्वारा

राजमहिषी के निकट उनका हाल भेज दिया, और उनको गोद में लेकर पलंग पर शयन कराने के निमित्त उठी। किन्तु यह क्या? यह बून्द २ रक्त राजकुमारी के कपाल से कैसा टपक रहा है? भली प्रकार देखा तो विदित हुआ कि केश भी रुधिर से किंचित भींग गये हैं, तब तो वह और भी डर गयी और समझी, कि राजकुमारी को पत्थर से कड़ी चोट लगी है। उसने धीरे २ रुधिर को धोया और पलंग पर लाकर लिटा दिया।

इधर दासी उस वृत्तान्त को लेकर राजमहिषी के घर पर उपस्थित हुई। महिषी की अवस्था ३२ वर्ष की होगी। उनको अभी पूर्णयौवना कहना चाहिये। वह शृङ्गार कर के बैठी हैं; उनके सम्मुख एक सभासद आगामि युद्ध का प्रबन्ध ज्ञात कराता है। उन्होंने दासी को देख कर उसके आने का कारण पूछा।

दासी बोली 'राजकन्या अचेत हो गयी है, आप चल कर देखिये तो कि क्या हुआ है'। उषावती उनकी एकमात्र सन्तान थी, कन्या की पीड़ा होने से वे अत्यन्त अधीर हो जाती थीं। यह सुनकर कि राजकन्या अचेत हो गयी है वे तुरन्त सभासद को बिदाकर राजकन्या के घर पर चली आईं। देखा कि राजकन्या बेसुध पड़ी है, और गुलाब सचेत करने का यत्न कर रहा है। महिषी ने गुलाब से राजकन्या के अचेत होने का कारण पूछा। गुलाब कुछ उ

त्तर न दे सकी। बिचारालय में अपराधी व्यक्ति की भांति गुलाब भयभीत होगयी। उसका मुंह सूख गया, कुछ बात न निकली। केवल उसके निःशब्द रोने की अश्रुधारा ने राजमहिषी के प्रश्न का उत्तर दिया। उसे निःशब्द देख परिचारिका गण इस समय बात कहने का सुअवसर पाकर उस विषय में अपने २ मन का भाव प्रकाश करने लगीं। कोई अति कष्ट से आखों में आसू भरकर महिषी को दिखलाने के हेतु क्रोध प्रगट करने लगी, कोई यत्न करके दीर्घ निश्वास त्यागने लगी, किन्तु इस सन्देह से कि महिषी देखती है कि नहीं, वे सब निकट आकर बैठीं, सब की सब राजकुमारी की पीड़ा का एक २ कल्पित बात बनाने लगीं, अन्त में एक प्रवीणा परिचारिका बोली "नहीं, नहीं, यह सब कोई बात नहीं है। आज कल्याण आये थे। उनके सग युद्ध की बात हुई होगी? जबतक रहे वार्त्तालाप में मन बहला था, उनके जाने से युद्ध की बात स्मरण होकर विपद की आशंका चित्त पर चढ़ गयी है, अभी निपट बालिका है भयभीत हो गयी है, इसी कारण मूर्छित हो गिर पड़ी है।" सब की सब बोल उठीं "बस बस यही ठीक है।" राजमहिषी के चित्त में भी यही बात आई। इसके भिन्न उनको और दूसरा कारण देखने में न आया। उन्होंने सब को चुप रहने की आज्ञा दी और चिकित्सक को बुला भेजा। बैद्य ने आकर देखा कि अबतक ज्ञान नहीं है, वैसही सम

भाव है, किन्तु अज्ञानावस्थाही में ज्वर आरम्भ हो गया है। राजकन्या कहां किस प्रकार और कब की मूर्छित हुई हैं, चिकित्सक ने यह सुन कर कि पत्थर की चोट से मस्तक रक्तारक्त हुआ है उत्तमरीत से परीक्षा कर मस्तक देखा और बोले कि "मस्तक में अधिक चोट आई है, इसी से और भी चेतना नहीं होती और उसी कारण ज्वर आरम्भ हो गया है। मस्तक को जैसी अवस्था देखता हूं सांघातिक होने का सम्भव है। मुझको अकेले चिकित्सा करने का साहस नहीं होता।"

लेप और औषधि की व्यवस्था करके राजवैद्य तुरन्त दूसरे दूसरे वैद्यों को लाने के लिये गये। इधर राजमहिषी रोने लगीं। यह समझकर कि एक मात्र कन्यारत्न से वंचित होना पड़ेगा, वे आहार निद्रा त्याग कर कन्या की शुश्रूषा करने में तत्पर हुईं।

सतरहवां परिच्छेद।

कल्याण घर पर [illegible] प्रथम शीघ्र आत्महत्या का उपाय सोचने लगे। प्रतिक्षण उनका जीवन क्रमशः ऐसा असहनीय होने लगा कि उस निकटवर्ती मृत्यु की अपेक्षा करना भी उन्हें एक युग सा बोध होने लगा। और उसके लिये कोई दूसरा [illegible] मृत्यु का उपाय न देखकर [illegible] छुरी लेकर कंठ में [illegible] करने में व्यस्त हुये।

इस भांति मृत्यु का उपाय स्थिर होने पर उस समय उनके मन में दूसरी बातें आने लगीं। एक एक करके पिता, माता (विमाता) चितौर सब चित्त पर चढ़ आये वह सुखमय जन्मभूमि, वह रम्य पर्वतावृत्त चितौर नगरी, फिर वहां नहीं जाना होगा, अन्तिम देखादेखी कर आये हैं। मरनेही के निमित्त स्वदेशत्याग किया था। विमाता कमला देवी कल्याण से अतिशय स्नेह रखती थीं, उनसे जन्म भर के लिये विदा हो आये है उनका स्नेहमय मधुर स्वर फिर कभी नहीं सुनने में आवेगा। वाल्यावस्था से कल्याण मातृहीन हैं, किन्तु कमला देवी के गुण से मातृहीन किसको कहते है यह वें न जानते थे। कमलादेवी हो उनकी माता थीं उन्हीं को वे निज माता को भाति जानते थे। मृत्युकाल में उनके संग एक बार अन्तिम साचात् नहीं होगी। मरने के पूर्व्व एक बार माता कह कर न पुकार सकेंगे पिता समरसिंह, उनके स्नेह मे पूर्ण पुत्रवत्सल पिता है, उस पिता को इस बार जन्मपर्यन्त को त्याग कर जाना होगा पिता की स्नेहपूर्ण मूर्त्ति क्या वह फिर कभी न देखने पावेंगे। उनका मधुमय उपदेश फिर कभी उनका कर्ण शीतल न करेगा। कल्याण समरसिंह के नयनानन्दवर्द्धक, वृद्धावस्था की आशा, जीवन के सुख हैं, किरण के खो जाने की अवधि से कल्याणही उनके सर्व्वस्व हैं। उनके मरने से

उनके पिता का हृदय शून्य हो जायगा। किस प्रकार अ-
मरसिंह उसको सहेंगे? कल्याण की मृत्यु होने पर पुत्रव-
त्सल पिता किस प्रकार जीवन धारण करेंगे? पिता की बात
स्मरण करके कल्याण को अत्यन्त कष्ट होने लगा। हाय!
जब मैं चित्तौर से आता था तो किसको इसका ध्यान था
कि मैं इस प्रकार भग्नहृदय हो प्राणत्याग करूंगा। जब मैं
राजकन्या के प्रेम में मत्त हुआ था, तो किसके मन में यह
बात थी कि उसका परिणाम ऐसा होगा। उस समय चतु-
र्दिक सुख, आशा, प्रेम, और आनन्द ही देख पड़ता था।
यदि युद्ध में मरा, तो सुख स्वप्न देखता हुआ, राजकन्या के
मुख का ध्यान करता हुआ, अपनी मृत्यु से राजकन्या की
कातरता और रोदन का स्मरण करके आप भी उसके दुःख
से अश्रुपात करता हुआ मरूंगा यही सब बातें मन में
आती थीं। भला यह कौन जानता था, कि मृत्युकाल में
प्रेममयी राजकन्या को न देखकर विपरीत भुजंगिनी दे-
खते हुये, जीवन को दुःखकर न जान कर छुपाकर क्रोध
करते हुये, राजकन्या को प्रणयी कहकर सम्बोधन करने
के बदले पापीयसी कहकर तिरस्कार करते हुये, प्रेमाश्रु
के स्थान पर वैराश्रु पात करते हुये प्राण विसर्जन क-
रेगा और यही कौन जानता था कि इस युद्ध में [illegible]
करेगा? [illegible] यह था कि युद्ध में [illegible]

करके जय जय नाद करते हुये दिल्ली फिर आवेंगे। जय-पताका उड़ाते हुये पिता पुत्र से, भ्राता भगिनी से, पति पत्नी से, सजलनयन आनन्दित चित्त से परस्पर आलिङ्गन करेंगे, ईश्वर को धन्यवाद देंगे, युद्ध के शेष होने पर हम लोगों का विवाह होगा। पृथ्वीराज उषावती को हमारे हाथ प्रदान करेंगे, हर्ष की उमङ्ग में. आशापूर्ण हृदय से हम उसका पाणिग्रहण करेंगे। उषावती,—प्रेममयी उषावती,-रमणीरत्न उषावती,—हृदय से हमारी हो जावेगी। उषावती के मुखपर आनन्द प्रकाश होगा हम से वह सकल सुख भोगेगी। विवाह करके नववधू लेकर विमाता के आह्लाद की सीमा न रहेगी। यही सब बातें उनके मन में आती थीं।

हाय। अब वह सब आशा समूल नष्ट हो गई, कल्याण का सुखप्रदीप निर्वाण हो गया। जीवन असह्य हो उठा। किन्तु हमारी मृत्यु होने से समरसिंह अत्यन्त मनोवेदना पावेंगे और उनकी सकल आशा विलुप्त हो जायगी, यही विचार करके कभी २ कल्याण मृत्यु से विचलित होने लगी। अन्य अन्य नाना प्रकार की बातें मन में आने लगी—हमारी मृत्यु होने पर चित्तौराधिपति कौन होगा ? क्योंकि उन्होंने सुना था कि समरसिंह उनके अन्य दो भ्राताओं को राज्य देने मे इच्छुक नहीं हैं। वे लोग राजा होने के उपयुक्त नहीं हैं। उनके मरने से भला चित्तौर की क्या दशा

होगी ? समरसिंह तो अब प्रौढ हो गये हैं, अधिक दिन राज्यभार अपने हाथ में रखने को समर्थ नहीं होंगे, और बारम्बार शोक पाते पाते शीघ्रही अधिक असमर्थ हो जा सकते हैं। हमारे मरने पर राज्य कौन देखेगा? वे अतिशय क्लेशित हुये। विचार करने लगे कि 'मरने में सुखी तो होऊँगा, किन्तु मरने के अनन्तर भी फिर विघ्न। औ.—यदि किरण रहता, तो यह कोई बाधा न होती, निर्विघ्न और निश्चिन्त हो के मै मर सकता था पिता के निमित्त भी सोचना न पड़ता, चित्तौर के लिये भी कुछ विचारना न पड़ता। किरणके रहते मेरी मृत्यु पिता को भी उतनी कष्टदायक न होती। किरण के प्रति उनका स्नेह, उनकी आशा, उनका भरोसा रह सकता था। किरण को राज सब ठहर सकता था। किरण को राज देने में पिता को कोई उज्र न होता"। किरण को बात मन में आते आते उनको दिलीप की बात चित्त पर चढ गई। दिलीप की बात से फिर उनके जन्तर की बात स्मरण हुई। उसी समय दिलीपसिंह उस घर में आकर उपस्थित हुये। और दिन तो दिलीप को देख कल्याण हंसकार बुलाते थे, आज उनको विषण्ण और मौन देखकर दिलीप सकुचित भाव से घर में एक किनारे खड़े हो रहे। कल्याण, कुछ देर पर उन्हे निकट आने का संकेत कर बोले "क्या है ? किस प्रयोजन से आये हो ? मैं अभी

तुमारेही निकट जाने का विचार कर रहा था, उस जन्तर के देखने के लिये मुझे अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हो गया है"। दिलीप बोले "आप के निकट मेरे आने का कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है, उस जन्तरही को दिखलाने आया हूं"। दिलीप ने गले से स्वर्णहार युक्त जन्तर उतार कर कल्याणके हाथ में दिया जन्तर में जो नाम खुदा था उसको पढ़कर कल्याण को आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने सुना था, किरण का नाम खुदा हुआ एक रक्षाकवच किरण के गले में रहता था और इसी कारण दिलीप का कवच देखने के लिये उस प्रकार व्यस्त हुये थे। उन्होंने आश्चर्य्य प्रकाश नहीं किया किन्तु धीरे २ बोले "यह कवच सन्यासी ने कहां से पाया था?"

दिलीप—"मेरे गले से?"

कल्याण—"अच्छा, सन्यासी जी ने किस देश में तुम को पाया था इसको तुम जानते हो? तुमारे मुंह से मैंने और दूसरी २ बातें सुनी थीं किन्तु यह नहीं सुना"।

दिलीप—"उन्होंने कहा था कि चित्तौर में—"।

कल्याण—"चित्तौर में?" दिलीप बोले "हां—"

कल्याण—"सन्यासी जी के मुख से तुमने अपना वृत्तान्त जो सुना है, उन सब बातों को स्पष्ट करके मुझ से कहो मैं अत्यन्त आह्लादित होऊंगा"।

दिलीप—"संन्यासी जी एक दिन रात को आंधी पानी

निकल जाने पर चित्तौरनगर की नदी तीर पर भ्रमण करते थे। तीर पर मुझ को मुर्दे की भांति पड़ा हुआ देख कर उठा लिया और सजीव करके उसी दिन से सन्तानवत् मेरा प्रतिपालन करने लगे थे। तब तक मेरे गले में यह कवच था। सन्यासी जीने अपने मृत्यु समय कहा था कि इसी कवच में तुमारा यथार्थ नाम है,। फिर सास बन्द हो गया। इस कारण वे कुछ और मुझ से न कह सके। 'तुम चित्तौर'— शेष में इतनाही कह कर उनका शरीर छूट गया। यहां आने पर एक दिन मैंने कवच निकाल कर देखा और पढ़ा था। किन्तु जल निमग्नवस्त्र देखकर जैसे अपना परिचय पाया, उसी भांति इससे भी परिचय पाया है। इसमें लिखा है 'किरणसिंह' किन्तु किरणसिंह देख कर मैं कैसे परिचय पाऊँगा, यदि पिता काही नाम होता तो भी आत्मपरिचय मुझ को प्राप्त हो सकता था मुझ को अधिक परिचय पाने की आशा नहीं है। मेरे परिचय पाने की यदि आपकी अभिलाषा थी, तो आप भी उससे परितृप्त होने की आशा अब त्याग करें"। कल्याण अब और अधिक अपना आनन्द छिपा न सके अब उनको इसमें कोई सशय न रहा कि दिलीपसिंह वास्तव में किरणसिंह हैं। उनके निराश हृदय में आशा का सचार हुआ, उस गम्भीर दुःख में भी एक आनन्द का उदय हुआ। वे बोले "तुमारा परिचय मुझ को मालूम

हो गया और मेरा सन्देह निवृत्त हुआ। अब अपने परिचय के निमित्त तुम को निराश होना न पड़ेगा। मैं तुमारा परिचय तुम को दूंगा। तुम मेरे बन्धु से भी नगीची हो इसको मैंने अभी जाना है। आज तक इसका मुझे सन्देहही सन्देह रहता था, किन्तु नितान्त दुराशा जानकर उस सन्देह को हृदय में स्थान नहीं देता था, वही सन्देह आज सत्य हुआ, इतने दिनों की दुराशा आज सफल हुई। मैं सर्वदा यही आशा करता था, यही इच्छा करता था, कि जिसमें यही हृदयबन्धु यही प्रियसखा दिलीप मेरा वही स्नेहधन किरणसिंह हो। सचमुच आज मेरी वह इच्छा पूर्ण हो गई, मैं समझ गया, कि यथार्थ में तुम्हीं मेरे कनिष्ठ भ्राता, तुम्हीं मेरे किरण हो, आओ, तुम को एक बार आलिङ्गन करके इतने दिन की साध पूर्ण करूं"। कल्याण ने स्नेह से पूर्ण होकर उन को आलिङ्गन करके फिर उनका जीवनवृत्तान्त सविस्तर कह दिया। दिलीप का अपना परिचय पाकर आह्लाद से बोलने की शक्ति न रही आंखों में आंसूभर उनको भली भांति आलिंगन कर लिया।

कल्याण फिर बोले "इसके थोड़ीही देर पूर्व मैं किरण को पुन. पाने की इच्छा में व्याकुल होता था, इसी लिये देवी चतुर्भुजा ने मेरी मनोकामना पूर्ण की। मैं सोचता था कि मेरे मरने पर चित्तौर की क्या दशा होगी, पिता

का शोक कैसे निवारण होगा, इसी से चतुर्भुजा ने तुमको मेरे निकट भेज कर मुझको प्रबोध दिया। मैं अब निश्चिन्त होकर मर सकूंगा।" दिलीप कल्याण की बात सुन कर अतिशय चकित हुये। आत्मपरिचय पाकर जो हर्ष हुआ था, अकस्मात् कल्याण के मुख से उनकी मृत्यु की बात सुन तुरन्त उनके चित्त से वह हर्ष मिट गया, कुछ प्रगट न हुआ। कल्याण बोले "हमारी बात से चकित मत हो। जो कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो।" दिलीप और भी आश्चर्यान्वित हो कर एक टक देखने लगे, कल्याण को कुछ उत्तर न दे सके। कल्याण बोले "पिता जी के उपरान्त मे उनका राज्याधिकारी बोध होता था इसको तुम जानते हो। आज मैं अपना वही अधिकार तुमको देता हूं। आज से तुम्हीं चित्तौर के युवराज हुए। भविष्यत् राजसिंहासन के तुम्हीं अधिकारी होगे।" कल्याण की बातों का अर्थ किरण को कुछ भी समझ न आया। एक बेर मन मे सोचा कि "क्या कल्याण मेरा उपहास करते हैं? मेरी परीक्षा के हेतु तो ऐसा नही कहते?' किन्तु फिर जब उनके मुखमण्डल पर दृष्टि की तो उन्हे स्वाभाविक गम्भीर, और विषादाङ्कित देखा, तुरंत उनका वह सन्देह दूर हो गया, हृदय व्यथित होने लगा, सहसा मन में यह बात आई कि कल्याण कोई गम्भीर दुःख पा कर ऐसा कहते हैं। सोचते २ सिहर गये और उनके

मन से इस बात को दूर करने के निमित्त बोल उठे "नां नां नां—ऐसा नहीं हो सकता—भगवति—यह स्वप्न—" कल्याण तुरंत गम्भीर स्वर से बोले "भ्रातः! यह स्वप्न नहीं है। मैं सत्य कहता हूं कि मैं मरूंगा।" दिलीप चौंक उठे, मन की बात मन ही में रह गयी, शेष न कर सके। कल्याण बोले "चकित मत हो, मैं इसी युद्ध में मरूंगा। तुम चित्तौर जाओ युद्ध में मत रहो। यदि हम दोनों युद्ध में मर जावेंगे, तो पिता जी को क्या दशा होगी? चित्तौर की क्या दशा होगी?" किरणसिंह ने अपने मन में यह सोचा कि युद्ध मे प्राण नष्ट होने का भय है, मालूम होता है कि इसी चिन्ता ने आज कल्याण को इतना विचलित किया है, वे आश्चर्यान्वित होकर बोले "आप यदि ऐसा समझते हैं, तो आप चित्तौर चलिये। मैही युद्ध में जाऊंगा, मै यहां रहता हूं। किन्तु आपको आज मृत्यु का भय क्यों होता है? आप ऐसे वीर पुरुष, आपको ऐसी चिन्ता क्यों हुई?"

कल्याण—"नहीं नहीं मै मृत्यु का भय नहीं करता, वर मृत्यु की इच्छा करता हूं।"

किरण—"क्या। युवराज कल्याण आज मृत्यु की इच्छा करते है जो पिता के स्नेह मे परम सुखी है, जिनके नाम से प्रजागण आह्लाद में मत्त है, जिनकी शूरता वा वीरता जगत मे प्रशंसनीय है, जिनको कुछ भी अभाव नहीं है, जो

सकल सुख से सुखी हैं, उनको आज जीवन से वैराग्य हो गया है, क्या यह आप मुझको विश्वास करने कहते है ? युवराज। यह बात कह कर फिर मुझको व्यथित न करिये।"

कल्याण—"तुमको यदि मेरे प्रति कुछ भी स्नेह हो, तो फिर मेरे बचाने की चेष्टा मत करो,मरनेही से मैं सुखी होऊगा। किरणसिंह। आज एक भिखारी भी मुझसे अधिक सुखी है, कल मैं सुखी था, कल तुम मुझको सुखी कह सकते थे, किन्तु आज से मुझको कोई सुखी कह कर सम्बोधन नहीं कर सकता।" इतना कह कर कल्याण रुक गये, और उनकी आंखों से दो तीन बुन्द अश्रु के गिर पड़े; उनको कष्ट से छिपा कर फिर बोले "क्या तुम कभी किसी पर आसक्त नहीं हुये ? यदि होकर कभी निराश हुये होगे, तो कदाचित् मेरे कष्ट का कारण समझ सकोगे किन्तु देवी आशापूर्णा करें कि, ऐसा किसी को न हो।" उस वीर के नेत्र से आँसू गिरते देख किरण का हृदय मानो दो टूक हो गया, उन्होंने समझा कि, यदि नितान्त गम्भीर दुःख न होता तो कल्याण की ऐसी दुर्व्वलता प्रकाश न होती। वे बोले "आप प्रेम करके कैसे निराश हुये ? महाराज तो आपको जामाता बनावेंगे। तो क्या राजकन्या आपकी यथार्थ प्रणयपात्री नहीं ?" कल्याण उदास

होकर बोले "हा, वही मेरी यथार्थ प्रणयिनी है, उसको विश्वासघातिनी जानकर भी मैं भूल नहीं सकता।" दिलीप चकित होकर बोले "क्या। राजकन्या विश्वासघातिनी है? यह आपको कैसे विदित हुआ?" इस बात से राजकुमार का रुधिर फिर गरम हो गया, बहुत कष्ट से इतनी देर तक ऐसे व्याकुल चित्त को शान्त किये हुये थे, किन्तु अब न सम्भाल सके। बोल उठे "हा हां वही पापिनी—वही विश्वासघातिनी—वही दुश्चारिणी—नहीं ठहरी ठहरी, अज्ञान होकर मैं किसका नाम लेता हूं, उसके नाम लेने से भी मुख कलंकित होता है, अब जाने दो उस बात को मत छेडो।" दिलीप आश्चर्य्यान्वित हो गये, कुछ समझ में न आने से दारुण दुःख को प्राप्त हुये, किन्तु राजकन्या के विषय में कल्याण से और कुछ पूछने का साहस न किया। नितान्त कातर चित्त से कल्याण को मृत्यु की इच्छा त्याग करने के निमित्त अनेक प्रकार से समझाया, किन्तु किसी प्रकार से कृतकार्य्य होने की आशा प्रतीत न हुई, तब दिलीप उनकी इच्छानुसार कार्य्य करने में सम्मत हुये। दिलीप बोले "तो मैं युद्ध के पहिलेही की यात्रा करूंगा। परन्तु मुझको आप एक अनुमति देवैं, वह यह है कि पहिले मैं यहा से कविचन्द्र के उद्धार के निमित्त जाने की इच्छा करता हूं। उनके उद्धार के पश्चात् फिर चित्तौर जाऊंगा।'

कल्याण—"इससे मुझे कोई वक्तव्य नहीं है। मेरी मुख्य इच्छा यही है कि तुम युद्ध के समय यहां मत रहो। चन्द्रपति के उद्धार निमित्त जाने में तो तुमारी मृत्यु की सम्भावना नहीं है, और इसके होने में तो पिता जी भी सुखी होंगे। पिता का सुखी होना जान कर मैं भी सुख से प्राण त्याग कर सकूंगा। तो क्या हमलोगों का अन्तिम साक्षात् हुआ ?"

दिलीप नेत्र भर कर बोले "नहीं आज आप यह बात नहीं कह सकते। जब जाऊंगा, तब"— इतना कह कर दिलीप फिर कुछ न बोल सके। कष्ट से आंसू रोक उन्होंने वहां से प्रस्थान किया।

अठारहवां परिच्छेद।

कल्याण के मुख से उसी दिन समरसिंह को उनके खोये हुये बालक किरणसिंह की पुनःप्राप्ति का सम्वाद मालूम हुआ। बहुत दिनों पर आज सहसा उनके उसी गम्भीर योगीन्द्र मुखमण्डल से आनन्द प्रगट हुआ। उन्होंने किरण को अपने सम्मुख लाये जाने की आज्ञा दी। कम्पित शरीर और व्याकुल हृदय से उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। कल्याण दिलीप को लिवा लाये हैं। दिलीप ने आते ही पृथ्वी पर साष्टाङ्ग प्रणाम किया उन्होंने गद्गद हृ-

दय से उसे कण्ठ से लगा आशीर्वाद दिया। दिलीप को देख आश्चर्य्य से समरसिंह के आंखों की पलक न फिरती थी, स्थिर लोचन से एक टक देखते रह गये। उनका आत्म-ज्ञान जाता रहा, मुख से बात न निकली, चुप चाप स्थिर लोचन हो पत्थल की पुतली की भाँति खड़े रह गये। यह क्या! यह दिलीप है कि किरणसिंह? क्या यही मेरा खोया हुआ बालक है? क्या इसी कारण से दिलीप को प्रथम देखते मात्र मेरा किरण चित्त पर चढ़ा था? क्या इसी कारण दिलीप को देख कर मुझ में सन्तानस्नेह उत्पन्न हुआ था? क्या यह सुन्दर नेत्ररञ्जक युवा पुरुष सत्यही मेरा किरण है? क्या मेरा वही तीन वर्ष का बालक अब इतना बड़ा हो गया? क्या सचमुच फिर मेरा किरण मुझे पिता कह कर सम्बोधन करेगा? क्या मैं अब आशा से अधिक फल पाऊँगा? दिलीप को देख कर इसी प्रकार चिन्तासागर में उनका मन डूबने उतराने लगा। उनको स्थिर देख कर किरण की इतने दिन का जीवन वृत्तान्त कल्याण ने धीरे २ कहना प्रारम्भ किया। किस प्रकार सन्यासी ने नदीतीर से किरण को पाया और अपने सन्तान के समान पालन किया था, पहले वही कहा। फिर क्रम से दिलीप के संग सन्यासी के मृत्युकाल की बात चीत, उनके जलनिमग्न वस्त्र का वृत्तान्त, जिस स्वर्ण-

कवच में दिलीप का यथार्थ नाम कल्याण को मालूम हुआ, उस स्वर्णकवच की कथा, सब कही। अब समरसिंह का आश्चर्य्य मिट गया। इतने दिन लो जिस दुःख में उनका हृदय मग्न होता जाता था, अकस्मात् आज उसका अभाव हो गया, वे गम्भीर राजर्षि भी आज चण काल के लिए हर्ष में मग्न हो गये। हृदय का आह्लाद छिपा न सके, विह्वल चित्त से पुत्र को आलिङ्गन करके उसको बार बार चुम्बन किया, गोद में बैठाला, आनन्दाश्रुजल से उसका कपोल धोया। उनको जितना आनन्द हुआ उसको लेखनी द्वारा प्रकाश करने की शक्ति हम लोगों में नहीं है।

क्रमशः समरसिंह शान्त हुए नाना प्रकार की बात चीत होने पर कल्याण ने किरणसिंह को (हमलोग अब इसी नाम से अपने उस पूर्व परिचित दिलीप को उल्लेख करेंगे) युद्ध के पहलेही चित्तौर पठाने का प्रस्ताव किया वे बोले "किरण ने अभी तक उत्तम रूप से अस्त्र शिक्षा नहीं पाई है, उनको यहां इस युद्ध में रखना उचित नहीं है। उनको चित्तौर भेजिये। हम लोग दोनो जने इस युद्ध में यदि मर जायगे, तो आप को अतिशय दुःख होगा। किन्तु किरण को चित्तौर भेजने से आपको वह भय न रहेगा।" यह बात समरसिंह के भी मन में बैठ

गई। इतने कष्ट से किरण को पाया है अब यदि युद्ध में प्राण भी नहीं बचेगा, तो किरण सिंहासन पर बैठकर चित्तौर का सुख स्वच्छन्दतावर्द्धन करेगा नहीं तो हृदय में जो गूढ़तर आशा है वह भी फिर निर्मूल होती है, यह विचार यथार्थ में अत्यन्त चिन्तित हुए, वे भी कल्याण से सहमत हुए। किरण को शीघ्र चित्तौर भेजना स्थिर हुआ। किरणसिंह ने चित्तौर जाने के पहिले चन्द्रपति के उद्धार करने में समरसिंह की अनुमति प्रार्थना की। कल्याण के समझाने से समरसिंह ने इसमें कुछ प्रतिवाद न किया। किरणसिंह ने चन्द्रपति के उद्धार निमित्त जाने की अनुमति पाई।

किरण दिल्ली आने के समय से, इतने काम काज में लिप्त रहने पर भी शैलबाला को न भूल सकी। कब युद्ध शेष होगा, और कब हम अजमेर शैलबाला के उद्देश में गमन करैंगे, यह चिन्ता सर्वदाही उनको व्याकुल करती थी। सब का दिन कट जाता था, परन्तु उनका दिन नहीं कटता था। शैलबाला की बातें स्मरण होने से उनको कितनी बातें चित्त पर चढ़ जाती थीं। पहिले जब शैल-बाला उन लोगों की कुटी में आई थी तो उसकी अवस्था चार वर्ष की थी। उस समय का उसका वही बाल्यस्वभाव उसकी वही तोतरी बाणी और मधुरस्वर याद पड़ता था,

उस समय वे दोनो जने कितने प्रकार की शैशव क्रीडा करते थे, वह भी स्मरण हुआ। शैलबाला जब किसी कारणवश रोती थी और वे उसको किस प्रकार से भुलवाते थे वह स्मरण होता था। जब किसी दूसरे उपाय से वह रोना न बन्द करती, तो वे भी रोते, उस समय वह कहती थी कि "ना, अब मै न रोऊँगी तुम चुप हो।" शैलबाला के शान्त होने पर वे दोनो जने पर्व्वत २ भ्रमण करते, उसको कितने मन्दिर दिखलाते थे, जब वह अधिक न चल सकती थी, थक जाने पर कुटी में फिर आते थे। एक दिन एक हरिण के डरवाने पर शैलबाला कैसी भयभीत हुई थी, और किरण ने उसे देखकर शैलबाला को अकेले छोड़ उस हरिण को दण्ड देने के निमित्त उसका पीछा किया था। दण्ड देकर फिरे तो देखा कि वहां शैलबाला नहीं है। शैलबाला क्रीडाछल से कहीं छिप गई थी, यह विचार कर किरण ने उसके खेलने का सब स्थान ढूंढा, शैलबाला को कहीं न पाया। तब वे उच्चस्वर से पुकारने लगे, उनके स्वर से पर्वत गूंजने लगा, दिलीप थक कर एक मन्दिर में गए। क्या आश्चर्य। देखा, कि पाप वर्ष की शैलबाला उस मन्दिर के देवता की एकाग्र चित्त से आराधना करती है। किरण उसे देख बोले "यह कौन, शैलबाला। तुम यहां हो। और मुझको पवतऊ

इतना कष्ट दिया।" किरण का स्वर सुन कर बालिका ने चटक कर रोती हुई उनका गला पकड़ कर कितना आदर किया, उनको देखकर कितना आह्लाद प्रगट किया। वह इसी भय से डर गई थी कि कदापि टेढ़ी २ सींगवाला हरिण चोट न करे। वह बोली "मैंने सुना था कि महादेवजी से प्रार्थना करने पर कोई विपद् नहीं पड़ती, इसी से मैं महादेव जी से बिनती करने आई थी।"

फिर जब शैलबाला कुछ और बड़ी हुई तो वे उस को फूलों के गहनों से सज कर हर्षपूर्वक देखते थे, वह भी चित्त पर चढ़ा। बाल्यावस्था की प्रत्येक घटना उनके मन की आंखों के निकट नाचने लगी। वे आह्लाद में ज्ञानशून्य हो जाते थे, वही सब बातें स्मरण करते २ ऐसे प्रेममग्न हो गये कि मानो उसी समय के दिलीप की भांति शैलबाला के संग पर्वत पर खेल रहे हैं, मानो वह उसका फूलों से शृङ्गार कर रहे हैं, अहा हा। कैसा मनोहर देखने में आता है, वह उसी बनदेवी के रूप पर मोहित होकर एकटक लोचन से उसे देख रहे हैं—अकस्मात् मोहभंग हो गया। शैलबाला कहां है? वे तो अकेले बैठे हैं। शैलबाला यहां नहीं है, अजमेर मे है, परन्तु कदाचित् वह व्याही हो, और उसके मन में क्या हो? क्या राजवंशीया शैलबाला को अज्ञातकुलशील दिलीप अबतक स्मरण होंगे?

कोठे अटारी औ राजमहल की निवासिनी शैलबाला क्या अब उसी कुटीरवासी दिलीप के संग विवाह करना चाहैगी तो उनको यह दुराशा क्यो है? वे अजमेर से क्यों नहीं मन को फेर सके? बाल्यावस्था की बातें स्मरण करने से जैसे आह्लाद होता था इन सब बातों को सोच कर वैसेही विमर्ष भी होता था। आज अपना परिचय ज्ञात होने से वह चिन्ता कुछ शान्त हुई। मनमें एक प्रकार की आशा हुई। बिचारा कि "यदि शैलबाला का विवाह न हुआ होगा तो मेरा परिचय जानने से उसको फिर असम्मत होने का कोई कारण नहीं है, और यदि विवाह हो गया हो, तो आशे! तू फिर मेरे हृदय पर अधिकार न कर सकेगी। यही अन्तिम साक्षात् है। सुख। तुम कभी अपनी अमृतमयी गोद में मुझको आश्रय न दे सकोगे, यही अन्तिम बिदाई है।" शैलबाला विवाहिता है कि अविवाहिता इसके जानने के लिये किरण अपने मन को स्थिर करने लगे, उस विबाहही पर अपना सकल सुख दुःख निर्भर कर लिया। किन्तु अपने सुख के लिये उन्होंने कर्तव्य कार्य्य छोड़ कर पहिले अजमेर जाना उचित नहीं समझा, पहिले चन्द्रपति के उद्धार निमित्त जाना उनको उचित बोध हुआ। यही स्थिर किया कि चन्द्रपति का उद्धार करके चित्तौर जाने के पहिले अजमेर जाऊंगा।

पृथ्वीराज प्रभृति सब लोगों ने उसी दिन किरणसिंह के पुनः प्राप्त होने का सम्वाद जाना, क्रमशः यह बात सारे नगर में फैल गयी।

उन्नीसवां परिच्छेद।

पृथ्वीराज राजमहल के एक कोठे पर जंगले के सम्मुख खड़े होकर क्या सोचते हैं, मुख की कान्ति अति मलिन है, नाना प्रकार की दुर्भावना से हृदय परिपूर्ण है, वे चिन्ता को मन से दूर करने की चेष्टा करते हैं किन्तु कृतकार्य नहीं होते, इसी से उदास होकर झरोखे से कुछ देखते हैं कुछ देर पर मन्त्री को वहीं बुला भेजा। मन्त्री के आने पर महाराज बोले "युद्ध के कुछ पहिलेही हमलोगों को स्थानेश्वर चलना उचित है, और एकही सप्ताह में मैं सेना के सहित वहा जाने की इच्छा करता हूं। छावनी स्थापन करने के लिये लोगों को तुम वहां भेजो। वहीं चल कर युद्ध के लिये हमलोग तय्यार होवेंगे। पीड़िता राजकुमारी को लेकर महिषी भी हमलोगों के संग चलेगी।" उषावती को बीमार जानकर पृथ्वीराज ने इस युद्ध के समय उन लोगों को स्थानेश्वर ले जाने में पहिले अनिच्छा प्रकाश की थी। किन्तु फिर महिषी की कातरोक्ति से उनको सम्मति हो गयी थी। महारानी ने कन्या के निमित्त कहा कि एक तो

वह अत्यन्त दुःखी है, और इस समय महाराज उसको यहां छोड़कर जायगे, तो आप की अमंगल भावना से उसका हृदय और भी व्यथित होगा, महाराज के सग संग रहने से एक मात्र निश्चिन्त रह सकेगी। पालकी में धीरे २ ले जाने से उषावती को भी विशेष हानि की सम्भावना नहीं है, वरन स्थान के बदलने से उस का उपकार भी हो सकता है। महिषी की इस प्रकार की बातों से पृथ्वीराज अन्त में सम्मत हुये।

पृथ्वीराजने फिर पूछा "चन्द्रपति के उद्धार के निमित्त क्या उपाय किया गया ? तुम लोगों ने उनके निमित्त मुझको चिन्ता करने को निषेध किया था. अबतक इसी कारण मैं चुप था ; किन्तु अब भी जब उनका कोई सम्वाद नहीं मिला तो निश्चयही वे बन्दी हुये हैं। शीघ्रही उनके उद्धार के लिये अब कोई उपाय स्थिर करो। इस बार चारो ओर अमङ्गलही के लक्षण देख पड़ते हैं, उषावती पीड़ित है, उसकी बँचने की आशा नहीं है, सेनापति अखिलसिंह चारपाई सेवन कर रहे हैं, चन्द्रपति को देखा नहो, कि वे बँचे कि मरे, इसका निश्चयही क्या है? अबकी युद्ध में भी निरुत्साह है। उषावती की बिमारी से किसी को भी सुख नहीं है। मैं भी यदि ऐसे समय कुछ उत्साहभङ्ग होऊँ, तो क्या होगा ? मनमें क्लेश रहने पर पर भी प्रगट करना

उचित नहीं है। हम क्षत्री ठहरे, निस्तेजता हम लोगों के निकट पाप है, शोकताप से व्याकुल होना हम लोगों के लिये अकर्तव्य है। सैन्यगण को एकत्र करो, मैं इस समय सेना का साज देखने चलूंगा। पृथ्वीराज की आज्ञानुसार कार्य्य करने के लिये मन्त्री चले गये।

इधर किरणसिंह ने चन्द्रपति के उद्धार का भार स्वयं ले सबसे विदा होकर उसी दिन दिल्ली छोड़ दिया। कल्याण, भाई को विदा करके यह सोचने लगे कि अब मेरे मरने में कोई बाधा है कि नहीं? पिता और चितौर के निमित्त जो उन्हे बड़ा सोच था किरण को चितौर भेजने से उस चिन्ता से अब वे छुट्टी पा गये। किन्तु एक और चिन्ता उनके मन में उपजी। वह यह कि उन्होंने गुलाब से कहा था कि "यदि तू राजकन्या को विजय की अनुरागिणी होने का प्रमाण दे सकेगी तो हम तेरा कुछ उपकार करेंगे"। सो वह तो प्रमाण दे चुकी, अब मैं किस प्रकार से उसका उपकार करूं? एक बार वाक्यदान किया है, उसका पालन न करने से क्षत्री के अयोग्य कार्य्य करना हो जायगा, क्षत्री के मुख से निकली हुई बात मिथ्या हो जायगी, इसको हम किस प्रकार सहन करेंगे? किन्तु फिर किस भांति उसका उपकार करूं? विजय के संग यदि गुलाब का विवाह करा सकते, तो उसका यथार्थ उपकार

करना कहा जाता। किन्तु विजय उसके प्रति अनुरागी नहीं है, उससे विवाह क्यों करेगा ? और यदि करना भी चाहे, तो हम उसको किस प्रकार देंगे। विजय को दुष्ट जान कल्याण उससे अत्यन्त घृणा करते थे, विजयही ने चातुरीपूर्व्वक राजकन्या को दुश्चरित्रा बनाया है यह समझ कर वे उसके ऊपर अतिशय क्रुद्ध हुये थे। जिसको दुष्ट जाना, जिसको शत्रु समझा, जिसको दण्ड देने की इच्छा करते हैं, उसके संग वे गुलाब का किस प्रकार विवाह करावेंगे ? विजय के संग किसी कारण से एक दिन के लिये भी मित्रभाव से एकत्र होने में उनको निज अपमान बोध होने लगा। गुलाब के उपकार करने का कोई उपाय न मिलने से वे अतिशय चिन्तित हुये। इसी समय गुलाब रोती हुई उनके निकट आ उपस्थित हुई। राजकन्या की मृत्यु अवस्था देख, और अपने को उसका कारण समझ, गुलाब अपने चित्त में अत्यन्त कष्ट पाती थी। अपने ही को उनकी हत्याकारणी समझ कर उसका हृदय विदीर्ण होता था। राजकन्या से सब बात प्रगट करने में कुयातना की कुछ कमी होती, परन्तु वह तो इस समय ज्ञानशून्य है, यह बात कैसे होगी? पहिले कल्याण के निकट अपना दोष स्वीकार करना स्थिर करके गुलाब यहीं चली आई। यहां आकर कल्याण का चरण पकड़ बोली "मैंने जो अपराध किया है वह क्षमा

कीजिये।" राजकुमार अकस्मात् गुलाव के मुंह से यह सुन-कार आश्चर्य्य से बोले "तुमने मेरा क्या अपराध किया है?

गुलाब—'मैंने क्या किया है पूछते हो, मैंने मिथ्या बोल कर चिरकाल के लिये आप लोगों का सुख हरण किया। राजकुमार बोले 'तुम मेरा सुख हरण कह कर आज चमा चाहती हो, परन्तु उससे मै तुमारे प्रति असन्तुष्ट नहीं हूं। मै अमृत के धोखे विष खाने जाता था, तुमने उसे दिखा दिया। यद्यपि उसके अमृत न होने से मै निराश सागर में उभचुभ हो रहा हूं, तथापि बिषपान से मै बचगया इस-लिये तुमको धन्यबाद देता हूं। तुमको मैं क्या चमा करूंगा, बर मै हो तुम से चमाप्रार्थी हूं, क्योंकि तुमारी बातों पर पहिले मैंने विश्वास नहीं किया था।"

गुलाब—"आप अब फिर मेरी बातों पर अविश्वास करके मेरे दग्ध हृदय को कष्ट मत दीजिये। मैं यथार्थही अपराधिनी हूं, मैं अपने सुख के निमित्त ऐसे नीच कार्य्य करने में प्रवृत्त हुई थी। जिस सुख के लिये मैने यह कार्य किया, वह सुख अब कहां है? यातना से हृदय भस्म हुआ है। जैसे मैंने आपलोगों को जन्मभर के लिये दुखी किया, उसी के संग मैं भी फिर कभी सुखी नहीं हो सकती।" इतना कहकर जिस निमित्त वह वैसे कार्य में प्रवृत्त हुई थी, सो आद्योपान्त सब कह गई। यह सब वृत्तान्त सुनकर कल्याण विचलित हुये, किन्तु सम्पूर्ण विश्वास नहीं हुआ।

इसके पहिले जो विश्वास इतनी देर तक हृदय में दृढ़मूल हुआ है, जो विश्वास इतने कष्ट का कारण हुआ है जो क्षण २ जीवन को असह्य कर रहा है वही विश्वास गुलाब की इन बातों से तुरन्त कैसे दूर हो सकता है? वे बोले "गुलाब! मैं बालक नहीं हूं। तुम जिससे सीखकर यह कहती हो, उसे मैं बूझता हूं—तथा—फिर—क्यों—" गुलाब कातरचित्त हो बोल उठी, "युवराज! क्षमा करो, वह विश्वास चित्त से दूर करो। राजकन्या इसको कुछ भी नहीं जानती वह सपूर्ण निर्दोष है। यदि मेरी बात का आप विश्वास न करेंगे, तो कैसे करेंगे—कैसे फिर इस पापिनी के बातों का विश्वास कीजियेगा—युवराज। अब मै अपनी बातों पर विश्वास करने को नहीं कहती—इन पत्रों को देखिये, इसीसे आप सब समझ जाइयेगा।" इतना कह कर युवराज के हाथ में गुलाब ने कईएक पत्र दिये। वे सब विजय के पत्र थे, विजय न उनमें जो गुलाब को लिखा था। उनको कल्याण न पढ़ा—

प्राणाधिके गुलाब।

सुना है कि आज युवराज कल्याण राजकन्या के निकट जावेंगे। यदि यह सत्य हो, तो तुम मुझ को कहला भेजो, और गुप्त द्वार खोल रक्खो, मै भी वहा एक वेर जाऊंगा। मुझे राजकन्या के घरपर देखे बिना और किसी प्रकार युवराज के मन में सन्देह न उपजैगा।

गुलाब। मै आशापूर्णा देवी के निकट प्रार्थना करता हूं और तुम भी करो जिसमें वह हमलोगों का यह मनोरथ पूर्ण करे। जिस से इसी बार राजपुत्र के हृदय में क्रोध की आग बल उठे, आज से जिसमें उन लोगों में सर्व्वदा के लिये वियोग हो जावे राजकन्या ने जैसे मुझे प्रणय से निराश कर उन से प्रेम लगाया है, वह भी जन्म भर के लिये उनका मुख देखने से निराश हो। इसके होनेही से, गुलाब, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी, और तब मैं तुमको पाकर सुखी हो सकूगा।"

तुमारा चरणाश्रित विजयसिंह।

कल्याण ने जितने पत्र पढ़े, सब में यही समाचार। पढ़ते पढ़ते उनका शरीर रोमांचित हो गया, विजय की धूर्त्तता समझ गये। किन्तु तौ भी—इतने कष्ट पर भी इस सुखजनक बात का विश्वास भली भाति उनको न हुआ। सब उनको स्वप्नवत् बोध होने लगा। उनका शरीर जैसे शून्य हो गया, ज्ञान हाथ से जाता रहा।

गुलाब बोली—"युवराज"। कल्याण तुर्त्त चिहुंक पड़े, उनका सोच भंग हो गया, वे सोचते थे—"कि यह क्या बात है? क्या सचमुच उषावती निर्दोष है? तो क्या मैं राजकन्या के निकट अपराधी हू? अपनी उषा को क्या फिर मैं अपनी कह सकूंगा"। वे हर्ष से गद्गद होकर बोले 'गु-

लाव। क्या सत्यही देवता लोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं ? क्या सचमुच मेरी उषा निर्दोषी है ? अथवा मैं यह स्वप्न देख रहा हूं ?"

गुलाब—'युवराज। सन्देह दूर करो, सब आपका क्लेश मुझ से नहीं देखा जाता"।

युवराज इस बार हर्षपूर्व्वक बोले "तो बिना दोष के जो मैंने अविश्वास किया था अतएव उषावती के निकट मैं दोषी हूं। मैं अभी जाकर उनका पादपद्म ग्रहण करके क्षमा प्रार्थना करूंगा, वह ऐसी कोमलप्रकृति हैं कि अवश्य मुझे क्षमा करेंगी। तुमने अपराध तो किया था, किन्तु आत्मदोष स्वीकार कर लिया इससे उसका प्रायश्चित हो गया, मैं तुम को क्षमा करता हूं। इसके पहिले जैसे तुमारी बात से मैंने कष्ट पाया था आज वैसही सुखी हुआ"।

गुलाब दीर्घनिश्वास त्याग कर बोली "आपकी बातों से प्रतीत होता है कि राजकन्या जैसी पीड़ा में है उसको आप नहीं जानते, कल जब आप उनके निकट से आये उसी क्षण से वह अचेत हैं। आप उनके निकट अपराध स्वीकार करके उनको सुखी नहीं कर सकेंगे। भग्नहृदय हो वह स्वर्ग मे जावेंगी,ऐसाही जान पड़ता है। हाय। आप लोग यदि फिर सुखी हो सकते, तो अभी मुझको भी सुख की आशा रहती"। कल्याण के चले आने पर'जो जो हुआ

था, उस समय गुलाब ने सब कह दिया। राजकन्या के सांघातिक पीड़ा की बात सुनने से कल्याण अतिशय कष्ट पावेगी, इसी भय से पृथ्वीराज, समरसिंह और किरण इन सब लोगों ने कल्याण से इस बात को छिपा रक्खा था। गुलाब के कहने से पहिले इसी कारण कल्याण को इसका पता न लगा था। कहते कहते कष्ट से गुलाब का मुख मलिन हो गया, आखों से चिनगारी छूटने लगीं, भौं टढ़े होगये वह विच्छिप्त सी हो गयी। क्रमशः बोली 'राजकुमारी हैं तो जीवित किन्तु बचेगी नहीं—हाय, हाय। फिर उनका हन्ता कौन है?" छाती पर हाथ मार कर बोली "यही पापिनी" यह कहकर वह वेग से चली गयी।

राजकुमार बज्राहत से हो कर वहीं बैठ गये।

बीसवां परिच्छेद।

एक ओर दुर्ग दूसरी ओर दिल्ली का राजमहल, उसके सम्मुख एक बहुत बड़ा मैदान है, मैदान की सीमा पर आकाशभेदी यमुनास्तम्भ है वहीं पर सेना के असंख्य लोग एकट्ठे होकर आज आशा को दृढ़ता दे रहे हैं। सहस्र २ चन्द्रीयसैन्य, अटल, गम्भीर और उत्सुक भाव से उसी बड़े मैदान में खड़े हैं; सेना की भीड़ से मैदान भर गया है। राजपूतों के नियमानुसार वे लोग युद्धयात्रा के पहिले देवी

अन्नपूर्णा की पूजा समाप्त कर आये हैं और स्थानेश्वर की यात्रा करने के लिये तय्यारी करते हैं। पूजा का चिन्ह यह है कि सबके कण्ठ में लाल लाल फूलों की बडी २ माला लटकी हुई और कपाल में रक्त चन्दन का त्रिपुण्ड शोभायमान है, आज सहस्रों नंगी तलवारें चमक रही हैं और सहस्रों सानधरे तीर रक्तपान करने के लिये ललक रहे है। योद्धा लोगो के शिरस्त्राण, (१) लोहे के कवच, बर्छों के नोक, और नंगी तलवारों से तरुण सूर्य्य की स्थिर किरण स्वच्छ होकर ऐसी चमक रही है कि आखे नहीं ठहरतीं, चकचौंध सी जान पडती है। वह लम्बा चौडा और गम्भीर मैदान देखकर कायरो के शरीर का रुधिर सूख जाता है, शरीर रोमाचित हो उठता है, बीच बीच में घोडे चंचल भाव से खुर द्वारा पृथिवी खोद रहे हैं, और हिनहिनाने से द्विगुणित कोलाहल कर रहे हैं। मैदान का वह गम्भीर भाव देखने से प्रचण्ड आधी आने की सम्भावना होती है, मानो क्षण वा आध क्षण मे वह आधी प्रवाहित होकर पृथिवी को रसातल भेज देगी, प्रचण्ड पर्वत शृङ्ग मानों गिरा चाहता है, अभी गिर कर भोड भाड को मानो बन्द किया चाहता है।

चार श्रेणी में सेना स्थापित हुई है, पहिली और दू-

(१) योद्धाओं का टोप।

सरी श्रेणी में प्रति श्रेणी १८००० योद्धा है, ये दोनों दल पृथ्वीराज और समरसिंह के अधीन है, तीसरी श्रेणी में १२००० योद्धा, और यह कल्याणसिंह के अधीन है, चौथी श्रेणी में १००००, इसके सेनानायक विजयसिंह है। प्रत्येक श्रेणी फिर दो दल में बटी है, घोड़े के सवार और पैदल। सेना के सवारों के पीठ पर ढाल, हाथ में बर्छा और कमर बन्द में कृपाण लटक रहा है। पैदल सेना भी दो प्रकार की है, तलवार तो दोनों दल के कमर में है किन्तु एक दल के हाथ मे बर्छा है, और दूसरे दल के हाथ में धनुष बाण है। इसी प्रकार सेना के लोग सज्जित और अलग २ होकर खड़े है, महल के दूसरे ओर अनगिनित हाथी ऊंट लदुये बैल, पालकी, गाड़ी, खाने की वस्तु और अस्त्र से भरी हुई गाड़िया और उनके साथी रक्षकदल है, तोप (भशुण्डी) और तोपवालो स गाड़िया सज्जित है। राजधानी में बहुत कम लोग रह गये है, प्रायः सभी नगरनिवासी मैदान के चारो ओर खड़े होकर और भी अधिक भीड़ बढ़ा रहे है, अवशिष्ट मनुष्यगण कोई कोठे से कोई यमुना स्तम्भ से कोई राजभवन के ऊपर से, एकत्रित होकर सैन्य समागम देख रहे हैं। सहसा घोड़ो के दौडने की टाप सुनाई देने लगी, भीड़ फट गयी, 'जय पृथ्वीराज की जय' 'जय समरसिंह की जय' सब लोग कहने लगे। चारों ओर

के मनुष्यों की भीड में से जय जय का शब्द होने लगा, और वह जयध्वनि राजमहल के शिखर में और सिखर से होकर यमुनास्तम्भ में, यमुनास्तम्भ से नभमण्डल में और नभमण्डल से दिगन्त को मथन करके प्रतिध्वनित होने लगी। इसी जयध्वनि के मध्य से चार मनुष्य सेनापति वर्म्म (१) पहिने हुये घोडे पर सवार पूर्णवेग से आकर तुरन्त चारो श्रेणी के सम्मुख खडे होगये, युद्ध का बाजा बजने लगा, सैन्यगण और घोडों और नगर निवासियो का हृदय नाच उठा, उत्साहतरङ्ग में मानो समस्त मैदान उमँगने लगा।

मध्य श्रेणी के सम्मुख जो घोडे के सवार सेनापति खडे हैं, उनके मस्तक पर हीराजडित मुकुट है, कान में मुक्तामय सोने का कुण्डल, दोनो भुजा में वीरो का वलय (कडा) और समस्त शरीर लोहे के वर्म्म से ढका हुआ है। उनकी पीठ पर ढाल और तीरो से भरा हुआ तर्कस, कटि में सान चढ़ी हुई तरवार, एक हाथ मे वर्छा और दूसरे हाथ में घोडे की बाग है, देखने से जान पडता है कि मानो कुमार स्वामिकार्त्तिक ने आज असुरसमर मे वीरवेश धारण किया है, उनके सघन कृष्णवर्ण दोनो भौं के नीचे दोनों नेत्रों से आग की चिनगारी उड़ रही है, उनकी तेजोमय मुखश्री से मध्यान्ह सूर्य्य की भांति वीरदर्प प्रकाश होता

(१) लोहे का कुर्त्ती।

है, वे एक एक बार एक एक सैन्यश्रेणी के प्रति दृष्टिपात करते हैं, और एक एक कटाक्ष में उनलोगों के उत्साहाग्नि को प्रज्वलित कर देते है। उनका घोडा भी सवार का आन्तरिक उत्साह अनुमान कर चपलभाव से हिनहिनाने को सामा लांघने को चेष्टा करता है—ऐसा योद्धा पुरुष पृथ्वीराज है। अपनी पीडिता कन्या के निमित्त उन्हें अब वह शोकभाव नहीं है, इस समय यवनविजय के हेतु एक मात्र शूरताही का भाव उनमें दीख पड़ता है। पृथ्वीराज के दाहिनी ओर समरसिंह हैं, इनके ऊचे ललाट पर चिन्ता का चिन्ह देख पडता है इनकी दृष्टि स्थिर और हृदयभेदी है, यह दृष्टि प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण को उत्साहित करती है, हृदय को विवश कर देती है, इनके प्रत्येक कटाक्ष में मानों एक एक गुप्त आज्ञा का प्रचार होता है और उस कटाक्ष मे ऐसी मोहनी शक्ति है कि सभी को अपनी आज्ञा के अधीन कर लेती है। इनका रणवेश सामान्य है, सिर पर शिरस्त्राण, शरीर बर्म्म से ढका हुआ, किन्तु कान में कुण्डल नहीं है, दोनो भुजाओं पर वीरवलय (कडा) भी नहीं है, केवल एक हाथ में एक सानधरी तरवार बिजली की भांति चमक रही है और दूसरे हाथ में वे ढाल और घोडे की बाग पकड़े है, उनकी किंचित् पकी हुई लम्बी दाडी वायु से हिल रही है और बड़ी बडी जटा शिरस्त्राण

से निकल कर कन्धे को ढांके हुये है। योगीभाव और वीर भाव मिश्रित होने से उनके मुखमण्डल से एक अपूर्व्व शान्ति की झलक विकाश हो रही है मानों ब्रह्मतेज और चत्रीतेज एकत्र मिल गया है। उनका महान और गम्भीर, दृढ़ और अटल भाव देखने से वे मानो हिमाचलदेव बोध होते हैं। पृथ्वीराज के बायें ओर युवराज कल्याण पृथ्वीराज ही की भांति रण साज से सज्जित होकर एकटक अपने अधीनस्थ सैन्यश्रेणी को देख रहे हैं। उनके मुख का भाव चण चण बदलता जाता है। धधकती हुई आग में आहुति डालने से जिस प्रकार वह चणकाल के लिये बुझकर फिर द्विगुण प्रभाव से बल उठती है, वैसी उसी भांति कभी विषाद से मलिन, फिर चणही में वीररस के आइनेदार तसबीर की भांति चमकने लगते हैं। उनका सघन काला केश जाल कंधे पर फैल रहा है, उससे उनके मुख पर उन दोनो भावों की गुरुता बढ़ती जाती है। चौथी श्रेणी के सैन्याध्यच विजयसिंह हैं। ऐसा कौन सूक्ष्मदर्शी है जो उनके हृदयद्वार को खोल कर उनके अन्त:करण के छिपे हुये भावों को समझ सके? उनकी वह अन्धकारमय भृकुटी, वह विषम घृणासूचक किंचित हास्य से टेढा ओष्ठाधर, वह कठिनाई भाव से पूर्ण मुखमण्डल, देखने से किसके मन में नहीं आता कि वह किसी भयानक कार्य्य

करने का संकल्प किये हैं। किन्तु वह भयानक कार्य्य क्या है? इसके समझाने की सामर्थ किसी में नहीं है; सब यही समझते हैं कि यवनों के नाश करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करने से आज उनकी मूर्त्ति ने इस प्रकार से भयानक भाव धारण किया है।

ये चारों सेनापति चारों श्रेणी के संमुख आ खड़े हुये। पृथ्वीराज ने कोई संकेत किया, कि जिससे तुरन्त चारों ओर सन्नाटा हो गया, कोलाहल, जयध्वनि, रणवाद्य सभी बन्द हो गये। पृथ्वीराज उसी सन्नाटे में सैनिकगण और सु-ननेवालों का हृदय कँपाते हुये कहने लगे—"सैनिकगण। क्षत्रियवीरगण। जो यवन लोक दृशद्वती नदी के तीर गत-वर्ष हमलोगों के क्षत्रीय वीर्य्य का तेज – हमलोगों के क्ष-त्रीय खड्ग की तीक्ष्णता को अनुमान कर गये, जो लोग उस भयानक पराजय के कलङ्क से आज लों कलंकित हैं, जिनलोगों के सेनापति इसी महम्मद गोरी को हमलोग दो दो बार बन्दी कर लाये और केवल क्षत्रीक्षमागुण से जिसको विना किसी हानि के देश पर लौट जाने दिया, वेही दुरात्मा यवनगण फिर म्लेच्छ पदस्पर्श से हमलोगों की आर्य्य भूमि को कलंकित करने आये हैं। सैन्यगण। यदि तुमलोग आर्य्य नाम का गौरव रखना चाहो यदि क्षत्रिय नाम के उपयुक्त होना चाहो, यदि यवनपददलित होने की

वासना न हो, यदि तुम लोगों को प्राणतुल्य स्त्री पुत्र कन्या इत्यादि की निठुर यवनपीडन से रक्षा करने की इच्छा हो, यदि हिन्दू धर्म्म के प्रति, हिन्दू मन्दिरों के प्रति तुम लोगों की किंचित्मात्र भी श्रद्धा हो, यदि देवी आशापूर्णा की आशा पूर्ण करना तुमलोगों का गौरव बोध कराता हो— तो अब विलम्ब मत करो, पाखण्डियों को ऐसा दण्ड दो कि जिससे वे सब सिन्धु नदी लांघने के फिर कभी साहसी न हों। क्या तुम लोगों में कोई है ?—" पृथ्वीराज की बात फिर न सुन पड़ी— तुरन्त चारों ओर भारी धूम मच गई, सेनागण के उत्साहध्वनि से, अस्त्र के झन झन शब्दों से घोड़ों के हिनहिनाने से, भीड़ के 'जय जय' शब्द से पृथ्वीराज की बात दब गयी। कोलाहल के कुछ शान्त होने पर पृथ्वी-राज फिर बोले—"क्या तुम लोगों में कोई ऐसा कायर है, कोई ऐसा क्षत्रीय अनार्य्य है, कि जिसे आज उत्तेजना के वाक्यों से उत्तेजित करना होगा ? यवनों का पराजयही जब तुमलोगों का उद्देश्य है, देशरक्षाही जब तुमलोगों का व्रत है, वीरचूड़ामणि समरसिंहही जब तुमलोगों के सहा-यक हैं, तो तुम लोगों के शरीर में जो रुधिर का स्रोत प्र-वाहित होता है, उसका एक एक बुन्दही उस उत्तेजना को उत्साहित करेगा। सेनागण ! उसी वीरतेज, उसी क्षत्रीय-प्रताप, उसी शत्रुविजयी बल से आओ हमलोग आज यवन-

कि शैलबाला का ओठधर मृदुहास्य से किंचित् खुलजाता है, शैलबाला कोई सुख स्वप्न देखती है। प्रभावती ने धीरे से उस हास्यविकसित ओष्ठाधर का चुम्बन किया, प्रभावती के कमलनयन से दो एक बुन्द आंसू शैलबाला के प्रफुल्ल कपोल पर गिर पडे। धीरे धीरे उनको पोंछ कर प्रभावती ने फिर शयन किया। अपने मन में कहा कि 'बालिके। तूही सुखी है।"

सोचते सोचते पिछले पहर प्रभावती को एक आलस्य की झपकी सी आई। थोडीही देर पर एक भयानक कुस्वप्न देखकर चिहुँक उठी। उनकी नींद खुल गई। देखा कि भोर हो गया है। शैलबाला को निकट में न देखा, अकेली सोई सोई रोने लगीं। किंचित् शान्त होने पर शय्या छोड कर खिडकी के सम्मुख खड़ी हुई। देखा कि, शैलबाला नदी के तीर बैठकर प्रभात पवन से लहराती हुई मानस नदी की तरङ्गलीला देख रही है। वह भी गृह छोड़ कर उद्यान की ओर चली। नदी के निकट आने पर अकस्मात् सुमधुर वीणाध्वनि ने उसके कान में प्रवेश किया। वह ठमककर वहीं खडी हो गई। विदित हुआ, कि शैलबाला की कण्ठध्वनि से उन्हें वीणा के झन्कार का भ्रम हुआ था। वह आगे न बढ़ीं और स्थिर चित्त से शैलबाला की सुमधुर गीत सुनने लगीं, सुना—

भैरवी ।

यमुना तलफत बीती रैन ॥
श्यामसुंदर के दरस बिना ये तरसि रहे दोउ नैन ।
त्रिविधि समीर तीर सम लागत विष सम कोकिल बैन ॥
दिवस गिनत रसना अकुलानी रैन परत नहि चैन ।
औसर पाय जानि अबलागण अधिक सतावत मैन ॥
अब कब धौ अइहो मनमोहन विरहिन को सुख दैन ।
उदित कहत न बनत कछु मोसन मौनहु रहत बनै न ॥

प्रभावती का हृदय गाना सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। गाना शेष होने पर वह धीरे २ शैलबाला के पास आई। उनको देखकर शैलबाला बोली यह क्या। तुमारा मुख मभरा क्यों है ? क्या रात दिन मुख मलीन किये रहोगी?"

प्रभावती ने कहा "आज भोरही के पहर मैंने एक भयानक स्वप्न देखा है, क्या कहूं मन व्याकुल हो गया है। अब एक दण्ड भी यहा ठहरने की इच्छा नहीं होती"। शैलबाला ने कहा तुमारा भाव रात दिन जैसा रहता है, वैसाही स्वप्न भी देखती हो इसमें क्या आश्चर्य ?"

प्रभा०—तुम अभीतक यथार्थ प्रेम का स्वाद नहीं जानतीं। जब जानोगी, तब ऐसा न कहोगी। जब से वे यवन शिविर में गये है, तब से कोई सम्वाद न मिला अब उनके बन्दी होने में क्या आश्चर्य है ? मुझ को बोध होता है कि

ऐसाही हुआ है, यदि ऐसा न होता तो आज तक एक पत्र भी तो लिखते, और वे दिल्ली भी नहीं गये, वहां जाते तो भी मुझ को सम्वाद मिलता। गुलाब लिखती है कि वे दिल्ली नहीं आये। दिल्ली गये नही, मुझ को भी कोई पत्र लिखा नहीं, तो क्या इतने पर भी मुझ को शङ्का होने का कोई कारण नहीं है ?"

शैल०—"हा। रोते २ तुमारे दोनों नेत्र फूल गये है। तुम हँसो चाहो रोओ, सभी समय तुम भली दीख पडती हो। तुम इस समय रोती हो, तौभी अच्छी जान पडती हो, जैसे कमल के फूल पर ओस के कण पड़े हुये हैं—

अँसुआजल तुव वदन पै मन मेरो हरि लेत।
मानो मुक्ताजटित ह्वै कनककमल छबि देत।

कविचन्द्र के भाग्य मे न था, इसी से उन्होंने ऐसी शोभा न देख पायी।

प्रभावती क्रुद्ध होकर बोली "तुम से अब मै कदापि न बोलूंगी। भला यह तो कहो कि दुःख के समय भी कोई ठट्ठा करता है ?"

शैल०—"क्रोध हो गया ? अच्छा तो चलो, हमलोग कमर बाँधकर यवन-शिविर से तुमारे प्राणनाथ का उद्धार कर लावें"।

प्रभा०—"तुम हँसी करती हो, किन्तु मेरी सत्यही सत्य यह इच्छा होती है"।

शैल०—हँसी नहीं, मैं भी सत्यही कहती हूं"

प्रभा०—तुम अब मुझको जलाओ मत, एक तो मैं आपही कष्ट मे मरती हूं, कहां तुम ढाढ़स देतीं, मिलाप का यत्न करतीं, सो तो किनारे रहै और अधिक कष्ट देती हो"।

शैलबाला प्रभावती को प्यार करती थी। चन्द्रपति का सम्वाद न पाने से उनको चिन्ता थी किन्तु इस विचार से कि दिखाने से प्रभावती को और अधिक कष्ट होगा, अपना भाव प्रगट नहीं करती थी, किन्तु आज उनके दुःख के समय हँसी करके उनको अधिक कष्ट दिया है इस कारण इस बार गंभीरभाव से बोली "तुम यह मत समझो कि मैं हँसी करती हूं, मैं सत्य सत्य यहा से चलने को कहती हूं, हास्य नही है, परन्तु तुम यदि मेरा उपदेश मानो, तो यवनशिविर को मत चलो, पहिले दिल्ली चलो"।

प्रभा०—"वहां तो वे नहीं है, वहा चल कर क्या करोगी?

शैल०—"वे यदि सत्यही बन्दी हुये हों तो वहा नहीं जाने से उनका उद्धार न कर सकूँगा।"

प्रभा—"दिल्ली जाकर किस प्रकार से उनका उद्धार करोगी? सो तो मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता।

शैल—"अब यवनशिविर से उनका उद्धार करना हमलोगों को असाध्य है, क्योंकि हमलोग इसको कुछ नहीं जानतीं, कि वे कहा और किस अवस्था में हैं। यहा जाने

से हमलोग भी पकड़ी जावेंगी। इसकी अपेक्षा तो यही उत्तम होगा, कि दिल्ली चलकर महाराज के निकट से कुछ निपुण वीरों का संग्रह कर रक्खें, और जिस दिन दोनों पक्ष में युद्ध आरम्भ होगा, उस दिन यवनशिविर में बहुत कम सेना रहेगी, उसी दिन हमलोग किसी उपाय से उनका उद्धार करलेंगी।"

प्रभावती शैलबाला के इस प्रस्ताव पर सम्मत हुई। दूसरे दिन केवल एक भृत्य संग लेकर उन दोनों ने अजमेर का त्याग किया। "अनाथ" नामक उनका वह पुराना बूढ़ा भृत्य बीमार था इस कारण उसको साथ न लिया। इस समय सम्मुख युद्ध उपस्थित है, मुसलमान लोग भारतवर्ष में आये है, इस समय स्त्री-भेष में चलने से कदाचित् कोई विपद् उपस्थित हो इसी शंका से उन दोनों ने पुरुषभेष धारण किया। मनमोहिनी अंगिया और स्वर्णमयवस्त्र उतार कर उन दोनो ने अपने अपने कोमल अग में पुरुष का पहिरावा धारण किया। रगीन ओढनी को अवसर पर स्थान नही मिलता है, लम्बे बालों पर पगड़ा बाँध ली। एक एक करके सब आभरण उतार कर कमर मे तलवार बाध ली, जो उनके अलङ्कार की जगह पर शोभा देने लगी। अब वह शैलबाला, और वह प्रभावती न रही। उन दोनो ने थोड़ी अवस्था के बालक का वेष धारण किया। परस्पर देख

कर आश्चर्यमय हुई । शैलबाला बोली "तुम तो भाई सच-मुच पुरुष होगयी हो, अब चिन्हाई नहीं पडती, एक बार आरसी लेकर अपना श्रीमुख देख लो ता चलें ।

प्रभा—"तुम देखो । मुझ को इस समय इन सब बातो की साध नहीं है "

शैल—मैं तो देखूंहीगी, परन्तु तुमको भी देखनाही पडेगा ।

शैलबाला उनका हाथ पाकड कर आइने के निकट ले आई, और बोली 'पुरुष के साज से तुमको सचमुच मैं पुरुष मालूम होती हूं तो यदि पथ में कोई अत्याचार करने आवेगा, तो मैं तुमारी रक्षा करूँगी ।" शैलबाला ने कमर से तलवार हाथ में लेकर एक पद आगे करदिया और धीरे धीरे उसको घुमाने लगी । उसको परछाही आइने में पडने लगी । रणसाज से सज्जित होकर शैलबाला अपने को आपही देखने लगी । मानों अपने रूप पर आपही मोहित होगई । मृदु मृदु हँसी के साथ बोली "तो देखो कि पथ में कैसी तुमारी रक्षा करुगी । इसी अवस्था में यदि दिलीप मुझको देखें, तो क्या वे पहिचान सकते हैं ?"

प्रभा—"क्यों, यह वेष दिलीप को दिखाने की इच्छा होती है क्या ? शैलबाला हँस कर आईने के निकट से हट गयी ।

सब लोग जिस पथ से दिल्ली जाते हैं, उस पथ को छोड़ कर दोनों गुप्तभाव से, पर्वत के पथ से होकर घोड़े पर सवार होकर दिल्ली को चलीं। स्त्रियों को घोड़े की पीठ पर सवार हो चलना सुनकर हमारे पाठक आश्चर्य न करें, क्योंकि हमलोग जिस समय की बात लिखते हैं, उस समय स्त्रियों को, घोड़े पर सवार होने की रीति निन्दनीय न थी इसका अनेक प्रमाण पाया जाता है। यह रीति यवनों के अधिकार होने पर उठगई है इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि महाराष्ट्र इत्यादि देशों में जो यवनों के हाथ नहीं पड़े, अब भी स्त्रिया घोड़े की सवारी करती देखी जाती हैं।

जिस दिन वे दोनों अजमेर से बाहर हुईं उसके पांचवें दिन सन्ध्या समय दिल्ली के इतने निकट आ पहुंची, कि दिल्ली केवल दो घण्टे की राह रह गई। किन्तु वे उस समय और न चलीं, विश्राम के लिये क्षणकाल के निमित्त उसी पर्वत पर रहने की इच्छा करके, नौकर को कुछ भोजन की वस्तु लाने के लिये नीचे के एक गांव में भेजदिया। उस समय सन्ध्या का पहिला पहर था। चन्द्रमा की किरण से पृथ्वी उज्ज्वल हो रही थी। चादनी की ज्योति से चमकते हुये झरने का पानी पर्वत से वेग के साथ नीचे पथरीली जमीन पर गिर कर मानों मोतियों का थाल उछाल रहा था। उस जल के गिरने के मधुर स्वर से सुननेवालों के

कान से अमृत की वर्षा होने लगी। शैलबाला और प्रभावती वहीं सुखभोग करती रहीं। पर्वत की शोभा देख कर शैलबाला का हृदय नये आमोद से पूर्ण हुआ। उसने जी खोल कर गाना आरम्भ किया। गाने के पहिले प्रभावती की ओर देख मन्द मन्द हँसती हुई बोली "तुमारेही मन के अनुसार गाती हूं, जिससे तुमारी उदासी जाती रहे।

गीत।

यमुना तुम कस बहत मुकुन्द। विलसति लहरति तरल तरङ्गनि राखि हिये मैं चन्द। धिक तोहि अक मेलिबो चन्दहिं जौ नहि ढिग ब्रजचन्द। चम्पकलता रही मुरझानी कोकिल की रट बन्द। ब्रजबनिता सब भईं बावरी परि वियोग के फन्द। तनिक ताप नहि उदित भयो तोहिँ बिछुरन मैं नँदनन्द।

गाना समाप्त न हुआ था कि अकस्मात् पश्चिम दिशा से कुछ मेघों ने आकर चन्द्रमा को छिपा लिया और क्रमशः उन से आकाश छा गया। पृथ्वी अन्धकारमय हो गयी, बिजुली तड़पने लगी, अन्धकार छिन छिन बढ़ने लगा, वायु के बन्द होने से वृक्षों की मरमराहट बन्द हो गई। आकाश मेघों से छिप गया, घोर वर्षा के लक्षण दिखाई देने लगे। वे दोनों स्त्रियां इस असहाय अवस्था में वर्षा का भयानक लक्षण देखकर डर गईं, क्रमशः वेग से वायु का बहना प्रारम्भ हुआ। तब वे किसी आश्रय पाने के लिये व्याकुल हुईं।

एक बेर बिजुली की चमकाने से पर्वत मे एक गुफा देख पड़ी वे उसी गुफा में गईं, तब शैलबाला बोली "हम दोनों के पुरुष भेषधारण करने में अन्याय हुआ है। भला जब वर्षा देखकर स्त्री-स्वभाव प्रगट हो गया, साहस जाता रहा, तो फिर पुरुष वेशधारणकरने का क्या फल हुआ ?" प्रभावती बोली 'इस समय अपना साहस दिखाने का काम नहीं है। तुम को यदि पुरुषत्व दिखाने की इच्छा है तो जाओ आंधी के सग युद्ध करो न !"।

शैलबाला—"तुम यदि रोने न लगतीं तो देखतीं कि मैं आंधी के संग युद्ध करती कि नहीं"।

उन लोगों ने जिस गुहा में आश्रय लिया था उसके दूसरे अलॅग वैसीही एक दूसरी गुफा थी। परस्पर दोनों गुफा में बहुत कम अन्तर था। एक गुफा से दूसरी गुफा की सब वस्तु देख पड़ती थीं। उन लोगों ने गुफा में आने के थोड़ेही देर पीछे दूसरी गुफा में दो मनुष्यों को हाथ में दीप लिये प्रवेश करते देखा। विदित हुआ कि उन दोनों ने भी वर्षा का आरम्भ देखकर इस गुफा में आश्रय लिया है। उन के गुफा में प्रवेश करने पर घोरतर आंधी और वृष्टि आरम्भ हुई। तीक्ष्ण बिज्जुछटा चोटियों को प्रकाशित करती हुई दिगन्त में लीन होने लगी। प्रचण्ड वायु एक पर्वत से ठोकर खाकर दूसरे पर्वत पर जाने लगा। टक-

गाने और रुकने से द्विगुण रोष और द्विगुण वेग से दूसरी दूसरा चोटियों पर चढ़ाई करने लगा। प्रचण्ड वायु के धक्कों से पहाड़ का ढोका भयानक शब्द से दूसरे ढोके पर गिरते और दोनों टकराते हुये नदी में धमाधम गिरने लगे। वायु का सनसनाना, बिजुली का तड़पना और गिरना, पत्थर के ढोकों से धक्का लगकर वृक्षों का भहराना, इत्यादि शब्द दिग्मण्डल में गूंज उठा, मानों प्रलयवृष्टि से पर्वत कांप उठा, गुफा कांप उठी, प्रभावती भी कंपने लगी। केवल बालिका शैलबाला निर्भय बैठी रही, और प्रभावती का भय देखकर मनही मन हँसने लगी। इस समय उन दोनों मनुष्यों को जिन्हें दूसरी गुफा में प्रवेश करते देखा था चोर समझकर प्रभावती और भी डरने लगी, और चुपचाप उसी गुफा के भीतर बैठी रही। यह देख शैलबाला ने उसके कान में कहा कि 'कुछ भय नहीं है, यहां अन्धकार है, वे हमलोगों को नहीं देख सकते परन्तु यदि तुमारे रूप के प्रकाश से देख लें तो इस में मैं कुछ नहीं कह सकती—

सुनहु प्रभावति रूपवति तुव मुख चन्द्रप्रकाश।
फैल्यो चहुदिशि भवनि में भयो घोर तम नाश॥

और भय यों भी हो सकता है, वे भी दो पुरुष, और हम भी दो पुरुष हैं यदि पता पावेंगे तो वध किया जावेगा।'

अन्धकार में उन को किसी ने नहीं देखा, किन्तु दूसरी गुफा में प्रकाश रहने से प्रभावती और शैलबाला न उस गुफा के लोगों को भली प्रकार देख लिया। प्रभावती ने शैलबाला का उत्तर नहीं दिया उसे धीरे धीरे हाथ से दबा कर रोक दिया, और इस भय से कि दूसरी गुफावाले कदाचित् सुन लेवें, शलबाला ने भी फिर अधिक बात चीत न की, किन्तु कुछ देर में सावधान हुई इस कारण उन की सावधानी का कुछ फल नहीं हुआ। दूसरी गुहा का एक मनुष्य उन की बातों का अस्फुट शब्द सुनकर अपने साथी से कहने लगा, "पर्वत पर कोई आदमी आये है, मुझे कुछ मनुष्य का सा शब्द सुनाई देता है प्रकाश यहां रखकर तुम बाहर जाओ और यदि कोई आदमी देख पडे तो भली भांटि उसका पता और भेद लेकर आओ"। वह साथी बाहर आया। प्रभावती और शैलबाला ने इन सब बातों को सुन लिया, कि अब इसी गुफा म वह हम को ढूढ़ने आवेगा, इसी भय से प्रभावती छिन छिन शका करने लगी। किन्तु साथी उनलोगो की गुफा से नही गया, कुछ देर उपरान्त बाहरही से अपनी गुफा म फिर गया, और अपने साथी से बोला कि "मैने तो किसी को नहीं देखा। ऐसी घोर दृष्टि मे इस पर्वत पर कौन आवेगा? आप को वायु के शब्द से मनुष्य की भ्रान्ति हुई है।" उसके इस भाषण से

प्रभावती का भी सन्देह दूर हो गया, और उसे कुछ भरोसा हुआ। आसन्न विपद से निस्तार पाकर प्रभावती शैलबाला की असावधानता पर क्रुद्ध हो मनही मन उसे भर्त्सना करती हुई क्रोध से उसकी ओर निहारती रही। सौभाग्यवश शैलबाला ने अन्धकार में उसे न देखा उस समय वे चुपचाप दूसरी गुहावालों को देखने लगीं। वे सब ऐसे बैठे थे कि एक आदमी की पीठ की ओर दूसरा मुह किये था जो सम्मुख आकर बैठा था उसका मुख देख कर विदित हुआ कि वह मुसल्मान है और जिसका मुख नहीं दीख पडता था, बातचीत के भाव से वह हिन्दू विदित हुआ। मुसल्मान ने हिन्दू से कहा कि "मुहम्मदगोरी ने मुझ को आपके पास भेजा है"। हिन्दू ने कहा "इस का प्रमाण?" यवन बोला "इसे देखो' कहकर उस के हाथ में कुछ दे दिया। हिन्दू बोला "हा तुम उन्हीं के आदमी हो। उनसे कह दो कि जिससे वे दिल्ली के जय होने के निमित्त सहायता पाने की आशा करते हैं, वह उस कार्य्य के करने में प्रस्तुत है, एव जिस कौशल से उसे सम्पन्न करना होगा वह यह है कि—"

यह कहकर, किस कौशल से यवनों की सेना युद्ध में जय लाभ करेगी, विजय किस प्रकार से सहायता करेगे सविस्तार कहकर बोले कि इससे निश्चयही उनका जीत

होगी, फिर युद्ध के समय जो जो करना होगा, मैं समय और सुभीता समझकर वैसही फिर कहला भेजूंगा। क्यों मैं जो कहता हूं वह-सब उनसे सविशेष कह सकोगे? यवन बोला "बहुत अच्छी तरह कह सकूंगा"।

हिन्दू०—"क्या कहोगे ज़रा कह तो जाओ।

विजय ने जो कहा था उसको वह कह गया। विजय ने कहा "अच्छा जाओ, उनसे कहना कि वे अपनी प्रतिज्ञा भूल न जावें'। उन की बातचीत समाप्त हो गयी, झड़ी भी थम गयी, मानो विजय की विश्वासघातका पर प्रकृति देवी भी क्रुद्ध होकर उसकी कुविचार के साथ साथ तर्ज्जन गर्ज्जन करती थी। उन सभों ने गुफा से बाहर होकर अपने अपने स्थान को प्रस्थान किया।

बाईसवां परिच्छेद।

यवन ने गुफा से बाहर आकर देखा कि वर्षा बन्द हो गई है, चन्द्रमा की किरण से पर्वत शोभित हो रहा है, मन्द मन्द शीतल वायु बहकर वृक्षों से पानी के बुन्द नीचे गिरा रहा है। मुसल्मान अब प्रकाश की आवश्यकता न देख, हाथ में जो दीप लिये था उसे बुझाकर चलने लगा। जाते जाते जब कुछ दूर गया तो दो घोड़े उसको दीख पड़े। शैलबाला और प्रभावती ने उन घोड़ों को चरने के लिये

छोड़ दिया था। आंधी और वृष्टि के समय उन सभों ने भी एक बडे चट्टान के नीचे आश्रय लिया था घोड़ों को देख यवन के मन मे सन्देह हुआ। वह अपने चित्त में अनेक प्रकार का तर्क वितर्क करने लगा, किये तो चढ़ने के घोड़े देखता हूं, लगाम इत्यादि सब दियेहुये कसे कसाये हैं। तो इस पर्वत पर अवश्य कोई न कोई है। उस हिन्दू का अनुमान मिथ्या नहीं है, वे सब वृष्टि देखकर पर्वत को किसी गुफा में ठहरे होंगे। इसी से उस समय मैने किसी को भी नहीं देखा। यदि उन सभों ने हमलोगों की बात सुन ली हो तो क्या होगा?। इससे तो देखता हूं कि इस वेर भी युद्ध में लाभ नही हुआ चाहता" वह उस स्थान को फिर देखने चला। चादनी के प्रकाश से गुफा के चारों ओर भली भाति देखा किन्तु किसी को न पाया। तब उस गुफा के निकट इधर उधर देखने लगा कि कोई और गुफा ऐसी है कि नहीं, कि जिसमें आदमी ठहर सके, ढूंढते ढूंढते उसने शैलबाला और प्रभावती को गुफा में प्रवेश किया उँजियाले से अंधेरे में आने के कारण वह पहिले उन लोगों को न देख सका। उसको पैठते देखकर, शैलबाला ने समझा कि यह विधर्मी अधर्म के अभिप्राय से यहां आया है। प्रभावती को कुछ समझने की शक्ति बाकी न रही। भय से उसका रुधिर सूख गया वह अडोल बैठी रही। मुसल्मान

गुफा में हाथ फैलाकर देखने लगा कि कोई है कि नहीं, इसमें अकस्मात् उन लोगों के शरीर का स्पर्श हुआ। उसने देखा कि हमारी सब बातें इन लोगों ने सुन ली है, बिना इनके बध के अब कोई दूसरा उपाय नहीं है। सहसा जो हाथ उन लोगों के शरीर में लगा था उसको उसी बाँह में एक तलवार का नोका बिध गया। शैलबाला उसके पांव में तलवार मारने चली थीं। उसके पांव में तलवार मारने को शैलबाला को दो कारण थे। प्रथम यह कि, वह चल न सकेगा तो हमलोगों पर अत्याचार नहीं कर सकेगा हम लोग स्वच्छन्दतापूर्वक भाग सकेंगे, दूसरा यह कि, वह यवन शिविर में न जायगा, तो मुहम्मद गोरी उस हिन्दूके विचार के अनुसार कार्य्य भी न कर सकेगा।

शैलबाला ने विचारा कि इसके पांव में चोट लगने से यह चलने में असमर्थ हो जायगा और हम आदमियों से उठवाकर इसे दिल्ली ले जावेंगे और जो जो सुना है सो सब पृथ्वीराज से कहेंगे। ऐसा होने से यह युद्ध के समय तक बन्दी रहेगा और तब तक आरोग्य भी हो जायगा। युद्ध समाप्त होने पर उसको बन्दी रखना किम्वा छोड़ देना पृथ्वीराज की दया पर निर्भर होगा।" किन्तु उनकी चेष्टा निष्फल हुई। मारने के समय उस मुसल्मान ने हाथ आगे बढ़ाया था और शैलबाला का हाथ अस्त्र चलाने में निपुण

न रहने के कारण तलवार पाव में न लगी, यवन की भुजा में चुभ गयी। तुरन्त यवन अपने दूसरे हाथ से शस्त्र सहित शैलबाला का कोमल हाथ पकड़ उसे बलपूर्व्वक गुफा से बाहर ले आया। उसे ले जाते देख कर उसकी विपत्ति की आशंका से डरकर, प्रभावती उच्चेस्वर से "रक्षा करो' कहती हुई उनलोगों के सग बाहर निकल आई। निकट ही में " कुछ भय नहीं, कुछ भय नहीं" किसी ने उनको धैर्य्य दिया। उन्होंने देखा कि एक युवा पुरुष घोड़े की पीठ पर नगी तलवार हाथ में लिये दौड़ता हुआ उनलोगों की ओर बढ़ा चला आता है। देखते देखते वह सम्मुख आकर उपस्थित हुआ। इस समय उनलोगों का सेवक भी दूसरी ओर से आगया। दृष्टि के कारण वह इतनी देर तक न आ सका था। दो आदमियों को दो ओर से आते हुए देख कर वह मुसल्मान अकेला उनलोगों के सग युद्ध करने में साहसी न हुआ। और क्षणमात्र रहने में भी निस्तार न देख कर वह उलटी सांस भागा। युवा पुरुष ने कुछ दूर तक पीछा किया किन्तु यवन की भांति पर्व्वत का पथ न जानने के कारण उसके पकड़ने की आशा त्याग पुनः प्रभावती और शैलबाला के निकट फिर आये। इन थोड़ी उमर के बालकों को ऐसे समय ऐसी अवस्था में पर्व्वतपथ से चलते देखकर आश्चर्य्यान्वित हुए। शैलबाला ने इसवार दिलीप को पहिचाना।

जिसकी मूर्त्ति रात दिन उसके हृदय के दर्प्पण में झलक रही थी उसको देखतेही शैलबाला ने पहिचान लिया, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? किन्तु पुरुषवेश धरने और शैलबाला के कुटीरवासिनी बालिका से युवती अवस्था में आ जानेसे किरणसिंह उसे न पहिचान सके। पहिचानने पर आह्लाद से शैलबाला का शरीर गद्गद हो गया, प्रचण्ड वेग से हृदय लहराने लगा, शैलबाला ने दिलीप को चकित हो कर देखा और फिर लज्जा से उसका मुख नीचे हो गया। ऐसा नहीं होने से उसका वह पूर्ण अनुरागसूचक और लज्जा से गुलाबी रंग चढ़ा हुआ मुखमण्डल देख किरणसिंह को निश्चय सन्देह होता। शैलबाला ने दो तीन बार सिर ऊपर करना चाहा, किन्तु दोनों तीनों बार मानों आप से आप मस्तक नीचे हो गया। प्रभावती ने शैलबाला का यह भाव देख कर, और नये अनुराग का सन्देह करके उसके कान में कहा "यह क्या! तुम ने पुरुष वेश धारण किया है भला यह तो कहो कि यह युवा पुरुष अपने मन में क्या कहेगा ?" शैलबाला अज्ञान हो गयी और हृदय के उमंग को कुछ शान्त करके किंचित् मस्तक ऊपर कर प्रभावती के कान में धीरे धीरे कुछ कहने लगी उसको सुनकर प्रभा· ने कुमार से कहा "उस दुष्ट मुसलमान की बात स्मरण क- रके अब तक भी इनके मुख से बात नहीं निकलती क्रोध

है अब तक भी इनका सर्व्वाङ्ग आरक्त हो रहा है।" युवक मुसकुरा कर बोले "क्रोध का पात्र तो अब चला गया, यदि रहता भी तो मेरे जीवित रहने तक भय की आशङ्का न थी।"

शैलबाला अपने मनही मन कहने लगी "क्या कुछ वियोग की आशङ्का है?" किन्तु उसके मन की बात मन ही में रह गयी।

किरणसिंह ने पूछा कि तुमलोग किस प्रकार से विपत्ति में पड़े। वाक्चतुरा शैलबाला के मुख से उस समय बात न निकली। बाल्यसखा दिलीप के संग बात करने में आज उसको इतनी लज्जा क्यों है? जिसके संग एकही स्थान पर शयन भोजन करने तथा खेलने में लज्जा न होती थी, आज उनसे इतनी लज्जा क्यों होती है? इसका उत्तर शैलबाला के अतिरिक्त हमलोग कोई नहीं दे सकते। शैलबाला को चुपचाप देखकर उन लोगों पर जो जो बीती थी प्रभावती ने संक्षेप से क्रमशः सब कह सुनाया। किरणसिंह सुनकर विस्मित हुए, बोले कि "हिन्दूवंश में ऐसा कौन कुलाङ्गार उत्पन्न हुआ है जो इस प्रकार निन्दित कार्य्य करने में प्रवृत्त हुआ? हमलोगों का सहायक ईश्वर है, उसी ने आपलोगों को यहां भेज दिया जिससे उस कुलाङ्गार की नीच इच्छा प्रगट हो गई। मैं देखता हूं कि अब इस बात

के कहने के लिये मुझ को लौट जाना पड़ेगा ? क्या आप लोगो ने उस विश्वासघातक को देखा था ? उसको पहिचान हो जाने से उसे उत्तम रूप से दण्ड दिया जाता"। प्रभावती ने कहा "नहीं, उसका मुख हम लोगो ने नहीं देखा तो किस प्रकार पहिचानते ?' प्रभावती ने नौकर से घोड़ा तय्यार करने को कहा और फिर किरण से बोली "कि आज आपने हमलोगो का जो उपकार किया उससे उऋण होने का हमलोगो को कोई आशा नहीं है। आपके निकट हमलोग चिरकाल के लिये ऋणी हुए"। किरणसिंह लज्जित होकर बोले "मैंने अपना उचित कर्म किया है, सुतरा आपलोग मेरे ऋणी नहीं है। अब मैं आज ही दिल्ली फिर जाऊँगा, आपलोगो को यदि इसी पथ से चलना हो तो मेरे संग चलने से निर्विघ्न पहुचा सकता हूं'। प्रभावती ने उनके संग जाने से इच्छा प्रगट की, किरणसिंह ने उन लोगो को संग लेकर उतरना आरम्भ किया। इधर दिन को भांति चांदनी दिक्मण्डल उँजियाला करने लगी। इसी चादनी में उतरते हुए दोनों बालक की ओर देखकर किरण बोले "आपलोग ऐसे अल्पवयस्क बालक है और फिर ऐसी असहाय अवस्था में पर्वतपथ से दिल्ली जाते है इसको देख मुझे अत्यन्त आश्चर्य्य होता है, कि बालको के इस प्रकार जाने का क्या कारण है ?" प्रेमबाला

ने इस समय बात करने का अच्छा अवसर देखकर प्रभा-वती के कान में कहा कि "मैं इस युवा के संग एक चम-त्कृत हँसी करती हूं, तुम चुपचाप होकर सुनो, कुछ प्रगट मत करना"। शैलबाला किरण से बोली "आप यद्यपि हमलोगों के नये परिचयी हैं, तथापि आप के साथ जैसी मैत्री उपजी है, उससे अ।ने का कारण आप से कहने में कोई बाधा नहीं है"। स्वर सुनकर किरणसिंह चिहुंक उठे, उनके कान में मानो बीणा सी बज गई। उन्होंने ज्योंहो उस बालिकाका सुमधुरस्वर सुना अकस्मात् उनको शैलबाला स्मरण पड़ गई। उन्होंने एक लम्बी सांस ली एक बार उनको बालिका का सन्देह हुआ। किन्तु उन्होंने उस सन्देह को हृदय में स्थान न दिया। शैलबाला प्रभावती की ओर दिखा कर बोली "ये इसी थोड़ी अवस्था में एक बालिका पर आसक्त हो गये हैं। उसके देखने क लिये पिता माता की आज्ञा उल्लंघन कर घर से भाग आये हैं। मैंने अत्यन्त निषेध किया परन्तु उसका कुछ फल न हुआ तो अन्त में हम भी इनके सङ्ग चले आये।" इस बात को सुन युवा ने फिर एक लम्बी सांस ली। प्रभावती मन्द स्वर से शैलबाला से बोली "यहां भी खेल ?"

शैल—"इसमें फिर लज्जा क्या है ? इनके निकट लज्जा का कोई कारण नहीं है। मुझको बोध होता है कि ये

युवा भी किसी युवती पर आसक्त हैं, इसी से तुमारे दुःख से दुःख प्रकाश करते हैं।" किरणसिंह कुछ लज्जित हो गये। उनका मुख किञ्चित् लाल हो गया। उनको निरुत्तर देख शैलबाला बोली "क्या मेरा अनुमान यथार्थ नहीं है?"

किरण—"जब आप लोगों ने जी खोलकर मुझ से बात की तो मुझको भी कह देना उचित है। आप का अनुमान सत्य है।" सुनतेही शैलबाला का हृदय डोलाय मान हो गया। "तो क्या वही शैलबाला उनके मन में बसी है? अथवा किसी दूसरी युवती के लिये उन्होंने लम्बी सांस ली?" वह बोली "तो जान पड़ता है कि आप उसी के निकट जाते हैं?"

किरण—"हाय। नहीं। मै अपने बंधु की भांति भाग्य मान नहीं हूं।"

शैल—'क्यों, क्या वह युवती आप से प्रेम नहीं करती।'

किरण—"मै यह भी नहीं जानता, मैंने बहुत दिनों से उसे नहीं देखा।"

शैल—"तो देखता, हूं कि आप नये प्रकार के प्रेमी हैं, आप जिसके प्रति अनुरागी हैं उसके मन का भाव नहीं जानते, बहुत दिनों से उसका सवाद तक नहीं पाया, तो आप कैसा प्रेम रखते हैं? मुझको बोध होता है कि आप की प्रीति वैसी गाढ़ी नहीं है।"

किरण—"आप ऐसा मन में न लावें मेरा हृदय उसके देखने के लिये छिन छिन व्याकुल होता है, किन्तु इस समय सैनिक व्रत में व्रती हो कर उसके देखने का विशेष अवकाश नहीं पाता हूं।"

शैल—"वह युवती आप को प्यार करती है कि नहीं यह न जान कर आप उसके प्रेम में अनुरागी क्यों हुए? वह यदि आपसे प्रेम न करे तो?"

किरण—"इसका कारण तो मैं नहीं कह सकता कि क्यों उससे प्रेम करता हूं केवल इतनाही जानता हूं कि हां मेरा प्रेम उससे है। वह यदि अब मुझको भूल गई हो, दूसरे से प्रेम करती हो, तौभी मैं उसी से प्रेम करूंगा किन्तु उसके कष्ट का कारण नहीं होऊँगा, उसकी इच्छा में बाधा न दूंगा, मुझको कष्ट होने पर भी उसके सुख से मैं अपने को सुखी समझूंगा।' शैलबाला अब अधिक अपने को न रोक सकी, धीरे धीरे बोली "तुम जिससे प्रेम करते हो, वह युवती अवश्य भाग्यवती है।" उसने विचारा कि, किस भाग्यवती ने दिलीप को मोहित किया है? क्या, वह मोहिनी वही बाल्यसखी शैलबाला है? क्या मेरा ऐसा सौभाग्य है?" यौंही नाना प्रकार के सन्देह उसके मन को मथन करने लगे इतने में वे लोग भी पर्वत के नीचे पहुँच गये। वहां आने पर किरणसिंह ने विजय को आते देखा।

राजकुमारी होगी। अज्ञातकुलशीला शैलबाला अब कभी उनकी प्रणयपात्री नहीं। उनकी सुन्दरी प्यारी के निकट शैलबाला अब दासी की दासी है। बाल्यसखी शैलबाला की बात दिलीप के हृदय में अब एक बूंद मात्र भी स्थान नहीं पाती है, ऐसा होता तो वे शैलबाला को पहिचान सकते। यदि उस बाल्यसखी को मन में रखते तो अबतक अवश्य पहिचान लिये होते। जिस दिलीप का नाम मेरे हृदय में सर्व्वदा स्मरण रहता है, अब देखती हूं, कि वही राजकुमार बन कर इस अनाथिनी को न पहिचान सके, वे अब नवअनुरागी हुए हैं।' शैलबाला आपना पुरुषवेष भूल गयी, दिलीप ने उसको बालिकावस्था में देखा था, अब उसकी अवस्था बहुत बदल गई है इसको भी भूल गयी शैलबाला ने अपने तईं न पहिचानने में दिलीपही का दोष देखा। उसने विचारा कि "दिलीप नये अनुरागी हुए है।" शैलबाला ने उनकी दृढ़ प्रीति की जड़ उखाडने की चेष्ठा की किन्तु हृदय की रोपी हुई प्रीति क्या कभी उख-ड़ती है?

प्रभावती यह सुनकर कि किरणसिंह विजय से उनलोगों को सग ले जाने को कहते हैं, निकट मे आकर उनसे बोली "मैने एक अपराध किया है, उसे क्षमा करना होगा।" किरणसिंह हँसकर बोले "आपने क्या अपराध किया।"

प्रभा—मैंने आप ऐसे उपकारी पुरुष से अपना परिचय छिपा रक्खा है।

किरण—"मैंने अभीतक तो आप से परिचय पूछा नहीं।"

प्रभा—"जो आपके न पूछने पर भी मुझे कहना उचित था, अब परिचय दे कर आपके निकट प्रायश्चित्त करता हूं, आपने एक बार कविजी का नाम लिया था, क्या आप से उनसे परिचय है?"

किरण—"है। मैं उन्हीं की खोज में दिल्ली से चला हूं यदि ऐसा न होता तो आज आपलोगों के सग साचात् लाभ भी न होता।" प्रभावती बोली "मैं उन्हीं की स्त्री हूं-

दिलीप विस्मित हो कर बोले "आप कविचन्द्र की स्त्री हैं? आपलोगों ने तो यथार्थही पुरुषवेश धारण किया है मेरा सन्देह सत्य हुआ। तो आप लोगो के दिल्ली जाने का क्या कारण है?" प्रभावती बोली "हमलोग भी अजमेर से उन्हीं के लिये आती हैं जिनके लिये आप जाते हैं, उसी हेतु यदि हमलोगों को भी संग लेते चलें, तो आप हमलोगों का परम उपकार करें।" प्रभावती फिर शैलवाला से बोली "क्या कहती हो शैल। इनके सग चलने में अच्छा होगा न?" "शैल!" सुन कर तो कुमार चिहुक उठे। गंभीर स्वप्न देखते देखते अकस्मात् नींद खुल जाने से जैसे

स्वप्न की बातें सत्य हों पर मन विह्वल हो जाता है उसी प्रकार किरण का मन भी विह्वल हो गया। वे विचारने लगे—"तो क्या यह वही मेरे हृदय की शैलबाला तो नहीं नहीं है ? मेरी शैल भी तो अजमेरहा में रही ?"

कुमार को अब उस बालक के मुखमण्डल में शैलबाला के मुख का आकार झलकने लगा, वे अत्यन्त प्रेम से उसका मुखारविन्द देखने लगे, अस्फुट स्वर से उसका नाम उच्चारण करने लगे, उनके होठ काँपने लगे, उन्होंने अपनी बाल्य-सखी को पहिचान लिया। आनन्द से उनका हृदय विह्वल हो गया, जान न पड़ता था कि किस भावना से अथवा किस अभिलाषा से वे किंचित् अधीर हो गये—फिर थोड़ीही देर में गभीर भाव से हृदय का उमग रोक कर म-नही मन बोले "शैल। तुम अब वह कुटीरवासिनी बा-लिका क्यों नहीं रही ? तुम अब वह बाल्यावस्था की चंचल मूर्ति क्यों नहीं रही ? यदि वैसी होतीं तो आज तुम को उसी बाल्यावस्था की प्रीति के अनुराग से आदर करने में कुछ भी संकुचित होना न पड़ता।"

कुमार ने समझा कि हमको पहिचान कर शैलबाला हमारे मन का भाव जानने की चेष्टा करती है। उसके इस छल से अपने मनही मन हँसे। किरणसिंह हर्ष से ग-द्गदचित्त हो प्रभावती के प्रस्ताव से सम्मत हुए। शैलबाला

ने भी उनके मन का भाव समझ लिया और देखा कि अभी तक दिलीप का हृदय शैलबाला से पूर्ण है, मैं अबतक मिथ्या दोष लगा रही थी। शैलबाला और प्रभावती का दिल्ली जाना बन्द हो गया, यह देख कर विजय भी अतिशय हर्षित हुए। वे इसी चिन्ता में पडे थे कि उनलोगों के दिल्ली जाने से पृथ्वीराज उनलोगों से विजय की कुमंत्रणा सुनकर सचेत और सावधान हो जावेंगे अब वे निश्चिन्त होकर घर की ओर चले और अपने मन मे कहने लगे कि "अब की ईश्वर अवश्य पृथ्वीराज से विमुख है। चन्द्रपति पकडेही गये, मेरा कुविचार बारम्बार प्रकाश होकर भी छिपताही जाता है, चारो ओर से यवनों के जय होने का सुभीता होता जाता है। अब देखा चाहिये, मेरी आशा सफल होती है कि नहीं?"

तेईसवां परिच्छेद।

महम्मदगोरी ने कविचन्द्र को बन्दी किया था। मार-डालना तो मुसल्मानो का स्वाभाविक कार्य्य है सो न कर उनको बन्दी क्यों किया? इसके अनेक कारण है। उन्होंने सोचा कि यदि युद्ध में पराजित हुए, तो कविचन्द्र के वध करने से पृथ्वीराज क्रुद्ध होकर समुचित दण्ड विधान करेंगे। और कविचन्द्र को हाथ में रखने से यदि यवन लोगो

मे से कदापि भूल चूक से कोई कैद हो जावे तो उद्धार का उपाय रहैगा और यदि युद्ध मे जय लाभ हुआ, तो उस के मारने मे कितनी देर लगैगो ? ऐसा हाने से एक बार उसका अहङ्कार चूर्ण किया जावेगा। इसो प्रकार सब ओर विचार कर उन्होने कविचन्द्र का बध न किया। अत्यन्त सावधानी के साथ उनके हाथ पाव शृंखलाबद्ध कर कैद में रख छोड़ा। रात दिन उनके शिविर के चारों ओर हथियारबन्द पहरेदार रहते थे. और वे शिविर में किस भाव से हैं, क्या करते है, पल पल पहरेदार लोग शिविर में जाकर देखा करते थे। इस अवस्था मे रहने से कविचन्द्र के भागने की कोई सम्भावना नहीं थी। तमाम दिन कष्ट में बिताते, केवल प्रतिदिन सन्ध्याकाल में वे एक बार एक नदी के तार पर जो शिविर के निकट थो जाकर अपने हाथ से भोजन बनाकर आहार करने पाते थे और उसी समय प्रहरी लाग च्चण काल के लिये बन्धन खोल देते थे। पहिले पहिले दो तोन दिन-तक ता उनके भाग्य में यह भो न था। यवन लोग उसो शिविर में भोजन को सामग्री लाते और वहीं पकाने को कहते थे। उन्होने उस खेमें में जहां यवनों की छुवाछूत थी रसोई बनाना अस्वीकार किया यवनो ने सोचा कि "अभी नहीं बनाते, जब क्षुधा लगेगी, पेट जलेगा तो कहना न पड़ेगा"। किन्तु दो तीन दिन

व्यतीत होने पर, वे क्षुधा तृष्णा से सुस्त हो गये, परन्तु उनके क्षत्रिय तेज और हिन्दूनिष्ठा में कुछ भी कमी न हुई। उन्होंने वहा भोजन करना स्वीकार नहीं किया। बोले "मृत्यु होने से भी यवनो की छावनी में भोजन न करेंगे" यवन लोग इस विचार से कि उनका मर जाना अच्छा न होगा, छावनी के निकट एक नदी तीर पर दिन के अन्त में उनको एक बार ले जाने पर बाध्य हुए। वे जब वहा जाते तो छः प्रहरी हथियारबन्द उनके संग जाते थे। जब तक वे स्नान भोजनादि समाप्त करके फिर न आते तबतक वे सब सिपाही उनके संग लग रहते थे। पहिले पहिल इसी प्रकार बडी सावधानी आरम्भ हुई। किन्तु जब कैदी के भागने की इच्छा और चेष्टा किसी तरह से देखने में न आई तो क्रमशः सावधानी कुछ कम हो चली। छः पहरी से चार हुए, चार से तीन हुए क्रमशः उसमें और भी कमी हुई। केवल दो प्रहरी रह गये। किसी किसी दिन एक प्रहरी भी रहता था। उन सभा ने विचार किया कि कैदी से भयही क्या है? यदि भागने की चेष्टा करेगा, तो निकटही में छावनी है, एक हॉक देने से क्षणभर में कितने आदमी आ जायगे।

एक दिन सन्ध्या काल में कविचन्द्र नदी के तीर पर वृक्ष की जड़ के निकट बैठकर रसोई बनाते थे, निकट में

दो प्रहरी बैठे हुए थे। अमावास्या की रात थी, चारों ओर अन्धकार था। केवल उनके रसोई की अग्नि से थोडी दूर तक प्रकाश था। अकस्मात् कविचन्द्र को मालूम हुआ कि जैसे नदी से होकर एक नौका चली गई है, और तुरन्त उसी समय उनके सन्मुख एक छोटासा टुकडा पत्थर का गिरा। उन्होंने उसको हाथ मे लेकर देखा, तो उसमें एक पत्र बँधा है। उन्होंने शीघ्रही उस पत्र को खोल लिया। सिपाही सब पत्थर पडने का शब्द सुनकर "क्या है, करके निकट चले आये। कविचन्द्र बनावट का भय प्रगट करके बोले "न जाने क्या है, किन्तु मुझ को बड़ा भय जान पडता है। राम राम"। एक प्रहरी भूत समझकर बहुत डर गया। दूसरे ने समझा कि "कोई आया है"। वह चारों ओर फिर कर देखने लगा। अन्धकार में कुछ भी न दीख पडा। सोचा कि किसी निशाचर पक्षी ने वृक्ष से कुछ नीचे गिरा दिया है, उसी का शब्द हुआ है। इसी समय छावनी की ओर कुछ भयानक कोलाहल उठा, उन्होंने उसी डरे हुए प्रहरी से शिविर की ओर देखने के लिये जाने को कहा कि देख क्या होता है। किन्तु कविचन्द्र की बात से वह अत्यन्त डर गया था, शिविर तक अकेले जाने में उसको भय मालूम होने लगा। जाने में उसकी अनिच्छा देखकर, दूसरा प्रहरी बोला "तो मैं जाता हूं, खेमे में क्या

शोरोगुल होता है देख आऊं। तुम होशियारी से पहरा दो। अगर मेरे आने में कुछ अर्सा हो, तो कैदी को साथ लेकर खेमें में चले आना। मेरी इन्तिजारी मत करना"। उसके चले ज ने पर कविचन्द्र ने पत्र पढ़कर देखा तो उसमें यह लिखा पाया कि "हमलोग आपके उद्धार के लिये आये है। कोई भय नहीं है, आपका किस प्रकार शीघ्र उद्धार किया जा सकता है उसे स्थिर करें तो किसी भांति उसे लिखकर जल में बहा देने से हमलोग पा जावेंगे"।

चन्द्रपति ने सोचा कि "यदि इसी सुअवसर में भागें तो भाग सकते हैं, क्योंकि अब केवल एकही प्रहरी यहां रह गया है, उसके हाथ से तदबीर किवा बल से भाग सकते हैं, अधिक प्रहरियो के आने से फिर भागना इतना सहज न होगा' इतना बिचार उसी पत्र को पीठ पर कोयले से लिखा कि पहरी एकही है और अवसर अच्छा है। पत्र लिखकर उसको उत्तम रीति से लपेट वृक्ष के नीचे से कई एक पत्ते बीन लाये। उन्हीं पत्तों से एक छोटी सी नौका का आकार बनाकर और एक बरतन हाथ में ले कर जल लाने के बहाने से नदी की ओर चले, पहरा संग संग चला। इसलिये कि कोयले का लेख जल से मिट न जावे कविचन्द्र ने उस पत्ते की नौका में करके उस पत्र को जल में बहा दिया। पत्र बहाकर और जल लेकर लौट आने के

समय वे बारम्बार पीछे फिर फिर देखते जाते थे कि पत्र लेने कोई आया कि नहीं। प्रहरी मनही मन और भी डरने लगा, उसने समझा कि कविचन्द्र ने किसी को देखा है। पहिले पत्थर गिरने से वह डरा तो थाही, बोला कि "क्या देखते हो"। उन्होंने फिर नदी की ओर देखा। तुरन्त शरीर रोमांचित हो गया, आगे नौका पर उसकी दृष्टि पड़ी, अन्धकार और भय से उसने उस नौका को एक भयङ्कर मूर्ति के समान देखा। प्रहरी को जो भय हुआ था उसको कविचन्द्र ने जान लिया। उनको आशंका हुई कि कदापि यह भय से चिल्ला उठे तो शिविर से और लोग भी आ जावेंगे और हमारे भागने में बाधा होगी, इसलिये उन्होंने उसका मुख बन्द करना आवश्यक देखा। पहिले बल द्वारा उसको नहीं रोक कर तदबीर का अवलम्बन किया उन्होंने पहरी से कहा कि "देखो, सावधान। इस समय उच्चस्वर से बात मत करना यदि उन सभों का मन दूसरी ओर हो और हमलोगों के उच्चस्वर पूर्व्वक बात चीत करने से वे सब हमलोगो को देख लेवें, अथवा हमलोगों पर क्रोध करें तो वृथा हमलोगो की जान जाय।" प्रहरी को और भी अधिक भय होगया, इतनेही में किरणसिंह हाथ में तलवार लेकर उसकी ओर बढ़े। प्रहरी भय से उनको ताड़ के समान भयंकर काली मूर्ति की भांति देखने लगा, उनकी

हाथ की तलवार भी विपरीत लम्बी बोध होने लगी, वही मूर्ति क्रमश: आगे बढ कर मानों उसको पकड़ने आई। प्रहरी ने भय से मुग्ध की भांति भागने की चेष्टा की किन्तु पांव नहीं उठा। क्रमश: उस मूर्ति ने और भी आगे बढ़ कर एक हाथ से उसका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से तलवार दिखा कर वज्र समान गंभीर स्वर से कहा कि "खबरदार बोलना मत, चुपचाप साथ साथ चलेआओ। जो मैंने कहा है इसके विरुद्ध चेष्टा करने से इसी तलवार से तेरा मस्तक काट डालूंगा।" प्रहरी ने कुछ भी उत्तर न दिया, उसका शरीर शून्य होगया, उसको कुछ भी न सुन पडा। उसके गिर जाने का लक्षण देख कर किरणसिंह ने हाथ छोड दिया, वह अचेत होकर गिरपडा कविचन्द्र निकट आकर बोले "अब इसको नौका पर ले चलने की आवश्यकता नहीं है यह भय से अचेत होकर पडा है। जब लों उसको ज्ञान होगा तबलों तो हम लोग बहुत दूर निकल जाएंगे और यह जानताही नहीं कि हम लोग किस ओर जायगे तो ज्ञान होने पर भी मार्ग न बतला सकेगा।" तब उनलोगों ने नौका पर आरूढ होकर उसे खोल दिया। नौका पर आरूढ हो कर कविचन्द्र ने देखा कि वेही कुटारवासी दिलीपसिंह उनके उद्धारकर्त्ता हैं। उनको देख कर विस्मित हुए पूछा कि "क्या तुम दिल्ली से आते हो?"

किरण बोले "हां, आप को यवन शिविर से आने में विलम्ब देख कर मैं महाराज से आज्ञा लेकर आप को खोज में आया था। कविचन्द्र को इच्छा हुई कि शैलबाला और प्रभावती का सम्बाद दिलीप से पूछें कि कुछ जानते हैं कि नहीं, किन्तु अजमेर का सम्बाद उन को विदित होने को कोई सम्भावना न देख कर उन से नहीं पूछा कि "अब क्या फिर कोई भय है ?" कविचन्द्र बोले "नहीं अब कोई भय नहीं। इस समय दिल्ली का समाचार क्या है ? उस के सुनने के लिये मेरा मन अत्यन्त चंचल हो रहा है, शीघ्र कहो।"

किरण—"दिल्ली का समाचार सब मंगलमय है। अब अधिक रात गयी, सोते चलो, वे सब बातें फिर करेंगे।" किरण को इच्छा न थी, कि शैलबाला और प्रभावती को हमारे संग आना चन्द्रपति आज जान लेवें। उन्होंने विचार किया था कि, चन्द्रपति के सो जाने पर प्रभावती को उन के निकट भेजेंगे, ऐसा होने से नींद खुलने पर अकस्मात् प्रभावती को निकट देख कर, चन्द्रपति अतिशय विस्मित और आह्लादित होंगे। इसके उपरान्त बात चीत में उन लोगों के आने की कथा कह देवेंगे अतएव उन्होंने आज अधिक बातचीत करनी न चाही। दिल्ली का कोई मन्द समाचार न सुनने से चन्द्रपति निश्चिन्त हुए। किन्तु

थोडासा सुनने से संतुष्ट न हुए। समग्र रात वे दिल्लीप से दिल्ली का सम्बाद सुनते, युद्ध का क्या सामान होता है जानते, महम्मदगोरी और विजय की सलाह जो सुनी थी उसे दिल्लीप से कहते, तब सतुष्ट होते, किन्तु किरण को उस विषय से नितान्त अनिच्छा देख और उनको विश्राम करने देना यथार्थ आवश्यक जान कर, आज को रात सब बातें करनी उचित न समझी। किरणसिंह बोले "नौका में और और लोग है, आओ चलें नौका की छत पर सोवें।" किरणसिंह और कविचन्द्र उस रात को नौका की छत पर सो रहे। बहुत दिनो पर आज यवनो की "क़ब्र' से निस्तार पाकर, पराधीनता के बन्धन से छूटकर, दिल्ली का सब समाचार सुनकर मन के आनन्द से, स्वाधीन वायु भोग करते हुए, क्षण काल्हो मे चन्द्रपति गम्भीर निद्रा में मग्न हो सो रहे। उन के सो जाने पर, किरणसिंह वहा से धीरे धीरे उठकर चले गये और प्रभावती को उनके निकट भेज दिया प्रातःकाल नींद खुलने पर कविचन्द्र ने सहसा देखा कि प्रभावती उनके चरण के समीप बैठी है। उनकी आखों में सन्देह उत्पन्न हुआ, और उन्हो ने समझा कि इस समय निद्रा में कही स्वप्न तो नही देखते। फिर जब भली भाति निरखकर देखा, तो आश्चर्य से मुग्ध की भाति अन्त में चिहुँक कर उठ बैठे। प्रभावती उस समय स्वामी के चरण

के निकट बैठकर अनन्त सुखपूर्ण आशा से रोने लगी, जैसे 'लज्जावती लता' सादर छूने से मुरझा जाती है, शिशिर के सोहाग चुम्बन से फूल और भी क्लान्त हो जाते हैं, बहुत दिनों पर कविचन्द्र का मुख देख कर मोहसागर में अभिमान से उनको इतने दिन की वियोगयन्त्रणा मानो और भी उमँग उठी।

कविचन्द्र भार्य्या का अश्रुपूर्ण मुख गोद में रखकर सुख से ? भिभूत हो गये। कुछ देर इसी भाँति चुपचाप मोहमय भाव में उनलोगों ने काटा—क्रमशः दोनों में बात चीत आरम्भ हुई—प्रभावती अपने दुःख की बात कहती कहती आह्लाद से बहुत रोई। जो जो कहने को मन में विचार किया था, उसका आधा भी न कह सकी, इस समय हर्ष से सब भूल गयी। जो मन में था उसे शेष कर बोली "हमलोग यों अब सुखी हुए, अब शैलबाला को भी सुखी करना चाहिये।"

चन्द्र—"क्यों, वह कैसे दुःखी है ?"

प्रभा—"क्या इसे आप नहीं जानते कि वह सर्वदा दिलीप दिलीप पुकारा करती है ? आप जानते हैं दिलीप कौन है ? उनका यथार्थ नाम किरणसिंह है। वे महाराज समरसिंहजी के पुत्र हैं।" चन्द्रपति अत्यन्त विस्मित होकर पूछने लगे, "क्या ? दिलीप किरणसिंह हैं ? महाराज समरसिंह के पुत्र। यह तुमने कैसे जाना ?"

प्रभा—मैंने उन्हीं के मुख से सुना है।' प्रभावती अबलों इसका कहना भूलगई थी किरणसिंह के संग उनलोगों की किस प्रकार भेट हुई थी, उनकी बात चलने पर अब उस ने वह वृत्तान्त कहा। पर्व्वत की गुफा में जो हिन्दू और मुसलमान का परामर्श सुना था उसको भी सविशेष कहा वह मन्त्रणा किरणसिंह स्वयं पृथ्वीराज से कहने नहीं गये, विजय को भेजा है। इसको सुनतेहीं कविचन्द्र वज्राहत से हो गये बोले "क्या दैव ! अरे जो स्वय विश्वासघातक है, उसी का विश्वास कर उसे पृथ्वीराज के निकट भेजा है।' क्रोध और निराशा मे उनका वह चमकता हुआ ललाट विकृत और पसीने पसीने होगया, गौरकान्ति वदन ने रक्त-वर्ण होकर एक अपूर्व्व भाव धारण किया उन्होने यवन शिविर मे महाम्मदगोरी के साथ विजय का जो परामर्श सुना था, उसको कहने के लिये किरणसिंह को बुलाया।

कुमार इस समय लों शैलबाला के सग बात करने मे व्यस्त थे। नौका में आने के समय से शैलबाला और प्रभा-वती के एकत्र रहने के कारण अवसर न पाकर परस्पर हृ-दयस्थ बातें न खोल सके। यवनों के भय मे निश्चिन्त हो तथा निर्ज्जन स्थान में वार्त्तालाप का सुभीता पाकर, वे शैलबाला के सग मन खोल कर बातचीत करते थे। उन दोनों के पृथक् होने पर, परस्पर के अभाव मे जो जो घट-

नायें हुईं थी, उन की बात चीत वे दोनों करते थे। शैल-बाला बोली "आप अब राजपुत्र ठहरे, क्या अब भी यह अज्ञात कुलशीला बाल्यसखी आपके मन में रहेगी ?" कुमार बोले "इस कथन के भाव से तो बोध होता है, कि तुम यदि राजकन्या होतीं, और मैं राजकुमार न होता, अर्थात् वही पहिले का दिलीपही रहता, तो फिर तुमको मेरा स्मरण न रहता। यदि ऐसा न होता तो इस प्रकार क्यों कहतीं ?" शैलबाला हँसकर बोली "स्त्रियों की प्रीति ऐसी नहीं होती, मैं पृथ्वीश्वरी होने पर भी आपको नहीं भूलती।"

किरण—"तो फिर मैं क्यों भूलगा ?"

शैल—"मैं आपके समयोग्य नहीं हूं।"

किरण—"समयोग्य न होने पर भी मैं नहीं भूलता किन्तु शैल। भला यह तो कहो, तुम समयोग्य कैसे नहो हो?"

शैल—"सभी विषय में कुलशील प्रधान है।"

किरण—"उसको तुम कैसे विचार सकती हो ? क्या तुम अपना कुलशील जानती हो ?"

शैल—"नहीं, किन्तु यदि मैं जानती, तौभी तो आपके समयोग्य नहीं हो सकती। मेरे पिता सन्यासी थे, इसमें वे कितनेही बड़े क्यों न हों, राजवंशीय तो थे नहीं, और जो मैं नहीं जानती, तो क्या आप भी नहीं जानते ?"

किरण—"यदि मै जानूं भी तो क्या होगा ?"

शैलबाला सहास्य बोली "क्या जानते हैं कहिये न ?" किरणसिंह उसका परिचय कहने जाते थे, कि इसी समय कविचन्द्र का पुकारना सुनाई पडा। उनका सुख स्वप्नवत् भंग हो गया, इस भय से कि कदाचित् यवनो ने नौका पकडी हो वे डरकर यह कहते हुए कि 'नाव वेग से चलाओ' एक फलाङ्ग में नौका से बाहर आ गये। बाहर आने पर भय का कोई कारण न देखा। किन्तु विना कारण कविचन्द्र का शोकव्यंजक शब्द और क्रुद्ध मूर्त्ति देखकर विस्मित हुए, निकट आने पर कविचन्द्र ने महम्मदगोरी का विजय के संग जो परामर्श सुना था उनसे कहा। किरण उसको सुनकर हतज्ञान से हो कर बोले "तो किस उपाय से देश की रचा होगी ?"

चन्द्र—उपाय तो हम कोई नहीं देखते। नौका से उतर कर पगडण्डी से आज ही दिल्ली को यात्रा करता हूं, केवल इसी प्रकार शीघ्र जा सकता हूं। उनसे मैंने सुना है कि तुम अब चितौर जाओगे, तो तुम उन्हें और शैलबाला को सग लेकर जाव। स्त्रियों को सग लेकर मुझको दिल्ली पहुंचने में विलम्ब होगा, और युद्ध में स्त्रियों को सग रखना भी उचित नहीं है, विपत्ति की सम्भावना है। मैं यदि युद्ध से बच पाया, तो चित्तौर पाकर इन्हें ले आऊंगा,

और शैलबाला के संग तुमारा विवाह कर दूंगा" किरण ने इस समय शैलबाला का परिचय चन्द्रपति के निकट प्रगट कर दिया। उन्होंने और सब बातें प्रभा और शैलबाला के निकट कही थीं, केवल उसके कुलशील का परिचय न दिया था। बात चीत समाप्त होने पर चन्द्रपति ने क्षण भर भी विलम्ब न किया, तुरन्त नौका से उतर दिल्ली का मार्ग लिया। प्रभावती की मस्तक की मणि मिल कर भी फिर खो गई।

चौबीसवां परिच्छेद।

इधर प्रहरी शिविर में कोलाहल का कारण निर्णय करने आया तो देखा, कि शिविर में महा कलकल मच रहा है। सिपाहियों के आह्लादसूचक जय जय शब्द से शिविर परिपूरित है, उस हुल्लड़ में कान देने को किसको सामर्थ्य है। छोटे छोटे सिपाहियो का दल और पहरेवाले सब सुरापान कर रहे हैं। चारों ओर सब कोई आनन्द में मग्न हैं, मानो अभी युद्ध के जय का सम्वाद आया हो। प्रहरी ने आश्चर्य्य से एक दूसरे प्रहरी से पूछा 'क्या हुआ? इतनी खुशी किस बात की है?" वह मद्य ढालता हुआ बोला "हमलोग क्या जानें क्या हुआ? जब सभी आज खुशी में चूर है, तो बेशक कोई उमदी खबर होगी। और हमलोगों

के खुशीकरने का भी यही बाइस है।" प्रहरी को यह देखकर कि सब अभी तक आह्लाद का कारण नहीं जानते, और भी आश्चर्य्य हुआ। उसने एक और आदमी से पूछा, तो वह बोला कि "क्या तुमने नहीं सुना? जग में हमलोगों को फतह होगी, किसी ने इल्म नजूम के जरिये बतलाया है इसी से सबको इतनी राहत हासिल हुई है" इसप्रकार जब आह्लाद का यथार्थ कारण वह प्रहरी न जान सका तो महम्मदगोरी के खेमे में आकर उपस्थित हुआ। देखा कि, एक सिपाही के संग महम्मदगोरी और सभासद गण अत्यन्त ध्यानपूर्वक बात चीत कर रहे हैं।

यह कौन है,? इसने क्या कहा है?, और किस लिये यवनों को इतना आह्लाद हुआ है, इसका वर्णन उस प्रहरी पर विदित कर हम अपने पाठकों का भी कौतूहल निवारण करते हैं।

विजय का परामर्श जानने के लिये जो सिपाही दिल्ली के पर्वत पर भेजा गया था, उसने आज लौट कर महम्मदगोरी के निकट विजय का परामर्श प्रगट किया। विजय की सहायता से इसबार वे लोग निश्चय रणविजयी होंगे, इसी आशा से महम्मदगोरी इत्यादि सब के सब आह्लाद में फूल उठे हैं। सामान्य पदातिक से अश्वारोही लों सभोंने उनलोगों को प्रसन्नता देख कर, कारण जानने के पूर्वही

उनलोगों के आह्लाद का संग दिया है। प्रहरी ने आकर सुना कि महम्मदगोरी कहते हैं 'तो क्या हमलोगों को इस मर्तब. जंग में फतह हासिल होगी ? मगर जो वजीरजादा अपने इकरार से मुनहरिफ हुआ तो ? उस सिपाही ने कहा कि "नहीं वे हर्गिज अपने वादे के बखिलाफ न करेंगे उनकी बातों पर मुझे पूरा एतकाद है।"

महम्मदगोरी अपने सेनापतिकी ओर देखकर बोले "तो हमलोग आजही कलह में यहां से छावनी उठाकर दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिये चलेंगे, एकबयक चढ़ाई करने से फतहयाबी हासिल होने की ज्यादातर उम्मीद है।" सेनापति बोला "हुजूर का हुक्म बसरोचस्म मंजूर है।" महम्मदगोरी ने फिर उस सिपाही से पूछा 'तो रास्ते में तो तुम्हे कोई आफत न आई ?' वह बोला "जी नहीं, कोई नहीं, लौटने के समय किरणसिंह से ताडना पाकर जो वह यवनदूत प्राणभय से भागकर पर्वत में छिपा था उसे दो कारणों से उसने महम्मदगोरी के निकट प्रगट न किया। प्रथम तो यह कि, महम्मदगोरी उस तमाम वृत्तान्त के सुनने पर उसके दूतकार्य्य से असन्तुष्ट होकर, और उसको कादर समझकर, जो पुरस्कार, देना चाहते थे, न देंगे, और दूसरे यह कि "किरणसिंह जब उन बालकों को संग लेकर फिर पर्वत पर चढ़े थे, उस समय वि-

जय को अकेले देखकर उन्होंने उनसे फिर साचात् किया था और विजयसिंह का उनलोगों के परामर्श प्रकाश होने के विषय में अभय प्रदान करने से वह भी सम्पूर्ण निश्चिन्त हुआ था, इसलिये उन सब बातों को महम्मदगोरी से प्रकाश करने को कोई आवश्यकता न देखी। महम्मदगोरी ने उसके दूतकार्य्य से अतिशय संतुष्ट हो कर उसको पुरस्कार दे विदा किया किन्तु पहिले जो बातें हुई थीं वे उस प्रहरी को मालूम न थीं इससे जितना सुना, उससे आह्लाद का कारण स्पष्ट न समझ सका। फिर जब सिपाही महाम्मदगोरी के खेमें से बाहर आया तो पहरी ने उसी से सब समाचार सुना। आह्लाद का कारण मालूम होने पर वह भी और पहरेवालों की भांति आह्लाद में मत्त हो गया तथा मद्यपान करने और नाचने गाने में प्रवृत्त हुआ। जिस धर्म्मप्रचार के लिये मुसलमान लोग नरहत्या को भी मोचदातक समझथे हैं सुरापान न करना भी उसी धर्म्म की एक विशेष आज्ञा है, किन्तु उन लोगों में से थोड़ेही ऐसे देखे जाते हैं जो इस आज्ञा का पालन करते हों।

आमोद प्रमोद में पहरी कुछ काल लों कविचन्द्र की बात भूल गया। अकस्मात् फिर उसको कविचन्द्र की बात स्मरण हुई। देखा कि वे अभीतक नहीं लौटे। इतना विलम्ब हुआ, और अभीतक कविचन्द्र शिविर में क्यों नहीं

आये इसी सोच से वह फिर नदी के तीर गया। जहां कविचन्द्र भोजन बनाते थे, वहां किसी को न देखा तब समझा, कि जब मैं शिविर से इधर को आ रहा था, तभी वे किसी दूसरे मार्ग से शिविर की ओर गये होंगे। इतने में अकस्मात् एक बार किसी के गले का शब्द उस के कान में पडा वह चारो ओर ढूंढने लगा कि यह कैसा शब्द है, देखा कि नदी से थोडी दूर पर एक आदमी पडा है, समझा कि वह भयङ्कर शब्द उसी का है। पहिले उसने उसको न पहिचाना, किन्तु जब निकट आकर देखा तो जाना कि वही डरा हुआ प्रहरी है। उसकी ऐसी अवस्था देख उसको विस्मय उत्पन्न हुआ। नदी से जल लाकर उसके मुंह और आंख पर देने लगा तो उस डरे हुए प्रहरी को कुछ चेत हुआ किन्तु निकट में मनुष्य देखकर सहसा प्रेतयोनि समझ "अल्ला:" करके फिर अचेत हो गया दूसरे प्रहरी ने यह हाल देखकर उससे पूछा "क्यों भाई तझे क्या हुआ है ? ऐसा क्यों करता है ? मैं शेरअली हूं, मुझ से खौफ क्यों खाता है ?" शेरअली की बात पर उसको विश्वास न हुआ, उसने समझा कि शैतान उसके संग चातुरी करता है। वह निस्सलभाव से चुपचाप पडा रहा। शेरअली फिर बोला " उठ उठ कैदी कहां है ?" प्रहरी धीरे से आख खोलकर डरता हुआ उसको देखने लगा। अली

भांति देखते पर उसे विश्वास हुआ कि यह शेरअली है। तब तो वह उठ बैठा, किन्तु इस भय से कि कहीं बात करने पर फिर वही विकराल मूर्त्ति न आ जावे उसने कुछ बात न की। शेरअली ने फिर पूछा "कह भाई क्या हुआ? कैदी कहा है?" उसने अँगुली से नदी की ओर दिखला दिया किन्त कुछ उत्तर नहीं दिया, शेरअली ने पूछा "क्या? नदी में भाग गया?" प्रहरी ने सिर हिलाकर जताया "नहीं"। शेरअली अधीर हो कर बोला "तो क्या हुआ कहता क्यों नहीं?" प्रहरी भय से उसके कान में कहने लगा "क्याकरते हो? इतने जोर से क्यों बोलते हो? ऐसा करोगे तो कैदीही की हालन हमलोगों की भी होगी।" शेरअली और क्रुद्ध हो कर बोला तो कैदी क्या हुआ? प्रहरी बोला 'अभी मुझको कहने से खौफ मालूम होता है खेमें में चलकर कहूंगा"। प्रहरी ने जब इस प्रकार कविचन्द्र के बतलाने में विलम्ब किया, तो शेरअली क्रुद्ध हो कर उसको एक घूंसा मार कर बोला "कैदी कहा है? जल्द बतला वर्न अभी तुझे मार कर चला जाता हूं'। प्रहरी ने कोई उपाय न देख धीरे से कहा "उसको शैतान ले गया"। इस वेर शेरअली ने समझा कि कैदी प्रहरी को धोखा देकर भाग गया। इस आशा से कि कदाचित् अब भी वह पकड़ा जावे उसने शिविर के लोगों को पुकारा। थोड़ीही

देर में मशाल लिये हुये अस्त्रधारियों से नदीतीर पूर्ण हो गया, किन्तु उनलोगों ने देखा कि उसके पकड़ने की आशा वृथा है, कौन जानता है कि नौका किधर गई। यदि दोनों ओर नौका भेजी जावे तो भी यह निश्चय नहीं है कि कैदी पकड़ा जावेगा की नहीं। इतनी देर में तो कहीं किनारे उतर कर वह लुक गया होगा। इसी कारण उस समय वे सब कविचन्द्र को ढूंढ़ने न गये, किन्तु महम्मदगोरी से यह सब वृत्तान्त कहने के लिये चले। इस घटना के उपरान्त भी उस डरे हुए प्रहरी का विश्वास था कि कविचन्द्र को शैतानही ले गया है इस अटल विश्वास को उसके मन से कोई दूर न कर सका। उसने उसी विश्वास के अनुसार महम्मदगोरी के निकट भी उस वृत्तान्त को वर्णन किया।

पचीसवां परिच्छेद।

महम्मदगोरी ने जब सुना कि कविचन्द्र भाग गये तो क्रोध से अधीर हो गया। उसे इतने दिनों तक जीवित रखने पर उसे अत्यन्त क्रोध होने लगा,। किन्तु अब क्रोध करने से कोई फल न था, यदि युद्ध में जय हुआ तो हिन्दुओं से इसका बदला लेंगे, यही विचार इस समय उसने क्रोध निवारण किया। महम्मदगोरी ने देखा कि कविचन्द्र भाग गये है, वे दिल्ली में वहिले पहुंचे तो हमलोगों की जय

होने के पक्ष में बड़ा विघ्न उत्पन्न होगा। कविचन्द्र से विजय की विश्वासघातकता सुनकर पृथ्वीराज चौकन्ने हो जावेंगे और पहिली बार की भांति ताड़ना पाकर हमलोगों को फिर इस देश से भागना पड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो फिर किस प्रकार हम अपने देश और बंधुबान्धवों को मुंह दिखलावेंगे? और अब विलम्ब करने का प्रयोजन क्या है? विजय का परामर्श जानने के लिये इतने दिन तक मार्गप्रतीक्षा की गई आज वह भी विदित हो गया, अब जितना शीघ्र दिल्ली पहुंच सकें उतनाही उत्तम है। पृथ्वीराज जबलों उत्तम रूप से युद्ध का सामान करें उसकी पूर्व्वही चलना चाहिये। आवश्यकता होने पर असत् कार्य्य करने में भी पाप नहीं है। यही सोच विचार उसने भी विलम्ब न किया, उसी रात सेना सहित दिल्ली की यात्रा की। क्रमश: जंगल की राह गुप्तभाव से चलकर आठवें दिन रात्रि को स्थानेश्वर के समीप उतरा और वहीं एक जंगल में डेरा डाल दिया। रात को थोड़ेही विश्राम करने के उपरान्त वे कुछ सेना उसी वन में छिपा कर, ३०००० अश्वारोही और ४०००० पदातिक (पैदल) सेना लेकर कुछ अँधेरा रहतेही नदी पार हो गये और सहसा हिन्दूसेना पर चढ़ाई की, इधर पृथ्वीराज की सहायतार्थ राजपुताने के कर देनेवाले और सन्धिबद्ध राजा लोग सब अभीतक नहीं पहुँचे थे। इतने

दिनों में केवल दोही एक राजा आये। विजय की चातुरी और कुटिलता से बहुतों को पत्रही न मिला, बाज बाज ने आने की आवश्यकताही न समझी फिर जयचन्द्र के कुविचार से भी बहुतेरे राजा विचलित हो गये और कोई कोई उनके वाक्यानुसार कार्य्य करने में बाध्य हो कर अपनी अपनी स्वीकार की हुई सहायता भेजने से विमुख हो गये। योहीं नाना कारण से पृथ्वीराज को वैसी सहायता अभी तक प्राप्त नहीं हुई जैसी वे आशा करते थे। किन्तु सहायता की आशा न रहने पर भी पृथ्वीराज तुरंत उतनीही सेना जितनी उपस्थित थी लेकर युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। पहिले से सज्जित हो कर, हिन्दूसेना बलहीन होने पर भी यवनसेना के छावनी तक आने के पहिलेही उत्साहपूर्व्वक रणक्षेत्र मे युद्ध के लिये बढ़ी। पाठकगण, आज समरक्षेत्र का भयानक भाव देखकर हृदय का रक्त सूखा जाता है। एक ओर यवन सैन्यगण दृशद्वती नदी के पार जहांतक दृष्टि जाती है तहां तक फैले हुये घूम रहे हैं। किसी के हाथ में बर्छी, किसी के हाथ मे कृपाण, किसी के हाथ में बल्लम, किसी के हाथ में धनुष, पीठ पर बाण से भरे हुये तरकस, सब के सब मानो आज भारतवर्ष को निःक्षत्रिय करने का सङ्कल्प करके "पञ्जाबी अश्ववार" ग्रन्थ में दिल्ली गद्दी पर चढ़ाई किया चाहते हैं। दूसरी ओर अनगिनत

और क्रपाणधारी राजपूत सैन्यगण यवनसंहारमूर्त्ति धारण करके विपच्चियों के हृदय में त्रास उपजाते हैं। सम्मुखही तोपों (शतघ्नी) की कतार मुह खोले हुये मानों शत्रुओं के विनाश की प्रतीचा कर रही है। "जय, पृथ्वीराज की जय" "जय, समरसिंह की जय" इत्यादि शब्द हिन्दूसैनिकगण में चारों ओर उठ रहे हैं। राजपूत और यवनसैन्यों के समावेश मे किञ्चित् भेद जान पडता है। चत्रीय सेना सम्मुख की कतार (श्रेणी) में प्रायः एक कोस में जुटी हुई है किन्तु पीछे के भाग में बहुत कम सैन्यों का समावेश है। मध्य श्रेणी के सेनापति पृथ्वीराज हैं, उनके दहिने अलंग समरसिहने अपनी मेवारस्थ सेना खडी कियी है। पृथ्वीराज की बायी ओर की सैन्यश्रेणी युवराज कल्याणसिंह के हाथ में सौंपी गई है। पृथ्वीराज के पीछे विजयसिंह बहुत सी सेना लेकर, इसलिये प्रस्तुत है कि सम्मुख की श्रेणी में सेना के कम होने पर उसको पूर्ण करेंगे अथवा किसी स्थान में अकस्मात् कोई अनहोनी विपद के पडने पर उसका निराकरण करेंगे। इधर महम्मदगोरी ने सम्मुख की सैन्यश्रेणी बहुत कम कर पीछे की सैन्यश्रेणी प्रायः दो कोस तक फैला रक्खा है।

रात्रि व्यतीत हुई, पौ फटा, सिपाहियों में परस्पर देखादेखी हुई। चत्रीय सेना ने विकट गर्ज्जन कर तथा "जय, पृथ्वीराज की जय"—"जय, पृथ्वीराज की जय" इ-

त्यादि जयध्वनि कर शत्रुओं पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज की सैन्यश्रेणी ने पहिलेही युद्ध मे प्रवृत्त हो यवन सेना के सम्मुखस्थ श्रेणीसमूह को एकही बेर में छिन्न भिन्न कर दिया, विकट गर्ज्जन से तोपों का शब्द होने लगा। गोलों की चोट से सम्मुखस्थ यवनों के विशालाकार हाथ खड्ग और धनुष सहित टूट टूट कर, गिरने लगे। किसी ने अल्लाह का आधही नाम उच्चारण करते करते प्राण त्यागदिया, कोई भाग चला, क्रमशः पृथ्वीराज की सेना और भी आगे बढ़ने लगी, और जयध्वनि करती हुई जलवेग से यवनों को दूर प्रक्षिप्त करने लगी। महम्मदगोरी जलाशय के जल की भाति सम्मुख की सैन्यश्रेणी का पीछे से क्रमशः बढ़ाने लगे। तोपों के गोलों से निस्तार पाने के लिये, युद्ध करते करते सेना के सहित उनने किंचित् हट कर बगल से आक्रमण किया। सिपाहियों को उत्तेजनवाक्यों से बढावा देने लगे, उत्साह से स्वयं सिपाहियों के सम्मुख आकर अपने हाथ से तलवार चलाने लगे। बगल से हो कर एक बेर पृथ्वीराज की गोल को विचलाने का उद्योग किया, किसी किसी को विचलाय भी दिया, किन्तु क्षत्रीय तलवार से आगे का यवन सैन्यदल पल भर में छिन्नमस्तक हो गया घोड़ों के सवार घोड़ों के पददलित हो गये। महम्मद गोरी ने सवार द्विगुणित पराक्रम के साथ अपनी समर

सेना में से आधी सेना को एक साथही चलाकर पृथ्वीराज की गोल जहां बिचल गई थी उसी जगह आकर प्रवेश किया, घोर संग्राम मच गया, समरसिंह और कल्याणसिंह की सेना ने यवनसेना को जो भीतर चली आई थी घेर लिया, घोड़ों की टाप और रथचक्र की रगड़ से उड़ती हुई धूलिराशि तथा तोपों के धूमसमूह ने नभमण्डल को छिपा दिया, मानो प्रलयकाल की मेघमाला से दिगन्त व्याप्त हो गया। सूर्य छिप गये, चतुर्दिक अन्धकारमय हो गया, तोपों का शब्द, सेना का कोलाहल, रणवाद्य का नाद एकत्रित होकर प्रलय वज्र की भांति गरजने लगा, दिङ्मण्डल मथन होने लगा, शीघ्रता पूर्वक तलवारो के चलने से मानों प्रलय की बिजुली गिरने लगी। वीरो के पद की धमक से पृथ्वी काँप उठी, मानो प्रलयविप्लव में भूमण्डल केन्द्रभ्रष्ट होने का उद्योग करता है। पृथ्वीराज ने सन्मुख से, तथा कल्याण ने बाये अलँग से, और समरसिंह ने दहिनी ओर से यवनसैन्यदल को घेर लिया। इसी समय यदि विजयसिंह भी आकर चौथी ओर से घेर लिये होते तो गोल में से एक यवन भी बँच कर न फिरा होता, किसी भी यवन के लिये उस रात्रि का प्रभात न होता, किन्तु विजयसिंह अचलायतन या गुरु मल्ल सरण कर स्वच्छन्द अपनी समस्त सेना लेकर पृथ्वीराज के पाछे निश्चिन्त हो बैठे रहे, वरन

अपने सैन्य का उत्साह बन्द करने की चेष्टा की और कहने लगे कि अभी अवसर नहीं है, । यही कह कर सब को बोध देने लगे । इधर महम्मदगोरी की सेना तीन ओर से भयानक रूप से घिर गई, और अधिकांश सेना भूमि पर पड़ी हुई देखकर बाकी सैन्य समेत गोरी ने चौथी ओर से भागने की चेष्टा की । सब से आगे अपना घोडा दौड़ाया, और उनकी सेना पीछे उलटी साँस लेती हुई भागी, पृथ्वी-राज समरसिंह और कल्याण तीनो ने उन सबों का पीछा किया और चत्रीय तलवार को यवनों के रक्त में डुबोने लगे। यवनों के दृशद्वती नदी के पार भाग जाने पर चत्रीय लोग जय की पताका उडाते हुए अपनी अपनी छावनी में फिर आये । हिन्दू रणविजयी हुए । सब के सब मिलकर महा देव की पूजा और आशापूर्णदेवी के जयकीर्तन मे अधिक रात व्यतीत कर सो गये। भोर नहीं हुआ था कि पृथ्वी राज और कल्याण, सैन्यगण को युद्ध के लिये उत्तम रूप से सज कर फिर महिषी और उषावती को देखने चले, विचार किया कि, वहां से आकर हमलोग नदी पार चलकर यवनों पर चढ़ाई करेंगे । पहिले दिन के पराजय पर आज फिर पराजित होने से यवन फिर चणकाल भी भारतवर्ष में रहने के साहसी न होंगे ।

छब्बीसवां परिच्छेद ।

स्थानेश्वर में छावनी की एक कोठी में महाराणी, मृत-प्राय उषावती के बगल में बैठी है, और उसका मुख देख देखकर रो रही हैं। महिषी का अब वह शरीर नहीं है, अब वे पूर्णयौवना नहीं हैं, इन थोड़ेही दिनों में सब रूप इनका ऐसा बदल गया कि इस घटना के पहिले जिन लोगों ने इनको देखा था, वे लोग यदि इस समय अकस्मात् इन्हें देखें तो पहिचान सकेंगे कि नहीं इस में सन्देह है। निकट में कल्याण और पृथ्वीराज खड़े हैं वे लोग यह विचार कर कि आज फिर युद्ध में जाना होगा इन लोगों को देखने आये हैं।

रात्रि व्यतीत हो गई है, किन्तु अभी सूर्य्य की ज्योति नहीं दिखाई पड़ती, इसलिये रोगी के निकट दीप जल रहा है। कल्याण दृष्टि लगाकर राजकन्या का वह निर्जीव निर्दोष मुखमण्डल देख रहे हैं, किन्तु इस समय वे क्या सोच रहे हैं, उनके हृदय में क्या भयानक विप्लव उपस्थित है, उसको कौन वर्णन कर सकता है? अग्निगिरि विदारण करने के पहिले यदि कोई उसके भीतर की अवस्था देखे हो ; यदि कोई उसका उष्ण अग्निपदार्थ और धातु-मय पदार्थ का अभिघात प्रतिघात रूप भयानक व्यापार अनुभव कर सके, तो वही कल्याण के चित्त का विकार अ॰

मझ सकेगा। उनको प्राणप्रिया उषावती आज मृत्युशय्या पर सोई है—और वेही उसकी मृत्यु के कारण है। उन्होंही ने उसके विमल चरित्र में कलंक लगाया था उन्होंही ने भ्रान्त होकर उसको वज्रगम्भीर स्वर से 'मायाविनी' (छलिनी) कहकर उसके कोमल हृदय को भग्न कर दिया था। कठोर आघात से जिस लता को उन्होंने छेदन किया था आज उसी छिन्न लता के लिये वे शोक करने आये हैं।

यही सब सोचते सोचते यातना और लज्जा से उनका हृदय विदीर्ण होता था, वे उन्मत्त को भांति उषावती के प्रातः शशिसदृश मलिनकान्ति मुखमण्डल को एकटक देख रहे थे,उसके अधखुले लाल कमल सदृश युगलनयन को अव-लोकन करते थे। शोकाग्नि से उनका हृदय दग्ध होताथा। उनकी वह शोकव्यञ्जक वीरमूर्ति देखकर एक छोटा सा बालक भी उस शोक का अनुभव कर सकता था। पृथ्वी-राज कन्या को देखकर अन्तःकरण में जो कष्ट पाते थे, उसके छिपाने की चेष्टा करते थे, और इसमें कृतकार्य्य भी हुए, कुछ काल तक मुंह से कोई बात न निकली। पृथ्वी-राज पहिले कुछ और बात कहकर बोले "महिषि। इस हृदयविदारक घटना में भी हमलोगों को अधीर होना उचित नहीं है। क्षत्रिकुल में जन्म लेकर देशरक्षा ही हम-लोगों का प्रधान धर्म्म है—आज फिर उसी देशरक्षा के नि

मत्त जाता हूं। इस समय सैकड़ों विपद के पड़ने पर भी उसमें निरुत्साही होना उचित नहीं और उसमें त्रुटि न होनी चाहिये। अब मैं जाता हूं। देवी आशापूर्णा ही तुम लोगों की सब विपत्तियो से रक्षा करेंगी। उन्हीं के हाथ में अब मैं प्राणाधिका पत्नी और कन्या को सौंपकर जाता हूं'। महिषी रो रही थीं, सब बातें उनके कान तक नहीं पहुंचीं, वे बोलीं "इस बार गृहलक्ष्मी हमलोगों को छोड़-कर जाती हैं, भाग्यलक्ष्मी भी हमलोगो के प्रति निर्दय होंगी। मेरे मन में शंका होती है कि इस बेर युद्ध में जय-लाभ न होगा"।

पृथ्वी०—"सो क्यों महिषि। ऐसी बात तुमारे मुख से क्यों निकलती है,? जिन यवनों को काल एकही बेर के युद्ध में परास्त किया क्या उन सभों से आज हमलोग पराजित होंगे? शोक से व्याकुल होने के कारण क्या क्षत्रियों की वी-रता पर भी आज तुमको अविश्वास होता है? धर्म्म के जय में भी आज तुमको सन्देह उपजता है? तो यदि सत्यही ईश्वर ने ऐसाही किया, यदि सत्यही अब अधर्म्म की जय हो, यदि अब से सूर्य्य और चन्द्र का प्रकाश पृथ्वी में न हो तो पराजित होकर मैं कभी जीवित न फिरूंगा। यदि युद्ध में जयलाभ हुआ तो मुझे देख पाओगी, नहीं तो सब यह"।

महिषी बोलीं—"देव। मैं यह इच्छा नहीं करती कि

आप युद्ध में पराजित होकर लौट आवें। परन्तु आपके साथ युद्धक्षेत्र में मैं भी प्राणत्याग न करने पाऊँगी इसी का मेरे मन में खेद रहेगा। किन्तु मन में यह विचार मत कीजिये कि हमलोगों का यही अन्तिम साक्षात् है। यदि आपकी मृत्यु हुई तो मैं भी आपकी अनुगामिनी होऊँगी। परलोक में फिर हम सब लोग एकत्र मिल सकेंगे, नाथ! तो अब आप विलम्ब मत कीजिये—हम लोगों का सोच करके मनको कष्ट मत दीजिये"। कल्याण अब तक कुछ भी मुख से न बोले, उनके दुःखी चित्त से भला बात निकल सकती थी। अपनेही को इस मर्मभेदी घटना का मूल कारण समझकर वे खेदित चित्त से देवताओं के निकट प्रार्थना करते थे, हाय! जिसके कारण आज यह कुसुमलतिका अकालही में सूख गई क्या वे उस विषय में सम्पूर्ण दोषी नहीं है? कल्याण के अन्तःकरण के कानों में सब बातें प्रतिध्वनित होने लगीं—"मैंही सम्पूर्ण दोषी हूं, पृथ्वी में मेरे समान दोषी कोई नहीं है, मेरे ऐसा कोई पापी नही है। इस निर्दोष पवित्रहृदया बालिका का मैंनेही अविश्वास किया था, जो निर्बोध बाला मुझ को देववत् जानकर पूजा करती थी, जिसका मुझी से सब सुख था जो मेरे अतिरिक्त किसी को न जानती थी, उसका भी मैंने अविश्वास किया? क्या उसकी सरलता का यही पुरस्कार है?

क्या उसकी हृदयदान का यही प्रत्युपकार है ? मैंनेही निर्बोधभाव, निर्दयभाव से ऐसी कुसुमकलिका को जो खिलनेही चाहती थी तोडकर दलित किया है। हा।— देवि। भगवति, चित्तौराधिष्ठात्रि। इस पाप का क्या प्रायश्चित्त है ? मुझ को क्या दण्ड दोगी सो देव। मेरे हृदय में नरक की अग्नि जला दो—मैं बिना कष्ट के उसको सह लूंगा। किन्तु नरक की ज्वाला क्या इससे भी भयानक है ? नरक की आंच क्या इससे भी अधिक जलावेगी ? भगवति! तुमारे निकट मैं जो प्रार्थना करता हूं क्या ऐसा अधिकार मुझ को है ? इस पापी के मुख से तुमारा पवित्र नाम उच्चारण करने में क्या वह कलुषित न होगा ? तुमारे निकट प्रार्थना करने का भी मुझ को साहस नहीं होता है। किन्तु देवि! प्रसन्न हो। मैं संकुचितभाव से तुमारे निकट केवल इतनीही प्रार्थना करता हूं। मै अपने लिये प्रार्थना नहीं करता और जब तक जीता रहूंगा, मुझ को अपने लिये कोई प्रार्थना नहीं करनी है किन्तु यही निवेदन करता हू, कि उषावती को अपने अमृतमय गोद में स्थान दो, मैने उसके हृदय मे जो अग्नि जला दी है, ऐसा करो जिसमें वह तुमारे अमृतजल से ठढ़ी हो जावे"।—कहते कहते उन्होने फिर उषावती की ओर देखा—तुरन्त उनका हृदय दारुण दु.ख से अधीर हो गया। उन्होने आखें बन्द-

कर लीं, और मन में विचारा कि, क्या मै अब भी उस प
वित्र मुखचन्द्र के देखने का अधिकारी हूं ? मैं घातकरनेवाला
मैं स्त्रीहन्ता ! सतीहन्ता । मैं अपनी प्राणाधिक प्रणयिनी
का हन्ता हूं । मुझ को अब उस मुख के देखने का अधि-
कार नहीं है" । फिर मन में विचारा कि "मैं तो अब युद्ध
में जाऊँगा, तो क्या मैं उषावती के निकट अपराधी होकर
मरूंगा ? नहीं मैं अश्रुपूरित नेत्रों से उसके निकट क्षमा
की प्रार्थना करूंगा, अपना अपराध मुक्तकण्ठ हो स्वीकार
कर क्षमा चाहूंगा । क्षमा किया तो उत्तम, नहीं तो समर-
भूमि में अपने को उषावती का अपराधी समझ इस जीवन
को विसर्जन करूगा । किन्तु किसके निकट क्षमा मागूंगा?
उषावती के निकट ? उषावती तो पीड़ित है, मेरी उषावती
तो अचेत है, मेरी उषावती तो मृत्यु के सन्निकट है, हाय!"
कल्याण को अब बिचार करने की भी शक्ति न रही । हृदय
विदीर्ण होने लगा ।

उनको चतुर्दिक शून्य जान पडने लगा । सिर घूमने
लगा । विवश होकर राजकन्या के पायताने पलँग के समीप
बैठ मूर्छित हो गये । उनका मस्तक राजकुमारी के चरण से
टिक गया । दिल्लीश्वर उनकी यह अवस्था देख कर चकित
हो गये, किञ्चित् डर भी गये । निकट आकर कल्याण का
मस्तक पकड़ आदर से बोले 'कल्याण । प्राणाधिक क-

ल्याण।" कल्याण को सुध न थी कुछ भी न बोले। एक ओर प्राणाधिक कन्या आसन्नमृत्यु, है दूसरी ओर शोक में निमग्न महिषी, एक ओर मूर्छापन्न पुत्रतुल्य वीरकेशरी कल्याण, यह सब दशा देख पृथ्वीराज का हृदय भी शोकदलित हो गया। अकस्मात् सैन्यगण की ओर से सुन पड़ा "यवन आ गये। यवन आ गये"—यह भयानक कोलाहल उनके कानलों पहुंचा, समझ गये कि यवनों ने चढाई की सहसा महिषी से बोले "महिषि। अब मैं नहीं ठहर सकता, यवन आ गये है, अब मैं विदा होता हूं, युवराज कल्याण और उषावती तुमारे निकट रहेंगे, अब विलम्ब करने से हमारे हृदय को दुर्व्वलता प्रतीत होगी, स्नेह ममता के निकट चत्रियवीर्य्य पराजित हो जायगा।' महिषी सजलनयन हो बोलीं "देव। मैं अचेतन युवराज और मूर्छित कन्या को लेकर अकेली किस प्रकार रहूंगी ? आप के चले जाने पर मैं अत्यन्त असहाय हो जाऊगी, इससे फिर युद्ध में—" उनकी बात शेष न हुई थी कि पृथ्वीराज बोले "भद्रे। भगवती कात्यायनी तुमलोगों की रक्षा करेंगी, चत्रिकुललक्ष्मी इस क्षण निद्रिता नहीं है, धर्म्मही हमलोगों की सहायता करेगा।' महिषी बोलीं "किन्तु "

पृथ्वी। "नहीं महिषी, अब किन्तु का समय नहीं है। मैं अनुचित विलम्ब करता हू, अब तुम रोदन कर के मेरी यात्रा में वाधा मत करो।"

महिषी ।—"महाराज! चत्री की स्त्री भला स्वामी की युद्धयात्रा में कभी बाधा दे सकती है? मैं आप को बाधा नहीं देती—मैं केवल इतनाही कहती हूं, कि जब लौं कुमार को चेत न हो, तबलौं आप यहां ठहर कर हमलोगों को ढाढ़स बँधावें। किन्तु इस से भी यदि युद्ध में किसी विघ्न की सम्भावना हो, तो इसी चण युद्धयात्रा करके जय लाभ कीजिये।" अभी यह बात समाप्त न हुई थी कि कल्याण एक लम्बी सांस लेकर सचेत हुये। परिचारिकागण उनके मुख और आंख पर गुलाबजल छिड़क रही थीं। उनका जागना देखकर पृथ्वीराज ने रानी से कहा "राजमहिषि, युवराज को चेत हुआ।" महिषी ने कल्याण से स्नेह पूर्व्वक पूछा "कल्याण। क्या तुमको अत्यन्त यातना हुई?" कुमार को कुछ भी सुनाई न पड़ा उन्मत्त की भांति मनही मन उच्च स्वर से बोलने लगे "भगवति। शैलसुते। देवि चत्रकुललच्मि।—" महिषी कुछ डर कर कुमार का हाथ धर "कल्याण। कल्याण,। युवराज कल्याण।" कह कर बार२ पुकारने लगीं। कुमार चिहुक कर उठ बैठे सहसा उन को प्रतीत हुआ कि जैसे सचमुच भगवती उनके रोदन से कातर होकर उनके निकट आई हैं। जब भली भांति निरखा तो देखा कि राजमहिषी सम्मुख खड़ी है। उन को किंचित् लज्जा हुई, उनकी बात समाप्त हुई। किन्तु फिर उ-

नकी आखें बन्द हो गईं और मनही मन कुछ बोलने लगी "भगवति शैलसुते। देवि चन्द्रकुललक्ष्मि। यदि जन्म भर मैंने तुमारी आराधना की हो, तो उषावती को एक बार चैतन्य कर दो, मैं एक बार उसके निकट मुक्तकण्ठ से अपना अपराध स्वीकार कर लूं, अपराध क्षमा की भिक्षा माग लूं।" बोलते बोलते कल्याण का अधर काँपने लगा, बराबर अश्रुधारा उनके कपोल से छाती पर, और छाती से भूमि पर गिरने लगी। उन्होंने अश्रुपूर्ण लोचन व्यथितहृदय, व्याकुल दृष्टि से फिर उषावती की ओर देखा। तुषार की मारी मलिन कमलिनी को देख कर उनकी दृष्टि अटक गई। नेत्रों की धारा सूख गई, फिर एक बून्द भी आसू नेत्रों में न आया। यदि पहिले की भाति रो सकते, तौभी तो हृदय की आग कुछ बुझती किन्तु ऐसा भी न हुआ— हृदय नम्रतायुक्त, शरीर खम्भ के सदृश, रगों में रुधिर का प्रचार रुक गया, न तो वे कुछ देखते, न कुछ सुनते और न कुछ विचारते थे, ज्योतिहीन नेत्रों में टकटकी लग गयी। हठात् शरीर में रक्त चलने लगा, निर्जीव ज्ञान सजीव हो गया, चिन्ता हृदय में देख पडी, फिर विचारने लगे कि "आज यह सुन्दर मुख सूखा क्यों है? यह मधुर कण्ठ नीरव क्यों है? ये प्रेमपूर्ण नयन बन्द क्यों हैं? किस कारण इस की माता का हृदय आज शून्य है? पिता का हृदय

भी शोकमग्न हो रहा है, किस कारण वे भी आज मृत प्राय हैं? मैं पाखण्डी हूं—बस मैं ही इसका कारण हूं। मेरे हृदय में गुप्त भाव से आग सुलग रही है, मृत्यु पर्य्यन्त उसको आहुति मिलेगी। तो मैं जाता हूं—तोप के जलते हुये मुख में गिर पड़ूं जिसमें पृथ्वी से मेरा बन्धन छूट जावे हृदय तो छिन्न होही गया है, शरीर भी छिन्न हो जावे, जीवन विच्छिन्न हो। तो अब चलता हूं—जिसमें उसी के आगेही पृथ्वी से विदा हो जाऊं।" इस समय पृथ्वीराज गम्भीरस्वर से बोले "युवराज कल्याण। तो क्या तुम स्त्रियों की भांति शोक में अधीर हो जाओगे। युद्ध की बात क्या एक बेरही भूल जाओगे।" कल्याण किञ्चित् शान्त होकर बोले "महाराज। आगे बढ़े, मैं अभी युद्ध में चलता हूं।' पृथ्वीराज ने देखा "कि यदि कल्याण और अधिक क्षण यहां रहे तो उनका हृदय शिथिल हो जावेगा, शोक के स मय शोकदृश्य संताप वृद्धि करता है। यही विचार कर कि ञ्चित् कपटकोप प्रकाश करके बोले "तो क्या आज क्षत्री वीर कल्याण को रणक्षेत्र से रोगी के निकट रहनाही अ- धिक प्रिय है? कल्याण लज्जित होगये। कुछ उत्तर न देकर क्षणभर मुख नीचे कर प्रस्थान के लिये उन्होंने रानी से आज्ञा मांगी, किन्तु न जाने किस कारण अचेतन उपावती ध मुग की ओर दृष्टि न फेरी, धीरे धीरे पृथ्वीराज के पीछे पीछे

शिविर के बाहर हो गये । क्रमश, जब सैन्य कोलाहल और रण के बाजन का शब्द उन के कान में पहुँचा, तो उनका चित्त किञ्चित् शान्त हुआ । जब सेनाओं के मध्य में जा पड़े, तो समर का उत्साह उन के मन में बलवान होगया ।

सत्ताईसवां परिच्छेद ।

प्रभात होने के पूर्व ही पृथ्वीराज और कल्याण जब राजमहिषी के शिविर में गये, तो योगीन्द्र समरसिंह प्रातः-सध्यासमापन करने के लिये पुण्यजला दृशद्वती की तीर आकर बैठे और उनको थोडो सी सेना भी क्षत्रीय रीति के अनुसार पूजा में प्रवृत्त हुई ।

क्रमशः रात्रि व्यतीत हुई, पौ फटने से पूर्व्व दिशा रक्त नील पीत नाना वरण से रंजित हो गई । लतापल्लव को किञ्चित् हिलाता, सरोवर को कँपाता, दृशद्वती का निर्म्मल हृदय तरङ्गित करता हुआ, मृदु मन्द शीतल समीर बहने लगा, तीरस्थ मल्लिका तथा मालती के ऊपर झुंड के झुंड मधुलोभी भ्रमरों ने उड उड कर गूंजना आरम्भ किया, अशोक और पलास से पपीहा का पिउ पिउ, कोकिला का कुहू कुहू स्वर निद्रित सैनिकों को जगाता हुआ ध्वनित होने लगा । समरसिंह का भी ध्यान भंग हो गया । उन्होंने नेत्र खोलकर देखा, कि कुछ यवनसेना दृशद्वती के आधी

दूर तक लाँघ आई है, तिसकी पीछे बहुत सी सेना पार होने के लिये निरीह और निःशब्द भाव से उद्योग कर रही है। समरसिंह ने अपने अनुचरों को युद्ध के लिये तुरत एकत्रित करके पृथ्वीराज को सम्वाद देने के लिये दो से वकों को भेजा। इस अवसर में समरसिंह अपने अनुचरों को लेकर सम्मुखस्थ यवनदल का आना रोकने लगे। आधे यवन जल में आधे भूमि पर खड़े होकर अस्त्र चलाने लगे। अल्लाहो अकबर। करते करते झुक पड़े। किन्तु समरसिंह के अटल अचल वीरभाव के विरुद्ध वे सब फिर एक पग भी आगे न बढ़ सके। समरसिंह क्रमशः बलहीन होने लगे, इधर चन्दोसेनागण ने पृथ्वोराज और कल्याण के अन्तःपुर से आने में विलम्ब देख उन लोगों की प्रतीक्षा न की, बहुत से समरसिंह को सहायता के लिये चले आये, उधर फिर यवनसेना भयानक वेग से आगेवालों के साथ मिलकर अब टिड्डो दल की भाति आगे बढने लगी। इतने में पृथ्वीराज और कल्याण अनेक सवार लेकर आ पहुंचे और समरसिंह को विपत्ति देख शीघ्रता से नदी तीर पर आकर "जय आशापूर्णा देवी की जय" शब्द करते हुये उन्होंने यवनों पर आक्रमण किया। समरसिंह भी क्रुद्धसिंह के समान निज तलवार को बिजुली की भाति चलाते चलाते शत्रुओं में प्रवेश करके दावानल की भाति प्रचण्ड और चञ्चलभाव से

शत्रुओं का संहार करने लगे। यवनसेना पृथ्वीराज के नव-उपस्थित सैन्यदल को देख कर भागनेहो का विचार किये थी, तिस पर फिर क्षत्रिय शूरता से त्रासित हो छिन्न भिन्न हो कर सब को सब भागने लगी, पीछे फिर कर देखने का भी किसी को साहस न हुआ।

क्षत्रियसेना को शिविर तक फिर आने में प्रायः दो पहर होगया, और अत्यन्त थकित और क्रोधित सैनिकलोग विश्राम की लालसा से कोई शिविर कोई वृक्ष की छाया में सो रहे। उसी दिन तीसरे पहर समरसिंह पृथ्वीराज, मंत्री और विजयसिंह इत्यादि सब एकत्रित हो कर यह विचारने लगे कि महम्मदगोरी के संग अब क्या करना उचित है। अन्त में सब लोगों ने यही स्थिर किया कि महम्मद-गोरी यदि अब अपनी इच्छा से भारतवर्ष त्यागकर चला जावे, तो फिर अब युद्ध का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि असमर्थ होकर भागने पर शत्रु को क्षमाही करना उचित है, दुर्बल के ऊपर बल प्रकाश करना क्षत्रियों को योग्य नहीं। किन्तु विजयसिंह इसमें सम्मत न हुये, बोले कि "यवनों की इच्छा अब क्या देखनी है जब उन सभों ने अहङ्कार-मत्त हो भारतवर्ष में आगमन की स्पर्द्धा की तो उन सभों की इच्छा हो या नहीं हमलोग युद्ध में उन सभों को समुचित दण्ड देकर देश से मार कर निकाल देंगे,। युद्ध में फिर

विचार क्या ? यवनो को अब चमा क्यों करें ? वैरी से बदला लेने में दया क्यों ?" पृथ्वीराज और समरसिंह दोनों बोले "उन्हें तो यथेष्ट दण्ड दे दिया है, दुर्व्वल को मार कर अब क्या होगा, और विना प्रयोजन हम लोगों को सेना का चय करना भी आवश्यक नहीं है। यदि वे लोग स्वदेश को लौट जाना चाहें, तो हमलोग उन सबों को इसबार भी चमा करके निर्विघ्न जाने देंगे यही ठीक करके आजही उन सभों के पास दूत भेजा जावे, क्योंकि वे सब स्वयं इस प्रकार की याचना करने में इसबेर साहसी न होंगे।" इस परामर्श का सबलोगों ने अनुमोदन किया और महम्मद गोरी के पास दूत भेजा गया। महम्मदगोरी अत्यन्त आह्लाद और कृतज्ञता प्रकाश पूर्व्वक इस सन्धि के प्रस्ताव में सम्मत हुये। दो दिन युद्ध में पराजित होने से उनकी बहुत सी सेना हत होगई थी। उन्होंने देखा कि, इस तरह दो एक बार युद्ध में पराजित होने से, हमलोग अब अपने देश को लौट कर न जाने पावेंगे। विजय हमारे पक्ष में रहे, बीच बीच में भागने का उपाय और दूसरा दूसरा यत्न होता है, किन्तु उससे भी कोई जयलाभ की आशा नहीं है। यही सब सोच कर वे अत्यन्त चिन्ता में ग्रस्त थे। आपही सन्धि के लिये व्याकुल होकर पृथ्वीराज के निकट दूत भेजने के निमित्त उत्सुक हुये थे किन्तु पृथ्वीराज के पास दूत

भेजने में सामर्थ्य न होकर विजय का परामर्श जानने को चुपके पहिले उनके पास एक आदमी भेजा। विजय की बात से फिर उनको जय की आशा हुई और उनके परामर्श के अनुसार कार्य्य करने लगे। विजय ने सलाह दिया कि "सन्धि करो, ऐसा होने से हिन्दू सेना निश्चिन्त हो कर आमोद प्रमोद करेगी, तब अकस्मात आक्रमण करना, किन्तु पहिले समग्र सैन्य युद्धक्षेत्र में मत लाना, कुछ सेना छिपा रखना। जब हिन्दू सैना श्रान्त हो जावे, तब वही अवशिष्ट छिपी हुई सेना लेकर आक्रमण करना,ऐसा करने से निश्चय जयलाभ होगा।" महम्मदगोरी ने विजय के परामर्शानुसार सन्धिस्थापन किया। पृथ्वीराज के क्षमागुण से मानो अत्यन्त उपकृत हुये, ऐसा भाव उस दूत के सामने प्रकाश कर तुरन्त वहा से डेरा डण्डा उठाने की आज्ञा दी। दूत के रहतेही रहते उठ कर जाने के लिये बहुत सा सामान हो गया। दूत यह सब देख सुन कर शिविर में फिर आया।

सन्धि स्थापित हो गयी। महम्मदगोरी ने पृथ्वीराज के निकट अपनी अत्यन्त निचाई स्वीकार किई है, दूत के मुह से यह सब वार्त्ता सैनिकों में प्रचार होने से, जनलोगों को आनन्दध्वनि और भारत की जयध्वनि से आकाश मण्डल व्याप्त हो गया, सेनापतियों में पर स्पर गाढ आ-

लिङ्गन और सैनिकों में परस्पर उत्सव वार्त्तालाप में समय व्यतीत होने लगा। पृथ्वीराज ने सेना में यह कहला दिया कि आज रात्रि को आशापूर्णादेवी की प्रतिमा बना कर पूजा कर उस के उपलक्ष में उत्सव समाप्त करके कल प्रातः-काल दिल्ली फिर चलना होगा। केवल पृथ्वीराज, ऊषावती को पीड़ित समझ कर थोड़ीसी आवश्यक सेना समेत परिवार सहित कुछ दिन यहीं रहेंगे। पूजा के सामान में स मग्र दिन सब सेना व्यस्त रही। कोई फूल लाने में, कोई बलिदान के बकरों औ भैसों के ढूढ़ने में, कोई दृशद्वती के निर्मल जल लाने में, इसी तरह हर्ष के उमग में सब चारों ओर चले गये। कोई कोई प्रतिमा बनाने लगे। क्रमशः प्रतिमा तयार होने पर सबों ने मिल कर घोर करतालि बजाई और आशापूर्णा की जयध्वनि से आर्य्यभूमि को कँपाय दिया। संध्या का पहिला पहर बीत गया, आकाश का प्रान्तवर्त्ती तृतीया का क्षीणचन्द्र अस्त हुआ। धीरे धीरे चतुर्दिक अन्धकार फैलने लगा। किन्तु आकाश के तारा-गण और सैनिकों ने जो आग जलायी थी उस प्रकाश से उस अन्धकार ने केवल क्षेत्र के किनारे हो सघन हो कर भयानक भावधारण किया। पूजा के उत्सव और बलिदान के कोलाहल तथा तुरही और भेरी बजने के शब्द और जय जय निनाद से दिगदिगन्त मथन हो गया। गंध धूप का

उठता हुआ धूआ, बलिदान की रक्तलहरी, अनेक प्रकार के फूलों से सुगन्ध का उडना सभी उत्सव बढाने लगे। क्रमशः सब के सब आमोद आह्लाद में प्रवृत्त हुये। कहीं सौ सौ वीरों ने एकत्र हो कर पुरू राजा के पराक्रम का चवाव और क्षत्रीय शूरता की जय का कीर्त्तन आरम्भ किया कहीं सौ सौ सैन्य भोज के आमोद में मत्त हो रहे हैं, कहीं भाई भाई परस्पर हृदय खोल कर बात कर रहे हैं, कहो यवनों की भीरुता की चर्चा हो रही है, कोई कोई दूसरो से अपनी अपनी प्रिया के रूप गुण का बखान कर रहे हैं, कोई विरहयन्त्रणा में सुखस्वप्न देख रहे हैं। कोई पूजा समाप्त होने से शारीरिक और मानसिक शान्ति लाभ करके सुख से सो रहे हैं। कोई शिविर में, कोई किनारे, कोई वृक्ष के तले, सब के सब आज असीम आनन्द में मत्त हो कर, गाने बजाने से उत्सव के समय को बिता रहे हैं। प्रभात होते ही अब सब दिल्ली लौटेंगे, सो पुत्र कन्या का मुंह देख पावेंगे, यवनों के पराजय का चवाव कर सकेंगे—सभी ओर उत्साह और आनन्द है। पूजा समाप्त होने पर जब आशापूर्णा की पूजा का स्थान जो एक प्रान्त में था शून्य हुआ, जब सब लोग उत्सव में मत्त हो गये, तब समरसिंह केवल अकेले एक छिपे हुये प्रान्त में आशापूर्णा की प्रतिमा के निकट खडे रहे। देवी के सम्मुख हाथ जोड़ कर आंख

बन्द कर बोले "देवि आशापूर्णे। भगवति चत्रीयकुललक्ष्मि।
तुमने प्रसन्न होकर हमलोगों की, अपने चत्रीयसन्तानों
की आशा पूर्ण की—यह जान नहीं पडता कि क्योंकर हम
अपने हृदय की कृतज्ञता का भाव प्रकाश करें, भक्ति के उ-
मंग से समग्र हृदय पूर्ण है। मातः तुम अन्तर्यामिनो हो,
तुम्हो हमलोगों के अन्तःकरण में एकबेर आंख उठाकर
देखो, तुम्हो सब भाव समझ लो मैं प्रकाश करने में अस-
मर्थ हूं।" यही कह कर समरसिंह भक्तिभाव से साष्टाग
दण्डवत कर फिर उठखडे हुये, कृतज्ञता के सहकार में फिर
प्रतिमा के प्रति दृष्टिपात का, देखा कि जैसे उस प्रतिमा के
ज्योतिर्मय युगलनेत्र से दो बून्द आंसू गिर कर कपोल की
रक्तमय आभा को अधिकतर उज्ज्वल कर रहेहैं। यह देख
समरसिंह चिहुंक उठे उनका समस्त शरीर रोमांचित हो
गया। योगीन्द्र समरसिंह ने समझा, कि यह कोई भविष्य
अमङ्गल घटना का लक्षण है। 'न जाने, हमलोगों ने देवी
के चरणों में क्या अपराध किया है, न जाने यह फिर किस
प्रकार के अमङ्गल की सूचना है।" यही सोच कर समर-
सिंह देवी को प्रसन्न करने के निमित्त पुनः उनकी आरा-
धना में बैठे। किन्तु किसी भांति भी देवी के उस मलिन
मुख छवि ने प्रसन्नताभाव धारण न किया। तब समरसिंह
निराश और आनन्दरहित हृदय से पूजा समाप्त कर बाहर

आये, किन्तु उन्होंने उसबात को किसी के निकट प्रकाश करना उचित न समझा, सोचा कि इस अमंगल लक्षण के सुनने से इस आनन्द में सभी निरुत्साह और निरानन्द हो जायगी और इससे शीघ्र कोई विपत्ति होने की सम्भावना है, अतएव इस समय इसे गोप्य रखनाही उचित है। समरसिंह जिस समय व्याकुलचित्त से इस अशुभ लक्षण का फलाफल विचारते थे उस समय विजयसिंह दृशद्वती के तीर अकेले घोर चिन्ता में मग्न हो कर घूम रहे थे। आधीरात को दो तीन यवनसेना के लोग राजपूत का वेश धारण कर नदीपार हो कर उनके निकट आये। वे सशंकित भाव से एकबेर चारो ओर देख कर अति मृदु, तथा सतर्क भाव से, उनसभी के संग बात करने लगे। कुछ देर पर वे सब भी सावधानी के साथ वहां से चले गये। विजय भी धीरे धीरे शिविर में लौट आये। पाठक गण! इस समय पृथ्वीराज और कल्याण कहां हैं? वे लोग मूर्छित उपावती को जो वेसुध पर्य्यङ्क सेवन कर रही है आज फिर देखने गये हैं। रण जीत कर कल प्रातःकाल ही सब लोग दिल्ली को लौटेंगे, इसी आह्लाद में आज सभी उन्मत्त हैं। किन्तु कल्याण?—उनकी एक मात्र पर्वाशिष्ट कामना एक मात्र इच्छा व्यर्थ हुई, समर में भी उन की मृत्यु न हुई। उनके हृदय का क्लेश अब कौन वर्णन करे? मन में विचारा था

कि युद्ध में मरेंगे, उषावती के आगेही इस पापी प्राण को
विसर्ज्जन करेंगे, किन्तु क्या हुआ ?—समर में भी तो उ-
नकी मृत्यु न हुई, क्यों ? क्या उषावती को ऐसी अवस्था में
देखकर यन्त्रणा भोग करने के निमित्तही युद्ध में उनकी
मृत्यु न हुई ? तो अब और क्या उपाय है ? आत्महत्या
की बात चित्त में सोच कर ऐसी कठिन यातना में भी च-
त्रिय वीर थहरा उठे। इस अधम कार्य्य के करने में उनको
साहस न हुआ, विचारा कि आत्महत्या तो कापुरुषों का
कर्म्म है, ऐसा करने से चितौर राजवंश का अपमान है,
चत्रियो को सहनशीलता का गर्व्व लोप होता है, मनही
मन बोले "नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, मैं आत्म-
हत्या न करूगा, जीते रहने से बहुत दिन लों दग्ध होऊंगा,
नहीं तो पाप का प्रायश्चित्त क्या हुआ ? जिस निर्जन, ज-
लते हुये लम्बे चौड़े ऊसर मैदान में जहां पशु न हो, पक्षी
न हो, तृण न हो, लता न हो, उसी उत्तप्त बालुकामय ऊ
सर भूमि में रह कर उषावती के सुख के लिये देवताओं के
निकट प्रार्थना करूंगा, जहां अग्निगिरि का गर्भभेद कर
अग्नि प्रज्वलित है और पिघल पिघल कर धातुओं का
सोता बह रहा है उसी जगह उसी अगम भयानक पर्व्वत
में रह कर उषा क निमित्त प्रार्थना करूंगा मैं मरूंगा
नहीं, मरने में तो कुछ भी दण्ड मुझे न होगा, मरजाने से

इस गुरुतर पाप का प्रायश्चित न होगा, मैं चिरकाल लों दारुण दग्ध यन्त्रणा भोग करूंगा, उससे भी यदि इस पाप का किंचित् मात्र दण्ड होजावे, कुछ प्रायश्चित हो जावे, तो मैं उसी को भोग करूंगा।' इसी प्रकार वे नाना भांति को दारुण चिन्ता करने लगे, सोचते हुये उषावती का मुख कमल देख रहे थे। थोड़ो तीन पहर बीत गया। इसी समय सहसा बाहर भयानक कोलाहल उठा सैनिकों में आशाभेदी हुल्लड मचा। पृथ्वीराज आश्चर्य्य से चिहुंक उठे, कि "अब फिर क्या हुआ" यह कह कर कल्याण की ओर देखा, क्रमशः कोलाहल और भी बढने लगा, पृथ्वीराज रानी से बिदा होकर कल्याण का हाथ पकडे हुये बाहर आये।

अठाईसवां परिच्छेद।

क्रमशः रात्रि व्यतीत हुई। इधर कन्यावत्सला रानी उसी मूर्छित उषावती के बगल में बैठी हैं, उसका मुख देख रही हैं कभी लम्बी सांस लेती कभी धीरे धीरे अपनी आंखों से आंसू पोछती हैं; कभी उषावती का बिखरा और उलझा हुआ बाल सम्हारती और बटोरती हैं, कभी धीरे से कन्या का मुख चूम लेती हैं,। परिचारिकागण पंखा कर रही हैं जब महिषी का जी नहीं भरता तो आपही पंखा लेकर कन्या को हवा करती हैं, कन्या का सिर प-

पनी गोद में लेती हैं। बहुत देर पर उषावती को कुछ ज्ञान हुआ, उनने शून्य दृष्टि से चारोंओर देखते देखते देखा कि एक अलँग स्नेहमयी माता विषण्ण और मलिनमुख बैठी हैं, सम्मुख दासीगण भी मौन और पुतली की भांति खड़ी हैं—उषावती को कुछ आश्चर्य्य हुआ, कुछ भी उसकी समझ में न आया, माता को रोती देखकर बोली 'मा, क्या हुआ है? रोती क्यों हो मा?—बड़ी वेदना होती है मा?" इतना कह महिषी का हाथ अपने हृदय पर रख लिया। बात करते करते उषावती फिर अचेत हो गई। महिषी कन्या की बातों से और भी व्याकुल हो गईं। कातरदृष्टि से कन्या का मुख देख रही थीं, निरन्तर अश्रुधारा ने कपोल से बह कर कन्या के केश भिगो दिये, उन्होंने स्नेह से उसे पोंछ दिया, फिर आँसुओं की धारा से केशजाल भीगने लगा। उन्होंने धीरे धीरे कन्या का मस्तक उठा कर सिराङ्के रख लिया। अकस्मात् उषावती करुण स्वर से बोली पिता—युवराज—कह कर चिल्ला उठी। महिषी ने व्यग्र होकर अपनी गोद में मस्तक रख लिया, उनने समझा कि "राजकन्या के मस्तक में जहा व्यथा है वहीं दुख रहा है, किन्तु फिर समझा कि वह विकार का घोर स्वप्न देख कर प्रलाप दशा में बक उठी है। यही सत्य था, राजकन्या स्वप्न देखती थी कि—"जैसे वह कल्याण के संग यमुना के तीर पर भ्रमण कर

रही हैं दोनों प्रेमालाप में मग्न हो रहे हैं। कल्याण लज्जित भाव से अपना अपराध स्वीकार करके उससे क्षमा की प्रार्थना करते हैं। कल्याण के मुख की ओर देखकर उन को सुखी पाकर वह मानो आह्लाद में हँसती हुई मनही मन हृदय से उन्हें क्षमा करती है। किन्तु लज्जा से खुल कर नहीं बोल सकती, केवल ओठों का हर्षभरा मधुर हास्य, प्रेमपूर्ण नयन की स्थिर ज्योति उसके मन का भाव प्रकाश किये देती है। बात करते करते मानो कल्याण उषावती का चरण पकड़ने लगे हैं। उषावती लज्जितभाव से मृदुहास के साथ हँसकर सरक गई। मुह से यही बात निकली, "उठो उठो, मैं निज प्राण रहते तुम को ऐसी अवस्था में नहीं देख सकती, तुम क्यों मेरे निकट क्षमा चाहते हो? क्या मैं तुमको क्षमा करने के योग्य हूं? तुमने क्या अपराध किया है कि उसके लिये मैं तुमारे ऊपर रुष्ट होऊंगी? तो तुम क्षमा क्यों चाहते हो? मैं तो तुमारा कोई दोष नहीं जानती। तुम मेरे देवस्वरूप हो। देवता जो चाहे करें कोई दोष नहीं है। तुमारे मन का भ्रम दूर हो गया, अब तुम मुझ को मायाविनी नहीं समझते तुम जो अब मेरे ऊपर प्रसन्न हुये हो, इसी आह्लाद से मेरा समग्र हृदय परिपूर्ण है इस क्षुद्र हृदय में दोष रखने के लिये बिन्दुमात्र भी स्थान नहीं है"। कल्याण आह्लाद में अधीर हो

इस समय महासुखी थे। जो देखते हैं उसी में हर्ष दीख पड़ता है, उसी में आशा है, इस समय सभी उनलोगों के निकट हँस रहे थे। सन्ध्याकाल का समय स्वाभाविक शान्त और मधुमय हो रहा है। चान्दनी से प्रदीप्त होकर नदी तीर के वृक्षशाखागण को सन्ध्याकाल का पवन मन्द मन्द डोलता हुआ मृदुनिनाद करता है। बीच बीच में यमुना-जल निःशब्द उन्हीं तीर के वृक्षों के मूल को भिजोता हुआ फिर नदी में गिर पड़ता है। सुनील यमुना इस समय चान्दनी की स्फटिक किरण से धवलित हो रही है। मृदुनिनादिनी, तटप्रघातिनी क्षुद्र क्षुद्र तरङ्गमाला से नाचती हुई करारे को स्पर्श करती है ; नदी के गर्भ में प्रतिबिम्बित आकाश उसी तरङ्गमाला के संग नाच उठता है। इस समय चतुर्दिक शोभायमान है, चतुर्दिक् हर्षित है, चतुर्दिक् शान्त है। अकस्मात् उषावती को फिर दूसरे प्रकार का दृश्य देखने में आया। पृथ्वी ने विपरीत भाव धारण किया स्वभाव बदल गया। सहसा शान्ति के स्थान में अशान्ति उपस्थित हुई। भयानक कोलाहल से निशःब्दता शेष हुई। चारों ओर मधुमय के स्थान में भयानक शब्द हो गया। उन्होंने देखा कि अब चान्दनी नहीं है, और तारागण भी नहीं है, सहसा घनघोर घटा से आकाश छिप गया, घोर अन्धकार से पृथ्वी ढक गई, भयानक आंधी ने आकर अपना प्रचण्ड

प्रताप प्रकाश किया। वायु के शब्द और मेघ के गरजने से धरती काँप उठी। वही छोटी छोटी तरङ्गमाला अब पर्वत के समान ऊँची हो होकर तीर की ओर लहराकर गिरने लगी। किन्तु क्या आश्चर्य है, कि इसके मध्य में एक वार भी विजुली न चमकी, किम्वा एक बून्द भी वर्षा न हुई। अन्धकार में उनलोगों को कोई घर न दीख पड़ा। इस कु-अवसर में उषावती के लिये आश्रय ढूढ़ने में कल्याण अत्यन्त व्यग्र हुये। इस भय से कि इस अन्धकार में उषावती कहीं खो न जावे कल्याण उसका हाथ अपने हाथ से दृढ़ता पूर्वक पकड़े रहे। उषावती भी कुसमय से डर कर अर्द्ध मूर्छित अवस्था मे उनके काँधे पर सिर रक्खे रही। देखते देखते वही पर्वत समान तरगमाला किनारे आकर गिर पड़ी तुरन्त उषावती के स्वप्न ने भिन्नभाव धारण किया। तरग का आकार वदल गया। क्या आश्चर्य है, वह भयानक लहर नहीं है। वही तरगमाला अब असख्य असख्य नौका हो गई। नौका तीर लगने पर अनगिनित यवन सिपाही तीर पर कूदपड़े। यवनसेना के समूह से नदीतीर पर मानो मेघ सा छा गया। वायु के शब्द और मेघ के स्थान यवनों का 'अल्लाहो अकबर शब्द गगनमण्डल स्पर्श करने लगा, अस्त्रों की झनझनाहट क्रमश: बढ़ने लगी। यवनों को देखकर कल्याण का क्षत्रिय रक्त उत्तेजित हो गया। वे उषावती

को भूल गये। क्रोध से तलवार निकालकर उषावती को उसी दुरवस्था में अकेली छोड़ तीरवेग से वे यवनों की ओर अग्रसर हुये। कल्याण को अकेलेही उस असंख्य यवनों के मध्य प्रवेश करते देखकर उषावती मारे भय के उस स्थान पर मूर्छित हो गई। स्वप्न में फिर मोहभङ्ग हुआ। देखा कि यमुना के तीर वे मूर्छित हुई, वहां अब यमुना नहीं है रुधिर के प्रवाह मे सहस्रों तरंगमाला उठकर उनके पांव में बारम्बार आघात करती है। तीरे अनगिनित मुर्दे पड़े हुये हैं, उनकी साथ वे भी सोई हुई हैं। सियार कुत्ते उन्हीं मुर्दों की लोथ लेकर परस्पर लड़ रहे है। झुण्ड के झुण्ड कौवे गिद्ध गिद्धिनी उसी जगह मुर्दों की लोथ पर उड़ उड कर आते है। थोडीही दूर पर रण का बाजा बज रहा है। तोपों का गम्भीर गर्ज्जन और अस्त्रों की झनझनाहट सुनाई देती है। भय से वह धीरे धीरे उसी रणक्षेत्र में उठ बैठी। हा। कैसा भयानक दृश्य है। उनने पिता पृथ्वीराज को यवनों के हाथ में कैद देखा। राजगृह मे देखा कि आग लगा है, धायँ धायँ जल रहा है। उनका सिर घूमने लगा, बैठ न सकीं, लुढुक पड़ीं, एक रक्तमय मुर्दे की लोथ पर गिर पड़ी। देखा कि वे कल्याण के मृतक शरीर के ऊपर गिर पड़ी हैं। स्वप्न में ऐसा देखते मात्र वे तुरन्त घबड़ाकर "पिता—युवराज" कहकर करुणा के साथ चिल्ला उठीं। स-

हिषी डर कर "उषा, उषा, बेटी।—क्यों ऐसा करती है? कहकर कन्या को पुकारने लगीं। उषावती को कुछ चेत हुआ, धीरे धीरे कमलनैन खुला, एक गहिरी और लम्बी सांस लेकर 'मां' कह के पुकार उठी। महिषी बोली "पुत्री, क्या भय हुआ था"। उषावती धीरे धीरे अति मृदुस्वर से बोली "मां, मैं एक भयानक स्वप्न देखती थी। मा—पिता—और—और?" उसका स्वर भंग हो गया। पीले मुख पर किञ्चित् लोहित आभा देख पडी, तौभी कल्याण का नाम न कह सकी। "वे सब लोग कहां हैं? उनलोगों को देखने की मेरी बडी इच्छा होती है। मैंने स्वप्न देखा कि जैसे पिता—जैसे युवराज"—उषावती अधिक न बोल सकी, कण्ठ सूख गया दुर्बलता के कारण फिर निद्रित की भांति पडरही। थोडी देर में चिकित्सक (वैद्य) आये, और सुना कि राजकन्या की आज मूर्छा भंग हुई है, उनने कुछ बातें भी की हैं। यह सुन सोचने लगे कि "यह क्या! आज सहसा ऐसा सुलक्षण क्यों दीख पडता है? अतिशय पीडा के कारण दो दिन से प्रति दिन जिसकी मृत्यु की आशङ्का हो रही है, अकस्मात् उसको ऐसी शान्ति कैसे हुई? क्या पीडा से अब आरोग्य होगा? कि यह मृत्यु का पूर्व लक्षण है? जो हो, आज का दिन बीतनेही से निश्चय समझ में आवेगा"। यह आरोग्य का चिह्न है किंवा मृत्यु का पूर्व

लक्षण है, वैद्य ने उसको निश्चय न जान कर भी उसको इस अवस्था को देख सुन कर किञ्चित् आह्लाद प्रकाश किया। वे कुछ काल बैठकर उषावती के निश्चेष्ट मुख का भाव देखने लगे, देखा कि, वही मुख किञ्चित् हास्य से विकसित होता है, प्रात:कमल की भांति धीरे धीरे विकाश पाता है, देखा कि उषावती का ओष्ठाधर मृदुमन्दभाव से कॅपता है, मानो बोलने का उद्योग करती है। क्रमशः सुना कि "इन्द्र-भुवन पारिजात—वह—युवराज—उठा दो—सिर में"—कण्ठ कण्ठही में रह गया, किन्तु उन्होंने देखा कि उषा-वती ने दहिनी बॉह धीरे धीरे उठाकर अपने गिरे हुये केश गुच्छों के ऊपर रक्खा और किञ्चित् सौभाग्य की हॅसी आई वैद्यराज महिषी से बोले "राजबाला सुखस्वप्न देखती है यह भी एक प्रकार का सुलक्षण है। इन्हें सूचिकाभरण नामक औषधि खिलानी होगी। सिर पर अब और औषध देने की आवश्यकता नहीं है। सिर इस समय अच्छा दीख पड़ता हैं। आज इस समय जैसा लक्षण देखा जाता है यदि ऐसाही आज रात्रि व्यतीत होने तक रहै तो आरोग्यही की अधिक सम्भावना है। ऐसा होने से राजबाला एकही सप्ताह में आरोग्यता लाभ कर सकेंगी"। यह कहकर वैद्य-राज चले गये। महिषी और दासियों का मुख कुछ प्रफुल्लित हो गया। क्रमशः तीसरे पहर उषावती को, फिर चेत हुआ।

बोली "माता, बडो प्यास लगी है"। महिषी ने अपने हाथ से सोने घडे से जल लाकर सोने को झारी में डाल कर मुख में दिया। राजकन्या बोलीं "माता, मैं स्वप्न देखती थी कि यहां से और कहीं गई हूं। कैसे सुख में हम लोग घूमती फिरती थीं। वहां कितना पारिजात है—कितना कनकपद्म है, वहां जाने पर तुमलोग देख पडेगो न?" महिषी मन का भाव छिपाकर कष्ट से बोलीं "हां, क्यों नहीं देख पडेंगो'। उषावती बोली "माता, पिता जो कहां हैं, और—और—"उषावती युवराज का वृत्तान्त पूछने में लज्जित हुई। महिषी बोलीं "वे लोग युद्ध में गये हैं"।

उषा०—"मुझ से कहकर नहीं गये क्यों?"

महिषी—"उस समय तुम सोती थीं"। उषावती को फिर बात करने में कष्ट हुआ। बोली "माता, अब मुझ से बोला नहीं जाता, किन्तु यह पूछती हूं कि—वहां जाने से उनलोगों से भेंट तो होगी न?" इतने में द्वार के बाहर एक भयानक कोलाहल हुआ। परिचारिकागण सब की सब उधरही कान लगाकर सुनने लगी। महिषी भी घबड़ा उठीं। मूर्छित उषावती के कान में भी उस कोलाहल का शब्द स्पष्टरूप से सुनाई पडा। सहसा दो तीन घनी सिपाही उलटे सांस उस जगह आये। और हाँफते हाफते बोले "आओ—आओ—शीघ्र आओ"। सब की सब मिल

कार पूछ उठीं "क्या हुआ ?" उन सबों ने उत्तर दिया "बोलने का समय नहीं है, शीघ्र आओ, यवनों की जय हुई चाहती है, वे सब अब राजशिविर लूटने आवेंगे ;—पालकी तयार है"। महिषी ने भयभीत होकर पूछा "महाराज कहां हैं ?" वे सब बोले "उनको भूमि पर गिरते देखा है"। इस बात से राजकन्या घबड़ाई हुई की भांति देख रही थी। राजमहिषी ने फिर उन्मत्त की भांति पूछा "समरसिंह ?—कल्याण ?" कल्याण का नाम राजकन्या के कान पड़तेही, उनको सहसा बल हो गया। उत्तर की आशा में किञ्चित् सिर उठाकर टकटकी लगा देखती रहीं, सुना कि समरसिंह बलहीन होकर भी अभीतक यवनों का बढ़ना रोक रहे हैं नहीं तो अबतक वे सब शिविर में आ गये होते,—और युवराज कल्याण ?—युवराज कल्याण ने युद्ध में प्राण त्याग किया !!! तुरन्त राजकन्या का मस्तक मिट्टी के पिण्ड की भांति सिरान्हे गिर पड़ा !। एक बार माता, पितः—युवराज—येही दो नाम अत्यन्त कष्ट से निकले। उन्होंने आखें बन्द कर लीं अनन्त निद्रा में निद्रित हुईं। वस्तुतः दीपनिर्व्वाण हो गया।

किन्तु प्राण त्यागने के संग उनके मुख की श्री कुछ भी न बदली। वरन उनके मुखमण्डल में एक स्वर्गीय शान्तिभाव प्रकाश हुआ। उनका ओष्ठाधर किञ्चित् भिन्न और

आखें कुछ खुली रहने से मन में बोध होता था कि वे अभी कुछ बोला चाहती हैं। राजमहिषी ने कन्या का मस्तक पलँग पर गिरते देख डर से उनकी नाक और छाती पर हाथ रखकर देखा, किन्तु कुछ भी सास न पाया। क्रमशः हाथ पाव मुख की चेष्टा देखकर कन्या की यथार्थ अवस्था समझ गईं। महिषी ने उषावती की पीड़ा के समय से आहार निद्रा प्रायः सब त्याग कर दिया था। एक तो कई दिन से मन का कष्ट, दूसरे निद्रा आहार का छुटना, तिसपर आज पति कन्या और राज्य से विहीन हो कर वे असह्य कष्ट में मूर्छित होकर गिर पडीं।

क्रमशः दासियों की शुश्रूषा से महिषी सज्ञान होकर उठ बैठीं, पुनः उषावती पर दृष्टि पडी, उन सिपाहियों पर दृष्टि पडी, उनको अब अपनी यथार्थ अवस्था बोध हुई। वे इस समय पतिहीना, कन्याहीना हैं, उनका राज्य अब नहीं है, इस समय देश यवनों के हाथ में है। उनका हृदय विदीर्ण होने लगा, फिर वे अपने तईं न सम्हाल सकीं, आखो से आपही आप आसुओं की धारा बहने लगी। मृत कन्या को छाती से लगाकर रोने लगीं। उस समय एक सिपाही ने कहा "महिषी, कोलाहल बढ़ता जाता है। और विलम्ब करने में विपद् की सम्भावना है, महिषी रोते रोते उठ बैठीं, और शरीर से समग्र अलङ्कार उतार कर तु-

रक्त दूर फेंक दिया, आखो से आंसू पोंछ डाला, एक बून्द भी न शेष रहा, चोटो खोल डाली, महिषी की मूर्ति उन्मादिनी की मूर्ति हो गई। वे उन्मत्ता की भाति शून्य दृष्टि से देखकर हृदयभेदी गम्भीर स्वर से बोलीं 'कैसी विपद। मुझको अब और क्या विपद होगी ? अब मुझको विपद भय नहीं दिखा सकती। तुम लोगों को विपद् से भय होता है तो तुमलोग जाओ मैं नहीं जाऊँगी। मैं भागूगी नहीं। क्षत्री की स्त्री, स्वामी पुत्री राज्यविहीना होकर भागना नहीं जानती। पालकी में बैठने के बदले अब हम चिता पर बैठेंगी। यवनो के अधीन होकर जहां चाहो भाग कर प्राण की रक्षा करो, जिसको इच्छा हो वह क्षत्रीयरक्त को कलंकित करे, किन्तु मेरा जीना तुमलोगों की भांति नहीं है। जैसी मैं राजमहिषी थी—अन्त समय भी वैसीही राजमहिषी की भांति मरूंगी क्षत्री की स्त्री की भांति मरूंगी, वीरबाला की भाति मरूगी, यवन मुझ को देख भी न पावेंगे"। यही कहकर महिषी ने चिता प्रस्तुत करने की आज्ञा दी सेनागण ने लज्जित और हताशहृदय से प्रस्थान किया।

उन्तीसवां परिच्छेद ।

जिस युद्ध में पृथ्वीराज कैद हुये, जिस युद्ध में कल्याण ने प्राण त्याग किया, उसी युद्ध के एक पूर्व्व वृत्तान्त को आवश्यक जान कर हमलोग इस परिच्छेद में उसे वर्णन करते हैं। यवनों के साथ हिन्दुओं की सुलह होने पर पृथ्वी राज और कल्याण जिस रात्रि उमावती को देखने गये थे उसी रात तीसरे पहर यवन सब सन्धि भंग करके चुपचाप दृशद्वती के पार चले आये थे। उत्सवोन्मत्त हिन्दू सेनागण ने जब देखा कि यवनों ने गुप्तभाव से आकर उनलोगों की छावनी के एक ओर आग लगा दी, और इधर उधर छिट फुट जो हिन्दू सिपाही थे उनको विश्वासघातकतापूर्व्वक विनष्ट कर दिया, वे सब उसी वे सरोसामान की अवस्था से कोई आग बुझाने लगे, कोई यवनो की ओर आगे बढ़े। सेना की लोगों की आनन्दध्वनि, आर्त्तनाद से बदल गई, बाजे का शब्द तोपो की धमक में डूब गया। समरसिंह विपद देखकर अस्त्र शस्त्र लिये हुये उन्मत्तों की भांति दोनों हाथ से तलवार चलाने लगे, उनका घोड़ा भी मानों वीर-मद से मत्त होकर उनको यवनों के मध्य में लिये हुये चला गया। उनके चारो ओर बहुत से बनी सिपाही कोई ह-थियार लिये कोई बिना हथियारही कोई वर्म्म पहिने कोई

नंगे शरीर जी पर खेल कर युद्ध करने लगे, क्रमश: थोड़े थोड़े सज्जित होकर उन सिपाहियों की सहायता के नि-मित्त आने लगे, मरे और घायल सिपाहियों की जगह, फिर नये सिपाहियो से पूर्ण होने लगी। इसके पहिलेही पृथ्वीराज और कल्याण यवनों की चढ़ाई सुनकर सिपाहियों को मध्य में पहुँचे थे। समरसिंह ने कुछ काल लों यवनों को युद्ध में रोका तब तक उनलोगो ने उसी मादी सेनागण को यथासाध्य शृङ्खलाबद्ध (कतार) करके समरसिंह की सहायता की। समरसिंह ने सम्मुख से हो कर यवनों पर चढ़ाई की थी, इस कारण उनलोगो ने दो ओर से चढ़ाई कियो, और समरसिंह के अधीन में और नई सेना भेजा। और यह आज्ञा दियो कि केवल चार सहस्र घुड़सवार और तीन सहस्र पैदल सेना सज्जित करके विजय अपने साथ लिये हुये पीछे पीछे आवैं। पृथ्वीराज ने इन सब सिपा-हियो को सज्जित रक्खा, विचारा कि यदि पीछे अत्यन्त आ-वश्यकता होगी तो इन सभो के द्वारा सहायता पा सकेंगे। पृथ्वीराज ने विशेष करके कह दिया था कि जब तक वे राज भेरी स्वयं न बजावैं, विजय उस सेनागण को लेकर रण मे प्रवृत्त न हों क्रमश: अब घोरतर संग्राम आरम्भ हुआ, हथियारो की झनझनाहट, रण के बाजों, और सैन्य को-लाहल से शिविर कांपने लगा, रणक्षेत्र मे रक्त की नदी

बहने लगी। एक बेर "जय जय महाराज" एक बेर "अल्ला हो अकबर" का शब्द आकाश में गूंजने लगा। इसी प्रकार चणकाल घोरतर युद्ध होने पर फिर इस बार भी यवन पराजित हुये, इतनी धूर्त्तता और चातुरी पर भी न जीत सके। परास्त होकर वे सब भयभीत हो इधर उधर भागने लगे।। समरविजयी होकर हिन्दू आह्लाद में मत्त हो गये। वे लोग केवल विजयी होकर सन्तुष्ट न रह सके। यवनों की विश्वासघातकता का फल देने के लिये भागने पर उनलोगों ने शत्रुओं का पीछा किया। कल्याण ने उन्मत्त की भांति उन यवनों की भीड़ को छेदकर मुहम्मदगोरी के पीछे धावा किया। पृथ्वीराज और उनकी सेना कल्याण के पीछे पीछे चली। उन लोगों को इसप्रकार उन्मत्त देखकर वीरचूड़ामणि समरसिंह भी सेना के साथ उनलोगों की सहायता के लिये चले। इसी प्रकार दोनों दल के लोग क्रमान्वय से दौड़ने लगे। क्रमश: हिन्दू सैनिक लोग छिटफुट हो गये। मुहम्मदगोरी ने जब देखा कि कल्याण की सेना आगे बढ़ आई है और पृथ्वीराज तथा समरसिंह के दल को बहुत पीछे छोड दिया है तो वे सहसा सेना लेकर फिर खडे हुये, कल्याण तुरन्त पूर्ण वेग से घोड़ा दौड़ाकर उनके निकट आये और उन्मत्त की भांति तलवार चलाकर बोले "रे यवन, अपनी विश्वासघातकता का दण्ड ले"।

यह कहकर मुहम्मदगोरी के छाती पर मारने के लिये इच्छा करके प्रचण्ड वेग से हथियार चलाया, किन्तु मुहम्मदगोरी के तीर के समान पीछे हट जाने से उसका नोकमात्र उनको छाती में लगा, उससे उस अस्त्र को प्राणघातक तीव्रता अनुभव करके उनने भी तीव्र दृष्टि से कल्याण का मस्तक ताक कर तलवार चलायी, किन्तु कल्याण की ढाल पर पड़कर वह उसी क्षण दो टूक हो गई, मुहम्मद गोरी ने फिर तुर्त्त पल भर में कमर से दूसरी तलवार निकाली। किन्तु उसके खोलने की आवश्यकता न थी, क्योंकि उसके पहिलेही एक सिपाही ने पीछे से कल्याण को निशाना करके एक तीर चलाया था। वह तीर कल्याण के मस्तक पार होकर ललाट छेद कर अटक गया, कल्याण ने चकित की भांति उसको खींचते हुये पीछे फिर कर देखा। देखा कि विजयसिंह धनुष से और एक तीर चलाकर विकट हास्य से हँसते हैं। कल्याण ने शिर से तीर निकाल कर दूर फेंक दिया उसने एक यवन सिपाही के मस्तक को छेदकर उसका प्राण विनाश किया। कल्याण ने विजय को ओर देखा, किन्तु उनको देर तक न देख सके, उनका सिर घूमने लगा और 'रे पापिष्ट, उपावती को बध करके भी तेरे रक्त को प्यास न मिटो" कहते हुये मृत्युप्राय हो कर पृथ्वी पर गिर पडे। मुहम्मदगोरी को तलवार से क-

लागा का घोड़ा छिन्न मस्तक होकर अपने सवार के साथही गिर पड़ा, दोनो ने क्षण कालही में प्राण त्याग किया। इसी समय सिपाहियों को लिये हुये पृथ्वीराज और समरसिंह आ पड़े। उनलोगों ने मानों सहस्र गुण बलवान होकर यवनसेना पर चढ़ाई की। सहसा मुहम्मदगोरी के उसी छिप हुए सैन्य भाग के मध्य से ५००० घोड़े के सवार और ४००० पैदल सैन्य ने आकर उसी छितराई थकी माद हिन्दू सेना को घेर लिया। तब पृथ्वीराज विजय को उस बाकी सैन्य लाने के लिये कमर से तुरही निकाल बजाकर बुलाने लगे। विजय न आये। पृथ्वीराज समरसिंह इत्यादि सब के सब प्रतिक्षण विजय के आने की प्रतीक्षा करने लगे किन्तु विजय न आये। विजय के आने तक इस चेष्टा से कि यदि वे कुछ काल के लिये भी यवनों के युद्ध में सहायता कर सकेंगे तो देखा जायगा वे लोग उसी थकी मादी बँची बँचाई थोड़ी सेना लेकर अनेक यवनों के अग्रसर होने में बाधा देने का यत्न करने लगे। किन्तु सेना रण त्यागने पर बाध्य हुई, तौभी विजय न आये। तथापि यह कहकर कि नई सेना आता है सिपाहियों को भरोसा देकर और हिन्दू वीर्य्य को स्मरण कराकर वे लोग बीच बीच में सिपाहियों को समरोत्साही करने लगे, और वारम्वार यह देखने लगे कि विजय सेना समेत आते हैं कि नहीं। इतने में दूर से

देखते क्या है कि उनलोगों की ओर एक सेनादल बढ़ा चला आता है। इस आशा से कि विजय सैन्य लेकर आते है उनलोगों का हृदय प्रफुल्लित हो गया। विजय को पीछे रख आये थे किन्तु सम्मुख से आते देखकर विचारने लगे कि, किसी कारणवश इस ओर से घूमकर आता है इसी से विजय के आने में इतना विलम्ब हुआ। नई सेना देखकर पृथ्वीराज की सेना को फिर बल प्राप्त हो गया। वे लोग, 'जय जय महाराज' बोलते हुये द्विगुणवेग, द्विगुण रोष से उस अगणित यवनसेना के सग युद्ध करने लगे। क्रमश: वह सेना निकट आई। तुरन्त राजपूत सिपाहियों का हृदय टूट गया। वे लोग आशाभग हो गये—हाय। यह विजय की सेना न थी। अब नूतन ५००० यवन घुड़सवार और ६००० यवन पैदल सैन्य उनलोगों पर चढ़ाई करने आते है।

इस समय पृथ्वीराज ने पराजित सैन्य के संग विजय को भी भागते देखा। उन्होंने समझा कि विजय उनकी बात न मान कर पहिलेही से अपनी अधीनरहनेवाले सैन्य दल को लेकर संग्राम में प्रवृत्त हुये थे, अब वह भी दूसरे सिपाहियों की भांति थक कर युद्ध में असमर्थ हो गये है। समरसिंह और पृथ्वीराज ने कोई दूसरा उपाय न देखा। निराश होने पर भी जब लों हो सका सिपाहियों को समरोत्साही रखने की चेष्टा करने लगे। किन्तु अब नई सेना

ने आकर उनलोगों पर चढ़ाई की इससे उस बची बचाई थकी मांदो सेनागण को उन सभों के विरुद्ध फिर युद्ध करने में हिम्मत न हुई। बहुत से कट कर मर गये, कुछ घायल हुये बाकी सिपाहियों ने हताश हो भागना आरम्भ किया। इस समय सेनापतियों का समरोत्साही वाक्य उन-लोगों को उत्साहित न कर सका। केवल थोड़ी सो प्रभु-भक्त सेना प्रभुओं के संग प्राण देने को प्रस्तुत रही। अन्त मे घायल सिंह की नाईं पराक्रम कर समरसिंह और पृथ्वो-राज ने अपनी विश्वासपात्र थोडी सी सेना लेकर उन्मत्त की भांति उन सौ सहस्र यवनों के क्षय करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा की। घोर संग्राम हुआ – खड्ग बर्छी तलवार, तोरों से महाप्रलय उपस्थित कर दिया। दोनों हाथों से तलवार चलाते चलाते समरसिंह ने एक बार पोछे एक बार सम्मुख आकर सिपाहियो का सहार प्रारम्भ किया। पृथ्वीराज भी समरसिंह की भांति प्रबल प्रताप से युद्ध करने लगे, अकेलेहो अनेक यवन सैनिकों को ध्वंश कर डाला, किन्तु ऐसे अवसर मे जय लाभ की आशा रखना व्यर्थ है। युद्ध करते करते उनके सिपाहियों में से बहुतेरे खेत रह गये, और वे भी सर्व्वांग में बान बिध जाने से घा-यल और मूर्छित होकर घोडे से गिर पडे। पृथ्वीराज उसी मूर्छित अवस्था से यवनों के हाथ बन्दी हो गये। देखो आ-

आपूर्णा ने यवनोंही की आशा पूर्ण की। महम्मदगोरी ने युद्धक्षेत्र में यह आज्ञा प्रचार कर दी कि पृथ्वीराज को कोई सिपाही न मारे।

पृथ्वीराज को भूमि पर गिरते हुये देख समरसिंह को जय की आशा लुप्त हो गई किन्तु तौ भी वे अन्त पर्य्यन्त यवनों को गति बन्द करने में दृढ़ हो कर युद्ध करने लगे कुछ देर लों ऐसाही रहा। वही थोडी सी बची बचाई सेना लेकर वे इस प्रकार अटल भाव से युद्ध करने लगे कि यवनों के हृदय में त्रास उपजने लगा। एक घड़ी बीती दो घड़ी बीती, समरसिंह की थोडी सेना और भी थोडी हो चली तथापि वे उसी प्रकार अटल रहे। वे उसी थोडी सी सेना से उनलोगों का गर्व्व चूर्ण करने लगे जो साहस करके उनके निकट आने लगे। समरसिंह के वीर भाव से डर कर उनके निकट आने में क्रमशः यवनों का कलेजा काँपने लगा। जब महम्मदगोरी ने देखा कि उनकी आज्ञा पर भी कोई सिपाही आगे नहीं बढ़ता तो उन सभों को साहसी करने के लिये उनने स्वय आगे बढ़ कर समरसिंह के सेनागण पर आक्रमण किया। इससे उनके सैनिकों को भी साहस हुआ और वे सब उनके पीछे चले। जब समरसिंह की समस्त सेना विनष्ट हो गई तब महम्मदगोरी ने समरसिंह पर आक्रमण किया। किन्तु उनके हस्त-चालित

तलवार के सम्मुख आने में साहसी न हुये पीछे से आकर समरसिंह के घोड़े के एक पैर में ऐसी तलवार मारी कि वह कट गया। घोड़े के गिरते गिरते समरसिंह भूमि पर कूद पड़े, गिरने के साथ चारों ओर से उनके अंग पर अस्त्र की वृष्टि होने लगी, वे दोनों हाथ चलाते हुये उसी अवस्था में युद्ध करने लगे। समरसिंह को विपत्ति में देख कर महम्मदगोरी ने इस वार उनका मस्तक ताक कर तलवार चलायी। किन्तु उससे समरसिंह की घूमती हुई दहिनी भुजा कटकर गिर पड़ी। इसको देखतेही बहुत सी यवनसेना ने निकट आकर उनको घेर किया। कोई हाथ कोई पीठ कोई कोई छाती और कोई मस्तक में आघात करने लगे। समरसिंह अब और कुछ न कर सके, हथियार चलाते चलाते पृथ्वी पर गिर पड़े और प्राण त्याग कर दिया। सन्ध्या के पहिलेही यवनों की जय हुई। चिरप्रज्वलित दीपक इस बार बुझ गया, आर्य्य गौरव का सूर्य्य आज अस्त हो गया, आज धर्म्म अधर्म्म से परास्त हुआ आज भारतवर्ष विषाद के अन्धकार से छिप गया, केवल यवनों की विजयपताका रूप प्रज्वलित धूमकेतु मस्तक के ऊपर प्रकाशमान हुआ।
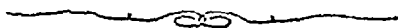
तीसवां परिच्छेद ।

अभी तक दिन का अन्त नहीं हुआ है। अनेक क्षण से नभमण्डल मे कुछ कुछ मेघ छा रहा है। अस्ताचल के जानेवाले सूर्य्य देव उसी तरल मेघमाला के मध्य में छिप कर अपनी तेजोहीन ज्योति प्रकाश करते है। मेघों से छिपी हुई मलिन ज्योति मे चारो ओर का अन्धकार भाव मानो और भी बढ़ गया है। उधर उस दूरवर्त्ती भयानक रणक्षेत्र का भयानक भाव और भी भयानक हो गया है, इधर यह निर्जन क्षेत्र और सज्जित चिता मनुष्य हृदय को उदासीनता से विवश किये देती है। महिषी आज कन्या के संग इसी चिता पर बैठेंगी। महिषी आज देवलोक में स्वामी के दर्शन हेतु गमन करेंगी। किन्तु महिषी के मुख से एक बात भी नहीं निकलती वे अपनी प्राणाधिका उषा-वती को छाती में लगा कर चलती हुई पत्थर मूर्ति की भांति चिता की ओर चलीं। परिचारिकागण भी रोती हुई उनकी पीछे पीछे चलीं। उन्होंने कन्या को उसी चिता में सुलाकर उसको चन्दन माला से भूषित करके आप भी ललाट में रक्त चन्दन का लेपन किया, और उस चिता को भक्तिभाव से प्रणाम करके चिता में बैठने जाती हैं। इसी समय एक दल क्षत्रिय घुड़ सवारों का उसी स्थान पर आ कर उप

स्थित हुआ और उन लोगो के सेनापति घोडो से उतर कर महिषी को प्रणाम कर कुछ कहने के आशय से हाथ जोड़ सम्मुख खडे हुये। उन लोगो के आने से महिषी फिर खडी हो गई और पूछा "बलदेवसिंह। तुम को क्या कहना है कहो, कहने की आज्ञा देती हू।"

बल—"देवि। दिल्लीश्वर ने मुझको आप के निकट एक बात निवेदन करने के लिये भेजा है।

महि—"दिल्लीश्वर। उन्होने तो रणक्षेत्र में प्राण त्याग किया न ?।"

बल—"नहीं देवि। उनके घायल और मूर्छित होकर भूमि पर गिरने से सब लोगो ने उनकी मृत्यु का अनुमान किया था, किन्तु वास्तव मे वे—"

महि—'वास्तव में वे क्या—? कहो, तुम लोगो को महिषी आज्ञा देती है कहो।"

बल—"वास्तविक वे यवनो के हाथ—वन्दी—हुये" वन्दी सुनकर महिषी व्यग्र हो गई। दिल्लीश्वर ने उनलोगो को क्या कहने के लिये भेजा है इसका सुनना वे भूल गई। सैनिकगण के प्रति घृणासूचक भृकुटी फेर कर, परिचारिकाओ की ओर रोष से कम्पित मुख फेर कहने लगी "परिचारिका गण। यह क्षत्रिय सैनिकगण, ये क्षत्रिय वीरपुरुष समरक्षेत्र त्याग कर 'महाराज वन्दी हुये हैं, यही मुस-

म्वाद देने के निमित्त इतनी दूर कष्ट सहकर आये हैं। रहैं, ये लोग इसी स्थान पर रहैं, अथवा स्त्री पुत्र कन्या इत्यादि का मुख देखने के लिये अपने देश को लौट जावैं। किन्तु दिल्ली के महाराज चक्रवर्ती हैं। मैं प्रजा होकर कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकती, महाराज मेरे स्वामी हैं, मैं पत्नी होकर कभी निश्चिन्त न रहूंगी। ये लोग कभी क्षत्रियजननी के दूध से प्रतिपालित नहीं हैं, किन्तु मैं क्षत्रियकन्या हूं, मैं क्षत्रियपत्नी हूं, मैं बिना सहायता किसी के आज उनको बन्धन से छुडा कर लाऊँगी।" यही कह कर जो सैनिक पुरुष महिषी को सम्वाद देने के लिये घोडे से उतरा था, उसके हाथ से तलवार खींच ली और उसके घोड़े पर आरूढ़ होकर वही पट्टवस्त्र पहिने हुये, रक्त चन्दन लगाये छुटे हुये सघन केशजाल से शोभिता, वीरपत्नी अभिमान में गम्भीर और क्रोध से रक्तवर्ण हो कर, तथा वीरतेज से उन्मत्त की भांति समरक्षेत्र की ओर चलीं। सैनिक लोग अब तो लज्जा और अनुताप से मृतप्राय हो कर मन ही मन कहते थे कि "महाराज के छुडाने के हेतु जब लों हमलोगों में से एक का प्राण भी रहता तब लों युद्ध करते किन्तु क्या करें महाराज ने हमलोगों को युद्ध से छोडाकर अत्याचारी यवनों के हाथ से महिषी और अन्य अन्य स्त्रियों को अतत: चितारोहण पर्य्यन्त रक्षा करने के निमित्त यहां

आने की आज्ञा दी है।" फिर महिषी को घोडे की पीठ पर आगे बढते देख वे सब भी विद्युत् की भांति तेज उत्ते-जित हो उठे और सब के सब भारत की जयध्वनि करते हुये रानी के पीछे पीछे चले। परिचारिकागण चिता के निकट उषावती को लेकर शून्य दृष्टि से देखती रहीं।

महिषी जिससमय युद्ध के लिये बाहर हुई उस समय यवन लोग अपने अवशिष्ट अदण्ड और अटल शत्रु वीरश्रेष्ट समरसिंह को बहुत कष्ट से बध करके निष्कंटक जयध्वनि करते हुये शिविर लूटने आते थे। राह में सब उस विक-राल मूर्त्ति उस संहारकारणी मूर्त्ति, वीरांगणा को हाथ में कृपाण लिये घोडे की पीठ पर अग्रसर देखकर पहिले भ-डक उठे, फिर जब क्षत्रिय सेनादल उनलोगों को गति-रोध करने में तलवार चलाने लगे तब उन लोगों का चटक भंग हो गई। जलधारा की भांति चारो ओर से तीर, बर्छी वेग से आकर क्षत्रिय सेना के उपर पडने लगी। क्षत्रिय सैनिक लोग दुर्भेद्य व्यूहबद्ध हो कर महारानी को घेर प्राण पर खेल कर युद्ध करने लगे। यवनगण उन्मत्त तरंग की भांति जितना आक्रमण करने लगे, क्षत्रिय सेना भी समुद्र तीर की शैलश्रेणी की भांति अटल भाव से वारम्बार उन सभी को दूर फेकने लगी। किन्तु महिषी व्यूह में फिर निवेष्ट हो कर बैठ न सकीं, अपनी सेना को हटा कर,

तलवार हाथ में लिये हुए यवनसैन्य के सम्मुख आने को, उनकी चेष्टा से उनके सम्मुख की सेना छितराय गई, तुरंत उनसभी के मध्य से एक वर्छा आकर रानी की छाती में बिध गया, वे घोड़े से गिर पडीं। उसी चण इस आशंका से कि उनकी देह कोई यवन स्पर्श न करे एक चत्रिय सिपाही ने उनको अपने घोड़े पर उठा कर बेग से घोडे की बाग छोड दी। यवन लोगों ने उसके निकट पहुँच बलद्वारा महिषी को लेने की उसके निवारण के लिये महिषी के संग संग और भी कई एक सैनिकोंने घोडा दौडाया। यवनगण जब तक उनका पीछा करें, तब तक रानी की बाकी सेना उनसभी की गतिरोध करके खडी हो गई। बचने की आशा किम्वा इच्छा फिर उनलोगों में किसी का न रही. उसी थोड़ी सी चत्रिय सेना को पराजित करने में बहुत समय लगा और अनेक यवन सैनिक पृथ्वी पर लोट गये।

सैनिक लोग महारानी का मृत शरीर लेकर जब चिता के निकट आये उस समय सन्ध्याकाल व्यतीत हो गया था। उषावती को गोद में लेकर चिता प्रशान्त भाव से मानो महारानी की अपेक्षा कर रही थी। सैनिक लोगों ने उस चिता पर उषावती के निकट रानी को शयन करा के उसमें आग लगा दी, चिता धधक कर बल उठी। सैनिक लोग और भी आहुति उसमें देने लगे, चन्दन की लकडी से अग्नि

बढ़ने लगी। क्रमश: अग्नि की लवर गगन स्पर्श करने लगी, परिचारिका गण भी सब की सब चिता में बैठ गईं, अग्नि और भी भभक उठी, पतिव्रता के प्रकाश का खम्भ दिगदिगन्त को प्रकाशित कर उस चिता में जलने लगा, क्रमश: आग में लालिमा हो आई, अन्त में चतुर्दिक अन्धकारमय करके वह प्रदीप्त आलोकस्तम्भ लोप होगया, उसीके साथ साथ चतुर्थी का चन्द्रमा भी अस्त हुआ, भारत का दीप भी बुझ गया।

चारो ओर अन्धकार मय—चारो ओर शून्यमय स्थानेश्वर आज श्मशानमय है—केवल बीच बीच मे यवनों के आह्लाद का कोलाहल है, हिन्दुओ का आर्त्तनाद है, घायलो का कातरस्वर है, और सियारो का अमंगल चीत्कार दिगदिगन्त से उठकर गगन मार्ग को विदीर्ण करने लगा।

उसी समय से वही सकीर्ण श्मशान क्षेत्र क्रमश: विस्तृत हो कर हिमाचल से कन्याकुमारी तक समस्त भारतभूमि मे व्याप्तमान होने लगा। क्रमश समस्त भारतक्षेत्र श्मशानक्षेत्र हो गया। चारो ओर से उस शिवा का अशिव चीत्कार, उन घायलो का आर्त्तनाद प्रतिध्वनित होन लगा। दीपहीन भारत चारो ओर से क्रमश: निशा के घोर अन्धकार से छिप गया। अब कुछ भी नहीं दीख पडता, केवल कभी कभी दूरान्त से दो एक प्रज्वलित चिता धधक कर-

जल उठती है जिस से पाषाण हृदय भी सतप्त होता है और कहीं कहीं लुक के तीक्ष्ण प्रकाश से मनुष्यों की दृष्टि चौंक जाती है।

एकतीसवां परिच्छेद।

समरसिंह हत हुये, पृथ्वीराज बन्दी हुये, रणविजयी महाम्मदगोरी का आज कैसे सुख का दिन है उन्हें आज थकावट नहीं है, उनको आज विश्राम नहीं है। युद्धजय होने पर विश्राम न करके वे इस समय घोड़े पर सवार हो कर, चारो ओर का वृत्तान्त देखते फिरते है। सैन्यगण को युद्ध के पुरस्कार (ईनाम) में हिन्दुओं की छावनी लूटने की आज्ञा देते है, घायल और थके मादे सेनागण को देख कर कि कौन कहां कहां है उनके निकट उत्तम रूप से पहरेदार नियुक्त करते है, किसी किसी हिन्दू कैदी को जल्द बध करने को आज्ञा देते है। इसी प्रकार से चारो ओर के बन्दोबस्त हो करन मे व्यस्त हो रहे है। इसी समय दो तीन यवन सैनिक आकर आदाव बन्दगी बजा कर उनसे बोले "जहांपनाह। हमलोग छावनी लूटने जाते थे, राह में थोड़ी सी लश्कर लेकर हिन्दू रानियों ने पागलों के मानिन्द दीवानी हो कर हमलोगों पर हमला किया। पृथ्वीराज की गिरफ़ारी का हाल सुनकर वे उसकी रिहाई

के फिक्र में आई थीं। मगर हमलोग उनको अभी कतल किये आते हैं।" यह बात सुन कर महम्मदगोरी आश्चर्यान्वित हो कुछ देरलों चुपचाप रहे, फिर न जाने क्या सोच कर बोले "तुमलोग हमारे सिपहसालार और खास खास मुसाहिबों को यहा ले आओ, जल्द जाओ, मैं इसी बरगद दरख़ के नीचे इन्तजारी करता हूं।" एक सैनिक बोला "सिपहसालार ने तो लडाई में इन्तकाल किया।"

महम्मदगोरी—"आज कुतबुद्दिन नया सिपहसालार मोकर्रर किया गया है। उसी को खबर दो'। इतना सुन सैनिक लोग चले गये। थोडी देर बाद सेनापति और सभासदगण उस जगह आकर उपस्थित हुये। महम्मदगोरो सेनापति का सम्बोधन कर बोले "कुतुब। सुना है कि पृथ्वीराज के कैद का अहवाल सुनकर हिन्दू रानियें उसे छोडाने के लिये आई थी"।

सेनापति—" जैसा गुरूर किया था उसका वैसाही समरा भी पाया!"

मह०—'यह तो हुआ, लेकिन क्या तुमको इससे यह नहीं मालूम होता, कि पृथ्वीराज जब तक कैद रहेगा तब तक हमलोग बेफिक्र नहीं रह सकते। इसमें वे कामयाब हों या न हों मगर उसको रिहाई के लिये हिन्दू लोग ज़रूर फिर लडेंगे।'

सेना० "हिन्दू लोग जैसे शिकस्त हुये हैं, क्या फिर भी उनमें लड़ने की ताकत बाकी है?"

मह०—"तो तुमने अभी तक उनलोगों को पहिचाना नहीं। वे सब जैस वफादार और अतायतश्आर हैं, राजा को कैदी सुनने से मुल्क में वे लोग जिन्होंने हथियार हाथ में नहीं लिया, सब के सब हथियार उठाने की ख्वाहिश करेंगे। देखा। उसको साहिद औरतें हैं जो उसके लिये हमलोगों के मुकाबिल जङ्ग करने आई थी"।

सेना०—बेशक आईं, मगर हुआ क्या? अब पृथ्वीराज नहीं, समरसिंह नहीं, वह शेर बच्चा कल्याण भी नहीं है, अब किसका खौफ़? रियाया का? जिन्होंने पैदाइश से अभी हथियार नहीं उठाया?"

मह०—"नहीं, नहीं, मैं खौफ़ की बात नहीं कहता अब तो हमलोग बिलाशुबहा उन छोटी छोटी आफतों को दफा कर सकेंगे। लेकिन लड़ाई होने में भी तो सिपाही मारे जावेंगे और नुकसान भी होगा, अगर बिला तरद्दुद हमलोग इस फ़तेहयाबी का समरा उठा सकें, तो फिर बिला जरूरत लड़ाई करने से क्या फायदा? पृथ्वीराज को क़तल करनेही से अब हमलोग बेखतर होंगे, ऐसा होने से फिर किसको रिहाई के लिये हिन्दू लोग जान देने आवेंगे? क़त्ल करने से क्या नफ़ा नुकसान है इसका तस्फ़ीया इसी वक़्त होना चाहिये"।

उसी वटवृक्ष के नीचे घोड़े की पीठ पर इस विषय पर उनलोगों का परामर्श होने लगा। एक सैनिक बोला "मगर पृथ्वीराज को क़त्ल करने के एवज अगर हमलोग उसे बतौर ग़ुलाम के अपने मुल्क में फतहयाबी का निशान बनाकर ले चलें तो हमलोगों को और भी ज्यादा फ़ख़ हासिल होगा'।

मह०—"नहीं नहीं, जो वजूहाते मैंने कही है उन्हीं वजहों से पृथ्वीराज को उतने दिन तक कैद में रखना मसलहत नहीं है"। एक और सैनिक बोला "लेकिन पृथ्वीराज को जिन्दा रखने में उसके जरिये से अगर हमलोगों का फ़ायदा हो तो इसमें क्या हरज है? क्योंकि हमलोगों को फिर भी हिन्दुस्तान के और दूसरे अतराफ में फतेह करने की गरज से जाना है, अगर पृथ्वीराज उस बारे में हमलोगों की मदद करेगा तो बिलाशुबहा मुराद हासिल होगी। अगर वह हमारी राय को कबूल करे तो एक छोटा सा मुल्क अपने मातहत उसको दे दिया जावेगा, और कामयाबी के बाद इस सुलह का तोड़ डालना तो हमलोगों के अख़्तियार में है, इस तौर के सुलह होने में किसी बात का खौफ नहीं है"। सब किसी ने इसी बात का अनुमोदन किया। मुहम्मदगोरी बोले "यह राय तो अच्छी है। मगर सुलह हो या क़त्ल यह इसी वक्त से हो जाना चाहिये"।

यही कहकर उन्होंने पृथ्वीराज को उसी जगह लाने की आज्ञा दी। सैनिक लोग शृङ्खलाबद्ध पृथ्वीराज को उसी स्थान पर ले आये। पृथ्वीराज का समस्त शरीर क्षत विक्षत था, किन्तु शारीरिक कष्ट से उनकी भौं मात्र भी टेढ़ी न थी देखने में नम्रता या संकुचित भाव कुछ भी न था, वरन वह वीरमूर्त्ति और अधिकतर क्रोधित हो गई, अधिकतर तेजस्विनी हो गई। पृथ्वीराज यहां आने पर कुछ भी न बोले, बात करने में भी उनको अपमान बोध होने लगा। वे तुच्छभावसूचक और रोषगम्भीर आरक्त दृष्टि से देख रहे थे। कैदी का ऐसा भाव देखकर मुहम्मदगोरी आश्चर्यान्वित हुये, उनका कटाक्ष देखकर अज्ञातभाव से आपस में मानो कुछ सहम गये। उनके मुख से कोई कठोर बात न निकली। वे नम्रभाव से बोले "महाराज आपने और मर्तबः हमलोगों के साथ सलूक किया था, इस मर्तबः आप देखेंगे, कि हमलोग उसे नहीं भूले है, मै भी आपके उस सलूक के बदले सलूक करूगा" इस बात का पृथ्वीराज क्या उत्तर देते है सुनने की इच्छा करके मुहम्मदगोरी चुप हो गये ; किन्तु पृथ्वीराज ने कुछ भी उत्तर न दिया। अनुग्रह की बात सुनकर अपमान से उनका शरीर सिर से पैर तक जल उठा, रोमाञ्च खड़े हो गये। यवनों का अनुग्रह वाक्य भी उनको सुनाना पड़ा। विधाता ने युद्ध में भी उनको मृत्यु नहीं

लिखी। पृथ्वीराज ने अति कष्ट से अपने चित्त को सँभाला किसी की ओर न देखकर दृष्टि नीचे कर ली। उनको निरुत्तर देखकर मुहम्मदगोरी फिर बोले "मैं आप की नाव-खुशी करूंगा, अपने मातहत आपको मुल्क दूंगा"। "अ-धीन में राज्य देंगे!" सुनकर पृथ्वीराज की आखों से आग की चिनगारी निकलने लगी, शरीर का रक्त गर्म हो उठा। महम्मदगोरी ने मन में विचारा कि जीवनदान सुनकर मालूम होता है कि सहसा पृथ्वीराज और भी तेजमान हो गये। वे बोले लेकिन मैं आपके साथ सलूक करूंगा तो आपको भी मेरे साथ सुलूक करना पड़ेगा। मैं हिन्दुस्तान के और और अतराफ में फतेह करने जाऊंगा, आपको भी मदद करनी होगी"। पृथ्वीराज से अब न रहा गया, फिर अपना सकल्प स्थिर न रख सके, बात करने से फिर न रुक सके, क्रोध से मुग्ध होकर कमर में जो तलवार था उस पर हाथ बढाने की चेष्टा की, किन्तु चेष्टा निष्फल हुई, जजीर का झनझन शब्द हुआ अपने को बधा हुआ पाया, उनको अपनी प्रकृत अवस्था स्मरण हुई, देखा कि वे कैदी हैं, दिल्ली के महाराजाधिराज पृथ्वीराज आज यवनों के हाथ में कैद हैं। इस समय वे रस्सी से बँधे हुये क्रुद्ध सिंह की भांति, दावानल के समान भयानक मूर्ति धारण करके रोदकम्पित पञ्च गम्भीर स्वर में बोले, 'यवन! दुराचार! कैदी समझकर

मेरे निकट इस प्रकार अधम प्रस्ताव करने में तुझ को सा हस हुआ ! मैं यवन के अधीन मे राज्य भोग करूंगा ? । मैं अपना देश दे कर—" क्रोध से पृथ्वीराज का कण्ठ बन्द हो गया, और बात न कर सके । उस गर्वित बचन से महम्मद गोरी भी क्रुद्ध हो गये । आपही से हृदय का यथार्थ भाव प्रगट हो गया, मीठी मीठी बातों से फिर उस को न छिपा सके । कठोर स्वर से बोले, "मुसलमानों से सुलह करने में आपको बेइज्जती है ? तो मुसलमानो के हाथ से कतल हो-नेहो में आप की इज्जत मालूम होती है' ।

पृथ्वी—"यवन के हाथ से ?—पिशाच के हाथ से मृत्यु भी अब मेरे पक्ष में सम्मानजनक है । किन्तु अब नहीं—तेरे उपहासवाक्य का अब मै उत्तर न दूंगा । दुरात्मन् । यवन के संग वार्तालाप करना भी क्षत्रों के पक्ष मे कलंक है" कह कर पृथ्वीराज मौन हो गये । बन्दी का गर्व्वित भाव महम्मदगोरी फिर न सह सके । तुरन्त अपने सम्मुख उन के वध करने की आज्ञा दी । उन्होने इङ्गित किया, प्रह-रीगण पृथ्वीराज का हाथ पकड कर किञ्चित् ओट मे ले गये । और उन को मस्तक नीचे करके बैठने की आज्ञा दी, सैनिक लोग चारो ओर से घेर कर खडे हो गये, महम्मद-गोरो ने फिर इशारा किया, घातक (जल्लाद) आज्ञानु-सार कुठार से एक एक करके पृथ्वीराज का तमाम अंग

छेदन करने लगा, हर्षित लोचन से महम्मदगोरी उस को देखने लगे। किन्तु इतने कष्ट पर भी पृथ्वीराज ने एक भी बात मुह से न निकाली, एक बार भी कातर स्वर से न बोले। महम्मदगोरी ने फिर इशारा किया, घातक ने हाथ तौल कर पृथ्वीराज के गले पर कुठार चलाया, रक्त बहता हुआ मस्तक भूमि पर गिर पडा, आर्य्यकुलगौरव दिल्लीश्वर का मस्तक आज यवन के हाथ से छिन्न हो कर भूमि पर गिरा !!!—शेषनाग सहस्र मस्तक से व्यथित हुये !!! समुद्र के सहित भारतवर्ष कँप उठा !!!—स्वाधीनता अनन्त मूर्छा से मूर्छित हुई !!!—बस दीपनिर्वाण पूरा हो गया !!!

उपसंहार ।

दीप तो निर्वाण हुआ, किन्तु अब किरणसिंह, कविचन्द्र, शैलबाला और प्रभावती क्या हुए, उन को कुछ वर्णन करके इस उपन्यास को समाप्त करते हैं। कविचन्द्र यथ साध्य चेष्टा करने पर भी नाना कारणवश समय से दिल्ली न पहुंच सके। प्रथम कारण यह था कि कविचन्द्र को ढूंढने यवन लोग पश्चिम दिशा ही की ओर जावेंगे इस विचार से उन्होंने उस रात को भागने पर पहिले दिल्ली की ओर आना युक्तिसिद्ध न समझा। इसी हेतु दूसरी ओर चले एक ही रात में दिल्ली से और भी अधिक दूर जा पडे दूसरा कारण यह था कि वहां से दिल्ली आने का कोई उत्तम

पथ न था, अतिदुर्गम मार्ग था आने के समय पथभ्रम इत्यादि नाना असुविधे हुये। सुतरा इसो प्रकार सामान्य सामान्य नाना कारणा से यवनो के स्थानेश्वर आने के तीन चार दिन उपरान्त वे दिल्ली पहुँचे। वहा आने पर सुना, कि महम्मदगोरो ने विजयो हो कर पृथ्वीराज को बध किया और दिल्ली मे राज्यस्थापन करने के लिये स्थानेश्वर से दिल्लो आते है। कविचन्द्र ये सब बाते देख सुन कर जितने व्यथित हुए उसका कहना बाहुल्य मात्र है। फिर उन्होंने गुलाब को देखा, गुलाब को उन्मत्तावस्था में देख कर उनका शोकसागर एक बेर उमंग पडा किन्तु क्या करैं— भग्नहृदया उन्मत्ता गुलाब को संग लेकर चित्तौर को ओर धाता थी। यह समझ कर कि गुलाब उन्मत्त हो गयो हैं महिषी अपने संग उसको स्थानेश्वर नहीं ले गयीं, दिल्ली हो में रख गयी थीं किन्तु कविचन्द्र आप कितनेही व्यथित क्यों न हो, वे चित्तौर आ कर पहिले एक विशेष कार्य्य करने में तत्पर हुए—कदाचित् यवन लोग चित्तौर आक्रमण करने आवें इस विचार से उन्होंने पूर्व प्रबन्ध कर उस नगरी को उत्तम रूप से युद्धसामग्री द्वारा सज्जित कर रक्खा। इस कार्य्य के समाप्त होने के कुछ दिन उपरान्त शैलबाला का किरणसिंह के साथ विवाह कर दियां,प्रभावती और गुलाब को लेकर जन्मभूमि अजमेर की एक छिपी हुई पर्वत-कन्दरा